वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिकपत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ७ } मुरादाबाद जनवरी, १९१९ { संख्या १

विषय-सूची

प्रकाशक—हरिशंकर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य १।)

Printed by Kailasachandra
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD.

* वैद्य के नियम *

(१) यह पत्र प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) इसका वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १।) रु० है।

(३) नमूने का केवल एक अंक भेजा जाता है। दूसरा विना ग्राहक होने की सूचना मिले नहीं भेजा जाता। नमूने में कोई सा अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) जो महाशय इसमें छापने के लिए वैद्यक विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिये कार्ड या टिकट भेजना चाहिये।

सर्व प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस, मुरादाबाद" के पते पर भेजने चाहिए।

विज्ञापन छपाई व बटाई की दर।

एक वर्ष	१ पेज २४	आधा पेज १५	चौथाई पेज ८
६ मास	१६	८	५
३ मास	१०	६	३
१ मास	४	३	२

१ फार्मपत्र की बटाई १० रु० परन्तु सूचीपत्र आदि बटवाना हो तो पत्र व्यवहार से तै करना चाहिए।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ७ } मुरादाबाद, जनवरी १९१६ { संख्या १

नव वर्ष ।

करे विश्व को मग्न सफल विघ्नों को टारे ।
आयुर्वेद महत्व प्रकट का व्रत शुभ धारे ॥
ललित काव्य सम लेख हरें मन सज्जन जन का ।
है जिन का अज्ञेय रहे प्रिय उन के मन का ॥
सब को प्रसन्न करता रहे मन वच काय लगाय कर ।
यह भव्य वर्ष नव वैद्य का हो हम सबको सुखदकर ॥

कृष्णानन्द जोशी

—o—

वैद्य का नव वर्ष स्वागत ।

(१)

छठा वर्ष बीता दुर्द्धर्ष, सप्तम आया छाया हर्ष ।
नूतन-आशा, नूतन-हर्ष, स्वागत ! स्वागत ! नूतन वर्ष ॥

(२)

महायुद्ध ! दुखदायी दोष, प्रकृति-मातु का पूरा रोष ।
उसका अन्त हुआ उत्कर्ष, स्वागत ! स्वागत ! नूतन वर्ष ॥

(३)

मित्रराष्ट्र संशय में ग्रस्त, हुई दुराशा सारी अस्त ।
निकला अच्छा ही निष्कर्ष, स्वागत ! स्वागत ! नूतन वर्ष ॥

(४)

प्रकृतिविरुद्ध हुआ जग भ्रान्त, कर दीजे अब सबको शान्त ।
प्रकट कीजिये सत्यादर्श, स्वागत ! स्वागत ! नूतन वर्ष ॥

(५)

युद्धज्वर ! हा ! कालस्वरूप, दिखला अपना भीषणरूप ।
भागा, पा तेरा उत्कर्ष, स्वागत ! स्वागत ! नूतन वर्ष ॥

(६)

सभी सजाओ मंगल साज, भागें रोग शोक अघराज ।
सुखदायक हो तेरा दर्श, स्वागत ! स्वागत नूतन वर्ष ॥

(७)

"वैद्य" वंश दिनरात बढ़ाय, सबका प्यारा पात्र कहाय ।
करदो व्यापक भव्यादर्श, स्वागत ! स्वागत ! नूतन वर्ष ॥

(८)

सुखी होयँ सब जग के लोग; हरलो तन के मन के रोग ।
हतोत्साह मिटे-हो हर्ष, स्वागत ! स्वागत ! नूतन वर्ष ॥

—०—

(आयुर्वेद-महिमा)

(लेखक—कविकुमार महेश्वरप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य)

गीतिका ।

(१)

प्रिय सभ्यवर ! आदर करो, शुचि सिद्ध आयुर्वेद का ।
है विस्मरण उसका किया, यह मार्ग कैसे खेद का ?
निर्भर हमारे देह की, आरोग्यता जिस तत्त्व पर ।
आता कभी न विचार है, इस दिव्य पूर्व महत्त्व पर ॥

(२)

जगदीश की इस सृष्टि में, उत्पन्न सब सामग्रियाँ ।
प्रतिवस्तु के परिणाम में, अद्भुत भरी हैं शक्तियाँ ॥
देखो वनस्पतियाँ सहस्रों, मूल तरु रस पत्तियाँ ।
करतीं सुपुष्ट शरीर हैं, निर्मूल कर दुर्वृत्तियाँ ॥

(३)

इस देश की जल वायु से, रज वीर्य साधन अन्न से ।
इस देहपञ्जर में रमा, शुक के सदृश चेतन बसे ॥
फिर हेतु क्या इस बात का ?, हम लें विदेशी औषधें ।
लज्जित न होते हम भला, निज देश औषध क्यों न लें ॥

(४)

क्या वे विदेशी औषधें, प्रत्यक्ष गुण की खान हैं ।
या आप आयुर्वेद के, गुण राशि से अनजान हैं ॥
अनिवार्य्य जिस में वश्यता, ऐसी विदेशी वस्तु लो ।
इस देश में जो प्राप्त हो, फिर क्यों? विदेशी वस्तु लो ॥

(५)

निज शास्त्र-तत्त्व विवेक में, कितना समय व्यय कर गए ।
ऋषि मुनि हमारे देख लो, भण्डार भारी भर गए ॥
हम क्यों ? विमुख उससे रहें, आसक्तता क्यों ? और पर ।
ईश्वर सुरक्षक सर्वदा, हैं औषधें हर ठौर पर ॥

(६)

अनुभव बिना उपयोग के, क्या जान सकते आप हैं ?
क्या शास्त्र की है सम्पदा ?, क्या सिद्ध शक्ति कलाप हैं ?

इसमें उठो अनुभव करो, इस शास्त्र के उपयोग से।
पहचान होती सत्य है, सोना कसौटी पर कसे॥
(७)
आनन्द सुन्दर देह का, तब तो निरामयता रहे।
हो रुग्ण आयुर्वेद से, आरोग्य की पदवी लहे॥
आरोग्य रक्षा का सदा, अपने हृदय में ध्यान हो।
आहार और विहार का, शास्त्रानुसारी ज्ञान हो॥
(८)
ममता जिसे निज बात से हो, क्यों न शीघ्र सुधार हो।
संशय न करना चाहिए, इस पार या उस पार हो॥
आभ्यन्तर हो तो हानि क्या?, नर-शक्ति वस्तु अमेय है।
वह प्राप्त होता विश्व में, जिसके लिए चिरध्येय है॥
(९)
उस की चिकित्सा पूर्ण हो, सद्युक्ति-युक्त प्रचार हो।
धन स्वार्थ साधन हो नहीं, उसका स्वतंत्र विचार हो॥
संसिद्ध वैद्यक को करो, उसकी प्रणाली पर चलो।
हृद्राम नयनों से लखो, मत बाह्य नेत्रों को मलो॥
(१०)
प्राचीन मुनिजन-कीर्ति की, करनी सुरक्षित चाहिए।
उस को बढ़ानी चाहिए, करनी सुलक्षित चाहिए॥
यह देश का कर्त्तव्य है, कुछ व्यक्तिगत उन्नति नहीं।
एकत्व साधन के बिना, मिलती भला सद्गति कहीं॥

—o—

चिकित्सकों के प्रति उपदेश।

जिस वैद्य, हकीम अथवा डाक्टर ने यह प्रतिज्ञा नहीं की कि वह चिकित्सा-शास्त्र में पूर्णविराम-लाभ करेगा वह कभी चिकित्सक नहीं बन सकता।

—o—

यदि महत चिकित्सक बनना है तो सदैव विद्यार्थी बने रहिए। सर्वदा यह समझते रहिये कि चिकित्सा-शास्त्र असीम है, ज्ञान असीम है। तीन या चार वर्ष किसी विद्यालय या कालेज में पढ़ने से कोई चिकित्सक नहीं होसकता।

जिस समय चित्त में यह धारणा उत्पन्न हो कि हम इस विषय के पारदर्शी बन गये उसी समय से अपना पतन समझना चाहिए। अहंकारी व्यक्ति वकील हो सकता है, व्यापारी हो सकता है, किन्तु चिकित्सक नहीं हो सकता। कारण अहंकार शान्ति का शत्रु है और शान्ति चिकित्सक के लिए पथप्रदर्शक है। यदि किसी सन्दिग्ध स्थल पर अभिज्ञ चिकित्सक का परामर्श ग्रहण करने अथवा किसी नवीन चिकित्सा-प्रणाली को देखने में आप को अपमान मालूम हो तो समझ लेना कि आप प्रकृत चिकित्सक नहीं हैं। सुयोग एवं समय रहने पर भी, अपमान के भय से, यदि आपने अपने से बड़े किसी चिकित्सक से राय न ली और रोगी को मर जाने दिया तो यह न समझना चाहिए कि लोगों ने यह बात नहीं समझी। यदि यह बात लोगों से छिप भी गई तो आप अपनी आत्मा से एवं परमात्मा से किस प्रकार छिपा सकेंगे।

चिकित्सक के लिए यह बात परमावश्यक है कि वह जनसाधारण का श्रद्धाभाजन बने, पर पवित्र आचरणों के बिना श्रद्धा नहीं मिल सकती।

—०—

अनाचारी चिकित्सक कभी प्रतिष्ठालाभ नहीं कर सकता। आचारभ्रष्ट चिकित्सक सुवैद्य होने पर भी समाज में कलङ्क-स्वरूप है। यदि रोगी आप पर विश्वास नहीं रखता तो आप उसे निरोगी नहीं कर सकते। चरित्र की उत्कृष्टता ही विश्वास, श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न कराती है।

—०—

यदि आप चिकित्सा जैसे जीवन-मरणवाले प्रश्न को हाथ में लेना चाहते हैं तो प्रत्येक विषय में धैर्य्यपूर्वक कार्य्य करना सीखो। रोग का निश्चय बड़ी कठिनता से होता है। अत एव धैर्य्य रखते हुए अपने कर्तव्य मार्ग को सुपरिष्कृत करो।

—०—

चिकित्सक के लिए केवल बुद्धि ही की आवश्यकता नहीं है, चित्त की दृढ़ता उसके लिये अत्यन्त ज़रूरी बात है। सहसा विपद्के समय चंचल होजाने से काम बिगड़ जाता है: उस समय अविचलित चित्त ही सहायता कर सकता है। यदि आप की किंकर्तव्य-

विमूढ़ता को लक्ष कर, रोगी के कुटुम्बी बिना नावकों की नाव समझ कर हाहाकार करने लगें तो आप न तो समाज से आदर पायंगे और न यश।

—०—

चिकित्सक के लिए क्रोध का विसर्जन करना पहला कर्तव्य है। यदि आपके साथ रोगी या रोगी का कोई सम्बन्धी आप से बहस करने लगे तो यह न समझना चाहिए कि वह आप की परीक्षा लेना चाहता है। उस की इच्छा रोग से परिचय पाने की होती है, अतएव आप उसे शान्त चित्त से समझा दें। ऐसा करने से प्रथम तो ज्ञान-दान हुआ और दूसरे रोगी या उसके सम्बन्धी लोगों का चित्त आप की ओर आकर्षित होगा। हम यह नहीं कहते कि किसी विशेष स्थल पर सत्य ही बोलिए।

—०—

चिकित्सक महात्मा होना चाहिए। व्यथित हृदयको शान्ति देना, दूसरे की मृत्यु के साथ संग्राम करना और काल का लक्ष च्युत करना साधारण मनुष्यों का काम नहीं है।

—०—

यदि रोगी नहीं बच सकता तो अप्रयोजनीय औषधियों से परलोकयात्री की आत्मा को कष्ट न पहुंचाइए।

—०—

जिस रोगी की चिकित्सा करने के लिए आपका अन्तःकरण राय न दे उसकी चिकित्सा न करना चाहिए। किन्तु, इसका कारण कि आप उसकी चिकित्सा क्यों नहीं करना चाहते अपने इष्ट मित्रों से भी न कहें।*

—०—

स्वास्थ्य का सरल मार्ग।

(लेखक—प्रतिभासम्पादक प० ज्वालादत्तजी शर्मा)

जहाँ बारह महीनों में ११ महीने पानी पड़ता है या बर्फ गिरता है वहाँ के निवासी यदि प्रकृति पर अविश्वास करके शराब जैसी विषैली चीज को मुँह लगालें तो किसी अंश में क्षम्य है पर जहाँ

* "प्रचारक" नामक बँगला पत्र से अनुवादित।

हर ऋतु अपनी बहार दिखाती है, जहाँ गर्मी सर्दी और बरसात का अनवरत चक्र प्रकृति की ऐनदाखसन्दी का पुकार पुकार कर पता दे रहा हो, वहाँ के मनुष्य दूसरों की नकल के लिए अपना नाश अपने हाथ से करने लगें तो सन्ताप से बढ़ कर लज्जा की बात है।

जहाँ नदियों का प्राचुर्य है अतएव अन्न की उपज काफी है, जहां के फलों की मिठास के सामने अन्य द्वीपों की चीनी के दाँत खट्टे होते हैं वहाँ के मनुष्य आलस्य से, प्रमाद से या मूर्खता से अमृत छोड़ कर विष खाने लगें तो बड़ा आश्चर्य है।

यदि हम लोग अपने स्वभाव पर ध्यान दें, प्रकृति के नियमों का अध्ययन करें तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि प्रकृति के लीलाक्षेत्र और शान्तिपूर्ण राज्य भारत में इस तरह रोगों की वृद्धि हो। प्लेग से छुटकारा मिलते न मिलते श्लेष्मज्वर ने आघेरा। हैज़े के दूर होते न होते मियादी बुख़ार आ सवार हुआ। क्या स्वास्थ्य का मार्ग इतना पेचीदा या कुटिल है कि उसे खोज निकालना मुश्किल नहीं असम्भव है? क्या भारत का जल वायु ही इतना दूषित होगया है कि उस की रखवाली के लिए एक न एक रोग का हर समय मौजूद रहना आवश्यक है? किसी विचारशील पुरुष ने कहा है—"संसार में हम ख़ुद अपना जितना नुकसान करते हैं दूसरे लोग हमारा उतना नुकसान नहीं करते। भूकम्प में जितने मकान प्रकृति ने अपनी डकार के साथ हज़म किये हैं उनसे कहीं ज़्यादा बुद्धिनिधान मनुष्य ने अपने हाथ से गिराये हैं।" शुद्ध वायु का हम मूल्य जानते, पानी के सिवा और कोई चीज़ न पीते, अपने जीवन को नियम की शृङ्खला से बांधते तो क्या भारत का कल्पित दूषित जल वायु हमारा उतना नुकसान कर सकता?

पक्के और साफ मकान में यदि घंटों आग सुलगती रहे तो भी उसे ध्वस नहीं करसकती, पर यदि उसी पक्के मकान में भूसा या बारूद भर रही हो भले ही वह मकान इसी साल का बना हो तो अग्नि का संसर्ग अचिरात उसे नष्ट कर सकता है।

एक ही स्थान में ४ आदमी रहते हैं, दो बीमार होते हैं दो नहीं। बाहरी प्रकृति का दोनों पर एकसा असर होने पर भी परिणाम एक नहीं निकला। जिन दो आदमियों की भीतरी प्रकृति अच्छी थी वे चंगे रहे पर क्या उस अन्तःप्रकृति को सतेज करने के लिए हम कोई यत्न करते हैं?

मनुष्य-स्वभाव की दुर्बलता है कि वह झपाटे से हर काम की सिद्धि चाहता है। इश्तहारी लोगों ने, स्वास्थ्य के विषय में जनसाधारण को विशेषरूप से नुकसान पहुंचाया है। एक दवा सौ रोगोंको मार भगाती है, एक शीशी हजार आदमियों की तन्दुरुस्ती का बीमा कर सकती है—जब ये बातें सुन्दर भाषा में हजारों रुपया खर्च करके सुन्दर और मोटे टाइप में छपा कर पढ़े लिखे लोगों तक पहुँचाने की चेष्टा बड़ी सरगर्मी से की जारही है तब अल्प वित्त और साधारण समझ के आदमी अन्त:प्रकृति को सतेज करने की तपस्या करेंगे या सस्ते दामों पर तन्दुरुस्ती की दवा मोल लेकर स्वास्थ्यनाश का अच्छा फल भोगेंगे ?

पर इस तरह के मार्ग को हम सरल नहीं कहते। मार्ग दस दिन की जगह दस महीने में भले ही कटे पर कंटकविहीन हो, साफ हो चोर, डाकुओं के खटके से बेखटके हो तो सरल है।

हमारे स्वास्थ्य की अवस्था इतनी शोचनीय होगई है कि हमें असली स्वास्थ्य की अनुभूति ही नहीं होती। मार्ग से दूर होने पर भी यदि हम दिग्भ्रष्ट नहीं हुए हैं तो एक न एक दिन हम गन्तव्य-स्थान पर पहुंच सकते हैं। पर हमारी अवस्था उस यात्री की है जो पूर्व जाने के लिए पश्चिम की यात्रा कर रहा है। हम नहीं जानते स्वास्थ्य क्या है ? असली भूख किसे कहते हैं ? काम की उमंग कैसी होती है, इन्द्रियातीत सुख की कौन कहे इन्द्रियों का असली सुख भी क्या है ? जिसे मोटा देखते हैं, उसे तन्दुरुस्त कहते हैं, जो छोटा होता है वह हमारी दृष्टि में कमज़ोर है, जो नियमों की जितनी अधिक अवहेला कर सकता है वह उतना ही अधिक तन्दुरुस्त है। मसाले के सुगाद और पकवानों के समूह में हम रोगों से भरी नकली तन्दुरुस्ती को खोजते हैं।

इस का एक कारण है, बहुत दिनों के विपरीत आहार विहार ने हमें कुछ बुरे अभ्यासों का ऐसा क्रीतदास बना दिया है कि गुलामी को ही स्वतन्त्रता समझ बैठे हैं। १०४ डिग्री का जिसे बुखार रहता हो वह १०० डिग्री बुखार होने पर अपने को 'अच्छा' बताता है। इसी तरह अजीर्ण रोगके रोगी रोटियों के पचाने को ही तन्दुरुस्ती की अलामत समझते हैं। सच है—

"मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझ पर कि आसाँ होगईं।"

सब से पहले हमें स्वास्थ्य का आदर्श समझना चाहिए। बाद को उस के प्राप्ति के साधनों पर ध्यान देना चाहिए और अपनी पारिपार्श्विक अवस्था की अनुकूलता का ध्यान रखते हुए उन नियमों को पालन करना चाहिए।

न वह स्वस्थ है जो पाँच सेर खाता है और दिन भर सोता है और न वह जो एक छटाँक के लिए भी चूरन की पुड़िया तलाश करता फिरे। न वह स्वस्थ है जो कुली की तरह दिनभर पिचता रहता है और न वह जिसे काम के नाम से ज़ुकाम होता है। जिसका शरीर भरा हुआ है पर मोटा नहीं है, जिसका मन सरल और दयापूर्ण है, जिसका मन काम से घबड़ाता नहीं, पर काम करके समुचित विश्राम के लिये कोड़ा लगाता है। जिसे पसीना आता है पर बूदार नहीं, जिसे भूख व्याकुल करती है, पर निर्बल नहीं। जो इन्द्रियों को वश में रखने को सामर्थ्य रखता है, जिस का मन गम्भीर है, सुख दुःख में विचलित नहीं होता वही स्वस्थ मनुष्य है।

सिद्धांत है मनुष्य भी पशु है, पर पशु मनुष्य नहीं है। प्रकृति के नियमों का निरीक्षण हमें मनुष्यों से अधिक पशुओं में करना चाहिए। मनुष्य को पशुओं से भिन्न करने वाली उस की भयङ्करी बुद्धि ने जहां उसे प्रकृति में सर्वोच्च स्थान दिलाया है वहां उस के विपरीत आचरण ने दूसरी ओर उसे पशुओं से भी परे फेंक दिया है। अस्वस्थ मनुष्य के लिए उस के बिजलीके आविष्कार किस काम के? जिन का स्नायुमण्डल निर्बल पड़ गया है, जिन का दिल दबता चला जाता है उनके लिए मोटर की गति और व्योमयान की उड़ान उतना आनन्द नहीं देसकतीं जितना उस के घोड़े को हरी घास और बाल्टी भर चनेका दाना। इस लिए हमें प्रकृति के अत्यन्त भक्त पशुओं में प्रकृति के अखण्ड नियमों का पता लगाना चाहिए और बाद को उन्हें अपनी अवस्था के अनुकूल बनाकर काम में लाना चाहिए। क्या पशु बीमार होने पर खाते हैं? क्या पशुओं को भूख उकसाने के लिए चटनी मुरब्बे खिलाये जाते हैं? क्या वे अपनी किसी इन्द्रिय के भोग में अत्याचार करते हैं? क्या वे काम से मुँह मोड़ते हैं, क्या इन का पेट साफ करने के लिए गुलकन्द का सानी की ज़रूरत होती है? कौन कह सकता है—हाँ! प्रकृति की इच्छा है सब तन्दुरुस्त हों, जो तन्दुरुस्त नहीं हैं उन्हें प्रकृति अपने दरबार में से निकाल देती है और जब तक रोगों की गुदड़ी का बेड़ा

को उतार कर नये रूप में न आयें उन्हें अपने यहाँ स्थान नहीं देती। वह टूटफूट को ठीक करने के लिए रातदिन चुपचाप कोशिश करती रहती है, उस की इस इच्छा को समझ कर जो लोग उस का साथ देते हैं, उस के इशारे को समझते हैं और उस के बताये मार्ग पर चलते हैं वे अपनी खोई हुई स्वास्थ्य सम्पद को अवश्य प्राप्त करते हैं। प्रकृति का मंशा है, हर घर में हवा और रोशनी पहुँचे, हर घर साफ सुथरा रहे। कुदरती भूख लगने पर खूब चबा कर भोजन किया जाय, शुद्ध जल के सिवा कोई चीज़ न पी जाय। सभ्यता ने जिन चीज़ों का खाना पीना अनिवार्य सा कर दिया है प्रकृति केर कानून में वे अत्यन्त निवार्य हैं। कोई घोड़ा सिगरट पीता है, कोई बन्दर शराब पीता है, कोई गाय मसाला खाती है?

जो लोग अफीम नहीं खाते वे अफीम के लिए ज़रा भी चिन्तित नहीं होते, उस की प्राप्ति के लिए उन्हें ज़रा भी परेशानी उठाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। जो लोग अफीम या और कोई नशीली चीज़ खाना शुरू करते हैं, प्रकृति उन्हें मना करती है, समझाती है, डपटती है पर वे अपने शत्रु उस की बात पर कान न देकर अन्त में अपनी मूर्खता को वेदी पर सिर देते हैं। हमें प्रकृति के इशारे समझने चाहिएं।

जो लोग तन्दुरुस्त हैं उन्हें अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। उन्हें—

व्यायाम
सादा भोजन
काम
विश्राम
दाँतों
और
पेट की
सफाई पर ध्यान

रखना चाहिए। सवेरे सोना और सवेरे उठना सब के लिए अच्छा है। दिन का सोना जितना बुरा है रात को जागना उस से कहीं अधिक बुरा है। दिन काम को और रात आराम को है।

जो रोगी हैं वे दवाओं से अधिक प्रकृति पर विश्वास करें। आरम्भ में—

परहेज
हलके भोजन
दाँतों और
आँतों
की
सफाई

से उन्हें अपनी खोई हुई शक्ति प्राप्त करनी चाहिए और याद को उचित व्यायाम, काम और विश्राम से अपने जीवन के राग को ऐसे स्वर से गाया जाय कि उस की ताल न टूटे। डाक्टर और वैद्यों का स्थान उन्हें शुद्ध वायु,प्रकाश और प्रकृति सान्निध्य को देना चाहिए। स्वास्थ्य प्राप्त करने का इस से सरल दूसरा मार्ग नहीं है; इस में भटकने और ठगे जाने का भय नहीं है।

श्वसनक-सन्निपात।

(निमोनिया)

(महामहोपाध्याय वैद्यवतंस कविराज गणनाथ सेन विद्यानिधि एम.ए.,एल.एम. एस. महोदय के सिद्धांत निदान से अनुवादित)

लाक्षारसाभं यः ष्ठीवेद्रक्तंश्वासज्वरार्दितः।
स्थानफुफ्फुसमूलस्य तस्य श्वसनको ज्वरः॥

इस श्लोक से "श्वसनक- सन्निपात ज्वर" का परिचय कराया जाता है। लाक्षारसाभ= लाख के रस के समान लाल- काला। यह लक्षण, उन अन्य रोगों से, जिनमें कि मुख से खून आता है; इस रोग की पृथकता प्रगट करता है। जैसे-साफ-लाल (जिन्दा खून) को उरःक्षत, क्षय आदि रोगी; थूका करता है। "असाध्य" ग्रन्थिक-सन्निपात (प्लेग) में भी साफ लाल खून ही थूकना है। श्वासज्वरार्दितः= शीघ्रगामी श्वास और ज्वर से विशेष पीड़ित। जहां ये तीनों लक्षण एक साथ पाये जाँय,' वहाँ "श्वसनक-सन्निपात" जानना चाहिए। किसी २ रोगी को मुँह से खून आता ही नहीं है। किंतु वहाँ पर भी आकर्णन यंत्र (स्टेथसकोप) या उँगलियों के सहारे आघात करने से फुफ्फुस मूल में संहनी भाव (घनता) प्रकट होता है। जिसे व्रणशोथ में,वायुकोषों के अवरोध होने से, संहनी भाव (घनता) होता है। उसी तरह से यहाँ पर भी होजाता है। आकर्णन यंत्र से और

उंगलियों के सहारे परीक्षा करने की विधि यह है— "आकर्णन यंत्र" (स्टेथसकोप) से, धौंकनी में फूंक लगाने से जो अव्यक्त शब्द निकलता है उसके सदृश उँगली के सहारे आघात करने से पत्थर पर चोट लगाने के सदृश शब्द निकलता है। श्वसन यंत्र (फुस्फुस) पर आक्रमण होने के कारण, इसका नाम "श्वसनक-सन्निपात" है॥१॥

(निदान)-समाच्छादनहीनानां दुर्बलानां विशेषतः।
दीनानां दूनचित्तानां शीतवर्षादिबाधनात् ॥ २ ॥
अभिघातात्क्वचित्पूतिगन्धयोगेन कुत्रचित्।
क्वचिद्वा व्याधिमानेन पीडितस्यातिसङ्गमात् ॥३॥
सर्वेष्वृतुषु भूभ्रातु वर्षासु शिशिरे मधौ।
ज्वरः प्रादुर्भवत्येष दारुणः सान्निपातिकः ॥ ४ ॥

जिनके पास ओढ़ने बिछाने और पहिरने के वस्त्र नहीं हैं, जो बहुत ज़ियादा कमज़ोर हैं, दीन हैं, शोकादि से दुःखित हैं, ऐसे मनुष्यों को शीत वर्षा के कारण ठंड लग जाने से, चोट से, अति सड़ी हुई दुर्गंध के सूँघने से, इस रोग के रोगी के पास रहने से यह भयानक रोग पैदा होता है। यों तो सब ही ऋतुओं में, किंतु विशेष कर वर्षा शिशिर और बसंत ऋतु में पैदा होता है ॥४॥

(सम्प्राप्ति) संहृत्यासृङ् मूलतः फुस्फुसस्याऽ-
सव्ये पार्श्वे सव्यतो वा द्वयोर्वा।
जिघांसन्ति श्वासयन्त्रं हि दोषा-
स्तस्माद् घोरश्वासकृत्सान्निपातः ॥ ५ ॥

श्वसनक सन्निपात की सम्प्राप्ति कहते हैं। दाहिनी तरफ के या बायीं तरफ के अथवा दोनों ही तरफ के फेफड़ों के मूल में (दोनों हँसलियों के बीच में) दुष्टरक्त या लसीका नाम के पदार्थ को इकट्ठा करके वातादि दोष, फेफड़ों को दूषित करने के लिये तैयार रहते हैं (नियम पूर्वक दूषित नहीं करते हैं)। इस कारण से, श्वास के सहित, यह भयानक सन्निपात पैदा होता है। प्रायः प्रथम दाहिने ही फुफ्फुस में आक्रमण हुआ करता है, अतएव आचार्य ने प्रथम "असव्ये पार्श्वे" प्रयोग किया है। कुछ सज्जन इस रोग की उत्पत्ति जीवाणुओं से मानते हैं।

(पूर्वरूप)–पार्श्वार्त्तिः श्वासकासौ च क्वचित्कम्पोऽवसन्नता ।
प्राग् रूपमाहुर्निपुणाः प्रायः श्वसनके ज्वरे ॥६॥

इसको पूर्वरूप कहते हैं—पार्श्वार्त्ति=पसलियों में पीड़ा होना। (जिस फुफ्फुस में यह शोथ होगा, उसी में पीड़ा होती है) साँस, खाँसी और कभी २ कम्पन व सुन्नता होती है ।

(लक्षण)–प्राक् प्रायः शीतमत्यर्थं ज्वरस्तीव्रोऽरुचिस्तथा ।
पार्श्वशूलमधो कासः श्वासवृद्धिः क्रमेण च ॥७॥
कासतः शोणितं श्यामं मुहुः सान्द्रं प्रवर्त्तते ।
श्वासतो नासिकापार्श्वौ स्फूर्ज्जतश्च निरन्तरम् ॥८॥
स्वेदो ललाटे गात्राणि भृशंस्विद्यन्ति चानिशम् ।
गौरसर्षपवत् स्वेदपिडिकानाञ्च दर्शनम् ॥९॥
दौर्बल्यं सदनं मोहः प्रलापः कण्ठकूजनम् ।
परुषा कर्कशा जिह्वा मलिना च भवेद्भृशम् ॥१०॥
धमनी युग्मतो याति कोमला स्थूलचञ्चला ।
यावन्न ज्वरमुक्तिः स्याद् ज्वरमुक्तेरनन्तरम् ॥
विशेषान्मन्दतामेति रोगेऽस्मिन्निति निश्चयः ॥११॥
अष्टमे दिवसे प्रायः सप्तमे नवमेऽथवा ।
अकस्माज्ज्वरनिर्मुक्तिः स्वेदप्राचुर्यमेव च ॥१२॥
प्राणा वा तत्र मुच्यन्ते रोगी वा तत्र मुच्यते ।
मुच्यमानश्च नैरुज्यं शीघ्रमेव समश्नुते ॥ १३ ॥

अब इस ज्वर के लक्षण कहते हैं—प्रारम्भ में प्राय शीत लगता है, ज्वर तीव्र, अरुचि, श्वास, पार्श्वशूल, खाँसी और धीरे २ जैसे दोष फेफड़े के मूल पर आक्रमण करते हैं, वैसे ही वैसे श्वास की वृद्धि होती है। खाँसी में लाल काला और गाढ़ा खून आता है । साँस लेने में नाक के दोनों पार्श्वभाग बार २ फड़कने हैं । यह लक्षण अधिक निश्चयात्मक है। सम्पूर्ण शरीर में विशेष कर माथेपर हर समय पसीना आता है । सफेद सरसों के समान पिडकाओं का निकलना, दुर्बलता, विषाद, मोह, प्रलाप, कण्ठ में घड़घड़ाहट और जीभ में काँटे से तथा मैलापन होता है । नाड़ी युग्म (एक साथ दो बार) कम से

फड़कती हुई और कोमल, स्थूल चंचल चाल से चलती है। ऐसी नाड़ी जब तक ज्वर तीव्र रहता है, तब ही तक चलती है—और पाँचवें सातवें और नवें दिन ज्वर त्याग के बाद, स्वाभाविक गति से भी मन्द हो जाती है। सातवें, आठवें, अथवा नवें दिन ढेरों पसीना आ कर बहुधा एक दम ज्वर मोक्ष हो जाता है। यद्यपि यह ज्वर मोक्षरूप लक्षण प्रायः सब ही सन्निपातों में होता है, तथापि इस श्वसनक सन्निपात में विशेषकर होता है। कभी २ धीरे २ भी ज्वर उतरा करता है। पसीने के अधिक आने से शरीर एक दम ठंडा होजाया करता है। तथा नाड़ी भी दब जाया करती है। ऐसी दशा में रोगी के प्राण छूट जाया करते हैं या रोगी रोग से मुक्त होजाता है। किन्तु यदि सुचिकित्सा हो तो, रोगी को खतरा नहीं होता है। फिर इस रोग से त्राण पाकर, १५ दिन या १ मास में फेफड़े के अपनी स्वाभाविक अवस्था में पहुँचने पर, रोगी आरोग्य होजाते हैं॥ १३॥

साध्यता लक्षण।

एकतः फुस्फुसे दुष्टे ज्वरेऽतीव्रे स्थिते बले।
सम्यक् पादत्रये लब्धे मन्तव्या सुखसाध्यता॥ १४॥
स्वेदो भृशं ज्वरस्तीव्रो जरतो दुर्बलस्य वा।
पादत्रयस्य सम्पत्त्या सोऽपि जीवेत्कथञ्चन॥ १५॥

अब सुखसाध्य कष्टसाध्य के लक्षण कहते हैं। एक ही तरफ के फुफ्फुस पर असर हो, ज्वर तीव्र न हो, रोगी बलवान् हो, वैद्य, औषध और परिचारक बहुत अच्छे हों, तो रोगी सुखसाध्य मानना चाहिये। और यदि रोगी बुड्ढा या कमज़ोर हो, ज्वर तीव्र हो, पसीना ज़ियादा आवे, तो कष्टसाध्य समझना चाहिये। यदि तीन पाद (वैद्य-औषध, परिचारक) बहुत अच्छे हों, तो ऐसा रोगी भी बचजाता है॥ १४॥

असाध्य लक्षण।

द्वावेव फुस्फुसौ दुष्टौ समग्रौ यस्य वैकृतः।
घोरः श्वासो भृशं स्वेदो दुर्लभं तस्य जीवितम्॥ १५॥
मन्दं किञ्चित्प्रलपति स्वेदस्नातः प्रमुह्यति।
वेपथुः कफपादश्च प्राणास्तस्यापि दुर्लभाः॥ १६॥

अतीसारेण वक्रान्तो दुर्वारेण भवेद् यदि।
क्षीणः श्वसनकेनार्तो दक्षिणाभिमुखो हि सः॥ १७॥

जिसके दोनों तरफ के फेफड़े खराब होगये हों, या एक सम्पूर्ण रूप से खराब होचुका हो, घोर श्वास हो, ढेरों पसीना आवे, तो उस का जीना कठिन है। कुछ२ प्रलाप हो, पसीने में तर हों, बेहोशी हो, हाथ पाँव काँपे, ऐसे मनुष्य का भी बचना दुर्लभ है। यदि कोई इस रोग से पीड़ित दुर्बल रोगी, भयंकर अतिसार से आक्रान्त हो तो वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। (विशेष विवरण ग्रन्थकार के मूलग्रन्थ " सिद्धान्त निदान" में देखिये)

नाथूराम शर्मा आयुर्वेदाचार्य्य

—०—

युद्धज्वर और चिकित्सक।

(लेखक--प०कृष्णानन्द जी जोशी बी० ए०, एल० टी०)

वैद्य के पाठकों से यह बात छिपी नहीं है कि इस वर्ष एक नवीन प्रकार का रोग इस देश में अकस्मात् चल पड़ा था। चिकित्सकों ने इसे अनेकों नाम दिये थे। हम इस रोग का उल्लेख इस के सर्व व्यापी नाम "युद्धज्वर" से इस लेख में करेंगे। यद्यपि हम से अवैद्य के लिए इस विषय पर लेखनी उठाना धृष्टता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं तथापि कुछ अपने अनुभवों तथा कुछ सुनी सुनाई बातों का समावेश हम इस लेख में करेंगे। आशा है वैद्य के क्या वैद्य और क्या अवैद्य दोनों प्रकार के पाठक इस पर मनन और आचरण करेंगे।

हमारे वैद्य लोग तो पुराने ग्रन्थों से आगे बढ़ना चाहते ही नहीं उन की तो यह धारणा है कि हमारे त्रिकालदर्शी ऋषि महर्षियों ने सब रोगों की निदान, चिकित्सा आदि का वर्णन अपने ग्रन्थों में कर डाला है। उन के लिखे हुए रोगों के अलावा अन्य रोग न तो कभी इस संसार में हुए और न होंगे। हां, उन रोगों के सम्मिश्रण से इसप्रकारके रोग दिखाई देसकते हैं जो नवीनसे मालूम पड़ें परन्तु नवीन नहीं। दूसरी ओर एक प्रकार के और चिकित्सक हैं जो अपने शास्त्रों को पूर्ण नहीं मानते। उन की राय में उनके आचार्यों ने केवल उन रोगों की चिकित्सा आदि का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है जो उनके समय में पाये जाते थे या जिन की विद्यमानता का प्रमाण उन्हें पुराने ग्रन्थों या इतिहासों से मिला था।

इस लेख में हमें इन दोनों प्रकार के चिकित्सकों के मतामत पर कुछ भी वक्तव्य नहीं। हमारा आशय केवल यही है कि इन द्वितीय प्रकार के चिकित्सकों की राय में यह रोग तीन आक्रमण किया करता है। इन आक्रमणों में से पहले से दूसरा और दूसरे से तीसरा ज़बरदस्त होता है। अब ये लोग कहने लगे हैं कि इसके तीसरे आक्रमण का भय नहीं रहा। यदि फिर कभी इस दुष्ट का आक्रमण संसार पर हुआ तो अब से तीस वर्ष बाद होगा पहले नहीं। यदि यह रोग हम से पूछकर आक्रमण करे तो हम तो इस से यही कहेंगे कि आप संसार पर कृपा कीजिए और भूल कर भी अपनी चेष्टा इसे दिखाने का दुःसाहस न कीजिए।

इस का यह दौरा विश्वव्यापी था। संसार का कोई भी देश ऐसा न था जहां इस की रुद्रमूर्त्ति का दर्शन लोगों को न हुआ हो। अपने अन्यान्य छोटे बड़े भाइयों के समान इसने भी अपने हस्तलाघव का नमूना हमारे दीन हीन देश को दिखाया कि खूब दिखाया। लोगों का कहना है कि प्लेग को भी अपनी मारकशक्ति के लिए इस के सामने हार माननी पड़ी। इतना तो हमने भी देखा कि भयंकर से भयङ्कर प्लेग के आक्रमणों से भी न तो लोग इतने घबराये ही और न मरे ही थे जितने इसकी कृपा से घबरा गये और यमालय को प्रस्थान करगये।

अब हम थोडा सा वर्णन इस रोग की चिकित्सा और इस के चिकित्सकों के विषय में करेंगे। हमारे देखने में यह आया कि जिन चिकित्सकों को कोई न पूछता था; जो दिन भर अपने चिकित्सालय के बरामदे में आराम कुर्सी पर पड़े २ समाचारपत्र वा उपन्यास पढ़ कर अपने समय का सदुपयोग करते थे, तथा जो धूप आने पर धीरे २ अपनी कुर्सी को सरकाते जाते थे वे भी ख़ूब पुजे। उन्हें भी दम मारने का अवकाश न मिला। नक़दनारायणों से भी उन की जेबें ख़ूब भरीं और प्रतिष्ठा भी उन्हें कम न मिली। पर जिन चिकित्सकों को मामूली समय में भी अवकाश मुश्किल से मिलता था उन का तो कहना ही क्या।

"किसी वस्तु की मांग बढ़जाने से उस का मूल्य सदा चढ़ जाता है" यह सम्पत्तिशास्त्र का एक साधारण नियम है। इस रोग के कारण भी चिकित्सकों और दवाइयों की मांग आशातीत बढ़गई। अस्तु, इन का मूल्य भी चढ़जाना चाहिए था। और यही बात हमारे देखने

तथा सुनने में आई। हम ऊपर लिख आये हैं कि बड़े से बड़े चिकित्सक भी इस रोग के दुष्पादुर्भाव से ख़ूब पुजे। इन लोगों ने अपनी दक्षिणा भी साधारणतः दुगुनी तिगुनी करडाली जिस के कारण दीनों को इन लोगों से सहायता पाने का अवसर बहुत कम मिला। कोई कोई तो हमारी धर्मसंस्थाओं के पेशेवर उपदेशकों और शास्त्रार्थ-कारों के समान ठहरौनी करके चिकित्सा करने के लिए अग्रसर होते हुए दिखाई और सुनाई पड़े। पहले यह रोग नवीन शिक्षित डाक्टरों में ही था और मोके बेमोके इन बेचारों को हमारे वैद्यों के कटाक्ष-युक्त वाक्यों का शिकार बनना पड़ता था परन्तु इस बार भगवान् युद्धज्वर के प्रबल प्रताप से बड़े बड़े अनेकों वैद्यों ने भी इस निन्दित प्रथा को सहर्ष अपनाया।

और यही दशा दवाइयों की भी रही। विदेशी दवाइयों का मूल्य एक तो युद्ध के कारण यों ही चढ़ा हुआ था फिर युद्धज्वर ने आकर "करेला और नीम चढ़ा" वाली कहावत को अक्षरशः चरितार्थ कर दिखाया। खरबूज़े को देखकर खरबूज़े ने रंग बदला। देशी दवाइयां भी अपनी बहन विदेशी दवाइयों का इतना आदर सत्कार देख कर उछल पड़ीं। इन के श्रद्धालु भक्त भी हाथ पसार पसार कर इन्हें आलिङ्गन करने लगे। वैद्य लोग भी यह जानकर बड़े प्रसन्न हो उठे। बड़े बड़े हृष्ट तथा सत्यवादी वैद्य भी रोगी के सामने यह कह देते थे कि रोगी को आराम न होगा, शायद आज रात्रि में ही इस का प्राण पखेरू देहपिञ्जर को छोड़ जायगा दो तीन रुपये मात्रा वाली चार पांच पुड़ियें सज्जनों की श्रद्धा और भक्ति देख कर उन्हें सहर्ष प्रदान करने लगे।

जिन बातों का वर्णन हमने ऊपर के दो तीन पाराग्राफों में किया है वे व्यवसाय की दृष्टि से कुछ भी बुरी नहीं। व्यवसाय में चढ़ा ऊपरी का हिसाब बराबर लगा रहता है परन्तु जिस समय हम लोग अपने मौलिक उच्चादर्शों का ध्यान करते हैं–उस समय ये सब बातें कुछ कुछ अवश्य खटकती हैं। हमारी ये बातें सब वैद्यों या सब चिकित्सकों के लिए समान भाव से लागू भी नहीं हैं क्योंकि बहुत से वैद्यों तथा डाक्टरों ने अपना धन, समय, तथा परिश्रम व्यय करके लोगों की सेवा की जिस का वर्णन समय समय पर समाचार पत्रों में बराबर होता रहा। इस सम्बन्ध में स्थान स्थान की सेवा समि-

तियां म्यूनिसीपालटियां तथा डिस्ट्रिक्टबोर्ड्स विशेष उल्लेख योग्य हैं। बहुत से गण्यमान्य और सुसम्पन्न गृहस्थ लोगों ने भी इस कार्य्य में यथासाध्य व्यय और परिश्रम किया है।

अन्त में यही हमारी हार्दिक कामना है कि फिर कभी इस प्रकार की परीक्षा में हम लोग न पड़ें और यदि अभाग्यवश हम लोगों को फिर ऐसा अवसर आपड़े तो हम में अपने कर्तव्यपालन का ज्ञान बना रहे। परमात्मा हमारी इस कामना को पूर्ण करे।

—•—

वैद्यक और वैद्य।

(लेखक—पण्डित रूपनारायण पाण्डेय)

(१)

आयुर्वेद अपार, अपर विद्या नहिं ऐसी।
होता फल तत्काल, काल की ऐसी तैसी॥
यही अमृत है; जो लेकर धन्वन्तरि निकले।
अजर अमर यह करे रसायन, दिन न अधिक ले॥
कल्पवृक्ष यह है यही, मृतसंजीवन मंत्र है।
सभी रोगियों के लिए, यह जादू का यंत्र है॥

(२)

मगर दिनों का फेर, आज दिखलाई पड़ता।
राजपक्ष डाक्टरी कला पर खूब अकड़ता॥
सुन पड़ता है, "प्रजा हिंद की वैद्य जनोंपर—
वैद्यक पर विश्वास नहीं रखती रत्ती भर॥
अस्पताल में नित्य ही जाते, अगणित नारि-नर—
अपने घर बैठे चुप, मक्खी मारें वैद्यवर"॥

(३)

मित्रो, देखो, यही तुम्हारी विद्या जाती।
आज तुम्हें ही नापसंद बतलाई जाती॥
उसकी उन्नति इष्ट नहीं है राजपक्ष को।
इससे चेतो, लगो काम में देशरत्न को॥
दिखलादो, इस देश को यही चिकित्सा चाहिए।
काल प्रकृति-अनुकूल, बस देसी दवा खिलाइए॥

(४)

आयुर्वेदिक भस्म अहो, अक्सीर कहाती।
तुच्छ जड़ी भी काम, अमृत का यहाँ दिखाती॥
गोली गोली के समान, रोगों को मारे।
दो पैसे की दवा, अनेकों दुखी उबारे॥
ऐसे ऐसे योग हैं, विकट बुढ़ापे को हरें।
कुछही दिन सेवन किये, नौजवान फिरसे करें॥

(५)

उस पर तुमको है सुपास देखो तो कैसा।
होता उतना खर्च नहीं वैद्यक में पैसा॥
डाक्टर माँगें फीस, न दो तो राह बताते।
वैद्य विचारे विना फीस भी दौड़े जाते॥
सुख दुख के साथी सदा, वे अपने ही लोग हैं।
उन के सस्ते अति सहज, सब अनुभूत प्रयोग हैं॥

(६)

सुनो वैद्यकुल-कमल, ज़रा कर्त्तव्य विचारो।
सच्चा रक्खो व्यवहार, धर्म की ओर निहारो॥
आज अकारण होती, कैसी हँसी तुम्हारी।
वैद्यक का अपमान, देखना पड़ता भारी॥
इससे ग़फ़लत छोड़कर, अभी सँभलना है उचित।
काम करोगे तो सभी, निंदक होंगे संकुचित॥

(७)

जो अयोग्य बन, वैद्यराज आडम्बर करते।
विज्ञापन दें बड़े, नहीं ईश्वर से डरते॥
वी०पी० भेजें और, रोगियों का धन हरते।
पर्वा रखते नहीं, लोग जीते या मरते॥
उनकी ही करतूत से, यह विद्या बदनाम है।
उनका भंडा फोड़ना, सद्वैद्यों का काम है॥

(८)

चटकीले मज़मून, दवा की बड़ी बड़ाई।
सौ रोगों की एक दवा, बतलाना भाई॥
कल्ले फाड़े बड़ा शोर के—चित्र छपाना।
यह सब है बेकार, वृथा विश्वास उठाना॥

शास्त्रग्रन्थ गुरुसे पढ़ो, फिर अनुभव कुछ दिन करो।
चतुर चिकित्सक में बनो, धन संचय पर मन धरो॥

—०—

हृदयरोग और उसकी चिकित्सा।

हृदय रोग का विवरण लिखने से पहिले हृदय यन्त्र का कुछ परिचय देना आवश्यक है। कारण हृदय क्या वस्तु है? उसका क्या कार्य्य है? और वह शरीर के कौन से स्थान में अवस्थित है? इत्यादि बातों के बिना जाने हृदय रोग का समझना कठिन है।

साधारणतः कमल के मुकुल (जिसका खिली नहीं) की समान हृदय-पिण्ड की तुलना की जा सकती है। बायें और दायें फेफड़ों के प्रत्न भाग के मध्य में हृदय पिण्ड अधोमुख किये अवस्थित है। यह हृदय पिण्ड अत्यन्त पतले चर्म्म से ढका हुआ है। इस पतले चर्म्म या झिल्ली को उतार देने से हृदय-यन्त्र मुकुलाकार दृष्ट होता है। इस मुकुल को फाड़ देने से हृदय-द्वार और हृदय के सब कोष स्पष्ट रूपसे दीखपड़ते हैं। कोषोंके ऊपर एक और चर्म्म है। हृदय पृष्ठ की तरफ से गम्भीर है किन्तु वक्ष की तरफ उतना भासमान नहीं है। वक्ष की तरफ उपरिभाग में मांस के नीचे जो अस्थियां अवस्थित हैं उन को पञ्जर कहते हैं। इस पञ्जर के नीचे वक्ष की प्राचीर है। उसके नीचे, कुछ बाईं तरफ हृदय-यन्त्र नीचे को मुख किये शायित है। हृदय में रुधिर की शोधनक्रिया निरन्तर होती रहती है। हृदय के विशुद्ध रुधिर को चरक में ओज कहा है। यह रक्त एक नाडी में से होकर वक्ष की तरफ प्रवाहित होता है और उस नाडी के द्वारा ही हृदय में से शरीर के समस्त भागों में पहुंचता है। एक बड़ी नाडी के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में रुधिर किस प्रकार प्रवाहित होता है उस को कहते हैं—उक्त वृहद् नाडी में से असंख्य छोटी छोटी नाडियां, शाखा प्रशाखा रूप से निकल कर समस्त शरीर में फैलगई हैं। उनके द्वारा ही हृदय का रक्त सब स्थानों में प्रवाहित होता है। अब यह बताते हैं कि यह रक्त हृदय में किस प्रकार आता है और शुद्ध होता है। इस बड़ी नाडी के पार्श्व में से और एक प्रकार की नाडियों—शिराओं के द्वारा रक्त हृदय में आकर फुफ्फुस की सहायता से शुद्ध होता है। यह रक्त विपरीतगामी और मलिन है। दोनों प्रकार की नाडियों के रुधिर में यही अन्तर है। दोनों प्रकार

की नाड़ियें एक दूसरे के सन्निकट अवस्थित हैं। एक के द्वारा परिष्कृत रुधिर हृदय में से शरीर के समस्त स्थानों में सञ्चालित होता है और दूसरी नाड़ी अर्थात् शिरा और उस की शाखा प्रशाखा रूप असंख्य सूक्ष्म नाड़ियों के द्वारा शरीर का मलिन रुधिर हृदय में आकर शोधित होता है। मलिन रक्तवाहिनी शिराओं के दो मूल हैं। एक के द्वारा हाथ, मस्तक और गले का मलिन रुधिर हृदय में आता है। दूसरी के द्वारा उदर, ऊरु और पाँवों का मलिन रुधिर हृदय में गिरकर आता है किन्तु पाकस्थली या आन्त्र का मलिन रक्त साक्षात् सम्बन्ध से निम्नवाहिनी वृहत् शिरा में पतित नहीं होता; एक दूसरी शिरा में आकर पतित होता है। इस शिरा के साथ धर्म की थलि मिली हुई है और यह शिरा यकृत् में जाकर शेष होगई है पर यकृत् की असंख्य जालवत् शिरायें इसके साथ मिल गई हैं। यह शिरा तीन शाखाओं में विभक्त होकर निम्नवाहिनी वृहत् शिरा के साथ मिलगई है।

इस प्रकार शरीरस्थित मलिन रुधिर फुफ्फुस की सहायता से परिष्कृत होकर फिर हृदय में आता है। वह परिष्कृत रुधिर बड़ी नाड़ी द्वारा सम्पूर्ण शरीर में सञ्चालित होता है। संक्षेपसे इसप्रकार समझना चाहिए कि शरीरस्थ रक्त हृदय-कोष में आकर फुफ्फुस की सहायता से परिष्कृत होकर फिर हृदय के दूसरे कोष में प्राप्त होकर वृहन्नाड़ी के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में पहुँचता है। इन सब कारणों से हृदय रुधिर का मूलाधार स्वतः ही प्रतिपन्न होता है।

हृदय-पिण्ड में किसी प्रकारका रोग होने पर उसे हृद्रोग या हृद्य-रोग कहते हैं। हृदयरोग अनेक कारणों से होसकता है। जैसे-ज्वर, आमवात, सन्निपात, राजयक्ष्मा,उरःक्षत,रक्तपित्त, अर्श, कास इत्यादि रोगोंमें हृदय में प्रायः पीड़ा ज्ञात होती है। जिस किसी भी कारण से हृदयमें असह्य पीड़ा वा अन्य किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत हो तो उसे हृदय-रोग कहते हैं। ज्वरादि रोगों की प्रथम अवस्था में हृदय में जो पीड़ा होती है उस में हृदय-रोग के लक्षण प्रकट होते हैं, किन्तु हृदय की अंशगत क्रिया का तादृश व्यतिक्रम नहीं होता। आमवात रोग की प्रबलता में हृदय में जिस प्रकार की पीड़ा होती है—हाथ, पाँव, गुल्फ, ऊरु, सन्धि आदि स्थानों में भी उसी प्रकार की वेदना प्रकाशित होती है। हृदय के उपरि भाग में जो सूक्ष्म चर्म है-पार्श्वशूल, विसर्प और सान्निपातिक ज्वर प्रभृति रोगों में उस सूक्ष्म चर्म में शूल होने की सम्भावना है।

इस सूक्ष्म चर्म्म में शूल होने पर उस में रस सञ्चित होता है और रस के सञ्चित होने से हृदय के ऊपरी अंश पर दबाव पडता है। हृदय पर दबाव पडने से रक्त फुफ्फुस से हृदय के वाम कोष में सहज में नहीं आसकता। इस कारण रुधिर के सञ्चालन मे इस प्रकार की बाधा उपस्थित होने पर गले की सारी शिरायें फूल जाती हैं और फिर उनके फूलने से रुधिर की गति बन्द होजाती है। हृदय के ऊपर के सूक्ष्म चर्म्म या भिल्ली में शूल होने पर सान्निपातिकज्वर के लक्षण प्रकाशित होते हैं। पचनक्रिया में गडबड होजाती है इसका रण वमन होने लगती है। हृदय के ऊपर के सूक्ष्म चर्म्म में रस सञ्चित होने पर हृदय पर दबाव पडता है इस कारण मस्तक में रुधिर अधिक सञ्चालित नहीं होसकता। किन्तु मस्तक में वायु कुपित होती है। इस के सिवा सूक्ष्म चर्म्म में रस सञ्चित होने से भोजन निगलते समय उस पर दबाव पड़ने के कारण अन्ननाली पर भी दबाव पड़ता है अतएव अत्यन्त कष्ट होता है।

हृदय के कोषद्वार अर्थात् जिस द्वार से रुधिर कोष में गमन करता है उस मे किसी प्रकार का रोग होने पर कोष में भी यह रोग उत्पन्न होजाता है। कारण हृदय का द्वार अबाध रूप से खुल कर कोष के मुख के भीतर रक्त प्रवेश नहीं करसकता। इस प्रकार रुधिर की गति बार बार रुद्ध होजाती है।

हृदय के दोनों कोषों में रोग उत्पन्न होने पर रुधिर फुफ्फुस में सहज में नहीं आसकता ;और फुफ्फुस में से हृदयकोष में भी अबाध ;रूप से नहीं जासकता। इस कारण फुफ्फुस में रक्त जमजाता है तब पार्श्वशूल, पार्श्वशोथ और श्वास इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार हृदय का दक्षिण द्वार अवरुद्ध होने पर, मलिन रक्त हृदय के दक्षिण कोष में से हृदय के दक्षिण मुख में प्रवेश नहीं करसकता। इस कारण मलिन रक्त दक्षिण कोष में क्रमसे सञ्चित होकर फुफ्फुस के ऊपर दबाव पडता है। रक्त अग्रसर न हो सकने के कारण मलिन रक्त महाशिराओं में सञ्चित होजाता है। इस प्रकार शिराओं में रुधिर के सञ्चित होने से यकृत् सम्बन्धी शिराजाल भी उस दूषित रक्त के द्वारा क्रमसे पूर्ण होजाता है। इससे यकृत्-वृद्धि और यकृत्सम्बन्धी पीड़ा मालूम होती है। इसी प्रकार वृक्कों की शिराओं में रक्तके सञ्चित होने से प्रस्राव मात्रा और परिमाण में थोड़ा थोड़ा उतरता है। पक्वाशय की शिराओं

में रुधिर सञ्चित होने से, रुधिर की वमन अथवा सादी वमन होती है। आँतों के शिराजाल में दूषित रुधिर के सञ्चित होने से, रक्तातिसार या रुधिर के दस्त होते हैं।

अब यह बात सहज ही हृदयङ्गम होसकती है कि हृदयका द्वार, हृदय के ऊपर का सूक्ष्मचर्म्म, हृदय का दक्षिणद्वार, कोष और मुख, तथा हृदयका वाम द्वार, वाममुख और कोष में रोग होने पर शरीर के अन्यान्य यन्त्रों में भी कितने ही प्रकार के रोग उत्पन्न होसकते हैं। वातादि भेदों से हृदयरोग के नाना प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तरिक लक्षण प्रकट होते हैं, उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं।

वातिक हृदय रोग के लक्षण—वातिक हृदय रोग में हृदय में खिंचाव, सुई चुभोने सरीखी पीड़ा, मन्थन की समान घोर पीड़ा, अस्त्र के द्वारा चीरने की समान वेदना, छेदने, भेदने, तोड़ने और फाड़ने की समान भयङ्कर यन्त्रणा होती है।

पैत्तिक हृदय रोग के लक्षण—पित्तज हृदयरोग में पिपासा, उष्मा, दाह, शरीर में चूसने की समान कष्ट, हृदय में ग्लानि, कण्ठ में धुआँ सा मालूम होना, मूर्च्छा, पसीना और मुखशोष ये समस्त लक्षण प्रकाशित होते हैं।

श्लैष्मिक हृदय रोग के लक्षण—कफजन्य हृदयरोग में हृदय में बोझ सा मालूम होना, कफस्राव, अरुचि, जड़ता, अग्निमान्द्य और मुख में मधुरता ये सब लक्षण होते हैं।

सान्निपातिक हृदय रोग के लक्षण—त्रिदोष प्रकोपजनित हृदय रोग में तीनों दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं और मिथ्याचरण करने से हृदयमें ग्रन्थियां पड़जाती हैं। उन में रस उत्पन्न होकर कृमि उत्पन्न होसकते हैं तब तीव्र पीड़ा, सुई चुभोने की समान वेदना और खुजली आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

कृमिजन्य हृदय रोग के लक्षण—कृमिजन्य हृदयरोग में उबकाई का आना, वमन होना, मुख से पानी गिरना, हृदय में सुई की समान पीड़ा, शूल, हृदयस्थित रस का उद्गिरण, अन्धकार दर्शन, अरुचि, नेत्रों में श्यावता और सूजन ये सब लक्षण प्रतीत होते हैं।

शरीर में ग्लानि व भारीपन सा प्रतीत होना सर्वाङ्ग में शिथिलता, भ्रम और शोष ये सब उपद्रव सर्वप्रकार के हृदय रोगों में होते

हैं। कृमिजनित हृदय रोग में इनके सिवा श्लेष्मिक हृदयरोगके सम्पूर्ण लक्षण होते हैं।

चिकित्सा।

वातिक हृदयरोग में—प्रथम रोगी को वमनकारक पदार्थों के द्वारा वमन कराना चाहिए। पश्चात् अर्जुन वृक्ष की छाल का बारीक चूर्ण करके दूध के साथ प्रातःकाल सेवन कराना चाहिए। रात्रि के समय हरीतक्यादि चूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण आदि योग देने चाहिए। गोधूमाद्य योग भी वातिक हृदय रोग में अतीव हितकर है। वह इस प्रकार है—गेहूं का सत्व २ भाग, अर्जुन की छाल का बारीक चूर्ण २ भाग और तिल का तेल, गोघृत एवं गुड़ ये तीनों बराबर मिले हुए १ भाग। इन सबको एकत्र मिलाकर थोड़ा जरा डाल कर मन्द २ अग्नि से पकावे। जब पक कर कुछ गाढ़ा होजाय तब उतार कर सुहाता २ खाय। इस से वातज हृदय रोग में तत्काल लाभ होता है। अथवा बादाम गिरी २ तोला, नारियल की गिरी २ तोला और चिलगोजे की गिरी १ तोला सबको एकत्र जल के साथ खूब बारीक पीस कर वस्त्र में छान लेवे। फिर उस में दो तोला गेहूं का सत्व, और मिश्री २ तोला और गाय का घी १ तोला डाल कर पकावे। पकाकर गाढ़ा होजाने पर १ माशे इलायची का चूर्ण डालकर खाय। इस से तत्काल लाभ होता है। पोहकरमूल अथवा पञ्चमूल की औषधियों को दूध में पकाकर मिश्री डाल कर पान करने से भी बहुत लाभ होता है।

वातज हृदय रोग में, जब हृदय में शूल की असह्य वेदना होती है और वह वेदना समस्त वक्षस्थल और पृष्ठ में व्याप्त होजाती है उस समय पुटपाक की विधि से प्रस्तुत की हुई मृगशृङ्ग भस्म १ रत्ती से (रोगी की अवस्थानुसार) २—३ रत्ती तक मधु के साथ या गरम जल के साथ देनी चाहिए। अथवा सोंठ, कालानमक और हींग इन तीनों औषधियों को एकत्र जल में पकाकर देने से बहुत उपकार होता है।

रोग के पुरातन होजाने पर अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म वैक्रान्तभस्म और सुवर्णमाक्षिकभस्मादि औषधियां यथोचित अनुपान के साथ व्यवहार करानी चाहिए। उसी प्रकार चिन्तामणि रस, हृदयार्णवरस, प्रभाकरवटी, वसन्तकुसुमाकर आदि रसायन औषधियां

अतीव उपकारी हैं। बलायवृत्त, अश्वगन्धाद्य घृत और विशेषकर अर्जुनघृत इस में अधिक उपयोगी है। वातज हृदयरोग में सब प्रकार के बलकारक पौष्टिक और वातनाशक पदार्थ पथ्य हैं। (अपूर्ण)

दही।

दही हमारा परम प्रिय खाद्य है। दही की समान सुस्वादु, रुचिकर, पुष्टिकारक और रोगहर दूसरा खाद्य जगत् में नहीं है। भारतवासियों ने इस के गुणों पर मुग्ध होकर ही इसकी शुभ व माङ्गलिक पदार्थों में गणना करी है। शास्त्र में लिखा है कि दही का दर्शन पापनाशक है। हिन्दुओं के प्रायः सभी शुभकार्यों में दही का प्रयोजन होता है। हमारा कोई भी भोज दही के बिना सम्पन्न नहीं होसकता। इस प्रकार दही का प्रचलन भारत में अति प्राचीनकालसे देखा जाता है। अब अनेक पाश्चात्य वैज्ञानिक पण्डित भी दही को अनेक रोगों में व्यवहृत करके उस की असीम प्रशंसा कर रहे हैं।

आयुर्वेद के मत से दही—अम्ल, मधुर, रुचिकारक, रसग्राही, (सङ्कोचक) पचने में भारी, उष्ण, वातनाशक, शुक्रवर्द्धक, पुष्टिजनक, बलकारक, अग्निप्रदीपक एवं शीतज्वर, विषमज्वर, पीनस, मूत्रकृच्छ्र, बलक्षय, अतिसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि, अजीर्ण और अरुचि आदि रोगों में अत्यन्त हितकर है। मङ्गलजनक, रक्तपित्तप्रकोपक और शोथजनक है। समस्त दधिवर्ग में गो-दधि ही श्रेष्ठ है। भैंस का दही अधिक पौष्टिक और भारी है। बकरी का दही शीघ्र पाकी और शीतल है। यह क्षयादि रोगों में अधिक उपयोगी है। वैद्यकशास्त्र में कई प्रकार के दहियों का उल्लेख है। जैसे-मधुर, मधुराम्ल, (मीठा और खट्टा) अम्ल (खट्टा) अत्यम्ल (अत्यन्त खट्टा) और जो खट्टा हो न मीठा किन्तु नीरस, अथवा जिस का बुरा स्वाद हो इत्यादि प्रकार का दही जितना अधिक मिष्ट और सुस्वादु होता है उतना ही अच्छा होता है। अत्यन्त खट्टा, बुरे स्वाद का और जिस के गन्ध, वर्ण बिगड़ गये हों ऐसा दही खिया हानि के शरीर का कुछ उपकार नहीं करता। इस लिए सदैव उत्तम और सुस्वादु दही ही उपयोग में लेना चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिक पण्डितों ने निश्चय किया है कि शरीर के अनेक स्थानों में विशेषकर आँतों में शरीर को ध्वंस करने वाले और जरा को लाने वाले कई प्रकार के कीटाणु होते हैं। जिन के अधिक बढ़ जाने से शरीर का क्षय या जरा से जर्जरीभूत होना

अवश्यम्भावी होजाता है। दही में जो एक प्रकार के सूक्ष्म अणु (लाक्टिक एसिड बैसिलस)पाये जाते हैं वे सब प्रकार के शरीर-ध्वंसक जीवाणुओं को नष्टकर देते हैं। इस लिए स्वास्थ्यरक्षा के लिए प्रतिदिन दही का सेवन अधिक उपयोगी है। इसी धारणा के अनुसार विलायत में आजकल अनेक प्रकार से दही का व्यवहार होने लगा है। आधुनिक चिकित्सकों के मत से दही जिन २ रोगों पर अधिक उपयोगी साबित हुआ है उन में से कुछ रोगों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

अजीर्ण रोग में, चाहे किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ हो, दही का प्रयोग किया जासकता है। विशेषकर जहाँ पाकस्थली में अधिक दुर्बलता होती है, खाये हुए पदार्थ सहज में शरीर से बाहर नहीं होसकते; ऐसी अवस्था में दही का उपयोग बहुत ही अच्छा होता है।

जो लोग दूध को हज़म नहीं करसकते। दूधपान करने से जिनको अफारा, पतले दस्त आदि अशान्ति उत्पन्न होजाती है, वे यदि दूध के बदले दही का सेवन करें तो उन्हें बहुत लाभ होसकता है। दूध की अपेक्षा दही अधिक परिमाण में हज़म होसकता है। उससे शरीर का उत्तम प्रकार से पोषण होकर शरीर की विशेष उन्नति होसकती है।

आँतों में अनेक प्रकार के विषैले पदार्थों के शोषित होने से जो विविध प्रकार के दुःसाध्य रोग उत्पन्न होते हैं उन समस्त रोगों में दही के उपयोग द्वारा विशेष फल पाया गया है।

धमनियों की कठिनता, अनेक कारणों से उत्पन्न हुई रक्ताल्पता या कृशता, त्वचा की पीड़ा, स्नायविक दुर्बलता और विषैले पदार्थोंके शोषण होने से उत्पन्न हुए उन्माद रोगमें दही अतिशय उपकारी है।

क्षय और पुरानी खांसी वाले रोगियों को भी दही उपयोगी सिद्ध होचुका है। दही के खानेसे क्षय के जीवाणु निर्बल पड़जाते हैं। पाकस्थली के समस्त रोगों में दही का व्यवहार अत्युत्तम है। सदैव कोष्ठबद्धता रहनेके कारण जिनके शरीर में विवर्णता,रक्तहीनता,निद्राल्पता, दन्तक्षत, आध्मान, अजीर्ण और स्वभाव का चिरचिरापन आदि लक्षण देख पड़ते हैं उनको प्रथम कोष्ठ साफ करने की औषध देकर दही पान कराना चाहिए। प्रथम कोठे को साफ करके पश्चात् दही का व्यवहार होने से आँतें अपना कार्य सुचारु रूपसे करने लगती हैं और उक्त सर्व लक्षण शान्त होजाते हैं।

पुराने अतिसार और पुराने संग्रहणी रोग में दहीका उपयोग प्रायः

सभी चिकित्सकों ने श्रेष्ठ बतलाया है। जिन बालकों को हरे, पीले और लाल रंग के पतले दस्त हुआ करते हैं उनको थोड़ा सा दही देने से शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होती है।

एक डाक्टरीपत्रमें प्रकाशित हुआ है कि एक प्राचीन लेफ्टिनेण्ट कर्नल आई०एम०एस०की स्त्री बहुत अरसे से संग्रहणी का दुःख भोग रही थी। ऐलोपैथि, होमियोपैथि, आयुर्वेदीय आदि बहुतेरी चिकित्साएं की गई पर किसीसे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। आखिर उन्होंने दही का सेवन करना शुरू किया। अब उनका स्वास्थ्य अच्छा है।

बहुत से लोगों के मुख में एक प्रकार की दुर्गन्ध आया करती है। ऐसी अवस्था में प्रातःकाल उठते ही मुख धोकर थोड़ा दही पान करने से विशेष उपकार होता है।

मधुमेहरोगी को पियास के निवारणार्थ दही पान करना अच्छा है। दुग्ध में दुग्धशर्करा होने के कारण मधुमेह में दुग्ध हानि करता है। पर दही में दुग्धशर्करा दुग्धाम्ल में परिणत होजाती है इस कारण यह कुछ हानि नहीं करता बल्कि उपकार करता है। पुराने प्रमेह व विषप्रमेह (गनोरिया) में दही का सेवन हितप्रद है।

पुराने गनोरिया में दही के पानी में किञ्चित् तूतिया मिला कर पिचकारी लगाना बहुत लाभदायक है। स्त्रियों की योनिदाह और गनोरियासम्बन्धी विकार में भी दही के पानी की पिचकारी लगाना अति लाभप्रद है। दही को पोटली में बांध कर योनि में रखने से योनि की दाह और दुर्गन्धादि दूर होती है और योनि का सङ्कोचन होता है।

जिसमें रुधिर अधिकता से गिरता हो ऐसे अर्शरोग में, दही में किञ्चित् रसौत मिलाकर खाने से बहुत लाभ होता है।

दही में विषघ्न गुण भी देखा जाता है।

अनेक प्रकार की विषैली और तीक्ष्ण औषधें खाने से जो शरीरमें विषैला असर पैदा होजाता है उसको दूर करने के लिए दही बड़ी उत्तम औषध है। सोमल विष के खाये जाने पर तत्काल बारंबार मीठा दही पान करना बहुत लाभदायक है। प्रायः बड़े शहरों में कुत्ते मारने के लिए मांस में स्ट्रिकनिया मिला कर दिया जाता है जिससे कि कुत्ते को तत्काल आक्षेप उत्पन्न होकर स्ट्रिकनिया विष के प्रभाव से उसकी मृत्यु हो जाती है। ऐसी अवस्था में आक्षेप के आरम्भ होते ही यदि तत्काल उसे दही पिलाना आरम्भ कर दिया जाय तो कुत्ते की जीवन रक्षा हो सकती है। स्ट्रिकनियाके विष को नष्ट करने की शक्ति दही में तीव्र है।

प्रतिषेध—दही किन किन मनुष्यों को और किस किस अवस्था में नहीं खाना चाहिए; उस को कहते हैं—जिन को सर्दी, जुकाम, खांसी और कफ की अधिकता रहती है उन को दही नहीं खाना चाहिए। एवं साधारण ज्वर, वायु की पीड़ा और उससे उत्पन्न हुए विकारों में भी दही का सेवन हानिकारक है।

वातरक्त रुधिर की विकृति, कुष्ठ, शोथ, मेदवृद्धि, दन्त, कर्ण और नेत्रों के दुखने में एवं कफजनित और रक्तपित्तसम्बन्धी रोगों मे दही नहीं खाना चाहिए। और जिन लोगों को दही स्वभाव के अनुकूल नहीं पड़ता उनको भी नहीं खाना चाहिए। कितने ही उदर और आंतों के रोगियों को दही अनुकूल नहीं पड़ता। और कितने ही अम्लपित्त रोगियों को दहीकासेवन केवल रोगवृद्धिका कारण होताहै।

आयुर्वेद की आज्ञा है कि रात्रि में दही नहीं खाना चाहिए। यदि खाने की अधिक आवश्यकता हो तो घृत, चीनी, मूँग का यूष मधु, आमलों का रस और सेंधा नमक इन मे से किसी एक पदार्थ को दही में मिला कर खाना चाहिए। अथवा दही को गरम करके खाना चाहिए। दूधके साथ भी दही नहीं खाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से पेट में गडबड होजाती है। दही खाकर तत्काल सोना और स्नान करना ठीक नहीं है। वैद्यराज

—o—

प्रसङ्ग।

प्रकृति ने मानव समाज और पशु समाज को इन्द्रियसेवन-विधि समाज के रक्षार्थ प्रदान की है। इन्द्रियसेवन का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पादन करना है। फलतः सन्तान की उत्पत्ति के लिए नर-नारी के मिलन को प्रसङ्ग कहते हैं। प्रसङ्ग करते समय शरीर के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग और सम्पूर्ण ग्रन्थियां काँपने लगती हैं। यहांतक कि सारे स्नायु भी कम्पित होने लगते हैं। प्रसङ्ग से शारीरिक और मानसिक बल विशेष रूप से क्षय होता है। साथ ही शरीर का सार भाग- वीर्य्य प्रबल रूप से क्षय होता है। प्रसंग मात्र ही क्षयकर है। चाहे मित हो या अमित, सामयिक हो या असामयिक, प्रयोजनीय हो या अप्रयोजनीय, वैधभाव से हो या अवैधभाव से, प्रसग करना सर्वथा हानिकारक है। जिस क्रिया के द्वारा जीवन की ज्योति(वीर्य्य) शरीर से बाहर निकलती है वह कभी लाभदायक नहीं कही जा सकती। अगर

हम अपने चित्त को प्रकृति के आधीन न करदें अर्थात् इन्द्रियदास न हो जावें तो हमको यह कार्य्य कभी रुचिकर न प्रतीत होगा। सुनते हैं हमारे पूर्वज लोग आजीवन एक या दो बार प्रसंग करते थे। यह बात असम्भव नहीं कही जा सकती। आजीवन ब्रह्मचर्य्य रखकर केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए एकाध बार स्त्री प्रसंग करना अवश्य कठिन कार्य्य है, किन्तु यदि चित्त प्रकृति में न फँसे और क्षणिक सुख की लालसा इतनी प्रबल न होने पावे कि जितनी इस समय हो रही है, तो यह बात कुछ असाध्य नहीं है। इस के सिवाय जो वीर्य्य की महिमा जानगये हैं और शरीर के तत्त्वको पहचान गये हैं उनको प्रसंग से एक प्रकार की घृणा होजाती है। विशेषकर प्रसङ्ग के अन्त की अवस्था पर विचार कर वे उसे जघन्य कार्य्य समझने लगते हैं। प्रकृति ने अपनी बुद्धिमानी से प्रसंग के साथ एक सर्वविजयनी मनमोहक शक्ति भी लगा दी है। यदि यह मोहक शक्ति न होती तो कोई कभी प्रसङ्ग न करता। अवश्य ही प्रकृति ने यह नहीं सोचा कि मनुष्य इस आनन्दमयी शक्ति को पाकर इतना अन्धा हो जायगा कि वह वीर्य्य जैसे अमूल्य रत्न को इस क्षणिक आनंद के लिए पानी की भांति व्यर्थ बहा देगा! धन देगा और वीर्य्य देगा!! धर्म देगा और वीर्य्य देगा!!! हम नहीं कह सकते कि यह निर्दोष प्रकृति का दोष है या हमारे अज्ञान का कारण है? बेचारी प्रकृति ने तो यह सोचा था कि यदि यह मनमोहक शक्ति न प्रदान की जायगी तो मनुष्य—सन्तान के लिए भी प्रसङ्ग न करेगा। यह कौन जानता था कि इस शक्ति से सर्वनाश होगा? केवल आनन्द के लिए प्रसङ्ग किया जायगा और यदि गर्भ रह गया तो वह गिराया जायगा। अपने मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिए सन्तानोत्पादिका शक्ति नष्ट की जायगी!!! सम्पूर्ण शरीर को कम्पित करने वाले, जीवनमणि को क्षय करने वाले और मानसिक शक्ति को कुछ समय तक के लिए शिथिल करनेवाले कार्य को—जघन्य और घृणोत्पादक क्रिया के लिए केवल संतान के कारण आकर्षण शक्ति मादकता और मनमोहक शक्ति प्रदान की जायगी।

जब प्रकृति ने वंशरक्षा के उद्देश से इन्द्रिय परिचालन की प्रवृत्ति प्रदान की है तब प्रकृति के सम्मानरक्षार्थ, विशेष यत्न से, सुसन्तान प्राप्ति के उद्देश से अवश्य प्रसंग करना चाहिए। किन्तु केवल आनन्द के लिए प्रसंग करना सर्वांश में विडम्बना मात्र है। इन्द्रिय सेवनजनित सुख अत्यन्त थोड़ा होता है और उस का मूल्य बहुत

अधिक होता है। इस कारण अधिक प्रसंग करना मोती के बदले काँच खरीदना है। 'प्रकृतिदर्शन या अकृत्रिम पदार्थों के सौन्दर्य दर्शन से जो सुख होता है, सुरभिद्रव्यों की सुगन्धि से जो आनन्द होता है, और सुमिष्ट पदार्थों से जो सुख की तृप्ति होती है वह आनन्द, सुख और तृप्तिविषयानन्द से क्या कम है? प्रलय में जो आनंद है, विरह में जो सुख है और दर्शन में जो भाव है वह क्या विषयानंद से कम महत्व रखते हैं? विषय के समय का आनंद अर्थात् प्रकृतिप्रदत्त मनोहर शक्ति, प्रणय, विरह और प्रतीक्षा से गहरा सम्बन्ध रखती है। जितनी ही प्रतीक्षा से प्राणप्यारी प्रिया के साथ प्रसंग किया जायगा उतना ही आनंद प्राप्त होगा। यदि कुछ दिनों नित्य बराबर विषय किया जाय तो वह आनंद क्रमशः कम होता जायगा और अंत में एक स्वभाव के रूप में बदल जायगा। उस समय न तो प्राकृतिक आनन्द रहेगा और न वैसी रुचि। इससे भी मालूम होता है कि मनमोहकशक्ति में कमी होजाना प्रकृति-विरुद्ध कार्य्य है, पैशाचिक काण्ड है और अपने शरीर के लिये तो आत्महत्या के तुल्य है। हम लोग सुख के लिये विषय कर्म को प्रधानता देते हैं यह हमारे दुर्भाग्य का विषय नहीं तो क्या है। जितना प्रयत्न और जितना विचार विषय कर्मकी योजना के लिये व्यय किया जाता है यदि उतनी ही कोशिश उपकार, उद्धार, व्यवहार, और मानसिक उन्नति में की जाय तो विषयसुख से अधिक स्थायी, लाभदायक और कल्याणकारी सुख मिलसकता है। यदि देखा जाय तो हम लोग प्रत्येक समय सुख पाया करते हैं। कठिन परिश्रम के बाद विश्राम, क्षुधा के बाद भोजन, तृष्णा के बाद शीतल जल और घिरे हुए स्थान के बाद ताज़ी हवा क्या कम सुखप्रदायक है। मातृ-पितृ, गुरु दर्शन, सन्तान क्रीडा, प्राकृतिक सौन्दर्य, मित्रों के साथ वार्त्तालाप और आत्मानन्द अत्यन्त मूल्यवान् आनन्द है। खोजने पर और देखनेपर आपको इतने आनन्द मिल सकते हैं कि आप सर्वानन्द होसकते हैं। आत्मानन्द, योगानन्द, विचारानन्द, काव्यानन्द, कलानन्द, साहित्यानन्द, सगीतानन्द, व्यवहारानन्द, मित्रानन्द, भजनानन्द, व्यायामानन्द, आदि कितने ही आनन्द, विषयानंद की अपेक्षा अधिक महत्व के हैं। धर्मानुष्ठान और भगवद्भक्ति से जो सुख प्राप्त होता है, प्रसङ्ग सुख उस की अपेक्षा अतीव तुच्छ होता है। चित्त को वश में कर लेने पर जो सुख होता है विषय सुख उसकी बराबरी कदापि नहीं कर सकता।

बैल, कुत्ता, मेढ़ा और बिलाव आदि पशुओं की इन्द्रियसेवन-विधि पर ध्यान देने से मालूम होता है कि जिस प्रकार मनुष्य जाति की स्त्रियां ऋतुमती हुआ करती हैं उसी प्रकार इतर प्राणियों की मादा भी विशेष समय पर एक विशेष अवस्था प्राप्त करती हैं। कुछ प्राणियों की मादाएं विशेष समय पर अपनी जननेन्द्रिय द्वारा एक पतला और गन्धयुक्त द्रव्य बाहर करती है। कुछ मादाएं जननेन्द्रिय द्वारा कोई बाह्य लक्षण प्रकट करती हैं और किसी २ के शरीर से उस विशेष समय पर एक गन्ध सी निकला करती है। किसी २ का केवल मन ही चञ्चल हुआ करता है। ऐसे समय पर यह मादाएं नर-जीव के सहवास की इच्छा प्रकट करती हैं। नर प्राणी भी मादा के मूत्र द्वारा, गन्ध द्वारा अथवा बाह्य लक्षणों द्वारा उस के मन की अवस्था समझ सहवास करते हैं। उस प्रकार, विशेष समय के सिवाय पशु-पक्षी विषय नहीं करते। नर मादा एक साथ रह कर भी विषय नहीं करते। यदि कदाचित् उत्तेजना वश नर प्राणी सहवास करना चाहे तो मादा बाधा उपस्थित करती है। इन बातों को सब लोग जानते हैं और यह भी जानते हैं कि यदि वन्ध्यता का दोष न हो तो उक्त विशेष काल के सहवास से मादाएं गर्भ धारण करलेती हैं। अर्थात् एक बार का भी विषय साधारणतः निष्फल नहीं जाता। स्त्रियों का ऋतु समय ही गर्भ धारण करने का समय होता है। इसी समय पर गर्भ धारण करने की सम्भावना होती है। यह विज्ञान-सम्मत मिताचार, इन्द्रियपरायण लोगों के लिए उपहासप्रद हो सकता है, किन्तु प्रकृति द्वारा अनुमोदित यही पथ है और यही विधान है। कुछ इतर प्राणियों के नर एक बार के सिवाय अधिक प्रसंग नहीं कर सकते। मधुमक्खी का नर जीवन भर में एक बार ही सहवास करता है।

पराई स्त्री के साथ सहवास करना महाहानिकारक है। धार्मिक दृष्टि के सिवाय पराई स्त्री से प्रसंग करते समय भय और घबराहट के भाव प्रकट होना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक विषय है। वेश्यागमन से उपदंश, प्रमेह, गनोरिया आदि बीसों प्रकार की बीमारियां हो सकती हैं। प्रकृति के आदेशानुसार अपनी स्त्री के साथ नियमितरूप से, प्रसंग करना कल्याणकारी हो सकता है। परन्तु, इस समय विषय की वासना प्रबल वेग से अपना प्रभाव जमा रही है। अपनी स्त्री उस प्यास को नहीं बुझा सकती! एक मनुष्य के लिए कई स्त्रियों की आवश्यकता है? वेश्याओं

के अपूर्व आविष्कार की जरूरत समझी गई है। इसके सिवाय, कितने ही अप्राकृतिक, घृणित और सर्वनाशकारी विधानों द्वारा विषय किया जाता है। विषय कर्ममें जितना ही चित्त लगाया जायगा उतनी ही उसकी अग्नि प्रज्वलित होगी। अवश्य ही वासना की अग्नि उसे अन्धा बनाकर अन्धाधुन्ध कर्म करावेगी परन्तु यह स्मरण रहे कि वह शीघ्र ही जीव का सर्वनाश करदेगी। मार देगी। वर्तमान में विषय का रूप बड़ा भयानक होरहा है। स्वास्थ्य के सिवाय धर्म, समाज और कर्म सभी रसातल को जारहे हैं विषय हीने हमारे जीवन के समस्त अङ्ग रूखे और भद्दे बना डाले हैं। इधर काम की कला बढ़ रही है, उधर स उसके सहायक मोह, लोभ और क्रोध आरहे हैं। बड़ाही घोर विप्लव उपस्थित होरहा है।

प्रसङ्ग की अधिकता से वीर्यवाहिनी नाली कमजोर होजाती है। थोड़ी ही उत्तेजना से मन चञ्चल हो उठता है। स्त्रीदर्शनमात्र से कामेन्द्रिय स्वतन्त्र हो जाती है और समस्त कुवासनायें जाग उठती। हैं। इस के बाद ही प्रमेह हो जाता है। सोते जागते पेशाब, पाखाना करते और देखते, सुनते ही वीर्य्य अधीर होजाता है। यदि शीघ्र ही चिकित्सा न की जाय अर्थात् अपनी दूषित प्रसङ्ग प्रणाली न रोकी जाय तो शरीर की अवस्था शोचनीय हो जाती है। शीघ्र ही जीवन भार सा मालूम होने लगता है और संसार दुखदाई दृष्टि जान पड़ता है।

हमेंयह पढ़कर विश्वास नहीं होता कि रूपराशि उर्वशीकी इच्छा एक पुरुष द्वारा अस्वीकृत कर दी गयी थी? क्या यह हो सकता है? वास्तव में इस समय विषय का क्षेत्र इतना व्यापकहो रहा है कि जो हमको अन्धा बनाये हुए है। इसी कारण भारतवासियों की आयु और स्वास्थ्य की दशा बड़ी शोचनीय हो रही है।इस देशको सुधारने के लिए सब से पहला यही काम करना बुद्धिमानी कही जा सकती है कि अपने चित्तमें से विषय का महत्व गिरादें सुखमूलचित्तसंयमता सीखें और मनोरंजनके लिए अन्यर पवित्र विषयों में मनको लगावें।

गोस्वामि तुलसीदास प्रसिद्ध विषयी थे सौभाग्य से किसीप्रकार उनके चित्त पर इन्द्रियसयम का महत्व चढ़ गया। वेब्रह्मचारी हो गये। विषयानन्द त्याग कर के ब्रह्मचर्य के आनंद का दर्शन कर गोस्वामी जी कहते हैं—

"मिटे न काम—अग्नि तुलसी कहि,विषय भोग बहु घी ते"। +

शिवनारायण वर्म्मा।

+ दाम्पत्य वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर।

दशम वैद्य-सम्मेलन।

(दूसरों के मत के लिए सम्पादक उत्तरदाता नहीं है)

निखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन का दशम वार्षिक अधिवेशन २६-२७-२८ और २९ जनवरी को भारत की राजधानी देहली में बड़े समारोह के साथ होगया। सभापति का आसन काशी के प्रसिद्ध कविराज पं० उमाचरण जी भट्टाचार्य्य ने ग्रहण किया था और स्वागतसभा के अध्यक्ष थे देहली के नामी हकीम अजमल खाँ साहब। स्वागतकारिणी सभा के सदस्यों और देहली की जनता की तरफ से सभापति महोदय का विशेषरूप से स्वागत किया गया। बाज़ार में सवारी निकाली गई। देहली वालों का उत्साह देखने योग्य था। २६ जनवरी को दोपहर के एक बजे सभा का कार्य्य आरम्भ हुआ। सभा में प्रतिनिधियों और दर्शकों की संख्या यथेष्ट थी। कोई हज़ारों से अधिक प्रतिनिधि पधारे थे। पहले स्वागतकारिणी सभा के अधिपति हाजिकुल मुल्क हकीम अजमल खाँ का स्वागत भाषण हुआ। आप का भाषण बड़े मार्के का था। आप ने दो बातों पर विशेषरूप से प्रकाश डाला। पहली तो यह कि कांग्रेस और मुसलिम लीग की तरह वैद्यसम्मेलन और तिब्बी कान्फ्रेंस भी प्रतिवर्ष एक ही नगर में पृथक् पृथक् होने चाहिए। पर जिन कार्यों को मिल कर करने की आवश्यकता है उनके लिए दोनों दलों को एक जगह मिल कर एक सम्मिलित कान्फ्रेंस करना चाहिए। इससे परस्पर प्रीति बढ़ेगी और दोनों चिकित्साओं की भी उन्नति होगी। दूसरी इस बात पर जोर दिया कि आयुर्वेद और तिब्ब से सर्वथा अनभिज्ञ होनेपर भी बड़ी कौन्सिल में लाट साहब ने जो उभय चिकित्साओं को अयोग्य ठहराया है इसका उन्हें क्या हक था? इसके बाद सभापति महोदय का लिखा हुआ भाषण आरम्भ हुआ। आप का भाषण संस्कृत में था पर अधिकांश लोगों के अनुरोध से आपने उसका हिन्दीभाषान्तर भी कह सुनाया। सभापति के भाषण में आयुर्वेद का महत्व प्रकट करनेवाली और जनसाधारण में प्रकाश डालने वाली कितनी ही बातें थीं। पश्चात् विषयनिर्धारिणी समिति का सङ्गठन हुआ। सन्ध्या को चार बजे माननीय लाला सुखबीरसिंह जी ने आयुर्वेदप्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। उस समय जो आपने व्याख्यान दिया वह बड़ा ही उत्साहोत्पादक और वैद्यों में जागृति उत्पन्न करने वाला था। आपने

अपने भाषण में यह भी कहा कि आयुर्वेद सर्वाङ्गपूर्ण होने पर भी हमें नवीन ज्ञान प्राप्त करने की भी अत्यावश्यकता है।

दूसरे दिन पहले स्थायी समिति के मन्त्री ने महामण्डल की वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। रिपोर्ट संस्कृत में थी इसलिए जो लोग संस्कृत नहीं जानते थे उन को बड़ी असुविधा रही। पश्चात् कई प्रस्ताव पास किये गये। आज माननीय मालवीय जी भी सम्मेलन में पधारे। आपने अपने प्रभावशाली भाषण में कहा कि सब वैद्यों को परस्पर मिल कर और मत भेद छोड़कर एक आदर्श आयुर्वेद विद्यालय स्थापित करना चाहिए। हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद विद्यालय का जिक्र करते हुए कहा कि उनके एक मारवाड़ी मित्रने उस की सहायता के लिए एक लाख रुपया प्रदान किया है।

उक्त विद्यालय में आयुर्वेद के समस्त अगों की शिक्षा दीजायगी। वनौषधि उद्यान भी लगाया जायगा। उससमय तत्काल कई सज्जनों ने विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विद्याविभाग के लिये बिना किसी प्रकार की अपील किये—स्वयं बड़ी खुशी से चन्दा लिखा। पीछे कई वैद्यों और दूसरे सज्जनों के आयुर्वेद के महत्त्व पर ज़ोरदार भाषण हुए। दूसरे और तीसरे दिन कितने ही प्रस्ताव पास किये गये और कुछ वक्तृताएँ भी हुई। गतवर्ष के उत्तीर्ण छात्रों को और गतवर्ष लाहौर की प्रदर्शनी में जिन की चीजें अच्छी जँची उन लोगोंको स्वर्णपदक, रौप्यपदक, प्रशंसापत्र आदि दिये गये। आयुर्वेद पञ्चानन प० जगन्नाथप्रसादशुक्ल को उनकी अविश्रान्त आयुर्वेद की सेवा के लिये महामण्डल की तरफ से स्वर्णपदक दिया गया। अंतिम दिन भी कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए।

प्रस्ताव पहले से निश्चित न होने के कारण प्रतिदिन बहुतसा समय उन को लिखने और ठीक करने में लगजाता था। इस कारण निबन्ध पाठ, अनुभूत प्रयोग और व्याख्यानों के लिये यथेष्ट समय नहीं मिल सका।

अंतिम दिन मंडल के वार्षिक व्यय के लिए अपील करने पर एक सहस्र से अधिकका चन्दा हुआ। आज हकीम अजमलखां की तरफ से समस्त वैद्यों को गार्डनपार्टी दी गई। और इस समय सब वैद्यों का फोटो भी लियागया। आगामि सम्मेलन इंदौर में होना निश्चित हुआ।

इस में सन्देह नहीं कि अबकी बार का सम्मेलन दोचार साधारण त्रुटिओं को छोड़ कर विशेष महत्व का होगया। देहलीवालों की तरफ से स्वागत का बढ़िया प्रबंध होने के कारण किसीको कुछ कष्ट उठाना

नहीं पड़ा। इसके लिये स्वागतकारिणी सभा की विशेषकर हकीम साहब की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। अब की बार प्रदर्शिनी बहुत बड़ी नहीं थी। प्रदर्शिनी में जितनी चीजें आई थीं वे अच्छे ढंग से रखीगई थीं।

सम्मेलन में धड़ा बन्दी।

आजकल प्रायः सभी सभा सम्मेलनों में थोड़ी बहुत धड़ा बंदी अवश्य देखी जाती है। अतः वैद्यसम्मेलन में भी धड़ाबंदी का होना कोई आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। पर आश्चर्य्य यह है कि सम्मेलन में जो धड़ाबंदी चलरही थी उस में कितनी ही बातें बिलकुल नियमविरुद्ध थीं। परस्पर की धड़ाबंदी के कारण इस प्रकार वैद्यसम्मेलन जैसी संस्था में नियमों का गला घोटाजाना सचमुच बड़े लज्जा का विषय है। सब से अधिक नियमविरुद्धता पदाधिकारियों के चुनाव में देखीगई। प्रतिदिन प्रातःकाल और रात्रि को सबजेक्ट कमेटी के लिये सब लोग सभापति के स्थान पर बुलाये जाते थे। पर जिसदिन सबजेक्ट कमेटी में पदाधिकारियों का चुनाव होने वाला था उसदिन प्रातःकाल सब वैद्यों को नहीं बुलाया गया। तथापि कितने ही वैद्य बिना बुलाये ही सभापति जी के स्थान पर प्रातः आठ बजे पहुँच गये। किंतु मुख्य मुख्य लोगोंके दश ग्यारह बजेतक उपस्थित न होने के कारण जो कुछ लोगवहां उपस्थित हुएथे वे भी इधर उधर चलेगये। पश्चात रात्रि में ९-१० बजे सबजेक्ट कमेटी के लिये लोग फिर बुलाये गये। तब अधिकांश प्रतिनिधियोंके उपस्थित होने पर भी कार्य्य कुछ विलम्ब से प्रारम्भ किया गया। उस समय कई वैद्यों ने कहा कि निर्वाचन का कार्य्य होना चाहिए। इस के उत्तर में लाहौरी अमृतधारा वाले प० ठाकुरदत्तशर्मा ने कहा कि सवेरे सबजेक्ट कमेटी में पदाधिकारियों का चुनाव होचुका है। अब दूसरी बार चुनाव का होना नियमविरुद्ध है। इस पर कई सज्जनों ने कहा कि हमें तो मालूम नहीं हुआ कि किस समय निर्वाचन हुआ और उस में कौन २ महाशय चुने गये हैं। इस पर उत्तर मिला कि आपको प्रातःकाल उपस्थित होना चाहिए था। इस प्रकार बहुत देर तक प्रश्नोत्तर होते रहे। अन्त में बहुमत से यही निश्चय हुआ कि फिर नियम पूर्वक चुनाव होना चाहिए। पर इतने में कई वैद्य कहने लगे कि हमें पहले निर्वाचित सज्जनों की नामावली सुना दीजिये।

इस पर सभापतिजी ने कहा कि निर्वाचित सज्जनों के नाम का कागज़ कविराज योगीन्द्रनाथ सेनजी एम॰ ए॰ के पास है। मैं प्रातः-काल उपस्थित नहीं था और अपने स्थान पर सभापति का चार्ज उन्हें देगया था। तब दो तीन आदमी कविराज योगीन्द्रनाथसेन एम॰ ए॰ और ज्ञानेन्द्रनाथ सेन बी॰ ए॰ को बुलाने और वह कागज़ मांगने के लिये उनके स्थान पर गये। उक्त दोनों भाई आज दस बजे से ही सोगये थे और दिन में बराबर १२-१ बजे तक रात्रि में सब-जेक्ट कमेटी में उपस्थित रहते थे। विशेष प्रयत्न करने पर, बड़ी मुश्किल से बहुत देर में कविराज ज्ञानेन्द्रनाथजी उठे और वह कागज़ लेकर सभा में आये। पर निर्वाचित सज्जनों की नामावली सुनाने में आप बहुत देर तक आना कानी करते रहे। इस प्रकार आना कानी करने का मतलब हमारी समझ में कुछ नहीं आया। उस समय देहली के श्रीनिवासाचार्य व जयनारायणजी वैद्य जो प्रातःकाल कमेटी में उपस्थित थे, सभापति महोदय, डी. गोपालाचार्लू, कविराज ज्ञानेन्द्रनाथ सेन और अमृतधारा वाले पं॰ ठाकुरदत्तशर्मा आदि सज्जनों में जो परस्पर बातें हुई उस से मालूम हुआ कि सवेरे विना कोरम पूरा किये ही कुछ पदाधिकार के इच्छुकों ने सबजेक्ट कमेटी करली थी। इसी कारण आज प्रातःकाल कमेटी की किसी को खबर नहीं कीगई। प्रतिदिन निर्धारित प्रस्ताव छापकर जनरल मीटिंग में बांटे जाते थे। पर निर्वाचित सज्जनों के नाम उस दिन प्रस्ताव के कागज़में नहीं प्रकाशित किये गये। वे हस्तलिखित थे। और वे उस समय जनरल मीटिंग में पास किये गये जब कि अन्य सब प्रस्ताव पास हो चुके थे और करीब २ सब लोग उठ गये थे। केवल २०-२५ मनुष्य ही सभा में दिखाई देतेथे। ऐसी अनुचित और नियमविरुद्ध कार्य्य-वाही को देखकर कितने ही निरपेक्ष वैद्यों के मुख से हमने यह सुना था कि यह गुरुडम-लीला कुछ गुरु शिष्य परंपरा वालों और उनके मित्रों की है। वे चाहते हैं कि महामण्डल का अधिकार हमारे ही हाथ में सदा बनारहे। मानो महामण्डल का पट्टा आप ही के नाम लिखा गया है। कुछ लोगों का कहना है कि ऐसे कारणों से ही अधि-कांश सद्वैद्य आयुर्वेद महामण्डल व वैद्यसम्मेलन से उदासीन रहते हैं।

(सम्पादक)

—०—

आयुर्वेदोद्धारक औषधालयकी अनुभूत औषधियां।

महानारायणतैल-सब प्रकार के वातरोगों में उपयोगी साबित हो चुका है। मू० २) शी०।

महालाक्षादितैल-जीर्णज्वर और दुर्बलताकी प्रसिद्ध औषधि है। मू२)

चन्दनादितैल-शरीरकी गर्मी रक्तविकार और दुर्बलतामें उपयोगी है २)

कुन्तलविलासतैल-शिरदर्द, दिमागकी खुश्की गर्मीको कम करता है १)

सर्वांगसुन्दरतैल-झांई, छीप मुंहासे, दाद चकत्तोंको दूर करता है मू०१

नपुंसकसंजीवनतैल-सम्पूर्ण दोषोंको दूर करके पुरुषत्व को उत्पन्न करता है। मू० २) शी०

व्रणनाशकतैल-सब प्रकारके घाव नासूर वगैरहको दूर करता है ॥) शी०

योगवाहीवटिका-ज्वर खांसी श्वास अजीर्ण तिल्ली, यकृत पांडु, ... बवासीर ... प्रमेह, जुकाम और प्रसूत रोग में हितकर है १) शी०

कन्दर्परसायन-धातुक्षीण और ध्वजभंग की अपूर्व औषधि है। मू० ४)

वैश्ववटी-रात को खानेसे सुबह ही दस्त खुलासा लाती है। मू० १)

अमृतसञ्जीवनीवटी-सब प्रकारके रक्तविकार[illegible] आराम करती है मू१)

प्रमेहचिन्तामणि-प्रमेहरोगकी अपूर्व औषधि है। मू० १) रु० शी०

हिमांशुवटिका-स्वप्नदोष की अमोघ औषधि है। मू २) डि०

सुजाककीदवा-नया पुराना सब प्रकारका सुजाक शीघ्र दूर होता है १ शी०

उपदंशनाशकघृत-आतशक गर्मी की हुक्मी दवा है। मू० १) शीशी

उपदंशनाशक मरहम-३-४ बार लगाने से आतशक के घाव दूर होते हैं। मू० ॥) डि०

अजयावटिका-सब प्रकारके ज्वरोंको हुक्मी रोक देती है। मू०१) रु०

कुटजावलेह-अतिसार सग्रहणी आदिमें अच्छा काम करता है मू०१)

अबलाहितकारिणी वटी-ऋतुकाल की भयंकर पीड़ा और उसके उपद्रव शांत होते हैं १) शी०

स्त्रीसञ्जीवनचूर्ण-स्त्रियोंके कमदर और दर्जे[illegible] दवा मू२)

प्रसूतिसञ्जीवन-प्रसूत रोगकी उत्तम औषधि है। मू० २) डि०

बालसञ्जीवनीवटिका-सर्दी, जुकाम, ज्वर पसली, दस्त और दूध डालने की दवा। मू० १) शीशी

नक्कालों से सावधान रहिये।
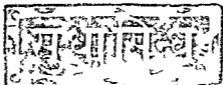
यह सरकार से रजिस्टरी की हुई एक स्वादिष्ट सुगन्धित दवा है। जो केवल पानी में डालकर पीने ही से कफ खाँसी हैजा, दमा, शूल संग्रहणी अतिसार बालकों के हरे पीले दस्त, के करना, दूध पटक देना आदि रोगों को एक ही खुराक में फायदा दिखाती है। कीमत फी शीशी ॥) डाकखर्च १से३ तक ≡)
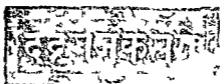
बिना किसी जलन और तकलीफ के दाद को जड़ से खोनेवाली यही दवा है कीमत फी शीशी ।) १२ लेने २॥) में घर बैठे देंगे।

यदि आप को दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा ताजा और तन्दुरुस्त बनाना है तो हमारी इस फायदेमन्द दवा को मँगाकर पिलाइये। कीमत फी शीशी ॥) डाकखर्च ।=)

पूरा हाल जानने के लिये चार धाम का चित्र सहित सूची पत्र मुफ्त मँगाकर देखिये।

मँगाने का पता

सुखसंचारक कम्पनी—मथुरा

उपरोक्त दवाएं-वैद्य [illegible] भी मिलती हैं।

Reg. No A. 587

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिकपत्र

सम्पादक शंकरलाल वैद्य

वर्ष ७ } मुरादाबाद फरवरी १९१६ { संख्या २

विषय-सूची ।

प्रकाशक—हरिशंकर वैद्य, मुरादाबाद ।

वार्षिक मूल्य १॥)

Printed by Kailasachandra
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD.

※ वैद्य के नियम ※

(१) यह पत्र प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) इसका वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १।) रु० है।

(३) नमूने का केवल एक अंक भेजा जाता है। दूसरा बिना ग्राहक होने की सूचना मिले नहीं भेजा जाता। नमूने में कोई सा अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) जो महाशय इसमें छपनेके लिए वैद्यकविषयक लेख, कविता अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

सर्व प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस, मुरादाबाद" के पते पर भेजने चाहिएँ।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ७. } मुरादाबाद फरवरी १९१६ { संख्या २

स्वागत कविता ।

[दशम वैद्य-सम्मेलन में पठित]

सौभाग्यमेतन्महदद्य वैद्या, भिषग्वराश्चा भवतां जनानाम् ।
शुभागमं कर्तुमुपस्थितोऽस्मि, देवामनुष्यां रिशोभितानाम् १
सम्मेलनं वर्द्धितभूरिशोभम्, कृतं भवद्भिर्निजं ज्ञां वरेण्यैः ।
आगत्य देशाद्विविधात्सहर्षं सुस्वागतं तत्र भवज्जनानाम् । २
सभापतिः कीर्तिसितीकृताशो, दृष्टागमः स्मो निधिपुरित्ताशः ।
आत्पस्य यो मूर्त्तिधरोप्रमेव, सुस्वागतं तेऽस्तु सभाप्रधानः ॥ ३
स्वान्स्वान्विचारान्प्रकटय्य नूनं, निरादूधृदिह्या प्रचुरोन्नतित्वम् ।
नेष्यन्ति सम्मेलनमस्य सभ्याः सुस्वागतं तत्र भवज्जनानाम् ४
यैर्धैर्यैस्थैर्गुरुभिः सदर्थैः, श्रीवैद्यसम्मेलनमेतदार्यैः ।
संस्थापितं लोकहिताय लोके, सुस्वागताहाः प्रभवन्तु ते ते ५
श्रीवैद्यसम्मेलनसंसदेषा, सच्छास्त्रनृत्पन्नमतिप्रोपितांगी,
वर्षे स्वपादं दशमे निवत्ते, सुस्वागतं चाऽस्तु बहुप्रकारम् ॥६॥

गोस्वामी मुन्नीलाल वैद्यराज —
[illegible] —
धर्मार्थ श्रीरामौषधालय देहली ।

दशम वैद्य सम्मेलनके प्रस्ताव।

(१) "हमारे महामान्य सम्राट् जार्ज पञ्चम के कनिष्ठ पुत्र एच० आर० एच० प्रिन्सजान की जो अकाल मृत्यु हुई है उस के वास्ते यह सम्मेलन हार्दिक शोक और समवेदना का प्रकाश करता है"।

(२) "यह सम्मेलन आयुर्वेद के सच्चे सहायक भूतपूर्व महाराजा रीवां, डूंगरपुर, कोलुवरम और खैरागढ़ की अकाल, मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करता है"।

(३) "कभी २ भारत सरकार या प्रान्तीय सरकारों की लेजिसलेटिव कौंसलों में आयुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न उपस्थित होते हैं, जिनका निश्चय आयुर्वेद ज्ञान सभासदों के विना ठीक नहीं हो सकता है, इस लिए यह सम्मेलन भारतसरकार और प्रान्तिक सरकारों से साग्रह अनुरोध करता है कि ऐसे अवसर उपस्थित होने पर ऐसे अधिवेशनों के लिए नि० भा० वैद्य सम्मेलन अथवा उसके प्रान्तिक मण्डलों की सम्मति से कुछ विशेष आयुर्वेदज्ञाता सभासद् नियुक्त किया करें।"

(४) "२८ सितम्बर १९१८की इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसल में भारतसरकार ने देशी चिकित्सा पद्धति को अवैज्ञानिक कहने में जो एक पक्षीय विचार की भूल की है, उसे यह सम्मेलन अन्याय समझता है और सरकार से नम्रता पूर्वक प्रार्थना करता है; कि सरकार के परामर्शदाता डाक्टरों और निखिलभारत-वैद्यसम्मेलननियुक्त वैद्यों की एक कमेटी बनाकर पंचों के आगे बहस हो और जो अन्तिम निर्णय हो उसे सरकार माने"।

(५) "प्रायः डाक्टर लोग और राज्याधिकारीगण घोषित किया करते हैं कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक है, यह हम वैद्यों के लिए अत्यन्त शोकजनक और न्यूनता में आयुर्वेद के आक्षेपों और लाञ्छनों की विवेचना कर उदाहरण सहित शास्त्रीयविषयों का विशद किया जावे।

(६) "यह सम्मेलन इस वर्षमें स्वर्गवास हुए अपने वैद्य भाइयों की मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रगट करता है,जिस से आयुर्वेद की बहुत हानि पहुँची है।" (इस जगह २५ स्वर्गवासी वैद्यों के नाम थे)।

(७) "यह सम्मेलन आशा करता है; कि भारतवर्ष के समस्त आयुर्वेदिक विद्यालय नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठ से सम्बन्ध हो कर उसी के पाठ्यक्रम को अपने २ यहां प्रचलित करने का अवश्य प्रयत्न करेंगे।"

(८) "यह सम्मेलन स्थायी समिति की दृष्टि वैद्यसम्मेलन की नियमावली के चतुर्थ नियम के (ख) धारा की ओर आकर्षित करता है, जो योग्य वैद्यों का रजिस्टर बनाने के लिए सम्मेलन स्वीकार कर चुका है।"

(९) "यह सम्मेलन आशा करता है; कि संदिग्ध औषधियों के निर्णय के लिए जो उपसमितियां गतवर्ष प्रस्ताव नं० १२ के अनुसार बनाई गई थीं वे इस वर्ष पूर्ण अनुसन्धान करके आगामी सम्मेलनमें अवश्य अपनी२ रिपोर्ट पेश करें, और इस वर्ष के लिए इन सब समितियों के मुख्यमन्त्री उक्त प्रस्ताव के निश्चय अनुसार पं० भागीरथ स्वामी हों।"

(१०) "बंगाल के आबकारी कमिश्नरने २३ दिसम्बर सन् १९१८ ई० को सरक्यूलर नं० ३५ के अनुसार आयुर्वेदीय आसव व अरिष्टों को आबकारी कायदे से मुक्त किया है, इस के लिए यह सम्मेलन उन को धन्यवाद देता है।"

(ख) "यह सम्मेलन सम्पूर्ण प्रान्तिक एक्साइज़ कमिश्नरों से अनुरोध करता है, कि वे बंगाल की भांति अपने २ प्रान्तों में ऐसी व्यवस्था करें, जिससे आसव अरिष्ट के कारण कभी किसी वैद्य पर अभियोग न आसके"।

(११) "यह सम्मेलन सम्पूर्ण वैद्यों से अनुरोध करता है; कि वे अपने२ यहां एक रजिस्टर रक्खें, जिस में रोगी का नाम, रोग का नाम, औषधि आदि का पूरा पता रहे"।

(१२) "नियम नं० ११ के (ग) के अनुसार प्रतिनिधियों की फीस २) के स्थान में आगामी ३) किये गए"।

(१३) "नियम ८ में (३) एक नया नियम बनाया जाय और उसके साथ (च) भिन्न भिन्न स्थानों में धन्वन्तरी महोत्सव द्वारा जो रुपया एकत्र हो उसका चतुर्थांश भाग स्थायी समितिको और शेष स्थानीय समिति को खर्च करने का अधिकार हो।"

(१४) "यह सम्मेलन नि० भा० वै० स० की स्थायी समिति को अनुमति देता है, कि वह अपने प्रान्तिक सम्मेलनों की सम्मति से सुयोग्य वैद्यों की एक सूची बनावे, जिन के वैज्ञानिक ज्ञान पर वैद्य मण्डल को पूर्ण विश्वास हो।"

(१५) "यह सम्मेलन बिहारसरकार और प्रयाग, कानपुर, पूना,

अजमेर,मुरादाबाद, मद्रास,कलकत्ता, जगाधरी की म्युनिसिपिलटियों तथा नेल्लूर तालुका बोर्ड, और यवत्माल के ताल्लुका बोर्ड को आयुर्वेद की सहायता करने के लिए धन्यवाद देता है।"

(ख)"यह सम्मेलन भारतवर्षकी म्युनिसिपिलटियों और डिस्ट्रिक् बोर्डों से साग्रह अनुरोध करता है;कि भारतीय प्रजा का अधिकांश भाग,आयुर्वैदिक औषधियों को सेवन कर स्वास्थ्य लाभ करता है, इस लिए अपने २ आधीन शहरों और अनुकूल देहातों में आयुर्वैदिक धर्मार्थ औषधालय खुलने का प्रयत्न करें।"

(१६) "यह सम्मेलन श्रीमान् मैसूर, त्रावणकोर, गवालियर, इन्द्रौर, जयपुर, अलवर, रीवां, निजाम हैदराबाद और बड़ौदा नरेश को आयुर्वेद की सहायता करने के लिए धन्यवाद देता है।"

(१७) "आनरेबल मेम्बर साहबान मीर असजद अली खां, ला० सुखबीर सिंह, पं० मालवीय जी, पं० विष्णुदत्त शुक्ल जी, पं०गोकर्णनाथ जी, मिस्टर गरुड़उपासनी, ए० एस० कृष्णाराय पन्तुल, टी० राघवाचार्य, बी० एन० शर्मा, ब्रजेन्द्रकिशोरराय चौधरी, राजा पीठापुर, राय रामशरण दास, प्रभृति माननीय सज्जन समय २ पर आयुर्वेद की भलाई के लिए प्रयत्न करते हैं, इस लिए यह सम्मेलन आप लोगों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।"

(१८) "भारतवर्ष के राजा महाराजा जागीरदारों, और उदार धार्मिक महाशयों से यह सम्मेलन निवेदन करता है कि वे अपनी २ कर्तव्य दृष्टि और धर्मदृष्टि जागृत रख कर स्थान २ पर आयुर्वैदिक आतुरालय, और चिकित्सालय जारी करें, और लोकोपकारी संस्थाओं की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करते रहें।".

(१९) "भारत सरकार के प्रान्तिक सरकारों द्वारा देशी चिकित्सा पद्धति की जो जांच कराई है; उसकी पद्धति अपर्याप्त और अनुचित थी, इस लिए यह सम्मेलन सरकार से प्रार्थना करता है, कि उस सम्मति को सरकार अग्राह्य कर कुछ वैद्य, हकीम, डाक्टर और लोकनियुक्त लेजिसलेटिव कौन्सिलों के मेम्बरों की समिति द्वारा पुनः जांच करावे।

—०—

"सिद्धान्त संगीत"।

(लेखक—कविकुमार महेश्वरप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य)

(१)

वैदिक प्रचार कर दो, भारत के रहने वालो।
इस ओर ध्यान देवो, उन्नति के चहने वालो॥
अपनी दशा सुधारो, जननी वदन निहारो।
उपकार कर्म धारो, कुछ लाज रखने वालो॥

(२)

अपने शरीर देखो, प्राचीन वीर देखो।
आलस्य चोर देखो, पीयूष चखने वालो॥
क्या है दशा तुम्हारी, है मार्ग हानिकारी।
महिमा सभी बिसारी, पर चाल लखने वालो॥

(३)

अपना हुआ पराया, पर को हृदय बसाया।
हरि की विचित्र माया, सुख में मचलने वालो॥
निज सभ्यता भुलाते मिथ्या विचार लाते।
क्या चाल हो दिखाते कर्तव्य करने वालो॥

(४)

अब तो निशान्त आया, रवि का प्रकाश छाया।
उसने तुम्हें जगाया, सुख में विहरने वालो॥
ऐसे प्रमत्त होकर, सौभाग्य सर्व खोकर।
क्यों सारहीन हो कर, चिरकाल सोने वालो॥

(५)

जो कुछ बचा बचाया, निज-भाग्य-भाग पाया।
उसमें न मन लगाया, सर्वस्व खोने वालो॥
ममता तुम्हें नहीं है, आयुष्य वेद पर भी।
रमता हृदय न उसमें, भ्रम में भटकने वालो॥

(६)

पुरुषार्थ कुछ नहीं है, वैदिक-कला नहीं है।
शास्त्र-क्रिया बदी है, मन में लटकने वालो॥
तुम में सुयुक्ति क्या है ? भैषज्य भक्ति क्या है ?
अनुराग शास्त्र पर क्या ? पर ओर तकने वालो॥

(७)

अपमान मान पशु भी, अनजान जानते हैं।
गुण को लखो विचारो, आपस में लड़ने वालो॥
विद्वेष वैर छाया, सुख शान्ति को गंवाया।
सब भस्म कर दिखाया, तुम ने अकड़ने वालो॥

(८)

यह काल जा रहा है, तुम को बता रहा है।
आगे बढ़ा रहा है, इतने बिछुड़ने वालो॥
अपना सुधार कर लो, भण्डार भर भर लो।
आरोग्य ध्यान धर लो, दिन दिन बिगड़ने वालो॥

(९)

इस देश के दुलारे, वैद्यक-कला प्रचारो।
हे जन्मभूमि, प्यारो! सद्भाव भरने वालो।
उद्योग लग्न होकर, साहस अभग्न हो कर।
कर्तव्य मग्न होओ, ध्रुव ध्यान धरने वालो॥

—०—

हृदयरोग और उसकी चिकित्सा।

(गताङ्क से आगे)

पैत्तिक हृदय रोग में अधिकतर अम्लपित्त के लक्षण हुआ करते हैं। इस में पहले हलकी विरेचन की औषधियां देकर शरीर को शुद्ध कर लेना चाहिए। पश्चात् अर्जुनवृक्ष की छाल को दूध में पकाकर और उसमें मिश्री डालकर पान करने से बहुत लाभ होता है। अथवा दाख, मुलेठी और कुम्भेर के फलों को दूध में पकाकर मिश्री डालकर देना चाहिए। अथवा दाखों के कल्क और क्वाथ के द्वारा घृत को पकाकर सेवन कराना चाहिए। यह द्राक्षा घृत पित्तज हृदयरोग में अतीव लाभजनक है। उसीप्रकार अर्जुनघृत, गोक्षुराद्यघृत, कशेरुकाद्यघृत, मधुकाद्यघृत भी उसमें हितकारी हैं। बंशलोचन,छोटी इलायची, जहरमोरा, कमलगट्टे की गिरी, धनिया और किसमिस इन सब औषधियों को समानभाग लेकर एकत्र पीसकर किञ्चित् मिश्री मिलाकर दोर माशे की मात्रा से सेवन करनेसे बहुत लाभ होता है।

मोती, मूंगा और ज़हरमोरा इन औषधियों को गुलाब या केवड़े के अर्क में घिसकर अल्पमात्रा में पान करे तो दाह और तृषायुक्त पित्त का हृदय रोग दूर होता है।

रोग पुराना होजाने पर रौप्यभस्म, सहस्रपुटित अभ्रक, मौक्तिक भस्म, स्वर्णसिंदूर, प्रभाकरवटी, चिन्तामणि, पञ्चानन आदि औषधियों का व्यवहार करना अच्छा है। मोती की भस्म के अभाव में मोतीकी सीप की भस्म अल्पमात्रासे अर्जुन की छाल के द्वारा पकाये हुए दूध के साथ सेवन करने से पित्तज हृदय रोग दूर होता है। अथवा मोती की भस्म रौप्यभस्म प्रवालभस्म, वंशलोचन, जहरमोरा और छोटी इलायची के दाने, ये सब चीजें समान भाग लेकर अर्जुन की छाल के क्वाथ और बकरीके दूधकी सात२भावना देकर दो रत्ती की गोलियां बनाकर दिनमें २गोली अनार या नारङ्गी के शर्बत के साथ खाने से बहुत उपकार होता है। द्राक्षासव, उशीरासव अथवा इसीप्रकार के और आसव भी इस में पथ्य हैं। पित्तज हृदय रोग में सर्व प्रकार के शीतल, मधुर और पुष्टिकारक पदार्थ हितकारी हैं। उत्तम शालि के चावलों का भात, खीर, दूध, माखन, मलाई, मीठादही, अँगूर, अनार, सेब, नासपाती, अनन्नास, सिंघाड़े, कसेरु, ईख, लौकी, कुम्हड़ा, पालक आदि पदार्थ सब पथ्य हैं। एवं चन्दनादि शीतल पदार्थों का शरीर पर लेप, शीतल जल का सेवन और प्रातःकालीन शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन का सेवन आदि विषय अतीव हृद्य हैं। पर ज्वरादि उपद्रवों के न होने पर ये सब उपचार करने चाहिएँ। ज्वर के होने पर रोगी की अवस्था को देखकर यथोचित चिकित्सा करनी चाहिए।

श्लैष्मिक हृद्रोग में अग्निमांद्यादि विविध लक्षण प्रकाशित होते हैं। रोग की प्रथम अवस्था में रोगी के शरीर में से पसीने निकलवावे, वमन और विरेचन देवे। पश्चात् कफनाशक औषधियों के द्वारा चिकित्सा करे। पिप्पल्यादि चूर्ण, त्रिकट्वादि चूर्ण, एलादि चूर्ण आदि औषध कफज हृद्रोग के आरम्भ में देनी चाहिएँ। पीपल, सोंठ और कालीमिरच इन तीनों का चूर्ण २ माशे और शंखभस्म २ रत्ती दोनों को एकत्र शहद के साथ मिलाकर प्रातः और सन्ध्या के समय सेवन करने से कफज हृदय रोग दूर होता है। अथवा पीपलामूल या पोहकरमूल के एक माशे चूर्ण के साथ १ रत्ती सोनामाखी और १ रत्ती लोहभस्म मिला कर प्रतिदिन मधु के साथ दिन में दो बार सेवन करने से कफज हृदय रोग दूर होता है। पीपल, वायविडङ्ग, खसखस और चांदी की भस्म इन चारों औषधियों को एकत्र मिलाकर अल्प मात्रा से मधु के साथ

सेवन करना भी अच्छा है। अदरख का रस, बादाम का दूध, और शहद तीनों को एकत्र मिलाकर सेवन करना भी अतीव लाभदायक है। सोंठ, पुराना गुड और घृत तीनों को एकत्र गरम करके खाने से भी बहुत लाभ होता है। पीपल, पीपलामूल, काला नमक, जवाखार और हींग इन समस्त पदार्थोंका एकत्र चूर्ण करके गरम जलके साथ सेवन करना भी हितकर है। रोग पुराना होजाने पर पारदभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, प्रवालभस्म, शंखभस्म आदि औषधियां एवं हृद्यादीयरस, बसन्ततिलक, कफकेशरी आदि रस प्रयोग करने चाहिएं।

सान्निपातिक हृदय रोग में प्रथम लंघन कराकर जौनसा दोष प्रबल हो उसी को शमन करने वाली औषध देनी चाहिए। सान्निपातिक हृदय रोग में श्वास और कासादि उपद्रव नष्ट होने पर, मधु के साथ कूट का चूर्ण या सेंधा नमक और जवाखार के साथ दशमूल का क्वाथ रोगी को देना चाहिए। गंगेरन की छाल का चूर्ण अथवा अर्जुन की छाल को दूध में पका कर सेवन कराने से विशेष उपकार होता है। उसीप्रकार दशमूल की औषधियों के द्वारा दूध पकाकर पान करने से भी बहुत लाभ होता है। रोग पुराना हो जाने पर कल्याणसुन्दर या विश्वेश्वर, हृदयरोगान्तक आदि रसायन औषधियाँ और दशमूलीघृत, अर्जुनघृत, श्वदंष्ट्राद्य आदि घृत प्रयोग करने चाहिएं।

कृमिजन्य हृदयरोग में—जिससे समस्त कृमि अधोगामी हों इस प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए। रोग की प्रथम अवस्था में वायविडङ्ग और कूट दोनों का चूर्ण समान भाग मिला कर ३-४ माशेकी मात्रा में गोमूत्र के साथ दिन में दोबार सेवन करना चाहिए। अथवा पारे और गन्धक की कज्जली २ तोला, लोहभस्म १ तोला, सीसकभस्म १ तोला और वायविडङ्ग का चूर्ण ४ तोला। सब को एकत्र नीम के रस में खरल करके ३-३ रत्ती की गोलियाँ बनालेवे। प्रति दिन २-३ गोली गरम जल या गोमूत्र के साथ खानी चाहिएं। कुटकी का चूर्ण बनाकर ३ माशे प्रातःकाल और ३ माशे सन्ध्या के समय गरम जल के साथ सेवन करने से भी शीघ्र लाभ होता है। रोग पुराना होजाने पर सप्ताह में दो तीन बार जुलाब की औषधि देकर दस्त करा देने चाहिएं। कृमिजन्य हृदय रोग जरा देर में आराम होता है।

हृदयरोग के उपद्रव—हृदयरोग में श्वास, खांसी, ज्वर, पार्श्वशूल और फुफ्फुस में ग्लानि प्रभृति विविध उपद्रव देखने में आते हैं। इन सब की चिकित्सा मूलरोग की चिकित्सा के साथ करनी चाहिए। जिन औषधों के द्वारा फुफ्फुस और फुफ्फुस के आवरण की वेदना दूर हो उन के द्वारा चिकित्सा न करके केवलमात्र मूलरोग की चिकित्सा करने से वैसा उपकार नहीं होता। श्वास, खांसी और पार्श्वशूल प्रभृति उपद्रवों के प्रकट होने पर, दशमूल के क्वाथ में जवाखार और सेंधा नमक डालकर देना चाहिए। पञ्च कल्याणसुन्दर रस, विश्वेश्वर रस, वृहद्वासावलेह, अगस्त्यहरीतकी आदि औषधियां देनी चाहिएं। ज्वर के होने पर मृत्युञ्जय रस, ज्वरादि अभ्रक या महालक्ष्मीविलास प्रभृति औषधियां रोग की अवस्थानुसार प्रयोग करनी चाहिएं। इस समय बुद्धिमान् चिकित्सक के ऊपर रोग की चिकित्साका भार अर्पण करना चाहिए। कारण रोगी को अति सावधानता से औषध और पथ्य देने से, फुफ्फुस का कार्य्य रुककर सहसा विपद् उपस्थित होसकती है। फुफ्फुस सम्बन्धी रोगों में हृदय-रोग के उत्पन्न होने पर श्वास, कासनाशक औषध विचार पूर्वक प्रदान करनी चाहिए।

—०—

प्रकृति—शासन।

संसार प्रकृतिमय है। संसार में जो कुछ देखा जाता है, वह सब प्रकृति की सृष्टि है। प्रकृति ही हमारी जननी है। और जननी ही पालनकर्त्री होती है। यदि शिशु माताप्रदत्त दुग्धपान न करे, उस की आज्ञानुसार रहन-सहन की व्यवस्था न करे, तो उस की क्या दशा होगी? इसी तरह से; यदि हम अपनी जननी-प्रकृति के नियमानुसार चलने की परवाह न करें, तो क्या फल होगा?

प्रकृति अजर और अमर है; उस के दीर्घ-जीवन के सम्मुख, हमारा जीवन क्षण-भंगुर है। प्रकृति कितने जीवों की जननी है! बड़े २ वृक्ष, बड़े २ पहाड़, भयानक विषधर सर्प और सिंहादि बलवान् पशु आदि-आदि, उस के बल के नमूने हैं। वह शक्तिमयी है। उस के सम्मुख हमारी शक्ति विडम्बना मात्र है। तब क्या उस से विरुद्ध उठ खड़े होने में हमारी कुशल होसकती है?

प्रकृति जननी भी है और पालिका भी। रक्षक भी है और भक्षक

भी। दयामयी भी है और चंडी-स्वरूपिणी भी। वह सौन्दर्य्य-पराकाष्ठा भी है और विकरालरूपा भी। वह कृपालु भी है और पाषाण-हृदया भी। और ऐसी पाषाण-हृदया, कि जिस को सन्तान-संहार में भी दया नहीं।

प्रकृति के समक्ष, किन्तु विरुद्धाचारिणी और प्रतिद्वन्द्वी-प्रवृत्ति है। मालूम होता है, कि जब से प्रकृति है, तभी से प्रवृत्ति है। मुसलमान लोग कहते हैं, कि " ख़ुदा इन्सान को राह रास्त पर चलाता है और शैतान वरग़लाता है "। प्रकृति भी मनुष्य को सीधे रास्ते चलने की आज्ञा देती है और प्रवृत्ति उलटे की।

इतिहास देखने से पता चलता है, कि प्रकृति और प्रवृत्ति में बहुत दिनों से युद्ध होता चला आता है। अन्त में, प्रवृत्ति की पराजय होती अवश्य है, किन्तु उस की प्राण-हानि नहीं होती। मालूम होता है, प्रकृति की भांति, प्रवृत्ति भी अमर है।

प्रकृति और प्रवृत्ति का हाथ, भू-मण्डल के सभी प्रदेशों में, और प्रदेश के सभी विषयों में होता है। प्रत्येक विषय की उन्नति और अवनति, प्रकृति और प्रवृत्ति की-प्रबलता और निर्बलता पर निर्भर रहती है। हम यहां पर, केवल आरोग्यता के विषय में, कुछ विचार करते हैं।

इस संसार में आरोग्यतापूर्वक, जीवन-निर्वाह करने के लिए जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, प्रकृति ने वे सब वस्तुएं, प्रचुर परिमाण में, हमारे सम्मुख उपस्थित कर दीं हैं। आरोग्य रहने के लिए, क्या २ कर्तव्य और क्या २ अकर्तव्य हैं; क्या २ संग्राह्य और क्या २ त्याज्य है; और क्या २ करना उचित अथवा अनुचित है, इस बात की विवेचना के लिए, प्रकृति ने, हमारी सृष्टि उन २ तत्त्वों से की है, कि जिस से हमको नेत्र, नाक, जिह्वा और कान प्राप्त हुए हैं। उस दयामयी ने, इन इन्द्रियों को उचित-परिचालनार्थ बुद्धि प्रदान की है; और बुद्धि का निर्मल रखने के लिए, उस में भ्रान्ति न आने के लिए, विवेक-शक्ति का दान किया है।

विवेकशक्ति सदा निर्भ्रान्त है। प्रवृत्ति की वहां तक पहुंच नहीं है। पर, बुद्धि के ऊपर हाथ साफ किया करती है। प्रवृत्ति-जनित बुद्धि,धीरे २ विवेक से अपना सम्पर्क त्यागने लगती है। बस, यहीं से सर्वनाश का प्रारम्भ होता है।

प्रकृति शासन से, इन्द्रिय-समूह बुद्धि के वश में रहते हैं; प्रवृत्ति शासन से, बुद्धि इन्द्रिय-समूहों के वश में हो जाती है। इन्द्रियां, विवेक-शून्य हैं, वे सदा मृग-तृष्णा की भांति सुख की इच्छा करती हैं। मीठा खाने से-इन्द्रिय-सुख होता है; वे सदा मीठा खाने की सलाह देती हैं। वीर्य्य-पात करने से, इन्द्रिय-सुख होता है: वे सदा वीर्य्य-पात करने की इच्छुक रहतीं हैं। सदा मीठा खाने से, सदा वीर्य्यपात करने से क्या फल होगा? यह सोचना इन्द्रियों का काम नहीं, बुद्धि का काम है और बुद्धि, प्रवृति-राक्षसी के वश में है, विवेक पृथक् कर दिया गया है, अब कुशल कैसी और आरोग्यता कैसी? आरोग्यता नहीं तो जीवन कैसा? जीवन नहीं तो शान्ति कैसी? और शान्ति नहीं तो अशान्ति है ही।

आज हम प्रवृति के कुचक्र में फँसे हुए घोर यातना भोग रहे हैं। प्रकृति से हमारा सम्बन्ध पन्द्रह-आना विच्छिन्न हो गया है। संसार के सारे विषयों का, आरोग्य मूल है, आधार है एवं प्राण-संचारक है। जब आरोग्यता नहीं तो न देश की ही बात ठीक है और न राज्य की ही और न निश्चय-धर्म के मनन की।

इस समय सारा संसार रोगी है और जब तक विवेक से काम न लिया जायगा, तब तक रोगी रहेगा। प्रकृति, प्रवृति से प्रबल है, इस कारण स्वाभाविक-चक्र से संसार, कभी न कभी सम्पूर्ण आरोग्य होगा अवश्य, किन्तु बड़ी दुर्दशा के बाद, यम-यातना के बाद, और व्यर्थ अमूल्य समय बरबाद करने के बाद।

प्रकृति सर्वशक्ति-सम्पन्ना है। उसके विरुद्ध चलने से किसी की भी कुशल नहीं। प्रकृति का शासन, अटल-न्याययुक्ति और सर्वोपरि है।

एक प्रकृति सेवक।

—०—

वायु सेवन।

(गीतिका)

—०—

(१)

निज कामना की पूर्त्ति के, साधन अनेक कहे गये।
उन में सभी से श्रेष्ठतम, सुन्दर शरीर लहे गये॥
वह जो कि अपनी देह को, उन्नत दशा में कर सका।
नर जान लो वह इन्द्रियों को, वश्यता को कर सका॥

(२)

मित्र, जब तक इन्द्रियां, सम्पूर्ण वश में हैं नहीं।
इस अश्वरूपी चित्त की, जबडोर कर में है नहीं॥
लवलेश भी सत्कर्म हम से, उस समय नहिं हो सके।
यदि कार्यकर्त्ता आलसी, आलस्य क्यों कर खोसके॥

(३)

शुचि वायुसेवन साधनों में, सरल साधन है अहा!
जिस से विलक्षण लाभ होते, देह सम्बन्धी महा॥
इस एक सीधे कार्य्य से, नव-ज्योति नेत्रों की बढ़े।
सब अङ्ग हों नीरोग अद्भुत कान्ति आनन में चढ़े॥

(४)

नवपुष्प हैं फूले हुए, आराम में अति ही घने।
जिन क्यारियों के रूप भी, मन भावने हैं अति बने॥
नवफुल्ल जलजों से सुशोभित, हैं तड़ाग सुहावने।
फिर षट्पदों के यूथ भी, करते भ्रमण प्रेमी बने॥

(५)

मृदु पङ्कजों की स्वच्छ सुन्दर, जो सुरभि है आरही।
सब ग्रामकों के चित्त को, वह स्वच्छ शान्ति बना रही॥
कुल हैं लगे परमात्मकृत, जो वृक्ष सुन्दर लहलहे।
यह तत्व अपने पत्ररूपी, पाणि द्वारा कह रहे॥

(६)

"तुम जाय प्रातःकाल मित्रो, वायु सेवन के लिए।
अब प्राप्त कर लो शक्तियाँ, निजदेश-उन्नति के लिए॥
जिस भाँति मारुत नीरधन से, हम सभी हैं बढ़ रहे।
हिम, वात, वर्षा के विपद, गिरि-राज सिर पर चढ़ रहे॥

(७)

उस भांति से सुविचार कर, सब कष्ट दग सह जायगे।
निज देशउन्नति कर सदा, अभिमत सभी फल पायगे॥
सब पक्षिगण निज मधुर कूजन, से विपिन गुञ्जारते।
निज मित्र को सादर सभी, मानो प्रसन्न पुकारते॥

(८)

यह जो कि प्रातःकाल है, सन्देश जग उत्थान का।
सब कार्य्य में लग जाइये, जो मार्ग हो सुविधान का॥

अब, कार्य्य ऐसा ही करो, प्रिय मातृभूमि-सुधार हो।
भव-सिन्धु में हैं डूबते, नर-नाव उन की पार हो॥
(६)
अब दीनबन्धो, हे प्रभो, कुछ तो कृपा कर दीजिए।
इस दीन भारत के दुखों को, शीघ्र ही हर लीजिए॥
फिर पूर्व सा उन्नति शिखा पर, देश यह भारत चढ़े।
यह प्रार्थना "आनन्द" की, उत्साह पूरित हो बढ़े॥

रामनारायण गुप्त (आनन्द) विद्यार्थी कक्षा VIII

चिन्ता।

यह बात असम्भव है कि संसार में रह कर कोई चिन्ता से छूट सके। जिस प्रकार दरिद्रियों को धन की चिन्ता होती है, उसी तरह धनवानों को अपने आराम की चिन्ता होती है। जितनी फकीर को भिक्षा की चिन्ता होती है, उतनी ही बादशाह को अपनी बादशाहत की चिन्ता रहती है। मनुष्यों ही को नहीं, पशुओं और पक्षियों को भी चिन्ता होती है। एक प्रकार से कहा जासकता है कि संसार-चक्र ही चिन्ता है। चिन्ता बिना प्रकृति अपना कार्य कैसे कर सकती है? अतएव, संसार-यात्रा के लिए चिन्ता एक आवश्यक और अनिवार्य्य वस्तु है। पर यह न समझना चाहिए कि चिन्ता अनिवार्य है इस लिए हम उससे दबे हुए हैं। चिन्ता से और हम से क्या एवं कैसा सम्बन्ध है यही इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

उचित और अनुचित मार्गों द्वारा चिन्ता के दो रूप हो सकते हैं। प्रथम सच्चिन्ता और द्वितीय असच्चिन्ता। सच्चिन्ता का बड़ा महत्व है। इसी चिन्ता की कृपा से कवि लोग अपनी कवित्व शक्ति प्रकाशित करते और संसार का उपकार किया करते हैं। लेखकों के वे लेख जो स्वतंत्र चिन्ता से रहित होते हैं, किसी काम के नहीं होते। सम्पादक, वकील, वैद्य, डाक्टर और न्यायाधीशगण, अपनी चिन्ता के बल से ही अपना कार्य्य, दूसरों का उपकार और अच्छा आदर्श स्थापित किया करते हैं। जिस वक्त हमारे सम्मुख सामाजिक, सामायिक, सार्वजनिक और राजनीतिक प्रश्न उपस्थित होते हैं उस समय हम चिन्ता ही का आश्रय लेकर अपना कर्त्तव्य पालन किया करते हैं। हमारी बुद्धि का विकाश चिन्ता द्वारा ही होता है। फलतः मानव जीवन के लिए चिन्ता अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। यदि चिन्ता न

की जाय तो उपदेशक लोग उपदेश नहीं देसकते, समालोचक अच्छी समालोचना नहीं कर सकते और राजा राज्य नहीं कर सकता। चिन्ता विना ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य्य की रक्षा नहीं कर सकता,गृहस्थ अपनी गृहस्थी नहीं चला सकता और संन्यासी अपना संन्यास रक्षित नहीं रख सकता। रोगी की नाड़ी पकड़ते ही वैद्य को चिन्ता करनी पड़ती है। अतएव, संसार का काम चलाने वाली, धर्म, कर्म और न्याय स्थिर रखने वाली, और जीवन को ठीक उपयोग में लाने वाली सच्चिन्ता कभी बुरी नहीं कही जा सकती। चिन्ता का यही मुख्य रूप है।

प्रकृति की प्रेरणा से और हम लोगों की चित्त विकृति से असच्चिन्ता उत्पन्न हुई है। चिन्ता के दो टुकड़े ही इस कारण करने पड़े हैं। "चिन्ता करना बहुत बुरी बात है" यह बात इसी असच्चिन्ता के सम्बन्ध में कही जाती है।

यदि कोई वैद्य यह सोचे कि उसके मर जाने से चिकित्सा शास्त्र को धक्का पहुँचेगा,कोई कविराज यह सोचें कि उसके बाद कविता की क्या दशा होगी और यदि कोई पत्र-सम्पादक यह विचार करें कि अब उन की सर्वप्रिय पत्रिका कैसे सर्वप्रिय रहेगी तो यह असत्-चिन्ता है।

यदि कोई वकील अपने छोटे मुकदमे के लिए बड़ी तैय्यारी करता है, कोई डाक्टर अपने सामान्य रोगी की चिकित्सा बड़े आकार से आरम्भ करता है और यदि कोई जिमींदार अपनी आमदनी पर विशेष भाव से ध्यान देता है, तो वह असच्चिन्ता करता है।

कोई २ यह सोचा करते हैं कि जैसे भी हो, हमारे कुल का गौरव नष्ट न होने पावे। हमारे घर में कोई ऐसी स्त्री न आवे जो बदचलन हो, हमारी स्त्री को कोई न देख पावे। हमारा कोई अपमान न करे। हमें कोई छुलावा न दे। हमारे घर की कोई स्त्री अदालत न आवे। हमारा कोई सम्बन्धी न मर जाय। हम बीमार न हो जावें। हमारा रोगी पुत्र न मर जाय। हमारा धन न चला जाय। यदि हमारा धन चला गया तो यही सोचते रहना कि हाय! हम निर्धन हो गये। यदि बीमार पड गये तो यह ख्याल करना कि हाय! मृत्यु आ गई इत्यादि २ व्यर्थ और भविष्य की बातें असच्चिन्तामूलक कही जा सकती हैं।

जो लोग ग्रीष्म में गर्मी की, वर्षा मे पानी की और शिशिर में जाड़े की शिकायत किया करते हैं। जिनको किसी का विश्वास नहीं। जिनको सर्वत्र कुछ न कुछ दोष अवश्य दृष्टि आया करता है। और जो हर समय असन्तुष्ट रहा करते हैं उनको मालूम होना चाहिए कि असच्चिन्ता द्वारा उनके चित्त मे विकृति हो गई है।

उपर्युक्त कारण, परोक्ष कारण हैं। यही कारण धीरे २ बृहताकार में जीवन को दु:खमय बना डालते हैं। आज तक संसार में जितनी आत्महत्याएं हुई-चाहे वे जलमग्न द्वारा, विषपान द्वारा या अपने हाथ की फांसी द्वारा हुई हों—या अकाल मृत्यु द्वारा, न्याय द्वारा और कर्मो द्वारा हुई हों—समस्त चिन्ता का प्रसाद कहा जा सकता है। यदि एक मनुष्य राजाज्ञा से फांसी पाता है तो वह अपने कर्मों द्वारा अपराधी होता है और चिन्ताके कारण अपराध या हत्या करता है ? हत्या कराना असच्चिन्ता का काम है, सच्चिन्ता का नहीं। इस प्रकार से अन्यान्य बातें समझनी चाहिए ।

व्यक्तिगत स्वभावानुसार असच्चिन्ता का प्रभाव होता है। यदि कोई मनुष्य चञ्चलचित्त और सहृदय है तो वह अपनी चिन्ता लोगों को सुनाता फिरेगा। सुननेवाले उसको मूर्ख कह सकते हैं। किन्तु वह स्वयं अपनी मानसिक क्षति से बच जाता है। और यदि कोई सहृदय मनुष्य गम्भीर प्रकृति का है, तो वह उस समय कि जब चिन्ता का प्रभाव उसे व्याकुल कर देता है अपने मित्रों को अपनी चिन्ता की बात सुनाता है। मित्रों द्वारा पाये हुए धैर्य से वह अपनी चिन्ता हलकी भी कर लेता है और यदि किसी मित्र ने उसे झड़का दिया तो उसका हाल बेहाल हो जाता है। बहुधा ऐसे ही मनुष्य पागल हो जाया करते हैं। चिन्ता द्वारा, उस मनुष्य का बुरा हाल हो जाता है कि जो गम्भीर और घमण्डी होता है। ऐसे मनुष्यों के लिए मृत्यु ही छुटकारा है।

बहुधा ना समझी से ही असच्चिन्ता उत्पन्न होती है। चिन्ता, प्रवृति है। इसकारण प्रकृति उससे घबड़ाती है। चिन्ता की अधिकता बुद्धि को डाँवाडोल कर देती है। जिस समय बुद्धि अस्थिरा हो जाती है और चिन्ता बनी ही रहती है तो बड़ा विभ्राट उत्पन्न होता है। पण्डित से पण्डित मनुष्य भी बज्रमूर्खों जैसा काम करने लगता है। हमारा यह कहना नहीं है कि मूर्ख लोगों को ही चिन्ता हुआ करती है। विद्वान् लोगों पर भी असच्चिन्ता का वार हो जाया करता

है। यहां तक कि जिस व्यक्ति को अपनी विद्या, बुद्धि और योग्यता का जितना ख्याल होगा वह उतना ही असच्चिन्ता का शिकार बनता है। स्वाभिमान रहित, मिलनसार और भाग्य पर भरोसा रखने वाला आदमी कम चिन्तित रहा करता है।

किन्तु, यहां इस बात का निर्णय नहीं किया जारहा है कि भाग्य पर भरोसा करना चाहिए या नहीं। हमारे समाज में खास कर पुराने विचारों के मनुष्य, भाग्य पर भरोसा करते हैं। और इस प्रकार वे दुष्ट चिंता से बचाव कर लेते हैं। किन्तु, सर्वांश में यह बात भी सत्य नहीं है कि अदृष्ट पर भरोसा करना लज्जा की बात है। जो हो; चिन्ता के लिए अदृष्ट का विश्वास एक औषधि है।

जिस समय दुश्चिन्ता का आक्रमण होना चाहे, उस समय अकेले न रहो। ठंडा पानी पीना, गाना बजाना, खेलना और बात चीत करने में लग जाना अच्छी बात है। रात को अधिक समय तक न जागना चाहिए। प्राणायाम करना, चित्तसंयम करना और मन पर अंकुश रखना अत्यन्त लाभदायक बातें हैं। विपद् पड़ने पर धैर्य्य रखना, और चित्त को स्थिर रखना अभ्यास द्वारा सरलता पूर्वक हो सकता है। इस लेख पर पाठकों को चिन्ता करनी चाहिए।

शिवनारायण वर्मा।

—o—

मसूरिका वा माता शीतला से बचने के उपाय।

इस देश में अन्य संक्रामक रोगों की तरह मसूरिका व माता रोग की भी खासी फसल होती है। कभी कभी यह रोग बड़ा भयङ्कर रूप धारण करता है। प्रतिवर्ष लाखों मनुष्य इसकी भेंट चढ़ जाते हैं। यह अतिशय संक्रामक रोग है। शीघ्र ही एक से दूसरे मनुष्य में लगजाता है। अतएव इस रोग के प्रकोप के समय विशेष सावधानी से रहना चाहिए और निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(१) मसूरिका के प्रकोप के समय स्वच्छता के नियमों का पालन करनाचाहिए। जल, वायु और भोजन की शुद्धता पर अधिक दृष्टि रखनी चाहिए। भोजन हलका और निर्दोष होना चाहिए।

(२) मसूरिका रोगी के स्पर्श से बचना चाहिए। रोगी को खूब साफ और जिस में शुद्ध वायु के आने जाने के लिये प्रबंध हो ऐसे

स्थान में रखना चाहिए। और उस में चंदन, कपूर, गूगल, नीम आदि की धूप देनी चाहिए। घर द्वार और खिड़कियों में लाल टूल के परदे टांगने चाहिए। रोगी की परिचर्य्या ख़ूब सावधानी से करनी चाहिए। परिचर्य्या करने के बाद तत्काल अपने हाथों और ऊपर के वस्त्रों को पानी या गरम जल से धो डालना चाहिए।

रोगी के कमरे के पास खाने पीने के पदार्थ नहीं रखने चाहिएँ। कारण कि मसूरिका के बीजाणु खाने पीने के पदार्थों के साथ मिल जाने के कारण घर के दूसरे मनुष्यों में इस का आक्रमण होसकता है।

(३) मक्खियों के द्वारा यह रोग बड़ी शीघ्रता से संक्रमित होता है। इस कारण इस रोग के प्रकोप के समय खाने पीने के समस्त पदार्थों को इस प्रकार ढक कर रखना चाहिए कि जिस से उन पर मक्खियाँ न बैठने पावें।

(४) बहुत लोगों का विश्वास है कि इस रोग का विष गर्मी से फैलता है। इस कारण मसूरिका के मौसम में शीतल पदार्थों और शीतल उपचारों का व्यवहार विशेष लाभदायक है। पर हमारी समझ में यह बात ठीक नहीं है। अधिक शीतल और अधिक गरम दोनों ही प्रकार के पदार्थ इस में हानिकारक हैं। अतएव साधारण पदार्थ ही सेवन करने चाहिएँ। हाँ दूध आदि पतले पदार्थ जहाँ तक हो सके कम खाने चाहिएँ। गौ के यह रोग होने पर उस के दूध को पान करने से इस का विष सहज ही संक्रमित होता है। इस लिए इस विषय में ख़ूब सावधान रहना चाहिए।

(५) इस देश में ऐसी कई औषधियाँ प्रसिद्ध हैं कि जिन का सेवन करने से मसूरिका का प्रादुर्भाव नहीं होता। उन में से कुछ औषधियों का नीचे उल्लेख किया जाता है।

(१) कहते हैं गधी का दूध प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा पान करने से मसूरिका का आक्रमण नहीं होता। गधी का दूध मसूरिका के विष को नष्ट करता है।

(२) नीम की कोमल पत्तियां ३ और काली मिरच ३ इन दोनों को एकत्र शीतल जल के साथ पीस कर मसूरिका के दिनों में कुछ समय तक सेवन करने से मसूरिका का भय दूर होता है।

(३) श्वेत पुनर्नवे की जड़ और काली मिरच दोनों ४-४ माशे परिमाण लेकर शीतल जल के साथ पीस कर पान करने से मसूरिका का भय निवारण होता है।

(४) रुद्राक्ष और कालीमिरच दोनों को एकत्र बासी जल के साथ पीस कर पान करने से मसूरिका या शीतला का भय निवारण होता है

(५) पुरुष के दहने अंग में और स्त्री के बांयें अंग में हरड की मींग को बांधने से मसूरिका नहीं निकलती।

—०—

भारत में महाज्वर।

महाज्वर अर्थात्-इन्फ्लूएन्ज़ा रोग का जन्म प्रथम इटली देश में हुआ। पुनः इस ने इङ्गलैण्ड आदि द्वीपों में चक्कर लगा कर एशिया महाद्वीप में पदार्पण किया। आधुनिक काल में बम्बई, मद्रास, कलकत्ता आदि बड़े २ नगरों मे ही नहीं, किन्तु छोटे से छोटे ग्रामों में भी इसने फिर फिर कर जनसमूह को अपना भोज्य बनाया और अब भी इस का अन्त होता नहीं दीख पड़ता। इस महा भयङ्कर ज्वर ने बालक, वृद्ध, तरुण, स्त्री, पुरुष और बड़े २ देशहितैषी वीरों को अपना ग्रास बना कर अनेकों स्थानों को जन-विहीन कर दिया। जिसका स्मरण करने से भी हृदय कम्पायमान होता है।

इस का विद्वान् वैद्य और डाक्टर कितने ही प्रकार से वर्णन करते हैं। किन्तु यह पित्त सम्बन्धी गर्मी और सर्दी के संयोग से उत्पन्न होता है और विशेष कर इस मे तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं, इस कारण इस को सर्दी का ही मूलक जानना चाहिए। इस का आक्रमण सब प्राणियों पर एक सा नहीं होता। यह प्राकृतिक अवस्था और बलाबल पर निर्भर है।

इस के लक्षण—प्रथम कुछ हरारत, फिर हड्डियों में दर्द, शिर दर्द, हाथ पावों में ऐंठन, शूल, किसी को वमनके साथ दस्त जुकाम खाँसी और सारे शरीर में पीड़ा होती है। नाड़ी की गति अति तीव्र त्वचा में जलन और प्यास अधिक लगती है, जीभ सूखती है। इन के अतिरिक्त अन्यान्य लक्षण भी विशेष रूप से देखने में आते हैं।

इस ज्वर की सामान्य चिकित्सा।

इस में प्रथम बलानुसार दो तीन दिन तक उपवास (लंघन) कराये। तदनन्तर मुलेठी २ तोला, गिलोय ५ तोला, धनिया २ तोला, नीम की छाल ४ तोला, पद्माख ४ तोला, लाल चन्दन ३ तोला, वृन्दा (तुलसी) के पत्ते ५ तोला और दालचीनी ३ तोला।

इन सब औषधियों को यथाविधि लेकर कूट पीस कर चौगुने जल में पकावे। जब पकते २ चौथाई जल शेष रहे तब उतार कर छान लेवे। प्रति दिन प्रातः और सायं दोनों समय छ २ माशे की मात्रा से मिश्री या शहद मिला कर इस क्वाथ को सेवन करने से तत्काल रोग की शान्ति होती है और यह आरोग्यता, बल, वर्ण और जठराग्नि की शुद्धि करता है।

महा ज्वर पर वटी—कुरकुर की पत्ती २ तोला, वृन्दा (तुलसी) के पत्ते २तोला, गिलोय २तोला और कालीमिरच ६ माशे; इन सब को बारीक पीस छान कर जल के साथ खरल कर तीन२रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। तीन २ घण्टे के अनन्तर एक एक गोली कुछ उष्ण जल या शहद के साथ सेवन करावे। यदि खाँसी हो तो अदरक के रस के साथ देवे। यह वटी ज्वर के चढ़े रहने पर भी देने से उपकार करती है। यह वटी मलेरिया ज्वरको भी नष्ट करती है। और दस्त अथवा वमन होती हो तो सिर्फ शहद के ही साथ देनी चाहिए।

इस में सुदर्शन चूर्ण, सञ्जीवनी वटी और दशमूल का क्वाथ पीपल का चूर्ण डालकर देने से भी शीघ्र लाभ होता है। आशा है वैद्य के पाठक महोदय इन प्रयोगों की परीक्षा कर लाभ उठावेंगे। ये हमारे कई बार के आजमाये हुए हैं।

व्रजलाल प्रसाद शर्मा वैद्य कबीरपन्थी, कवर्धा (स्टेट)

—०—

परीक्षित-प्रयोग।

श्वास (दमा) रोग पर।

शङ्खभस्म ६ माशे, शुक्ति-(सीप) भस्म ९ माशे, अडूसे के फूलों का स्वरस आधपाव, कटेरी का स्वरस एक छटांक, मुलैठी का सत्त २॥ तोले और शहद ५तोले लेवे। इन सब औषधियों को एकत्र खरल करके एक उत्तम शीशी में भर कर रख लेवे। इस में से नित्यप्रति प्रातःकाल तीन २ माशे की मात्रा से सेवन करे तो श्वास रोग बहुत शीघ्र नष्ट होता है। यह प्रयोग हमारा कई रोगियों पर अनुभव किया हुआ है।

रक्तस्राव पर।

कुकरौंदे के पत्तों का रस निकाल कर चोट लगे हुए एवं क्षतादि

के द्वारा कटे हुए स्थान पर लगाने से रुधिर का निकलना शीघ्र बन्द होता है। उक्त रस को प्रति दिन प्रातः एवं सायङ्काल २॥—२॥ तोले की मात्रा से उत्तम शहद मिला कर सेवन किया जाय तो रक्तविकार में विशेष उपकार होता है।

मुखपाक रोग पर।

सफेद चोंटली या हंसराज के पत्तों का रस निकाल बालकों के मुख के दानों पर लगाने से सर्वप्रकार का मुखपाक (मुहाँ) रोग शान्त होता है।

हंसराज के पत्तों का रस २॥ तोला, केशर १ माशे और जायफल १॥ माशे; इन को एकत्र खरल करके लगाने से भी विशेष लाभ होता है। यह हमारा आज़माया हुआ है।

बालकों के पसली रोग पर।

चौकिया सुहागे का फूला, केशर, लौंग और काली मिरच सब चीज़ों को समान भाग लेकर पानों के रस में खरल कर के मूँग की बराबर गोलियाँ बना लेवे। प्रति दिन प्रातः और सायङ्काल एक २ गोली माता के दूध में घिस कर पिलाने से पसली और खाँसी शीघ्र दूर होती है। यह प्रयोग हमारा ७-८ वर्ष का अनुभव किया हुआ है।

श्रीराघवेन्द्र सिंह देव वर्मा, वैद्यशास्त्री तिलोकपुर, टिण्डौली (मैनपुरी)

स्वर्गीय ठण्डाई।

खीरे के बीज, ककड़ी के बीज, धनियाँ, सेवती के फूल, गुलाब के फूल, काहू के बीज, कुलफे के बीज, और कासनी, ये प्रत्येक औषधि दो दो तोला तथा खस १ तोला, सफेद चन्दन १ तोला, कमलगट्टे की मींग १ तोला, सौंफ २ तोले, सफ़ेद मिरच २ तोले और छोटी इलायची के बीज २ तोले; इन सब को एकत्र हामनदस्ते में कूट पीस कर रख लेवे। किन्तु कमलगट्टों को रात्रि के समय जल में भिगो दे और प्रातःकाल चाकू से छिलके उतार कर उन के भीतर जो हरे रंग की पत्ती सी होती है उस को निकाल डाले। फिर कमलगट्टों की मींग को सुखा कर बारीक पीस पूर्वोक्त औषधियों के साथ मिला दे। इस ठण्डाई को रात्रि में एक तोला परिमाण मिट्टी के बर्त्तन में एक पाव जल में भिगो दे और प्रातः समय अच्छे प्रकार मलकर एवं छान कर दो तोले मिश्री मिला कर पीवे। अथवा एक तोला ठण्डाई सिल पर पीस कर दो या तीन तोले खांड मिला

कर पीनी चाहिए। यदि भाँग सेवन करने का अभ्यास हो तो दो या चार रत्ती भाँग उक्त ठण्डाई के साथ पीस कर सेवन करे। इस ठण्डाई को सेवन करने से सिर का घूमना, चक्कर आना, दिल का घबड़ाना, अत्यन्त गर्मी के कारण व्याकुल होना, हाथ और पैरों के तलुवों की जलन, चिन्ता, क्रोध, दुःस्वप्न, और वात-पित्तजन्य सब विकार नष्ट होते हैं। एवं उन्माद (पागलपन) और अपस्मार (मृगी) रोग में यह विशेष हितकारी है। पित्त की अधिकता के कारण जिन स्त्रियों का रजोधर्म नष्ट हो चुका है; उन को इस ठण्डाई का सेवन कराने से कुछ काल में ही नियमानुकूल मासिकधर्म होने लगता है। ग्रीष्म ऋतु में इस को पान करने से लू लगने और हैज़ा होने का भय नहीं रहता। यह अत्युत्तम ठण्डाई है। इस से बुद्धि, पुष्टि, बल, वर्ण और अग्नि बढ़ती है। यह ठण्डाई हमारी बीस वर्ष की परीक्षित है।

रसायनबिन्दु तैल।

जावित्री, जायफल, बादाम की गिरी, श्वेत चन्दन, बड़ी इलायची, लौंग, काले तिल, पिदते, अकरकरा, अजवायन और कौड़िया लोबान; इन सब चीजों को एकत्र कूट कर "पातालयन्त्र" के द्वारा तैल निकाल लेवे। इस तैल को दो तीन बूँद पान में लगाकर प्रति दिन दोनों वक्त खाने से—श्वास, खाँसी बीसों प्रकार के प्रमेह, कफ और पित्त के विकार, मन्दाग्नि, शोष, राजयक्ष्मा, उदरशूल और वातजन्य सब रोग नाश होते हैं। यह प्रमेह रोगियों के लिए विशेष कर लाभप्रद है। इसका नाम रसायनबिन्दु तैल है।

जन्म से लेकर मृत्यु पर्य्यन्त वाला (नहरुआ) न निकलने का प्रयोग।

होली के दिन जो गोबर के बरगुले जलाये जाते हैं, उन को रात्रि में ही मौन होकर ले आवे। प्रातःकाल उन की राख ३ माशे और शहद ६ माशे एकत्र मिश्रित कर एक सप्ताह नियमपूर्वक सेवन करे तो आजन्म बाहला अर्थात् नहरुआ रोग न हो। यह बिना पैसों का अति सरल नुसखा हमारा बहुत जनों पर अनुभव किया हुआ है।

सूरजमल जैन, जालना।

—c—

युद्धज्वर की दूसरी अवस्था में।

युद्ध ज्वर में रोगी की छाती पर जब अधिक कफ जम गया हो

तो प्रवालभस्म १ रत्ती, ५ आनेभर कालीमिर्च का चूर्ण और अदरख का रस ३ माशे; इन को एकत्र गर्म कर सवेरे और शाम दोनों समय रोगी को चटावे और अष्टावशेष जल पीने को देवे। इस से बहुत जल्द कफ पतला होकर निकल जाता है और ज्वर शान्त हो जाता है एवं भूख लगती है। यदि सन्निपात होजाय तो सहस्रपुटी अभ्रक १ रत्ती ३ माशे अदरख के रस में मिलाकर गर्म कर के देवे। अथवा मृतसञ्जीवनी वटी अष्टावशेष जल के साथ चार २ घंटे के बाद सेवन करावें इस से विशेष लाभ होता है। जब कि नाड़ी की गति बहुत मन्द होगई हो तब मल्लसिन्दूर अल्प मात्रा में देने से भी लाभ होता देखा गया है। किन्तु इसमें वैद्योंको जरा सावधानीके साथ काम लेना योग्य है। एवं रोगी की अवस्थापर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

रोगी के शिर के बाल बड़े हों तो कटवा कर निम्नलिखित घृत की मालिश करनी चाहिए। यथा—बादाम की मींग १ तोला, मुलैठी ३ माशे, केशर १ माशा, कपूर १ माशा और गौ का घी ५ तोला; इन सब को एकत्र कूट कर चौगुने जल में पकावे। जब पकते २ घृत मात्र शेष रह जाय तब शीतल होने पर सिर पर मले। अथवा काली मिर्च, सहिंजने के बीज, वायविडङ्ग और मरुवे के बीज; इन सब को समान भाग ले एकत्र पीस कर नस्य देवे। इस से भयानक ज्वर में तत्काल लाभ होता है और अमूल्य जीवन की रक्षा होती है। ये प्रयोग हमारे अनेक बार अनुभव किये हुए हैं।

पं० राजनारायण द्विवेदी वैद्य

पिंडरा बनारस।

वातव्याधि व अंग-पीड़ा पर

बनतुलसी के पत्ते १ छटांक, काली मिरच १ तोला और फिटकरी आधा तोला इन सब को एकत्र कर बकरी के दूध में दो बार भावना देवे। फिर दोबार गोमूत्र में भावना दे कर मटर की बराबर गोलियां बना लेवें। प्रति दिन एक २ गोली तीन २ घंटे के बाद गरम जल के साथ सेवन करे तो सर्वप्रकार की वातव्याधि और अङ्गों की पीड़ा दूर होती है। यदि चोट लगने के कारण या शीत, वात से शरीर में पीड़ा हो तो छः माशे फिटकरी को १ छटांक पानी में औटा कर मालिश करे।

मदन सीताराम वैद्य,

आज़मगढ़।

साधारण ज्वर पर अनुभूत प्रयोग।

काली मिर्चों के चूर्ण को कपड़छन कर तुलसी के पत्तों के रस में डाल कर ख़ूब अच्छे प्रकार खरल करके सुखा लेवे। इस प्रकार तुलसी के स्वरस की ७ भावना देकर मूँग की समान गोलियाँ बना लेवे। नित्यप्रति प्रातः मध्याह्न और सायङ्काल को दो २ गोली जल के साथ सेवन करने से साधारण ज्वर दूर होता है। यदि ज़ुकाम या खाँसी हो तो अदरक का रस १ तोला और शहद ६ माशे कुछ गरम कर के इस बटी के ऊपर सेवन करे। यह बालकों को अवस्थानुसार देनी चाहिए। इस से ज्वर और खाँसी में विशेष लाभ होता देखा गया है।

पं० रामप्रसाद मिश्र शर्म्मा वैद्य,
कलकत्ता।

—o—

रोगी की सेवा।

रोगीकी सेवा करना महान् पुण्य का संचय करना है। रोगी को कोमल और मीठी २ बातों से ढाढसबँधाना चाहिए। वैसे तो लोक सेवा के अनेक मार्ग हैं परन्तु रोगी की सेवा में कुछ विचित्र ही रहस्य है-अपूर्व आनन्द है-बड़ा पुण्य है। वर्तमान में हम देखते हैं कि इस ओर बहुत कम दृष्टि दी जाती है। इस हेतु ये निम्न लिखित सूचनाएं अवश्य ध्यान में रखने योग्य हैं।

१वायु संचालन—यह सदैव देखने में आया है कि हम लोग वायुके हलन चलनके विषयको भुला देते हैं। यह याद रखना चाहिए कि स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए शुद्ध वायु का सेवन महान् उपकारी है बुनरां हमारा जीवन ही शुद्ध वायु पर ही निर्भर है। अतः रोगी को ऐसी जगह लिटाना चाहिए जहां स्वच्छ वायु के आने में कोई रुकावट न हो।

२ रोशनी वायु के पश्चात् दूसरी क्रिया ध्यान में लाने योग्य यह है कि रोगी का स्थान ख़ूब रोशनी दार हो। धूप की रोशनी अवश्य पहुँचती रहे। नहीं तो "जहां रोशनी नहो पहुँचती वहां वैद्य पहुँचते हैं"।

३ टेम्परेचर- अथवा गर्मी और सर्दी की अवस्था को भी देखते रहना चाहिए। दिन रात के २४घंटों में रोगी की स्थिति के अनुसार ही सर्दी और गर्मी का विचार रखना आवश्यक है।

४ रोगी के घर की सजावट ज्यादा न होना चाहिए। बल्कि जो वस्तुएं रोगी और परिचारक को आवश्यक हों उन के अतिरिक्त अन्य वस्तुएं उस कमरे में न रखनी चाहिए।

५ भोजन—रोगी के भोजन का प्रश्न जरा विकट है। और इसी से रोगी के खान पान की होशियारी सेवकों द्वारा पूर्ण रूपसे नहीं हो सकती। गत इन्फ्लुएञ्जा प्रकोप के समय शतशः मनुष्यों का बलिदान इस भोजन की लापरवाही के कारण ही हो गया। अस्तुः रोगी और रोग के अवस्थानुसार ही भोजन का प्रबन्ध होना चाहिए।

६ सफ़ाई—की ओर विशेष ध्यान दिये बिना जो कुछ पहिले नियम (वायुसंचालन) से फायदा होता है वह मिट्टी में मिल जायगा। कारण कि आप ही विचार सकते हैं कि प्रत्येक घटे में इस कूड़े-मैले आदि द्वारा की क्षति को पूरा करने के लिए कितनी हवा खिड़की द्वारा अन्दर आसकेगी? इस के अतिरिक्त वैसे भी तो सफाई के अभाव में कितने ही दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। रोगी का स्थान सदैव स्वच्छ रहना चाहिए।

७ शांति—रोगी की कोठरी में पूर्ण शांति होना उचित है। इस से रोगी को स्वस्थ होने में विशेष सहायता मिलती है। इस से इस विषयका विशेष ध्यान रखना योग्य है।

८ बातें करना—रोगी के कमरे में बातूनी मित्र ही रोगी को महा हानिकारक होते हैं। इसलिए ऐसे मनुष्यों को रोगी के निकट कदापि न आने देना चाहिए। क्योंकि वे जो बातें करते हैं उनसे रोगी के मन की एकाग्रता भङ्ग होजाती है। और मन की एकाग्रता भङ्ग होते ही दुविधाएं आ घेरती हैं जोकि रोगी की स्वस्थता प्राप्ति में बाधक हैं।

शरीर पर मन का प्रभाव—यह तो सर्व मान्य ही है कि मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है अथवा मन की विकृतियों के अनुसार ही शरीर का सङ्गठन होता है। इस प्रकार रोगी के मन की दुविधा अथवा अन्य भारीपन रोगी को दुःख उपजाता है। और आरोग्यता प्राप्त होने में देरी होती है। इस कारण इस विषय में पूर्ण प्रयत्नशील रहना चाहिए कि जिससे रोगी को किसी प्रकार शंका उत्पन्न न होने पावे। यदि कोई हो भी तो उसके दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करना योग्य है। रोगी का मन सदैव एकाग्र अवस्था में रखना चाहिए। रोगी को मद

के काम धन्धों झगड़ों आदि से कभी भी दुखी न करना चाहिए बल्कि मीठी २ बातें कर ढाढ़स बधाये रखना चाहिए।

१० देख भ ल–रोगी की हर समय की अवस्था की देख भाल की आदत परिचारकों में बहुत कम देखी जाती है। और इसी कारण वे वैद्य के बहुत से प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ होते हैं। रोगी की अवस्था से ही अनेक रोगों को शांत करने का उपाय किया जा सकता है। रोगी की अवस्था की देख भाल से रोग-मुक्ति में विशेष सहायता मिलती है।

११ जब रोग का अन्त समय होजाता है तब ही रोगी को 'रोगमुक्त' अथवा 'स्वस्थ' कहते हैं। इस समय 'प्रकृति देवी' स्वतः ही उन क्षतियों को पूरा करने को तत्पर होती है जिन को रोगी रुग्णावस्था में खो बैठा है। परन्तु यह समय बहुत नाज़ुक है। इस लिए इस समय विशेष चैतन्य रहना चाहिए। क्योंकि इस समय परिचारकों की असावधानी से रोगी को फिर रोगग्रसित रहने की सम्भावना रहती है। अस्तु परिचारकों का कर्तव्य है कि वैद्य की आज्ञानुसार और वैद्य द्वारा निर्धारित किये नियमों का ही पालन करें जिससे रोगी को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

कामता प्रसाद वैद्य
मझौगंज (पटा)

—०—

सागूदाना।

सागू ताड़ की तरह का एक पेड़ होता है। इस का वैज्ञानिक नाम Metroxyllon Runphic है। यह पेड़ बहुधा १७-१८ हाथ ऊँचा होता है। देखने में सुपारी के पेड़, नारियल के पेड़ ताड़ के पेड़ की तरह लम्बा होता है। प्रशान्त महासागर (Pacific ocean) के मलक्कस फिलिपाइन आदि द्वीप पुंजोंमें इसकी जन्मभूमि है। नीची और गीली भूमि में लगाने से यह बहुत थोड़े समय में बढ़ने लगता है और ३० फुट या २० हाथ तक ऊँचा और बहुत मोटा भी होजाता है पन्द्रह वर्ष का हो जाने पर इस में जो सागूदाना बनता है वह सब से अच्छा होता है। सागू के पेड़ में फल लगते हैं। यदि यह फल पकने को छोड़ दें तो फिर उन पेड़ों में से सागू नहीं मिल सकता। क्योंकि फलदार सागू के पेड़ विशेषतः जिसके फल एक बार पक

जाते हैं—ऐसे पेड़ के भीतर का गूदा जल्दी नष्ट हो जाता है, और उसका तना (धड़) खोखला रह जाता है। फलके पक जाने पर पेड़ सूख जाता है। यूरोप में हरसाल बार्नियों के टापू से बहुत सागू की आमद होती है। पर वहां जितने सागू का खर्च है अकेला बोर्नियो उतना सागू नहीं भेज सकता। इस लिए यूरोप ही में सागू की खेती करने की चेष्टा हो रही है। सागू की तासीर ठंडी है और वह रोगी के लिए बहुत ही हलका और लाभदायक पथ्य है। बोर्नियो के रहने वाले सागू की रोटी और खीर पका कर खाते हैं। सागूदाना पेड़ के तने (धड़) के भीतर वाले गूदे से—मज्जा से तैयार होता है। पहले पेड़ काट कर लम्बा २ चीर लिया जाता है। फिर उसके भीतर का गूदा निकाल कर चूरा किया जाता है। इस चूर्ण को चलनी में छान कर पानी में घोलकर उसका मांड बना लेते हैं। यही मांड धूप में सुखाया जाने पर सागू दाना होजाता है। टापू के लोग इसी विधि से सागूदाना बनाकर देशान्तरों को भेजते हैं।

—o—

चीन की चिट्ठी।

वैद्यराज! चिरकाल के बाद आज वैद्य के दर्शन हुए। चित्त परम प्रसन्न हुआ।

चीन में आज कल घोर शीत पड़ रहा है। जापान से भी यहां कहीं अधिक शीत है। साइबेरिया की खूनी हवा अब चलने लगी है चीना लोग पोस्तीन पहिने इधर उधर काम काज करते फिरते हैं। चीना लोगों का स्वास्थ्य अच्छा है। इनके भोजन में मांस का, विशेष कर शूकर के मांस का भाग अधिक रहता है। बाज़ार में जहां देखो शूकर टंगे हुए हैं। गरीब अमीर, कुली, बाबू सब शूकर भक्षी हैं। यही नहीं कहीं कहीं तो बाज़ार में मेंढक, सांप, गिजाई, झींगर, आदि भी खाद्य पदार्थों में बिकते दखे हैं। चीना लोगों की इस प्रकार मांस-भक्षण में घोर प्रवृत्ति देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। कहां तो जगत् में अहिंसा धर्म्म की दुन्दुभी बजाने वाले बुद्ध भगवान् और कहाँ उनके अनुयायियों में इस प्रकार मांस भोजन का प्रचार!! इधर के चीनी लोग रोटी भी खाते हैं। इनके शाक बनाने की विधि हमारे जैसी है। चीनी शराब बहुत कम पीते हैं। पर जापानी घोर मद्यप हैं। मैंने अब तक एक भी चीना को शराब के नशे में मतवाला नहीं देखा। जापानी यहां भी शाम को घोर मद्यपान करके सड़कों पर गीत गाते फिरते हैं। चीनी

बुद्धिमान् और भले आदमी हैं। इनकी आदत हिन्दुस्तानियों से बहुत मिलती जुलती है। स्त्रियां विधवा होकर विवाह कदाचित् ही करती हैं। परपुरुष से बात चीत करना वे बहुत बुरा समझती हैं। मांस सब खाती हैं। मद्य बिलकुल नहीं पीतीं। पुरुष हृष्ट पुष्ट लंबे तड़ंगे हैं। स्त्रियां छोटी कोमलाङ्गी और सुकुमार हैं इन स्त्रियों से काम धंधा नहीं होसकता। अपने बनाव ठनाव से पति को प्रसन्न करना और उसकी खातिर करना ही इनका मुख्य काम है।

जापानी लोग हर बात में शक करते हैं और चालाकी को मुख्य अस्त्र वा साधन समझते हैं। चीनी दिल के साफ और बात के पक्के जान पड़ते हैं। इन में अभिमान नाम को नहीं है। दूरदर्शी हैं। मेरे परम मित्र डाक्टर सनयत्सन जो चीन के प्रथम प्रेसीडेंट हुए थे और जिन के मात्र उद्योग से चीन में रिपबलिक (प्रजातन्त्र प्रणाली) स्थापित हुई, अत्यन्त सज्जन और निरभिमान पुरुष हैं। इन के घर में सप्ताह में दो बार अवश्य जाता हूं। मेरे दूसरे मित्र मिस्टर होगशोयी हैं। जो कुछ काल हुआ चीन के प्रधान मन्त्री थे, अब भी मंत्री हैं। मैं जापान के भी शिष्ट पुरुषों से मिलता था और Prince Okuma मेरे मित्र थे। परन्तु इन चीन के महाशयों को देखकर मुझे मालूम होता है कि इनका विचार आदत आदि हिन्दुस्थानी है।

गत वर्ष जब चीन में प्लेग हुआ था तब चीनी लोगों ने चार मास में ही उद्योग करके उस को नष्ट कर दिया। चीन में अबतक पुरानी चिकित्सा प्रचलित है। शंघाई में सैंकड़ों दुकानें अत्तारों की हैं। मैंने यहां हरीतकी, इलायची, लवंग मुलकंद, कूप्पांट, वनफशा आदि का प्रयोग करते लोगों को देखा है। यहां देशी औषधियों की दुकानें बहुत ही साफ सुथरी हैं। किसी २ दुकान पर १०० मनुष्य तक दवा बेचते हैं। यह दवा यूनानी दवाओं के सदृश घास, पत्ती, बीज, आदि हैं। भारतवासी अपनी प्राचीन सभ्यता का घमंड ही करना जानते हैं पर उस को आधुनिक रीति पर लाना पाप समझते हैं। चीनी भी महाकट्टर हैं तो भी सफाई, आदि में यूरप की नकल करते हैं।

चीनी डाक्टर प्राय अमेरिका के Medical विश्वविद्यालय के ग्रेजुयेट हैं। पर अभी यहां डाक्टरी का प्रचार नहीं के बराबर है। चीना लोग ३ बार भोजन करते हैं। गरीब अमीर सब लकड़ियों से खाते हैं। हाथ से खाना महा बुरा समझते हैं। सब के खाने का एक ही समय है। दिन के १२ बजे से १ बजे तक जहां देखो चीनी मेज़ों के

पास बैठे प्याले में से उठा उठाकर खारहे हैं। गरीब से गरीब भी तीन तरह के शाक अवश्य खाता है। पानी कोई नहीं पीता। दिनरात बिना दूध मीठे की चाय पीते हैं।

गांव गांव में चायघर हैं। जहां शाम को बालवृद्ध सब जाकर चा पीते हैं और इधर उधर की गप्प शप हांकते हैं। चा के साथ तरबूज के बीज खाते जाते हैं। तीन पैसा देकर एक आदमी चाघर में दो तीन घंटे बैठकर यारों के साथ गप्पें लड़ा सकता है। स्त्रियां चाघर में नहीं जातीं और शराब भी नहीं पीती हैं।

यहां चा अनेक प्रकार की होती है। ३) सेरसे लेकर २००) सेर तक की चा मैंने पी है। यहां से चा रूस, बाराबुखारा, तुर्किस्तान आदि देशों में जाती है। चीनी लोग चा को बहुत अच्छा समझते हैं और जब घोर गरमी पड़ती है तब भी चा पीते हैं।

जापान का जल वायु चीन के उत्तरीय भाग के जल वायु से अच्छा है। चीन में मलेरिया बहुत कम है। कालरा भी नहीं सुना पर पेट के रोग विशेष कर देखने में आते हैं। यह लोग घृत और दुग्ध को देखनाभी पसन्द नहीं करते खानातो दूर रहा। शाक को प्रायःसरसों के तैल में सिद्ध करते हैं या शूकर की चरबी में भूनते हैं। चीनी खाने के बड़े शौकीन हैं। पनामा प्रदर्शनी में इन्होंने कई हजार किस्म के भोजन बनाकर दिखाये थे और प्रथमश्रेणी का सम्मानपत्र प्राप्तकिया था। जापानी भोजन कच्चा और कमजोर होताहै। स्वाद में अच्छा नहीं पर देखने में बड़ा सुन्दर होता है। चीनी मिठाई भी खाते हैं। मैंने यह गुंजियां, तिकौने, मीठी रोटी, आदि बिकती देखी हैं। चीनी लोग जब मिल कर खाना खाते हैं तो दो एक सुंदर स्त्रियां गान सुनाती रहती हैं।

यहां करेला, बैंगन, काली तुरई, रामतुरई, भिंडी, पीला कद्दू, मूली, पालक आदि सब शाक होते हैं। फलों में केला, अंगूर, नाशपाती, अनार, सेब आदि सस्ते और मीठे होते हैं। आम मनीला से आता है, तरबूज बड़ा स्वादु होता है। खरबूजा नहीं देखा। कसेरू की भरमार है और नारंगी विश्व में यहां से मीठी नहीं होती।

वैद्यका पुराना प्रेमी प्रवासी

हरिप्रसाद शास्त्री,

सहकारी, सम्पादक मिलार्डसरिव्यू, शंगहाई (चीन)

दातव्य-चिकित्सालय।

अपने परमपूज्य, प्रातःस्मरणीय, धर्मप्राण गोलोकवासी पिता श्री के स्मारकमें, चतुर्थ पञ्चम पीठाधीश्वर, गोस्वामिकुलतिलक श्री १०८ गोस्वामि श्रीमद्व्रजवल्लभाचार्य्यजी महाराज द्वारा संस्थापित यह "श्रीदेवकीनन्दनाचार्य चिकित्सालय" देशवासी दीन हीन रोगियों की सेवा में जिस तत्परता के साथ भाग ले रहा है; इस की वर्तमान कार्य-प्रणाली को देखकर यह दृढ़ आशा होती है कि, एक दिन यह चिकित्सालय देशप्रसिद्ध एक परोपकारिणी संस्था का रूप धारण कर लेगा।

प्रथम तो यह स्थान ही आरोग्यलाभ का एक अद्वितीय साधन है। यह स्थान भरतपुर राज्य में वैष्णवों के सुप्रसिद्ध कामवन नामक तीर्थ से छः मील पूर्व की ओर, आस पास की तीन मनोहर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। पूज्यपाद, गोलोकवासी आचार्य्यश्री का रक्खा हुआ इस स्थान का 'आनन्दाद्रि' नाम बहुत ही उपयुक्त है और सम्प्रति यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। यहां का जल वायु भी रोगियों के लिए बहुत ही उपयोगी एवं स्वास्थवर्द्धक है।

यह चिकित्सालय पांच वर्ष से स्थापित है और व्रजमंडल के आस पास के ग्रामों के अतिरिक्त भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के ग़रीब एव अमीर रोगियों को निःसंकोच भाव से रोगमुक्त करने में प्रवृत्त है।

जो बीमार यहां रह कर चिकित्सा कराना चाहते हैं उन को आराम पहुंचाने का सब प्रबन्ध उत्तम रीति से किया गया है। उन के रहने के लिए 'आतुरालय' भी चिकित्सालय के निकट ही बना हुआ है। जो बीमार अनाथ होते हैं उन के लिए भोजन वस्त्रादि भी दिये जाते हैं।

जो बीमार दूर देशनिवासी हैं वे यदि अपने रोग की दशा स्पष्ट रूप से लिख भेजते हैं तो उन को उचित औषधि भी भेज दी जाती है, किन्तु उन से औषधि का डाकव्ययमात्र ले लिया जाता है।

इस चिकित्सालय की एक शाखा वैष्णवों के जगत्प्रसिद्ध तीर्थ, गोकुल, जिला मथुरा में इसी विजयादशमी से स्थापित हुई है। जो कि, वहां पर आए हुये दूर २ के यात्रियों, एवं सर्वसाधारण की सेवा में दत्तचित्त है।

इस चिकित्सालय में परम पवित्र आयुर्वेदीय औषधियों द्वारा चिकित्सा की जाती है। आयुर्वेदीय औषधियों के शीघ्र गुणकारी होने के विषय में अधिक लिखना बाहुल्यमात्र है। अस्तु, आज तक चिकित्सालय को अपने उद्देश्यसिद्धि में जितनी सफलता हुई है उसे सोच कर आशातीत सन्तोष होता है।

इस प्रकार की दीनहितकारिणी संस्थाएं भारत में इनी गिनी हैं और शत शत नर नारी ऐसी संस्थाओं की खोज में दिन रात रहा करते हैं। अस्तु आयुर्वेदीय औषधियों से प्रेम रखने वाले मनुष्य-मात्र को इस से लाभ उठाना चाहिए।

विजयमूर्ति।

आयुर्वेदिक पाठशाला।

इस पाठशाला का पाठयक्रम वही है जो आयुर्वेद महामण्डल का है। इस में आयुर्वेद विशारद और आयुर्वेदाचार्य के लिएही विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकेंगे। औषध निर्माण और चिकित्सा पद्धति का ज्ञान रस शाला और चिकित्सालय द्वारा कराया जायगा। रहने के स्थान के सिवाय हम विद्यार्थियों का अन्य प्रबन्ध न कर सकेंगे। पाठशाला का कार्य चैत्र से प्रारम्भ कर दिया जायगा। इस वर्ष हम २० विद्यार्थी तक ले सकेंगे। प्रार्थनापत्र शीघ्र नाम, पूरा पता और योग्यता के सहित आने चाहिए।

प्रबन्ध कर्ता रामचन्द्र शर्म्मा वैद्यराज, रस शाला, बनखल, जि० सहारनपुर

विविध-विषय।

डाक्टरी महा सभामें आयुर्वेद की चर्चा-डाक्टरों की महा-सभा का दूसरा व र्षिकोत्सव कांग्रेस के समय देहली में हुआ था। सभा के अध्यक्ष थे कलकत्ते के निरयात डाक्टर सर नील रतन सरकार और स्वागत सभा के अध्यक्ष थे डाक्टर जे० के० सेन महोदय। दोनों महाशयों ने अपने अपने भाषणों में आयुर्वेद के प्रति विशेष सहानुभूति दिखाई। डाक्टर जे० के० सेन ने कहा कि "अबतक पाश्चात्य डाक्टर और पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र को अध्ययन करने वाले आयुर्वेद की अवज्ञा करते आये हैं परंतु ऐसा नहीं होना चाहिए। भारत के कुछ मेडिकल कालिजोंमें आयुर्वेदीय शिक्षा के अध्यापक नियुक्त करके भारत सरकार को इस देश की चिकित्सा शिक्षा की सुविधा

करदेनी चाहिए।" सरशारनिमहदए ने भी अपने भाषण में इस विषय का समर्थन करते हुए कहा कि "आयुर्वेदीय चिकित्सा के संबंध में एक व्यवस्था शीघ्र ही कर लेनी चाहिए। हमारे पाठ्य विषयों में देशी चिकित्सा पद्धति के कई विषय सन्निविष्ट करने से वे सहज ही साधित होसकते हैं। भारतीय चिकित्सा विज्ञान के लिए स्वतंत्र अध्यापक नियुक्त करने चाहिएं। वैज्ञानिक पद्धति के क्रम से इस देश की औषधियों के संबंध में गवेषणा करने के लिए एक फार्माकोपिया समिति प्रतिष्ठित करनी चाहिए। यह समिति बृटिश फार्माकोपिया की तरह एक इंडियन फार्माकोपिया का संकलन करेगी। यदि ऐसा न किया जायगा तो आयुर्वेद को ही नहीं किंतु हमारे व्यवसाय को भी भारी हानि पहुंचेगी।

कांग्रेस और देशी चिकित्सा—यह देखकर हर्ष होता है कि अब कांग्रेस में भी आयुर्वेद की कुछ २ चर्चा होने लगी है। गतवर्ष श्रीमती एनी बेसेन्ट ने कहा था कि देशी चिकित्सा द्वारा देश का बड़ा उपकार होता है इस लिए देशी चिकित्सा को सरकार की तरफ से विशेष सहायता मिलनी चाहिए। अब की बार देहली कांग्रेस में भी देशी चिकित्सा के सम्बन्ध में दो प्रस्ताव पास हुए हैं। उन में पहला यह था कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा का प्रभाव इस देश में प्रबल रूप से है। इसलिये यह कांग्रेस गवर्नमेंन्ट से विशेष अनुरोध करती है कि पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली के लिए गवर्नमेंन्ट ने जो अ सुयोग कर दिये हैं वे सब इन दोनों चिकित्साओं (आयुर्वेद और यूनानी) के लिए भी कर देने चाहिएं।

तिब्बी एण्ड वैद्यक कान्फ्रेंस—अब की बार भारत के यूनानी तबीबों और वैद्यों की सम्मिलित महा सभा का नवमां वार्षिकोत्सव २१-२२ और २३ फरवरी को हाजीकुलमुल्क हकीम अजमल खां की अध्यक्षता में करांची में बड़े ठाट बाट के साथ होगया। खूब ज़ोर दार भाषण हुए और कई मार्के के प्रस्ताव पास हुए।

पट्टनगर जैन धर्मार्थ औषधालय—उक्त औषधालयके संबंध में हम पत्र में पहले एक दो बार लिख चुके हैं। इस में प्रतिदिन सैंकड़ों रोगियों को विना मूल्य औषधियां वितरण की जातीं और बाहर भेजी जाती हैं। गत इनफ्लूएन्ज़ा ज्वर के भयंकर प्रकोप के समय भी इस औषधालय के द्वारा हज़ारों रोगियों को लाभ पहुंचा है। अभी

थोड़े दिन हुए हमने सुना था कि उक्त औषधालय की सहायतार्थ इंदौर के दानवीर सेठ सर हुकुमचन्दजी ने डेढ़लाख रुपये निकाले हैं। अवश्य ही यह समाचार बड़ा आनंदजनक था। पर पीछे मालूम हुआ कि वह रुपये औषधालय के लिए नहीं बल्कि सेठ जी उक्त रुपये से इंदौर में एक अस्पताल खुलवाना चाहते हैं। हम आशा करते हैं कि सेठ साहब इस परोपकारिणी संस्था को अमर बनाने के लिए भी कोई भारी रकम शीघ्र ही प्रदान करने की उदारता दिखायेंगे।

युक्त प्रांतीय वैद्य सम्मेलन—युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का प्रथमाधिवेशन कानपुर में सानंद होगया। उस का विस्तृत विवरण वैद्य में प्रकाशित होचुका है। आगामी सम्मेलन हरदोई में होगा। हम आशा करते हैं कि हरदोई प्रांत का वैद्यमंडल पूर्ण उत्साह से कार्य करने में अग्रसर होगा।

हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद— हिन्दू विश्वविद्यालय में शीघ्र ही एक आयुर्वेदिक कालेज और भैषज्य उद्यान खोला जायगा। कलकत्ते के एक दानवीर मारवाड़ी ने आयुर्वेद के पुनरुद्धार के लिए एक लाख रुपये प्रदान किये हैं।

मुरादाबाद में आयुर्वेद विद्यापीठ परीक्षा का केन्द्र— आनंद का विषय है कि इस वर्ष से मुरादाबाद में भी आयुर्वेद विद्यापीठ का परीक्षा केन्द्र स्थापित होगया है।

इनफ्लुयेन्ज़ा की चिकित्सा—इंग्लैंड के एक डाक्टर ने इनफ्लुयेन्ज़ा ज्वर में ताप और धूप के द्वारा रोगी का पसीना निकलवा कर बहुत से मनुष्यों को आरोग्य किया है।

शास्त्रीजी का पत्र—श्रीयुक्त मि० हरि-"पं० हरिप्रसादजी शास्त्री" को वैद्य के बहुत से पाठक जानते हैं। आपके अनंत जीवन पर वैद्य में पहले कितने ही लेख प्रकाशित होचुके हैं। इधर कई वर्ष से आप जापान में प्रवास कर रहे थे आज कल आप जापान से चीन में चले गये हैं और वहाँ संघाई शहर में निवास करते हैं। संघाई से कृपा करके आपने एक पत्र वैद्य में छपने के लिए भेजा है, जो कि 'चीन की चिट्ठी' के नाम से आप के अनुरोध से ज्यों का त्यों इसी संख्या में प्रकाशित कर दिया गया है। आशा है कि इससे पाठकों का कुछ मनोरञ्जन होगा।

नक्कालों से सावधान रहिये।

यह सरकार से रजिष्ट्री की हुई एक स्वादिष्ट सुगन्धित दवा है। केवल पानी में डालकर पीने ही से कफ, खाँसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार बालकों के हरे पीले दस्त कै करना, दूध पटक देना आदि रोगों को एक ही खुराक में फायदा दिखाती है। कीमत फी शीशी॥) डाकखर्च १से ३तक=)

बिना किसी जलन और तकलीफ के दाद को जड़ से खोनेवाली यही दवा है। कीमत फी शीशी।) १२ लेने से २॥) में घर बैठे देंगे।

यदि आप को दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा ताजा और तन्दुरुस्त बनाना है तो हमारी इस जायकेदार दवा को मँगाकर पिलाइये। कीमत फी शीशी ॥) डाकखर्च।=)

पूरा हाल जानने के लिये चार धाम का चित्र सहित सूचीपत्र मुफ्त मँगाकर देखिये।

मँगाने का पता—

सुखसंचारक कम्पनी—मथुरा

उपरोक्त दवाएं-वैद्य आफिस मुरादाबाद में भी मिलती हैं।

आयुर्वेदोद्धारक औषधालय की परीक्षित औषधियां।

सर्व प्रकार के रक्तविकारों पर

अमृतसंजीवनी वटिका

इसको सेवन करने से सब प्रकार की खुजली, दाद, चकत्ते, रुधिर विकार, वातरक्त उपदंश (आतशक, गर्मी) अंगोंका भंग होना शरीर में छिद्रों का होना, नाक का टेढ़ा पड़जाना, हाथ पावों का पसीजना त्वचा के रोग कोढ़ शरीर का फूटना, पारे के विकार और सब प्रकार के दुष्ट घाव आराम होते हैं। नवीन रुधिर उत्पन्न होता है। मुखपर कांति और शरीर में फुर्ती उत्पन्न होती है। वर्ण उज्वल होता है। मू० १) डिब्बी। डा० म०।)

सर्व प्रकार के ज्वरों पर।

अजयावटिका

यह गोली सब प्रकार के नये पुराने ज्वरों को दूर करती है। जिन लोगोंको कोनेन माफिक नहीं पड़ती उनके लिये यह बहुत अच्छी है इन से मलेरिया, विषमज्वर, एकतराजारी, चौथिया, सर्दीलगकरआनेवाला ज्वर आदि और यकृत् युक्तज्वर शीघ्रदूरहोतेहैं मू०१) रु०शी०डा म०।)

महालाक्षादि तैल

जीर्ण ज्वर की प्रसिद्ध औषध है। इसको व्यवहार करने से बहुत दिनोंका पुराना ज्वर, ज्वर की दाह राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास हड्डी और सन्धियों की पीड़ा, शरीर का टूटना, खुजली, और असमर्थता दूर होती है तथा वायु और कफ के रोग, पसली का शूल, कमर व पीठ की पीड़ा, घुटना का दर्द, शिर का दर्द, शरीर का कांपना, मृगी मूर्छा पागलपना, भ्रम और प्रसूतरोग मे यह अत्यन्त हितकारी है। मूल्य २० तोले की शीशी २) रुपया डाक महसूल ।।=)

योगवाही वटिका

इसको सेवन करने से ज्वर, खांसी श्वास, अरुचि, अजीर्ण भूख, का न लगना, भोजन का अच्छे प्रकार न पचना, शिरका घूमना, आलस्य नींद का नहीं आना दिमाग की खुश्की प्लीहा यकृत पांडु कामला, बवासीर पथरा प्रमेह प्रतिश्याय और प्रसूता स्त्रियों के इत्यादि रोग नष्ट होते हैं यह गोली चढ़े बुखार को उतारती हैं और आने वाले ज्वर को रोकती हैं। बच्चे वृद्ध स्त्री सब ही को परमोपयोगी है। मू० ४० गोली की शीशी १) रु०डा० म०।)

❀ क्षुधाप्रदीपिनी वटी ❀

इनको सेवन करने से सबप्रकार की मंदाग्नि और अजीर्णतत्काल शांत होजाता है। तथा जठराग्निदीपन होकर क्षुधा बढ़ती है। किया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है। एवं अम्लपित्त, खट्टी डकारोंका आना, भोजनका अच्छेप्रकार नहीं पचना, अफारा, पेटमें गड़गड़शब्दका होना, मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, सबप्रकार की उदरकी पीड़ा नाभिशूल, दस्त और के का होना, संग्रहणी, अतिसार, हैजा और प्लीहा आदिरोग नष्ट होते हैं। दस्त खुल कर आता है। मूल्य १) रु० डिब्बी डा० म० ।)

❀ च्यवनप्राशावलेह ❀

यह राजयक्ष्मा और जीर्णज्वरकी प्रसिद्ध औषधि है। इससे स्त्री, पुरुषों के धातुदोष, क्षय, खांसी, श्वास, ज्वर आदि रोग दूर होकर शरीर में अपूर्व बल और तरुणता उत्पन्न होती है। दो सप्ताह सेवन करने योग्य का दाम २) डा० म० ।=) आ० ।

❀ चन्दनादि तैल ❀

यह तैल जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास शरीरका सूखना, बेहोशी पागलपन, दिमाग की कमजोरी, घबराहट, खुश्की, खुजली, दाह, चकत्ते, फुंसियें, शिरदर्द, सूजन और रक्त पित्तादि रोगों को दूर करके शरीर में अपूर्व बल और फुर्ती उत्पन्न करता है। मू० २) रु० शीशी डा० म० ॥=)

❀ ब्राह्मी घृत ❀

(मृगी और उन्माद की परीक्षित औषधि)

इस घृतको सेवन करने से सब प्रकार के मानसिक रोग दूर होकर चित्त यथा अवस्थामें स्थित होता है। तथामृगी, पागलपन, बुद्धि की मंदता, भ्रम, मोह, मूर्च्छा और संन्यास प्रभृति समस्त रोग दूर होते हैं। नशीले पदार्थों के सेवन करने से जिन मनुष्योंकी बुद्धि और स्मरण शक्ति मन्द होगई है उनके लिये यह परमोपयोगी औषधि है। मू० १॥) रुपया शीशी डा० म० ।=)।

❀ योगराजगूगल ❀

योगराजगूगल आमवात रोगकी प्रसिद्ध औषधि है। इसको सेवन करने से सन्धिवात (शरीर के समस्त जोड़ों की पीड़ा) आमवात, (गांठ, कमर व पीठकी पीड़ा) पसली कंधों का दर्द तथा सब प्रकार की वायुकी पीड़ा दूर होती है। मू० १) रु० डि० । डा० म० ।)

प्रमेहचिंतामणि ।

इसको सेवन करने से नया, पुराना, प्रमेह, पीवके साथ धातु का गिरना, रुधिर का निकलना, लाल पेशाब का आना, चिनक से पेशाब का उतरना, सोजाक, पथरी, स्वप्नदोष, मूत्रनाली में घाव का होना, वस्त्र में दाग का लगना, पेशाब का कम आना पेशाब से पहिले या पीछे वीर्य्य का गिरना और खड़िया की समान पेशाब का होना इत्यादि समस्त विकार दूर होते हैं। मू० १) रु० शीशी। डा० म०। आना।

बवासीर की दवा।

इसको सेवन करनेसे सब प्रकारकी खूनी बादीबवासीर और उस के उपद्रव राधऔररुधिरका निकलना, कोष्ठबद्धता, दुर्बलता औरशारीरिक एवं मानसिक समस्तक्लेश दूर होते हैं। मूल्य ॥।)आ०डिब्बी डा०म०।)

❀ उपदंशनाशकघृत ❀

इस दवाको सेवन करने से आतशक-गर्मी और उसके विकार, पारे के दोष और वातरक्त यह सब शीघ्र दूर होजाते हैं। इससे न कय होताहै न दस्त आते हैं और न मुंह आना है। मूल्य १) रु० शीशी डा० म० ।)

नयनचंद्रोदय-अंजन ।

यह अंजन धुन्ध, जाला,फूला मोतियाबिन्दु खुजली, रतौंधा,आंखों का कटना, लाली, नजला इत्यादि नेत्रों के समस्तरोग दूर करके रोशनी को बढ़ाता है। मूल्य २) तोला। डा० म०।)

नेत्रामृत ।

इसको आंखों में डालने से आंखका दुखना, लाली,खुजली सूजन खड़क, चिपकना, कटना और नेत्रों की घोर पीड़ा दूर होती है। मू०॥) शीशी। डा० म० १ से ३ तक।) आना।

एलादिवटिका ।

यह गोली प्रत्येक मनुष्यको अपने पास रखनी चाहियेइनको सेवन करने से हैजा, बदहजमी पेट का दर्द, शूल कय दस्तों का होना तथा सब प्रकार को अजीर्ण दूर होता है। मू० १) रु० डिब्बी। डा०म०।)

पता-वैद्यशंकरलाल हरिशंकर

आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय, मुरादाबाद।

आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय ।

१०) रु० से अधिक की औषधियां एक साथ खरीदने से

२०) रु० सैकड़ा कमीशन दिया जाता है ।

चन्द्रोदयमकर०ध्वजमू०फीतोला		२४)
रससिंदूर	,,	४)
स्वर्णमालिनीवसंत	,,	२४)
लघुमालिनीवसंत	,,	४)

भस्में ।

अभ्रकभस्मसहस्रपुटित	,,	२४)
अभ्रकभस्म शत पुटित	,,	५)
अभ्रकभस्म दशपुटित	,,	२)
रौप्यभस्म	,,	८)
कांत लोहभस्म	,,	१०)
लोह भस्म नं० १	,,	४)
लोह भस्म नं० २	,,	२)
मंडूर भस्म	,,	१)
हरिताल भस्म (तबकी)	,,	१०)
गोदन्ती हरिताल भस्म	,,	॥)
ताम्र भस्म	,,	१)
सीसक भस्म(नागरस)	,	१)
रांग (बंग) भस्म	,,	१)
सुवर्ण माक्षिक भस्म	,,	६)
यशद भस्म	,,	॥)
खर्पर भस्म	,,	१)
प्रवाल (मूँगा) भस्म	,,	१)
मौक्तिक भस्म	,,	३०)
कपर्दिक भस्म	,,	।)
शंख भस्म	,,	।)
शुक्ति (मोती की सीप) भस्म		॥)

शोधितद्रव्य।

शोधित पारा	फी तोला	॥)
सिंगरफ से निकाला हुआ पारा		१)
शोधित मैनशिल	,,	।)
शोधित गंधक	,,	।)
शोधित शिलाजीत	,,	१)
शोधित हिंगुल	,,	॥)
शोधित हरिताल	,,	।)
पारे और गंधक की कज्जली		१)
उत्तम केशर	,,	१)

आसव अरिष्ट ।

द्राक्षासव	फीशीशी	१)
लोहासव	,,	१)
दशमूलासव	,,	१)
कुमार्यासव	,,	१)

औषधियों के तैल ।

बिरोजे का तेल फी तोला		।-)
चन्दन का तेल	,,	॥)
बादाम का तेल	,,	।)
मग्ज़कद्दू का तेल	,,	।)
नीम का तेल	फी सेर	२)

आमले का तेल	,,	२)
मेंहदी का तेल	,,	५)
दारचीनी का तेल फी शीशी		॥)
इलायची का तेल	,,	।)
पीपरमेंट का तेल	,,	॥)
कपूर का अर्क	,,	।≈)
धनिये का तेल	फी सेर	५)

वनौषधियें।

शिवलिंगी बीज	फी तोला	१)
ब्राह्मीपत्र	फी सेर	४)
शंखपुष्पी (पंडवाड़)	,,	४)
साधारण भांगरा	,,	१)
चिरचिटा (ओंगा)	,,	१)
सफेद कनेर	,,	४)
दुद्धी	,,	१)
अधाहुली	,,	१)
हिरनखुरी	,,	२)
अम्लवण्डी	,,	॥)
जलनीम	,,	१)
बंदाल	,,	१)
नील	,,	१)
करञ्ज बीज	,,	॥)
गूमा	,,	१)
सालपर्णी	,,	२॥)
पृष्ठपर्णी	,,	२॥)
थुहर	,,	२)
रास्ना	,,	१)
पियाबांसा	,,	१)
कुडा	,,	१)
नागरमोथा	,,	१)
चौलाई	,,	॥)
काले धतूरे के बीज फी तोला		२)
अग्नि मथ (अरणी) फी सेर		१)
कुम्भेर	,,	२)
पाढर	,,	२)
कटेरी	,,	॥)
बड़ी कटेरी	,,	२)
श्योनाक (अरलू)	,,	२)
विधारा	,,	२)
सतावर	,,	२)
असगंध	,,	२)
सेमल की मूसली	,,	१)
सफेद मूसली	,,	१२)
सालम मिश्री	फी तोला	।)
तालमखाना	फी सेर	२)
सकाकुल मिश्री	,,	६)
पुनर्नवा	,,	१)
निर्विषी (पंचांग)	,,	१)
निर्विषी कन्द	फी तोला	॥)
दशमूल	फी सेर	२)
बिदारीकंद	,,	४)
वाराहीकंद	,,	४)
खिरेंटी	,,	॥)
कंघी	,,	॥)
सहदेई	,,	१)
विष्णुक्रांता	,,	२)
पातालगरुड़ी	,,	४)
दन्ती	,,	४)
प्रियंग	फी तोला	।)
रेणुका	फी सेर	४)
अर्जुन की छाल	,,	२)
बरुणछाल	,,	२)
अनन्तमूल	,,	३)
उलवा	,,	१०)
बासा (अडूसा)	,,	१)
निर्मली बीज	फी तोला	।)
त्रिफला	फी सेर	॥)

इन के सिवा आर्डर आनेपर और वनौषधियें भी भेजी जासकती हैं।

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिकपत्र

सम्पादक शंकरलाल वैद्य

वर्ष ७ } मुरादाबाद मार्च, अप्रैल १९१९ { संख्या ३-४

विषय-सूची ।

प्रकाशक-हरिशङ्कर, वैद्य मुरादाबाद ।

वार्षिक मूल्य १।)

Printed by Kailasachandra
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD.

* वैद्य के नियम *

(१) यह पत्र प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) इस का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १1) रु० है।

(३) नमूने का केवल एक अंक भेजा जाता है। दूसरा विना ग्राहक होने की सूचना मिले नहीं भेजा जाता। नमूने में कोई सा अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) जो महाशय इस में छपने के लिए वैद्यक विषयक लेख, कविता अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) ग्राहकों को अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखना चाहिए जिस से उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) हमारे यहां से सब ग्राहकों के पास वैद्य,जाँच करभेजा जाता है। तो भी बहुत से ग्राहक किसी २ अंक के न पहुंचने की शिकायत किया करते हैं, इस का कारण रास्ते की असावधानी ही हो सकता है। जिन महाशयों को जो अंक न मिले वह दूसरे अंक के पहुंचते ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्व प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस,मुरादाबाद के पते पर भेजने चाहिएँ।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ७ } मुरादाबाद मार्च अप्रैल १९१८ { संख्या ३-४

नेता चाहिये ।

[१]

उच्च आत्मा प्राप्त तात ! परमात्म दुलारे !
दुखभंजन हैं आप हमारे नेता प्यारे ॥
सामाजिक त्रुटि और राजनैतिक दुखहारी ।
पूजा श्रद्धा सहित इसी से करें तुम्हारी ॥

[२]

किन्तु निवेदन एक कृपानिधि ! कोप न करना ।
यदि हो सच्ची बात ध्यान टुक उसपर धरना ॥
भारतवासी लोग स्वास्थ्य से निपट अनारी ।
डारी देह पजार-वीर्य्य की बात बिगारी ॥

[३]

कितनी है अल्पायु ! और वह भी दुखदाई !
क्या भोगेंगे भोग सुधारक साधन पाई ? ॥
देख सकेंगे दृश्य भला कैसे बाहर का ?
बिगड़ रहा है ढंग हमारे तन के घर का ?

[४]

अब तक दृष्टि पसार न रोगी-कुल देखा है ।
हाय ! आपने कभी न अपना तन देखा है ॥
कितने नेता बिना समय-चेत चिय बताओ !
कैसा है नेतृत्व जरा तो दृष्टि फिराओ ॥

[५]

प्राण दान दो तात और फिर पीछे देना ।
पाकर के आरोग्य-लाभ लेंगे जो लेना ॥
देंगे तुम्हें सहाय अगर होंगे आरोगी ।
मान रहे हैं आप हमें कुछ भी उपयोगी ॥

[६]

पात-पात पर जाय न पानी दीजे दाता ।
इधर देखिये, हाय ! मूल जा रहा सुखाता !
आप हुए मर्मज्ञ और सच्चे बुध बेता ।
कृपया बनिये स्वास्थ्य विधायक भावी नेता ॥

× – • 'नयन'

सब रोगों का आदिमूल अजीर्ण ।

(नैचरोपैथिक मत से)

रोग चाहे सबल हो या सहज, एक ही हो या अनेक, प्राय सभी रोग अजीर्ण के कारण होते हैं। यहां तक कि आकस्मिक रोग, शोकजनित रोग और फोड़े-फुन्सी घाव आदि रोग भी अजीर्णता से प्रबल होते हैं। रोग के चिह्न प्रकट होते ही, परिपाक क्रिया शिथिल पड़ने लगती है और अजीर्ण होजाता है। इसके बाद अजीर्ण ही रोग का आधार बन जाता है। बुद्धिमान चिकित्सक हमेशा रोगका निदान अजीर्ण को लक्ष करके किया करते हैं। यदि रोगों की सारी आत्म कहानी सुनी जाय, और फिर उस पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि अनेक रोग अजीर्णता के कारण, कई अजीर्ण के रूपांतरमात्र कई एक अजीर्ण से सहायता पाकर और कुछ रोग अजीर्णता के आधार पर पैदा होते हैं। इसीलिये, समस्त रोगों का आदि कारण अजीर्ण ही है। खाद्यपदार्थों के हजम न होने से जीवनीशक्ति कमजोर पड़जाती है और जब जीवनी-शक्ति ही दुर्बल होती जाती है तो रोग आराम कौन करेगा ? जीवनी-शक्ति में स्फूर्ति और उन्मेष उत्पन्न करना ही समस्त निदान-फिलासफी का मूल-मन्त्र है। क्योंकि हजम न होने से, रोग दूर होना तो एक ओर रहा किंतु वह क्रमशः बढ़ता ही जाता है। जब अजीर्ण ही रोगों का कारण है, तब हमारा ध्यान अजीर्णको उत्पन्न ही न होने देनेकी बात स्थिर करता है। जिस कारण से कष्ट होता है उस कारण को दूर कर देना ही बुद्धिमानी है। अजीर्ण

पैदा होने के कारण तो कितने ही हैं, किन्तु मुख्य कारण चार हैं। हम उन कारणों पर क्रमशः विचार करते हैं।

चर्व्य खाद्य को बिना चर्वण किये उदरस्थ कर लेना, अजीर्ण का मुख्य कारण है। दांतों द्वारा, प्रत्येक ग्रास को इतना चबाना उचित है, कि जिससे उस में स्थूल कण शेष न रहें, वरन् मक्खन की तरह मलायम हो जावें। मुख की राल और पाकस्थली का पाचक रस, उस ग्रास को स्वाद हीन बना देते हैं। जब ग्रास अत्यंत मुलायम और स्वाद-हीन हो जावे तब उसको निगलना उचित है। ग्रास को कितनी बार चबाया जाय ? यह बात अंकों द्वारा स्थिर नहीं की जा सकती। खाद्य पदार्थ की कठिनता और सरलता पर चर्वण क्रिया अवलम्बित है। गेंहु की रोटी, उर्द की दाल और पूरी जैसे खाद्य, लगभग ५०-६० बार चबाने से, निगलनेके योग्य होते हैं। कचौड़ी जैसे खाद्य और भी अधिक चबाये जाने उचित हैं। यदि कोई मनुष्य कुछ अधिक खाने वाला हो तो, उसको सुबह का भोजन दोपहर और रात्रि का भोजन,एक पहर रात्रि पर्य्यंत समाप्त करना चाहिये। किन्तु इस समय ऐसा नहीं हो सकता, पर अच्छी तरह न चबाने से भी कुशल दृष्टि नहीं पड़ती। कम चबाना और अजीर्ण को बुलाना या रोगों को निमन्त्रण देना एक ही बात है। स्वाभाविक खाद्य-फल मूल और उद्भिद आदि दस-पन्द्रह बार के चबाने ही से उदरस्थ करने के योग्य हो जाते हैं। जब स्वाभाविक खाद्य खाया जाता था जब इस आधुनिक समय कैसे गरिष्ठ और कठोर किन्तु सुस्वादु खाद्यों की उपज न थी,तब चर्वण किया रीतिमत सरलतापूर्व्वक होती थी और अजीर्णता की भरमार न थी।

भोजन करते समय पानी पीना, अजीर्ण उत्पादक दूसरा कारण है। जब तक मुखकी लार और पाकस्थली के रस से ग्रास सिंचित न होगा,तब तक वह पचाये जाने के योग्य नहीं होता। बीच २ में पानी पीने से उस लार और रस की आमद रफ्त भ्रष्ट होजाती है, एवं उन का धर्म और पाकस्थली कमजोर पड़ जाती है। खाना खाते समय पानी की एक बूंद पीना भी अनुचित है, खाने के बाद कम से कम दो घन्टे के बाद पानी पीना उचित है। कुछ लोग, खाना खाने के साथ ही पानी भी पीते जाते हैं, बिना पानी पिये उन से रहा ही नहीं जाता। हम एकाएक यह नहीं कह सकते कि वह उन का अभ्यासदोष है। चेष्टा करने से वह यह कदेव त्याग सकते हैं।

हमारे भोजन में ऐसे मसाले पड़ते हैं और भोजन ऐसी क्रिया से बनाये जाते हैं, कि जिससे अनुचित उष्णता का पैदा होना अनिवार्य है। भोजन करते समय, ग्रास को निगलने के लिये यदि पानी पिया जाय तब तो भोजनकर्ता का दोष है और यदि भोजन करते समय प्यास लगे तो भोजन ही दूषित कहा जायगा। खाना खाते वक्त प्यास लगना ही नहीं चाहिये। जिस खाद्यके कारण प्यास मालूम हो वह खाद्य स्वाभाविक नहीं, क्यों कि प्रकृति ऐसी व्यवस्था कभी नहीं कर सकती कि जिस से हम खाते समय पानी पीने पर मजबूर हों और पानी पीकर अजीर्ण पैदा करलें एवं रोगी हो जांय। परीक्षार्थ ही एक दिन स्वाभाविक भोजन कर देखिए। अंगूर, नासपाती, सतरा, केला, आम, नारंगा और दूध आदि स्वाभाविक फल या उद्भिद पदार्थ, नाना तरह के शाक, भाजी और मूलादि खाइए, मालूम हो जायगा कि न तो उतनी चर्वण क्रिया की आवश्यकता है और न पानी पीने की। क्योंकि उन पदार्थों में खुश्की नहीं, उन में आवश्यक जल स्वयं ही विद्यमान है। फलाहार करने के बाद दो घण्टे तक बिना पानी पिये भी रहा जा सकता है। न गला सूखेगा, और न तालू चटकेगा। इस प्रकार से अनायास ही बिना किसी जानकारी के, स्वय हा स्वास्थ्यरक्षा हो जाती है और अजीर्ण उत्पन्न नहीं होता।

अधिक खा जाने से भी अजीर्ण पैदा होता है। बहुतेरे मनुष्य इतना खा लेते हैं, कि खाना खाने के बाद एक सामान्य-कार्य भी वे नहीं कर सकते। कुछ तो, खा कर बैठ ही नहीं सकते, बैठने से पेट फट जाने का अँदेशा है। कुछ इतना खा लेते हैं, कि नमक सुलेमानी के लिए भी स्थान नहीं रहता। खाना खाने के बाद यदि कोई बाहर बुलाने लगें, तो वह चारपाई पर गिर कर, कहला भेजते हैं, कि "खाना खा रहे हैं"। यद्यपि अधिक खाने में, मनुष्य का ही दोष है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इस विषय में सर्वथा मनुष्य ही दोषी है। कुछ भोजन ऐसे बनते हैं कि जिनसे पेट भरजाने पर भी रसना तृप्त नहीं होती। रसना तृप्ति के लिये ही जब रन्धन क्रिया का आविष्कार किया गया, इतना आडम्बर किया गया और इतनी बुद्धि खर्च की गई, तो बिना रसना-तृप्ति हुए खाना त्याग देना भी तो उचित नहीं। कुछ भोजनों का ऐसा माहात्म्य है कि खाते चले जाइये न जठर-तृप्ति और न रसना तृप्ति। उस समय यह हिसाब लगाना कठिन हो जाता

है कि हम कितना खा गये या कितना खाना चाहिये। देश में, कुछ नशा पानी करके भोजन करने का भी रिवाज है। ऐसी दशा में क्या अन्दाज़ा किया जा सकता है पेट भर गया, रसना की भी तृप्ति हो गयी। किन्तु मेहमानी के लिहाज से, और भी दो पूरी खिलाई जाती हैं, न खाने से सम्यतामंग का दोष लगता है एवं प्रेम की कमी ज़ाहिर होती है। हमारे यहां की स्त्रियां भोजन कराते समय अपने बच्चों की उदर-तृप्ति का अच्छा अंदाज़ा लगाती हैं वे देखती हैं कि बच्चे का पेट कुछ ऊँचा हुआ या नहीं यदि नहीं तो, बच्चे के हज़ार मना करने पर भी, वे उसको नहीं छोडतीं। हमारे यहां, लाखहर रुपये वालों के यहां, दिन में चार बार खाने की प्रणाली है। भूख हो या न हो, नियम-रक्षार्थ कुछ खाना ही पड़ता है। जो हो, अधिक खाना सर्वदा हानिकारक है। केवल एक बार ही अधिक खालेने से, कष्ट होजाने की सम्भावना है। यदि चर्वण क्रिया भलीभांति की जाय, तो उदर-तृप्ति एव रसनातृप्ति का हाल स्वयं मालूम पड़ जाता है। स्वाभाविक खाद्य, मात्रा से अधिक खाया ही नहीं जा सकता। इन खाद्यों से, रसना तृप्ति नहीं होती। किन्तु स्वाभाविक खाद्य से, मात्रा से अधिक होने पर, प्रकृति की व्यवस्थानुसार अपने ही आप अरुचि हो जाती है। खाने की कोशिश करने पर भी खाया नहीं जाता और खा लेने पर प्रकृति अपने खाद्य को कलंकित न करने के लिये, अधिक खाया हुआ खाद्य, वमन द्वारा निकाल बाहर कर देती है।

दूध, साबूदाना, पतला हलवा और पतली खिचड़ी या कोई अन्य चर्व्य पदार्थ, तरलरूप में, पानी की तरह पी जाने से भी अजीर्ण हो सकता है। एक डाक्टर का मत है कि दूध को भी चबा २ कर पीना चाहिये। शिशु अपनी माता का स्तन, जिस ढंग से पान करता है, वह ढंग दूध और पानी पीने के लिये बहुत अच्छा है, सम्भव है कि उक्त डाक्टरी महाशय का अभिप्राय इसी क्रिया से हो। जो हो, परन्तु यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि चर्व पदार्थ बिना चर्वण किये, किसी भी रूप से उदरस्थ न करना चाहिये। पानी और दूध को भी धीरे २ और दांतों द्वारा पान करना चाहिये। यदि बच्चे को माता के दुग्ध के बदले गो दुग्ध-मिश्री या शक्कर मिलाकर पिलाया जाय तो वह स्वाद के कारण अधिक पी जायगा और इस तरह से चर्षित भी नहीं करेगा। स्वाभाविक क्रिया को त्याग, स्वाद वर्द्धक

पदार्थों के साथ हलुवा, मोहनभोग, खिचडी आदि आधुनिक पदार्थ अजीर्ण उत्पन्न करने के ही कारण बन रहे हैं।

मांस, मछली, शराब तम्बाकू, चुरट, अफीम, गांजा, लहसुन प्याज मिर्च, गरम मसाला चाय और काफी जैसे पदार्थ सभी उत्तेजक एवं अजीर्ण पैदा करने वाले हैं। इन पदार्थों के सेवन से, एक प्रकार की उत्तेजना होती है इनको वह उत्तेजना बल-वर्द्धक मालूम पड़ती है। जिस समय उस उत्तेजना का उतार होता है उस समय पुनः उन्हें खाने की इच्छा होती है इसी तरह से हम दिन-रात उत्तेजित रहते हैं। अस्वाभाविक उत्तेजना, वीर्य्य को पतला करती है। पतला वीर्य्य, शरीर में विकार पैदा करता है, वीर्य्य-पान होने से निर्बलता पैदा होती है, निर्बलता के कारण से पाकस्थलीके यन्त्र शिथिल पड़जाते हैं और अजीर्ण होजाता है। अस्वाभाविक उत्तेजना, एक प्रकार की गरमी उत्पन्न करती है। वह गरमी जीवनी शक्तिकी प्रतिद्वन्दी रहती है। लगातार 'अमल' द्वारा उत्तेजक पदार्थों की पहुँची हुई गरमी, क्रम २ से जीवनशक्ति को क्षीण करदेती है। जीवनी शक्ति के क्षीण होने से, पाचक-शक्ति पर्याप्त प्रमाण में उत्पन्न नहीं होती। उस के बिना, पाकस्थली अपना कार्य्य सुचारु रूप से सम्पादन नहीं कर सकती अतएव अजीर्ण हो जाता है। पाकस्थली में इतना बल नहीं है कि जिससे वह प्रत्येक वस्तु को पचा डाले। मादक द्रव्य और उत्तेजक पदार्थों के कठिन-कण समूह को, पाकस्थली नहीं पचा सकती, अन्त में, यही कण अजीर्ण पैदा करनेमें-सहायता देते हैं।

उपवास के बाद या रोगशय्या से उठने पर, एकबारगी अधिक खालेना अजीर्ण पैदा करता है। पाकस्थली के शिथिल होने के कारण से, इन्द्रियों के अकर्मण्य हो जाने से, अधिक खाद्य पच नहीं सकता

रात दिन के चौबीस घन्टे, कमरे के अंदर ही व्यतीत करदेने से भी अजीर्ण उत्पन्न होता है। शरीर के अंदर प्राण वायु की कमी से, पाकस्थली का काम ठीक २ नहीं होता। इस में शारीरिक श्रम से, अधिक लाभ होता है। व्यायाम और वायु-सेवन से पाकस्थली पुष्ट रहती है। खून का दौरान सुचारु रूप से होता रहता है।

इस लेख में, अस्वाभाविक खान के द्वारा से, जिस प्रकार अजीर्ण पैदा होता है, और अजीर्ण न होने देनेके लिए हम किस प्रकार

से मजबूर हैं, इसी बात पर कुछ विचार किया गया है। अजीर्ण रोगों का जनक है और वह इस आधुनिक अस्वाभाविक और विकृत आय से अनिवार्य्य है। एक प्रकृति-सेवक।

ब्रह्मचर्य।

आरोग्य-रक्षा के लिये ब्रह्मचर्य्य की नितान्त आवश्यकता है। यह पुरुष और स्त्री दोनों के लिए समान रूप से लाभदायक है। हम उत्तम आहार, शुद्ध वायु और शुद्ध जल का वास्तविक लाभ उसी समय उठा सकते हैं कि जब कि ब्रह्मचर्य जैसे महा व्रत का यथार्थ रूप से पालन करें। जिस प्रकार व्यर्थव्ययी मनुष्य खर्च का हिसाब न रखकर, आमदनी से अधिक खर्च कर दिवालिया बन बैठता है उसी प्रकार यदि हम बहुमूल्य वीर्य्य का संचय न करके खर्च करतेगये तो अन्त में शरीर का दिवाला निकाल करअवश्य मृत्यु-मुख में पतित हो जायेंगे। अतएव क्या पुरुष और क्या स्त्री दोनों का कर्त्तव्य है कि वे नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन करें। तभी वे वीर्य्य बल और प्रतिभासम्पन्न हो सकते हैं।

स्त्री और पुरुष के मिलन से ही ब्रह्मचर्य्य व्रत का खंडन नहीं होता प्रत्युत कामोत्तेजक विचार भी मनमें अशान्ति उत्पन्न करके हमारे जीवन को मिट्टी में मिला देते हैं। हम जिस अमूल्य शक्ति को क्षण भरके सुख के लिए मट्टी में मिला देते हैं,यदि हम उस शक्ति का संचय करके अखंड ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन करें तो संसार में अद्वितीय कार्य्य कर अपने नामको चिरस्मरणीय बना सकते हैं।

सम्प्रति ब्रह्मचर्य्य से पतित होकर अधिकांश देशवासी कामोपासक बन रहे हैं। हम स्त्री के नूपुर की झंकार सुनते ही अस्थिर हो उठते हैं। हमारी सदसद् विवेक बुद्धि पर परदा पड़ जाता है और हम घृणित एवं जघन्य कार्यों के करने में लिप्त होजाते हैं। जब हम अपनी आतुरी वृत्ति को पूर्ण कर चुकते हैं तब सिवा पछताने के और कुछ हाथ नहीं आता। आप छोटे से ग्राम से लेकर बड़े से बड़े शहर में चले जाइये आपको अधिकांश रूप में मानवशरीर के मृतवत् पुतले ही दृष्टिगोचर होंगे। ये काम लोलुप नवयुवक जब अपने ब्रह्मचर्य्यरूपी हीरेको गंवा बैठते हैं तब ब्रह्म चारिणी सुधा सौंफ,अमृतधारा की दवा, पुष्ट राज वटिका, शिलाजीत रसायन आदि विज्ञापनी औषधियों की शरण लेते हैं। वैद्य, हकीम और डाक्टरों के घरों की खाक छानते हैं। किन्तु फिर भी ब्रह्मचर्य के अभाव के कारण फिर वास्तविक

आरोग्यता प्राप्त नहीं कर सकते। प्रथम तो ऐसे मनुष्य वृद्धावस्था तक पहुँचते ही नहीं और यदि पहुँच भी जावे तो उनकी वृद्धावस्था में बहुत ही बुरी दशा हो जाती है।

वास्तवमें देखा जाय तो वृद्धावस्थामें हमारी बुद्धि का पूर्ण विकास होना चाहिए और इस में लेश मात्र भी संदेह नहीं कि सच्चा ब्रह्मचारी ऐसा ही होता है। किन्तु ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट व्यक्तियों के लिए वृद्धावस्था में सुखानुभव करना आकाश-कुसुम के समान असम्भव ही है।

यहाँ कई व्यक्ति शंका कर सकते हैं कि यदि तुम्हारे के कथनानुसार सारा देश ब्रह्मचारी बन जावे तो फिर संसार की वृद्धि का कार्य किस प्रकार हो सकता है। मेरी राय में ऐसे व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन न करने के लिए ही बहाना खोजते हैं। मेरे लिखने का यह मतलब कदापि नहीं है कि सब के सब स्त्री पुरुष, भस्म रमा, गेरुए कपड़े पहिन जंगलों मे जाकर रहने लगें, और संसार को धता बता दे। मेरे लेख का मतलब ही दूसरा है। महाभारतके वीर चूड़ामणि पार्थ, अभिमन्यु, महात्मा कृष्ण और महाबली भीम कुछ अखंड ब्रह्मचारी नहीं थे किन्तु क्या कोई शत्री, यह कह सकता है कि ये लोग बल, बुद्धि और प्रतिभा विहीन थे।

अब जरा अखंडनीय व्रत का पूर्णतया अवलंबन करने वाले दृढ़ प्रतिज्ञ बाल ब्रह्मचारी भीष्म के जीवन क्रम की ओर दृष्टि पात कीजिए तो आप को विदित हो जावेगा कि मनसावाचा और कर्म से ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वाले व्यक्ति को परास्त करने की सामर्थ संसार के किसी भी प्राणी में नहीं। वह उसी समय परास्त किया जा सकेगा कि जब कि उस का सामना करने के लिए उसी के समान सच्चा ब्रह्मचारी हो दशानन के पुत्र मेघनाद का वध लक्ष्मण ही कर सके कि जिन्हों ने लगातार बारह वर्षों तक इस कठोर व्रत का पालन किया था।

शोक के साथ लिखना पड़ता है कि हम लोग स्त्री पुरुष के वास्तविक संबंध को बिलकुल भूले हुए हैं अथवा जान बूझकर भी अन जान बने हुए हैं। क्या पुरुष और क्या स्त्री दोनों वैवाहिक सिद्धान्तों से बहुत दूर जा गिरे हैं। स्त्री-पुरुष के संबंध होने का यह अर्थ नहीं कि पुरुष स्त्री को बच्चे पैदा करने की मशीन ही बनाले। और निशिवासर अपनी आसुरी इच्छा तृप्त किया करे। विवाह का मूल

सिद्धान्त यही है कि ऋतुमती स्त्री के साथ केवल सन्तान ही की इच्छा से पुरुष सम्भोग करे। किन्तु वास्तव में कार्रवाई बिलकुल उल्टी होरही है। हम लोगों का उद्देश्य सन्तान पैदा करने का नहीं वरन् काम-सेवन करने का होरहा है। यही कारण है जो भारतवासियों की सन्तानवृद्धि अधिकता से होरही है। हा! शोक है कि यारमसवनी भारत-माता के वक्षःस्थल पर अब दीन हीन सन्तान दृष्टिगोचर होरहे हैं।

बंधुगण, क्या आपने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि अब भारत-वसुन्धरा पर अखण्ड ब्रह्मचर्य्य व्रतधारी त्रिलोकविजेता वीर क्यों जन्मधारण नहीं करते। इस का मूल कारण यही है कि हम लोग ब्रह्मचर्य्य में रत न होकर व्यभिचार में रत हो रहे हैं। भारतवासी पुत्रोत्सव के समय बड़े २ आनन्द मनाते हैं और पानी के समान द्रव्य-व्यय करते हैं, समाज को दावतें देते हैं, किन्तु वह नहीं करते जो वास्तव में करना चाहिए। न तो वे उस की शारीरिक उन्नति की ओर ही लक्ष्य देते हैं और न मानसिक उन्नति की ओर। ऐसी दशा में प्यार के कृपाछत्र के नीचे पलेहुए लड़कों के सिर पर जब कामरूपी भूत सवार होता है तब वे लाज को ताक में रखकर बेलगाम घोड़े के समान इधर उधर आवारा फिरते रहते हैं—और किसी कुल्टा से प्रेम करके ब्रह्मचर्य व्रत के खंडन के साथ साथ ऐसी ऐसी भयंकर बीमारियों के चंगुल में फँस जाते हैं कि अमूल्य जीवन से भी हाथ धो बैठते हैं। ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करके मनुष्य अपनी अपार शक्ति का परिचय दे सकता है। क्या हमारी आंखों के सामने आधुनिक प्रोफेसर राममूर्ति का ब्रह्मचर्य्य-निदर्शक ज्वलन्त एवं जीता जागता उदाहरण विद्यमान नहीं है? यदि है तो फिर कोई कारण नहीं दिखाई देता कि हम तदनुरूप बनाने की चेष्टा क्यों न करें। अर्वाचीन काल में भी जिन भारतीय महात्माओं ने भारत-वसुन्धरा के सिवा पृथ्वी के अन्य देशों में जाकर अपनी प्रतिभा का विकास किया था वे महात्मा भी ब्रह्मचर्य्य व्रत के पक्के अवलम्बी थे। हिन्दू धर्म के आचार्य श्री १०८ परमहंस रामकृष्ण जी महाराज, स्वामी विवेकानंद, और स्वामी रामतीर्थ जी इस व्रत के व्रती होकर संसार में अपना नाम अजर अमर कर गये अतएव हम लोग भी उक्त महात्माओं के बतलाये हुए सदुपदेशों पर चलें तो हमारा अवश्यमेव कल्याण हो सकता है।

—०—

[illegible]

फिरङ्ग रोग और उसकी चिकित्सा ।

—o—

फिरङ्ग रोग को अँगरेज़ी में सिफलिस कहते हैं । हिन्दी में गरमी यवा आतशक कह सकते हैं । बहुत लोग फिरङ्ग और उपदंश दोनोंको एक ही मानते हैं,पर वास्तव में ऐसा नहीं है । दोनों भिन्न भिन्न रोग हैं । दोनों के कारण और लक्षण भी भिन्न भिन्न हैं । आयुर्वेद के चरक, सुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थों में जिस उपदंश रोग का वर्णन है वह सिफलिस नहीं है, । उपदंश और सिफलिस में कुछ भी सादृश्य नहीं पाया जाता । किन्तु भावप्रकाशोक्त फिरङ्ग रोग के साथ सिफलिस का निदान, लक्षण, उपद्रव आदि सब विलक्षण रूप से मिलते हैं। फिरङ्ग और सिफलिस एक ही व्याधि है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । मालूम होता है चरक, सुश्रुतादि महर्षियों के प्रादुर्भाव के समय फिरङ्ग वा सिफलिस रोग का भारत में अस्तित्व नहीं था । योरोपीय जाति के आगमन के साथ साथ ही यह रोग इस देश में घुस आया है। भावप्रकाश के सिवा और किसी ग्रन्थ में इस का उल्लेख नहीं है। इस से जाना जाता है कि महात्मा भावमिश्र के प्रादुर्भाव के समय ही इस रोगने इस देशमें पदार्पण किया था। भावमिश्रने उपदंश और फिरङ्ग दोनों रोगोंका पृथक् पृथक् वर्णन किया है ।

आयुर्वेदोक्त उपदंशरोग के कारणों की आलोचना करने से स्पष्ट जान पड़ता है कि शिश्नेन्द्रिय के व्यथित होनेसे ही उपदंश रोग उत्पन्न होता है । किन्तु सिफलिस संक्रामक व्याधि है। सिफलिस के बीज मसूरिका के बीजों की समान नाना प्रकार से स्त्री,पुरुष और नपुंसक-शरीर में संक्रमित हो सकते हैं । उपदंश पुरुष-शरीर-गत व्याधि है । पुरुष की उपस्थेन्द्रिय में यह उत्पन्न होता है सम्भवतः इसी सादृश्य से उपदंश को फिरङ्ग में गणना की जाती है । उपदंश की स्त्री-शरीर में किसी प्रकार भी उत्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं है,किन्तु फिरङ्ग स्त्री और पुरुष दोनों के शरीर में उत्पन्न होसकता है । यहाँ तक कि यदि किसी नपुंसक शरीर का भी कोई थोड़ा भाग काटकर उस में फिरङ्ग रोग का विष पहुंचा दिया जाय तो नपुंसक-शरीर में भी इस का प्रादुर्भाव होसकता है ।

इस के सिवा उपदंश और फिरङ्ग में रूपगत पार्थक्य भी देखा जाता है । उपदंश शोथपूर्वक व्याधि है, किन्तु फिरङ्ग में पहले शोथ

का होना कोई आवश्यक नहीं है। शरीर में फिरङ्ग का बीज प्रविष्ट होने के बाद कई दिन तक कोई लक्षण प्रकट नहीं होता। पश्चात लिङ्ग वा योनिप्रदेश में विशेष प्रकार के क्षत दिखाई देते हैं। तब रोग का अधिक प्राबल्य होने पर अवश्य ही शोथ होता है, किन्तु पहले शोथ नहीं होता। इस के अतिरिक्त फिरङ्ग रोग में जिस प्रकार शरीर पर दाग, चकत्ते, फोडे, फुन्सी आदि दूषित रुधिरजन्य विकार पैदा होते हैं-वैसे उपदंश में नहीं होते।

जिन कारणों से उपदंश रोग होता है उन से फिरङ्ग नहीं होता। अत्यन्त प्रसङ्ग या बहुत समय तक ब्रह्मचर्य का धारण, ब्रह्मचारिणी या रजःस्वला स्त्री के साथ संसर्ग करना, वीर्य्य और मूत्र के वेग को रोकना, हाथ, नाखून आदि का आघात लगना इत्यादि उपदंश रोग उत्पन्न होने के कारण हैं। अर्थात् इन कारणों से उपदंश रोग उत्पन्न होता है। किन्तु फिरङ्ग रोग इन कारणों से उत्पन्न नहीं होता। यद्यपि उपदंश के कारणों में योनि का दोष मुख्य समझा जाता है, पर उपदंश रोग जिस प्रकार के योनि के दोष से उत्पन्न होता है वैसे दोषों से फिरङ्ग नहीं होता। अशुद्ध या मलिन अथवा अन्य प्रकार की दूषित योनि में गमन करने से उपदंश या उपदंश की समान कई तरह के रोग पैदा होजाते हैं और वे सामान्य-चिकित्सा से बहुत शीघ्र आरोग्य होजाते हैं।

उपदंश के मल केवल इन्द्रिय में ही उत्पन्न होते हैं, किन्तु फिरङ्ग-रोग का विष अनेक मार्गों से स्त्री-पुरुषों के शरीर में प्रवेश करता है। उपदंश एक साधारण और स्थानिक रोग है, किन्तु फिरङ्ग अत्यन्त विषैला और संक्रामक रोग है। फिरङ्ग के अत्यन्त बढ़ जाने पर शरीर में नानाप्रकार के रुधिरसम्बन्धी भयङ्कर विकार देखने में आते हैं। यहांतक कि सम्पूर्ण शरीर का रुधिर विषाक्त होजाता है। अङ्ग भङ्ग हो जाते हैं, नासिका बैठजाती है और अस्थि भी गलने लगती हैं। किन्तु उपदंश रोग में इन उपद्रवों में से एक भी उपद्रव नहीं देखा जाता।

इस के सिवा उपदंश और फिरङ्ग के घावों में भी कुछ अन्तर देखा जाता है। यद्यपि उपदंश के घाव फिरङ्ग के घावों की अपेक्षा बाहर से अधिक भयङ्कर मालूम होते हैं, पर वे फिरङ्ग के घावों की तरह संक्रामक नहीं होते। साधारण व्रण की समान चिकित्सा करने से ही सहज में आराम हो जाते हैं।

यद्यपि उपदंश और फिरङ्ग दोनों रोगों में वंक्षण की सन्धि की ग्रन्थियाँ फूल जाती हैं अर्थात् बद निकल आती हैं। पर उपदंश में जो बद निकलती हैं वे विषैली नहीं होतीं और न उन में फिरङ्ग की समान घोर यातना और दाह होती है। इत्यादि कारणों से स्पष्ट जान पड़ता है कि उपदंश और फिरङ्ग दोनों रोगों में घोर पार्थक्य है।

फिरङ्गरोग-निदान।

फिरङ्गसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत्।
तस्मात्फिरङ्ग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः॥
गन्धरोगः फिरङ्गोऽयञ्जायते देहिनां ध्रुवम्।
फिरङ्गिणोऽङ्गसंसर्गात् फिरङ्गिण्याः प्रसङ्गतः॥
व्याधिरागन्तुको ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः।
भवेत्तल्लक्षयेत्तेषां लक्षणैर्भिषजांवरः॥
फिरङ्गिण्याः प्रसङ्गतः-इति विशेषार्थम्॥

फिरङ्गरोग का निदान—फिरङ्ग देश में यह रोग अधिकता उत्पन्न होता है, इस कारण इस को फिरङ्ग रोग कहते हैं।

फिरङ्गरोगग्रसित मनुष्य शरीर के संसर्ग से, विशेषकर फिरङ्ग रोगग्रस्ता स्त्री के संसर्ग से, फिरङ्ग नामक यह गन्धरोग (उड़कर लगने वाला रोग) उत्पन्न होता है। इस आगन्तुक रोग में पीछे दोषों का अनुबन्ध होता है अतएव दोषानुसार इस रोग के वातादि भेदों से लक्षण स्थिर करने चाहिए।

फिरङ्ग रोग के उपद्रव।

कार्श्यं बलक्षयो नासाभङ्गो वह्नेश्च मन्दता।
अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरङ्गोपद्रवा अमी॥

कृशता, बल का नाश, नासाभङ्ग-अर्थात् नासिका का बैठ जाना, मन्दाग्नि, अस्थिशोष और अस्थियों का वक्र होना ये फिरङ्ग रोग के उपद्रव हैं।

इस प्रकार भावप्रकाश में अतिलघित रीति से फिरङ्गरोग का वर्णन किया गया है। अब पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र के मत से फिरङ्गरोग के विस्तृतरूप से लक्षणादि नीचे लिखे जाते हैं।

प्रथम अवस्था—यह बड़ी ही संक्रामक व्याधि है। फिरङ्गरोग ग्रस्ता स्त्री के साथ संसर्ग करने से पहले प्राथमिक व्रण उत्पन्न होते हैं।

फिरङ्गरोगग्रसित मनुष्य के शरीर का स्पर्श होने से या उस के रुधिर वा स्फोटकादि से स्रावित रस अथवा क्षतस्थान के रस के अन्यशरीर में प्रविष्ट होने पर भी यह रोग उत्पन्न होता है। किन्तु कुसंसर्ग के बिना प्राथमिक क्षत कभी उत्पन्न नहीं होते।

अधिकांश डाक्टरों का मत है कि सिफिलिसरोगग्रसित रमणी के साथ रमण करने से पुरुष की जननेन्द्रिय के उपचर्म की त्वचा फटकर उस में योनिके भीतर कोमल त्वचा में से रस का विष प्रवेश करता है। कोई कोई कहते हैं कि त्वचा के न फटने पर भी पुरुष की जननेन्द्रिय में इस विष के लगने और सूक्ष्म शिराओं द्वारा शोषित होने पर, यह रोग उत्पन्न होसकता है। तदनन्तर कई दिनके बाद उस स्थान में एक फुन्सी निकल आती है। क्रम से यह फुन्सी बढ़ती है। उस का मूलभाग लाल और अग्रभाग अतिकोमल होता है। उस में पतली पीब भरी होती है। फिर जब उस के ऊपर की त्वचा फट जाती है तब वह क्षत (घाव) होजाता है। यह क्षत तीन चार दिन में ही बहुत बढजाता है। क्षतस्थान त्वचा से किञ्चित् ऊँचा या त्वचा की समान आयतन वाला और चारों तरफ लाल चक्र सा होता है। पश्चात् क्षत का जितना आयतन बढ़ता जाता है, बगल का लाल वेष्टन भी उतना ही ऊंचा और दृढ होता जाता है। व्रण की वृद्धि के अनुसार ही उस में, नीचे से सूक्ष्म सूक्ष्म अङ्कुर उत्पन्न होते हैं और उन में,से क्लेद निकलता है। इसी को True Syphilis (प्रकृति सिफिलिस) वा Hard Chancre (हार्डशङ्कर) अर्थात् कठिन क्षत कहते हैं। यह क्षत प्रथम एक दो दिन तक तो नरम रहता है, किन्तु उसके बाद, कठिन हो जाता है। Hard Chancre साधारणतः स्पर्श में कठिन, अल्पस्राव युक्त और संख्या में एक होता है। इस प्रकार के फिरङ्ग रोग वाले पुरुष के साथ प्रसङ्ग करने से स्त्री की योनि के ओष्ठों के भीतर फिरङ्ग रोग प्रकट होता है। प्रथम ही क्षत दीखने पर त्वचा के ऊपर की उठ जाने पर तत्काल चिकित्सा करनेसे रोग वृद्धि को प्राप्त नहीं होसकता, किंतु प्रायः ऐसा नहीं होता। इस लिए व्रण के उत्पन्न होने के कई दिन बाद वङ्क्षण की सन्धि में एक या दो अथवा अधिक ग्रन्थि उत्पन्न होती हैं। यह आकार में प्रायः सुपारी के समान और अत्यन्त कठिन होती हैं। इस को प्रचलित भाषा मे बद, गिलट या बागी कहते हैं। यह गिलटी सहज में नहीं पकती और पहली अवस्था में उस में कुछ अधिक पीड़ा

भी नहीं मालूम पड़ती। क्रम से थोड़ी थोड़ी पीड़ा होती है। उसके ऊपर की त्वचा कुछ कठिन होती है एवं दस, पन्द्रह दिन में और किसी किसी रोगी के एक महीने तक में पकती है। क्षुद्र चिकित्सामें जो जो औषध कही हैं उन का प्रयोग करने से यह तो आराम हो जाती है किन्तु फिरङ्ग रोग का विष नष्ट नहीं होता।

द्वितीय अवस्था—आरम्भिक क्षत उत्पन्न होने के दो, तीन वा चार महीनेके बाद रोगकी प्रथम अवस्थाका प्रबल प्रकोप ह्रास होकर द्वितीय-अवस्था में परिवर्त्तन होता है। पर दुर्बल मनुष्यों के कुछ दिनों के बाद और बलवान् मनुष्यों के बहुत दिनों के बाद अवस्था में परिवर्त्तन होता है। बलवान् मनुष्य को, रोग की वेदना कम मालूम पड़ती है, किन्तु दुर्बल मनुष्य को अनेक प्रकार की घोर पीड़ायें भोगनी पड़तीहैं। उन में ज्वर भी एक साधारण पीड़ा है, किन्तु यह सब के उत्पन्न नहीं होता। शरीर की अवस्थाभेद से वा रोग की प्रबलता के तारतम्य से किसी के ही ज्वर प्रबल रूप धारण करता है. प्रायः मृदुरूप से ही प्रकट होता है और कुछ ज्यादा दिनों तक रहता है। इस समय शरीर में एक प्रकार की फुन्सियाँ उत्पन्न होती हैं, इन को अँगरेजी में ईरप्शन कहते हैं। इन फुन्सियों के उभरने के साथ ही ज्वर कम हो जाता है, किन्तु रोगी को सिरपीड़ा का अत्यन्त दुःख भोगना पड़ता है,और यह सिर की पीड़ा किंदनियमित समय प्रतिदिन हुआ करती है और फिरङ्ग रोग के विविध प्रकार के उपद्रव देखने में आते हैं। पीठ में पीड़ा और सन्धिस्थानों में सूजन होती है। कहीं कहीं ज्वरादि लक्षणों के प्रकाशित न होने पर भी फुन्सियाँ निकल आती हैं। ये फुन्सियाँ भिन्न भिन्न आकार में देखी जाती हैं। फिरङ्ग रोग की इस दूसरी अवस्था में शिरोरोग,बालों का गिरना (गंज) और त्वचा में कुछ रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। यहां तक कि फिरङ्ग रोग का अन्तिम परिणाम—कुष्ठ,मूर्च्छा, आक्षेप और विविध प्रकार की उत्कट वातव्याधियों का उत्पन्न होना होता है। रोग के अत्यन्त प्रबल होने पर स्नायुशूल, क्षय और हृदय रोग तक उत्पन्न हो सकता है। फिरङ्ग रोग के व्रणोंको साफ न रखनेसे पीब निकल कर समीपवर्त्ती स्थानों में लग जाने से वहां भी वैसे ही घाव पैदा हो जाते हैं। स्त्रियों के फिरङ्ग रोग होने,पर लज्जावश वे उस को किसी से प्रकट नहीं करतीं इस कारण योनि के ऊपरि भाग और उस के दोनों ओष्ठ सूज जाते

हैं और इन में से दुर्गन्ध और एक प्रकार का रस निकलता है। इस प्रकार प्रायः डेढ़ वर्ष पर्य्यन्त यह अवस्था रहती है। इस के बाद रोगियों को विशेष कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ता। कहीं कहीं डेढ़ वर्ष के बाद भी यह अवस्था देखने में आती है। हाथ की हथेली और पैरों के तलुवे में फुन्सियां या चकत्ते से प्रकट होते हैं। द्वितीय अवस्था प्रायः डेढ़ से दो वर्ष तक रहती है।

तृतीय अवस्था—फिरङ्ग रोग की तीसरी अवस्था अत्यन्त कष्ट-जनक और सांघातिक है। इस कारण इस अवस्था में त्वचा में, त्वचा के नीचे, अस्थिसमीपस्थ मांसादि, मस्तिष्क, शोणितवाहिनी शिरा और कितने ही आभ्यन्तरिक यन्त्रादि आक्रान्त होजाते हैं। यकृत् अधिकता से व्यथित होता है। शरीर की कोमल त्वचा मलिन हो जाती है। कोमल त्वचा और त्वचा के नीचे क्षत हो जाते हैं और स्फोटक उत्पन्न होते हैं। त्वचा फटकर पीब बहती है। रोग के अधिक बढ़ जाने के कारण प्रायः रोगी का तालु फट जाता है। उस के नासिका रन्ध्र और श्वास, प्रश्वास के मार्ग रुक जाते हैं। इनके बाद रोग जितना पुराना होता जाता है, रोगी की अवस्था भी उतनी ही शोचनीय होती जाती है। रोग पुराना होने पर मस्तिष्क, फुप्फुस, यकृत्, अन्ननली नाडी, धमनी, मूत्रग्रन्थि और हृदयपिण्ड प्रभृति यन्त्र आक्रान्त होते हैं। मस्तिष्क के आक्रान्त हो जाने पर रोगी एक साथ प्रलाप वा असम्बद्ध भाषण आदि करता है। प्रलापादि के होने से पहले रोगी के शिर में पीड़ा, स्मरणशक्ति का नाश, स्वभाव में विलक्षणता, पक्षाघात प्रभृति लक्षण प्रकट होते हैं। सिरदर्द, सिरका घूमना वा स्वभावमें विलक्षणता उपस्थित होने पर रोगी मृगी रोग किम्बा पक्षाघात के द्वारा पीडित होता है। अवस्था विशेष से पक्षाघात के लक्षण प्रकट होते हैं। फुप्फुस के आक्रान्त होने पर पसलियों में पीड़ा, खांसी और ज्वरादि रोग समय २ पर प्रकाशित हुआ करते हैं। किन्तु यह अवस्था कभी कभी देखने में आती है। यकृत् के आक्रान्त होने पर अनेक प्रकार के पित्तविकृति जन्य लक्षण होते हैं। कारण इस के साथ रुधिर का घनिष्ट सम्बन्ध है। यही यकृत् पित्त का प्रधान स्थान है। पित्त पाँच प्रकार का है। उस के आश्रय स्थान और नाम भी पृथक् २ पाँच प्रकार के हैं। रञ्जक नामक पित्त यकृत् में रहता है, इस कारण रक्त के दूषित होने से रक्त का आधार यकृत् आक्रान्त होजाता है। रञ्जक पित्त

भी दूषित हो जाता है। उस समय विशुद्ध और यथोचित रक्तोपादन में व्याघात होता है। पाचक पित्त अग्न्याशय में स्थित रह कर भुक्त द्रव्यों का परिपाक करता है। यकृत् के साथ अग्न्याशय का घनिष्ट सम्बन्ध है इस कारण रुधिर के दूषित होने पर अग्न्याशय निस्तेज हो जाता है और परिपाक क्रिया में व्याघात होता है। इस प्रकार यकृत् के आक्रान्त होने पर परिपाक क्रिया में विलक्षणता शरीर में ईषत् पाण्डुता, पहले की अपेक्षा कृशता, और उदर रोग के लक्षण आदि प्रकाशित होते हैं। यकृत् का आकार बढ जाता है। सम्पूर्ण शरीर में शोथ हो जाता है और उस के साथ अन्यान्य उपसर्ग भी उपस्थित होते हैं। अन्त में रोगी के प्राण तक नष्ट होजाते हैं। साधक पित्त हृदय में अवस्थान करता है और उस के प्रभाव से बुद्धि, मेधा, और स्मरण शक्ति उत्पन्न होती है किन्तु रुधिर के विकृत होने से, हृदयपिण्ड के आक्रान्त होने पर बुद्धि, मेधा और स्मरण शक्ति नष्ट होती है। हृदय में विविध प्रकार की पीडायें होती हैं और उनके बढने पर एक दम रोगी मृत्यु के मुख में पतित होसकता है। आलोचक पित्त दोनों नेत्रों में दर्शनक्रिया सम्पन्न करता है। रक्त के विकृत होने से नेत्र आक्रान्त होसकते हैं और उस से नेत्रों की ज्योति व नेत्र नष्ट हो सकते हैं। भ्राजक पित्त सम्पूर्ण शरीरस्थ त्वचा में रह कर शरीर में कान्ति उत्पन्न करता है। शरीर में मर्दन किये हुए तेल आदि स्नेह द्रव्यों का शोषण और परिपाक क्रिया को सम्पादित करता है। रुधिर के विकृत होने से शरीर की त्वचा विशेष रूपसे आक्रान्त होती है और उक्त पित्त ऐसा निस्तेज होजाता है कि जिस से शरीर पर मले हुए तेल आदि का शोषण नहीं कर सकता। चर्म शिथिल हो जाता है। अन्नवहा नाडी के आक्रान्त होने पर वह सङ्कुचित होजाती है और पक्वाशय में फिरङ्गरोग के क्षत पाये जाते हैं। धमनियों के आक्रान्त होने पर वे फूल जाती हैं और जब फिरङ्ग रोग के द्वारा अन्डकोष आक्रान्त होते हैं तब उनमें बड़ी बड़ी ग्रन्थियां और समय २ पर विविध प्रकार की पीडाओं एवं ऊपर की त्वचा के ऊपर फुंसियों का होना आदि लक्षण देखे जाते हैं।

इस प्रकार फिरङ्ग रोग की ये तीन अवस्थायें यही हैं। इसकी प्रथम अवस्था में उत्तम विधि से चिकित्सा करने पर रोगी सहज में ही आरोग्य हो सकता है और द्वितीय अवस्था में कुछ अधिक दिनों तक चिकित्सा करने से रोग आरोग्य हो सकता है। किन्तु

तृतीय अवस्था में आरोग्य होना जरा कठिन है। कभी कभी प्रथम और दूसरी अवस्था में सामान्य चिकित्सा के द्वारा रोग दूर हुआ जान पड़ता है, किन्तु वह वास्तव में दूर नहीं होता, कुछ दब जाता है। फिर बार बार पैदा हो जाता है। अतएव इस रोग की बहुत दिनों तक यथाविधि और यथा नियमों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

पैतृक फिरंग—स्वामी (पति) या स्त्री के फिरङ्ग रोग से ग्रसित होने पर यदि गर्भ-सञ्चार हो तो बहुत जगह गर्भिणी का पाँचवें, छठे महीने में या पूर्ण गर्भावस्था में गर्भ पतित होजाता है अथवा मृत सन्तान उत्पन्न होती है। यदि जीवित सन्तान उत्पन्न हुई तो एक या डेढ़ मास में ही उस का शरीर कृश हो जाता है। उस के नासा-रन्ध्रों में तरह तरह की पीड़ायें देखने में आती हैं। कहीं कहीं कफ मिली हुई पीव नासिका में से निकला करती है। श्वास का अवरोध और सर्दी के लक्षण जान पड़ते हैं। बालक धीरे धीरे मुरझाने लगता है। फिर इस अवस्था में शीघ्र ही बालक की कमर के नीचे गुदा के चारों तरफ और पावों में लालरङ्ग के फोड़े दीख पड़ते हैं। पव नाट, गला और दूसरे सन्धि स्थानों में दाग होते हैं। ये फोड़े सब गोल और सूखी त्वचा से ढके हुए होते हैं। बालक के मुँह के भीतर वा बाहर प्राय क्षत होते रहते हैं। बालक क्रम से मलिन सा दीख पड़ता है। उस के ओष्ठ और नासिका फट जाती है। शरीर की त्वचा वृद्धों के समान सङ्कुचित होजाती है। दाँतों में विकृति होजाती है। बालक प्राय सर्दी से घिरे हुए की समान फाँय फाँय शब्द करता है। उस समय यथाविधि चिकित्सा न करने से बहुतेरे बालक मृत्यु को प्राप्त होजाते हैं। यदि बच जाते हैं तो उन की अस्थि और शरीर के भीतरी यन्त्रों में नाना प्रकार के विकार पैदा होजाते हैं और बड़े कष्ट से कुछ दिनों तक जीते रहते हैं।

फिरंग रोग का परिणाम—फिरङ्ग बड़ा ही भयानक और दुस्तर रोग है। अन्यान्य रोग उत्पन्न होकर समय पर विविध औषधों और पथ्य द्वारा दूर हो जाते हैं और उन के विकार भी भलीभाँति निर्मूल होजाते हैं। किन्तु फिरङ्ग वा सिफलिस का विष एक बार शरीर में प्रवेश कर जाने पर और रस रक्तादि धातुओं में व्याप्त हो जाने पर सहज में दूर नहीं होसकता। परन्तु स्थायी हो जाने पर सन्तान-सन्तति के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है और वंश-परम्परा से उन्नति

करता है। अतएव कितने ही पुरुषों के शरीर में इस के विष का निश्चय करना कठिन हो जाता है। एक बार इस का विष शरीर में प्रविष्ट होने पर और उस की चिकित्सा न करने पर बारम्बार इस के आक्रमण की आशङ्का रहती है। उन लोगों का जीवन एक प्रकार से अतिदुःखमय होजाता है और वे सदा ही तरह तरह की उत्कट व्याधियों को भोगा करते हैं। यह इतना भयङ्कर और घृणित रोग है कि इस के भयानक परिणाम का स्मरण करते ही शरीर कम्पायमान होजाता है। क्षणिक सुख का परिणाम कितना दुःखमय होता है भुक्तभोगी लोग इस बात को विशेष रूप से जानते हैं। इस रोग के प्रभाव से मनुष्य की मनुष्यता नष्ट हो जाती है। मनुष्य पशुत्व वा जड़त्व को प्राप्त होता है और आजीवन अनेक दुःखों का सहचर बनजाता है। प्राय सभी प्रकार के भयानक रोगों की उत्पत्ति इस फिरङ्ग के द्वारा हो सकती है। प्रथम अवस्था में रोग सामान्य होने पर भी यह क्रमश अत्यन्त कठिन और यन्त्रणाजनक होजाता है। फिरङ्ग विष एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करने पर उत्पन्न होसकता है। फिरङ्गरोगाक्रान्त मनुष्य का रक्त वा स्फोटकादि से स्रवित हुआ रस अथवा उसके व्रण का रस शरीर में प्रवेश करने पर भी यह रोग उत्पन्न होसकता है। जिस का इस प्रकार भयङ्कर परिणाम होता है उस पापकर्म के लिए मनुष्यों की क्यों प्रवृत्ति होती है? क्यों लोग अमृत को छोड़ विषपान करते हैं? क्यों पतङ्गवत् बन कर इच्छा पूर्वक अपने को इस अग्नि में स्वाहा करते हैं? केवल क्षणिक सुख के लिए कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं और कैसी दुर्दशा भोगनी पड़ती है, इस बात को जान बूझ कर भी उस पर क्यों नहीं ध्यान दिया जाता? क्या वास्तव में ही विधाता ने इन्द्रियजनित क्षणिक सुख और काम प्रवृत्ति के चरितार्थ करने के लिए ही मनुष्यजाति और शुक्रधातु का सृजन किया है?

जो लोग लज्जा और गुरुजनों के भयसे रोग को बहुत दिनोंतक छिपाये रखते हैं, वे धीरे धीरे उस को और भी भयङ्कर बना लेते हैं— और फिर उस का बहुत ही बुरा फल उनको आजीवन भोगना पड़ता है। बहुत लोग रोग को गुरुजनों से छिपा कर सुचिकित्सकों द्वारा उत्तम चिकित्सा न कराकर अनाड़ी, मूर्ख और धूर्त लोगों की बताई

हुई या दी हुई औषधि के द्वारा स्वास्थ्य का और भी अधिक सत्यानाश करलेते हैं । बहुतेरे मनुष्य इस रोग के पथ्य और हिताहितजनक पदार्थों को न जान कर ऊट पटाँग पदार्थों का सेवन कर रोग की शीघ्र ही उन्नति कर लेते हैं ।

चिकित्सा ।

फिरङ्ग रोग की तीनों अवस्थाओं में विविध प्रकार की औषधियों का व्यवहार कराया जा सकता है। प्रथम प्रतिदिन दोनों बार नीम के पत्तों के द्वारा पकाये हुए जल या त्रिफले के क्वाथ से फिरङ्ग के व्रणों को धोना चाहिए और उन पर नीम के पञ्चाङ्ग के द्वारा पकाया हुआ घृत मरहम की समान एक साफ कपड़े के फाये पर चुपड़ कर लगाना चाहिए और व्रणस्थान को अच्छे प्रकार से बाँध कर रखना चाहिए। जिस से कि व्रण साफ रहे। एवं जननेन्द्रिय में शोथ की वृद्धि नहो और वह पके नहीं-इस विषय मे विशेष सावधानता रखनी चाहिए । यदि क्षत या शोथ पक जाय तब अमलतास या अरणी के पत्तों के क्वाथ द्वारा व्रण और जननेन्द्रिय को दो बार धोवे। पूर्वोक्त निम्ब घृत को कपड़े के फाये पर लगाकर बाँध देवे। इस से दाह और पाक शमन होता है। व्रणों को कभी खुला नहीं रखना चाहिए।

फिरङ्ग रोग में प्रथम निम्बादि क्वाथ, शारिवाद्य क्वाथ किरात तिक्तादि क्वाथ एवं समस्त तिक्त और कषैले क्वाथ और रक्तशोधक औषधों का सेवन बहुत हितकारी है । इन क्वाथों के सेवन करने से दस्त खुलासा होता है और ज्वर, चट्ट तथा शरीर में फुन्सियों का निकलना दूर होता है और फिरङ्ग का विष धीरे धीरे नष्ट हो जाता है। हमने सैकड़ों जगह इस का प्रत्यक्ष फल देखा है। यदि इन क्वाथों के प्रस्तुत करने में कठिनता हो तो लघुसारिवादि क्वाथ, पटोलादि क्वाथ, अमृतादि क्वाथ अथवा अनन्तादयलेह सेवन करना चाहिए। इस अवस्था में पारद का सेवन और उस के द्वारा धकरा देना अत्यन्त लाभजनक है।

इस समय स्नान और आहार के ऊपर लक्ष्य रखना अत्यन्त आवश्यक है। प्रतिदिन हलका और सीधे सादे ढंग का सात्विकी भोजन करना चाहिए। गरम दाहकारक, खट्टे, चरपरे और खारवाले पदार्थ एकदम त्याग देने चाहिए। दही उड़द मट्ठा और पेट में गोल मारा पैदा करनेवाले पदार्थ नहीं खाने चाहिए। मछली, मांस, मद्य और

तैलादि पदार्थ इसमें सर्वथा त्याज्य हैं। भोजन में घृत, मक्खन आदि पदार्थों का अधिकता से उपयोग होना चाहिए। बहुत लोग इस रोग के उत्पन्न होते ही तरह २ के शीतोपचार करना आरम्भ करदेते हैं, पर ऐसा करना बहुत अनुचित है! इस प्रकार शीतोपचार से शरीर की बहुत कुछ हानि होती है। किन्तु रोगी को प्रतिदिन स्नान करना चाहिए, परन्तु स्नान के लिए उष्ण जल ही ठीक होसकता है। कारण इस अवस्था में शीतल जल से स्नान करने से कभी कभी भारी हानि होती है। इसीप्रकार शीतल शर्बत और ठण्डाई, यव बर्फ ऐसे पदार्थ भी हानिकर होते हैं। किन्तु रोगी को साफ सुथरे और खुले स्थान में रहना चाहिए। अपने आहार विहार और स्वास्थ्य रक्षा के नियमों पर विशेषरूप से ध्यान रखना चाहिए। व्रणों के सूखने पर भी छः महीने तक स्नान और आहारादि नियमित रूपसे करना आवश्यक है। रोगी का जिस से स्वास्थ्य अच्छा रहे इस पर सब से अधिक लक्ष्य रखना चाहिए, क्योंकि स्वास्थ्य के भङ्ग होने से यह रोग सहसा वृद्धि को प्राप्त होसकता है।

प्रथम अवस्था में व्रणों के होने से रोगी को जो ज्वर होता है उसमें भूनिम्बादि क्वाथ, या कुटजादि क्वाथ सेवन करावें। ज्वर के होने पर गेहूँ का दलिया, साबूदाना, मूँग की दाल का यूष आदि हल्के पदार्थ खाने को देवे। रोटी, पूरी आदि देर में पचनेवाली चीजें न दे। किन्तु ज्वर के कम होजाने पर पूर्ववत् सब चीजें खाने को दे। जिससे बारम्बार ज्वर का आक्रमण न हो। ऐसे ज्वर और व्रणनाशक, या रक्त शोधक क्वाथ रोगी को सेवन कराने चाहिए। रोगी की कोष्ठबद्धता पर भी प्रतिदिन ध्यान रखना चाहिए। प्रथम अवस्था में बहुत दिनों तक नियम पूर्वक औषध और पथ्य सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु दूसरी अवस्थाके लक्षण शरीरभेद से या रोग की प्रबलता के तारतम्य से प्रथम अवस्था में लक्षित हों तो द्वितीय अवस्था की औषधियाँ प्रथम अवस्था में सेवन करानी चाहिएँ।

द्वितीय अवस्था में शरीर में फोड़े, फुन्सियों की उत्पत्ति, ज्वर सन्धिस्थानों (जोड़ों) का फूलना, चर्म और मांसादि में हानी का होना और उनका पकना और कुष्ठ प्रभृति रोगों के लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस अवस्था में पारे के साथ औषधियों का धूम्रपान कराना अथवा बफारा देना अत्यन्त उपकारी है। बफारा देने से शरीर के सब फोड़े, फुन्सियाँ नष्ट होजाते हैं। पश्चात् अन्यान्य उपद्रवों के

लिए पृथक् पृथक् औषधि सेवन करानी चाहिए। इस अवस्था में सिन्दूराद्य धूम, और यदराद्य धूम अत्यन्त हितकारी हैं। व्रण और क्षत के अधिक होनेपर बलादि धूम नियम पूर्वक प्रयोग करना चाहिए। किन्तु फिरङ्ग रोग के अत्यन्त प्रबल होने पर, जब कि कुष्ठ के लक्षण दिखाई देने लगते हैं या शरीर की त्वचा और मांस अत्यंत शिथिल मालूम होने लगते हैं उस समय रोगी को रसशेखर या मैरव रस सेवन कराना चाहिए। इस से रोगी का का मुँह आजाय अथवा दाँतों की जड़ें फूल जायँ, अत्यन्त लाल होजायँ, उन में से क्लेद बहने लगे या मुँह में से लार या स्राव होने लगे तब उस की मुखरोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों तक नियमपूर्वक औषध और पथ्य का सेवन करने से अधिक उपकार होता है। किन्तु इस अवस्था में पारे के बिना अन्य औषधों से अधिक उपकार होनेकी आशा नहीं है। शरीर के फोड़े, फुन्सी और व्रणों के कम होने पर भी कुछ दिनों तक हरीतक्यादि घृत, हरीतक्यादि-अवलेह, आदि औषधियाँ सेवन करावे। कारण कि फिरङ्गरोग का विष बहुत काल तक शरीर में स्थायी रूप से स्थित रहता है। इस लिए एक या दो वर्ष तक औषधि सेवन न करने से शरीर में से फिरङ्ग विष निर्मूल नहीं हो सकता।

दूसरी अवस्था में फुफ्फुस के आक्रान्त होने पर और यक्ष्मा रोग के प्रकट होने पर पञ्चतिक्त घृत और गुग्गुलु सेवन करावे। शिरोरोग और वायु की पीड़ा के उपस्थित होने पर उक्त घृत को सेवन करने से विशेष उपकार होता है। मूर्च्छा और आक्षेप के प्रबल एवं रोगी के दुर्बल होने पर कामदेवघृत, अश्वगन्धाद्य घृत शतावरीघृत और अन्यान्य पुष्टिकारक औषध, एवं पौष्टिक पथ्य देने चाहिएं। प्रमत्त धूप, और सब प्रकार के कुपथ्य एक दम त्याग देने चाहिएं। रोगी के वातसे पीड़ित होने पर जब उस के चलने फिरने की शक्ति कम होजाती है तब अमृताद्यगुग्गुलु, योगराज गुग्गुल या कैशोर गुग्गुल प्रभृति और महाविषगर्भ तैल या विषतिन्दुक तैल शरीर के ग्रन्थिस्थानों में मर्दन करने चाहिएं। इन प्रयोगों के सेवन करने से प्रतिदिन दो तीन बार दस्त साफ होकर रोग शान्त होकर घट जाता है। रोगी को लाभ मालूम होता है। फिरङ्ग रोग के कारण कभी कभी रोगी के शरीर में पक्षाघात के भी लक्षण दिखाई दिया करते हैं। इस में साधारण पक्षाघात की चिकित्सा करने से कुछ

लाभ नहीं होता । महामंजिष्ठादि क्वाथ और पलाशादि घटी इस रोग की उत्कृष्ट औषधि हैं । विपतिन्दुक तेल के मर्दन करने से भी बहुत लाभ होता है । किन्तु शरीरका रुधिर जब तक शोधित नहीं होता तब तक केवल इन ऊपरी तैल और घृतादि की मालिशके द्वारा वास्तविक लाभहोनेकी अधिक आशा नहीं की जासकती। इस लिए इसमें सारिवाद्यवलेह,हरीतकी अवलेह और अनन्ताद्य घृत आदि औषधियां का बहुत समय तक सेवन करना आवश्यक है । फिरङ्ग रोगकी तीसरी अवस्था में अस्थि और उसके साथ मिले हुए मांसादि, यकृत्, त्वचा का भीतरी भाग, तालु और नासारन्ध्र प्रभृति अवयव रोग से ग्रसित होते हैं । इस अवस्थामें रोग अत्यन्त कठिन होजाता है । इससमय भूनिम्बाद्य घृत, पञ्चतिक्तघृत या महातिक्तघृत यथानियम से कुछ दिनों तक सेवन कराने चाहिए । इससे फिरङ्ग रोगके व्रण बहुत कम होजाते हैं । ऐसी अवस्था में अनन्ताद्यघृत को दीर्घ काल तक सेवन कराने से भी बहुत लाभ होता है । तालु, ओष्ठ, या नासिकारन्ध्र में क्षत होने पर बृहत्पञ्चतिक्तघृत वा महातिक्त घृत आदि औषधों का सेवन अत्यंत लाभजनक है । इसके सिवा अन्यान्य सर्वप्रकार की व्रणनाशक,और व्रणशोधक औषधियाँ भी इस रोग में प्रशस्त हैं । जिन से सम्पूर्ण शरीरका रुधिर शुद्ध हो ऐसी औषधियाँ विशेषरूप सेवन करानी चाहिएँ । रोग की पुरातन अवस्था में स्वास्थ्य के ऊपर विशेष ध्यान रख कर दीर्घकाल तक उत्तम चिकित्सा और पथ्य का अवलम्बन करना चाहिए । (अपूर्ण)

गुप्त रोगों की भयङ्करता ।

आज कल संसार में गुप्त रोगों की अत्यन्त प्रबलता है। प्रमेहादि भयंकर रोग, आजकल सभ्य संसार में और खास भारत समस्त जनता मे अत्यंत फैल गये हैं । ये रोग वंश-परम्परा से व्याप्त रहते हैं । जो स्त्री वा पुरुष बाहर से आरोग्य दिखलाते हैं उन में भी गुप्त रूप से ये रोग वर्त्तमान रहते हैं । मनुष्य को पशु से भी अधिक बुरी स्थिति में लाने वाले, शारीरिक, मानसिक आरोग्यता और शक्तियों का संहार करने वाले एवं पुरुषत्व का नाश करने वाले ये रोग, रोगी के उस के दुष्कर्मों द्वारा ही उत्पन्न होते हैं, यह कोई नियम नहीं है । किन्तु, ऐसे रोगों से पीड़ित मनुष्य को गुप्तरूप करने से साथ बैठ कर खान से, ऐसे रोगी के बर्तनों को व्यवहार

करने से और उस के वस्त्रों के व्यवहार करने से भी, रोग छूत द्वारा लग जाया करते हैं। छोटे२ बच्चों में; बहुधा छूत द्वारा ही बीमारियाँ हो जाती हैं। इसकारण, प्रत्येक बालक और बालिका को, मनुष्य शरीर का मूल्य और उस को स्थिर रखनेके नियम बतला देने चाहिये। किन २ त्रुटियों से, किस २ अज्ञानता से, और कौन २ अनाचारों से मनुष्यशरीर निकम्मा होजाता है और रोगी जीव भार स्वरूप, कष्टके स्वरूप और दूसरों को दुःख देने वाला होता है। ये सब बातें, बिना किसी लाज व शर्म के प्रत्येक बालक और बालिका को समझा देनी चाहिये। समय पर दिया गया उपदेश अथवा ज्ञान किसी २ समय कष्टसाध्य या असाध्य रोग को उत्पन्न नहीं होने देता। स्त्री या पुरुष का कोई भी अंग अपवित्र नहीं है। एवं पाप का भंडारस्वरूप नहीं है। हर एक अंग एक उपयोगी अंश है और हर एक में उस की खास पवित्रता है। लाज किसी अंग में नहीं है, बल्कि अंग को दुरुपयोग करने वाले मनुष्य की दुर्मति है। अंगों का धर्म क्या है उन की आरोग्यता किस प्रकार रह सकती है और उनका सदुपयोग अथवा अपने लिये व दूसरों के लिये किस प्रकार से लाभ पहुंचा सकता है किस तरह से उन का उपयोग दुरुपयोग होता है, और दुरुपयोग का क्या फल होता है, इन बातों का ज्ञान प्रत्येक नर नारी को रखना आवश्यक है। इन बातों के जानने और जनाने में कुछ भी लज्जा की बात नहीं है।

मनुष्य के अत्यन्त श्रम से अथवा मस्तिष्क के कठिन कामों से, शरीर दृढ़ नहीं जाता है। शरीर या मस्तिष्क, अत्यन्त श्रम से, निर्बल पड़ जाता है, ऐसी धारणा व्यर्थ है। श्रम से हर एक स्नायु कसरत पाकर अधिक बलवान् बना करता है। हां, अपनी शक्ति से अधिक काम करना अवश्य कुछ हानि पहुंचाता है। किन्तु, इससे शरीर या मस्तिष्क दृढ़ नहीं रहता। आराम और खाद्य का ठीक प्रबन्ध होने पर, श्रम हानिकारक नहीं होता है। तुम्हारे शरीर की निर्बलता और मस्तिष्क की कमजोरी का क्या कारण है? उचित भोजन करके भी आराम करते हुए भी यदि तुम बराबर निर्बल पड़ते जाते हो तो इसका कारण श्रम नहीं होसकता। ऐसा होना केवल उसी दशा में सम्भव है कि जब जिह्वा और इन्द्रिय-पिपासा की तृष्णा, मर्यादा को पार कर जावे और विवेक शक्ति से काम न लिया जाय। विवेक शक्ति से

काम न लेने पर, अपने को एकदम अंगों के अधिकार में दे देने से सर्वदा सर्वनाश और अमङ्गल है।

भाग्य का फेर—आजकल संसार में और खासकर भारतवर्ष में भाग्य का फेर बढ़ता जाता है। इसीकारण साथ ही साथ हतोत्साह उत्पन्न होता जाता है। प्रत्येक विषय में, सुगम और निर्मल मार्ग की शोधक बुद्धि पाते हुए और पसंद किये हुए मार्ग पर निर्भयता पूर्वक चलने वाली इच्छा शक्ति (will power) पाते हुये, एवं शारीरिक व मानसिक शक्ति, उपयुक्त प्रमाण में होते हुये भी यदि मनुष्य में हतोत्साह है तो क्या समझा जाय! अन्य छोटी २ रुकावटें भाग्य की आड़में, अत्यन्त भयकर दृष्टि पड़ने लगती है। इसी बुद्धि से अहित हो रहा है। हमारी दुर्दशा के कारणों में—भाग्य का फेर, रिवाजें, कुसंस्कारमूलक चलन, व्यक्तिगत दुर्व्यसन, टेव, फेशन, तुच्छ और भयभीत विचार, हतोत्साह और झूठी शरम ही मुख्य कारण हैं। जिस मनुष्य या स्त्री को अपना जीवन प्यारा हो, जिसको संसारमें कुछ करना हो उसे हरएक विषय में मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। हम यह नहीं कहते कि भाग्य कोई वस्तु नहीं, किन्तु भाग्य को इतना महत्व देना अवश्य हानिकारक है। एक अंगरेज विद्वान ने कहा है "प्रयत्न और ईश्वर"।

बिना वीर्य पात किये आरोग्यता नहीं रह सकती-(१) ऐसा भ्रम सर्वांश में विनाशकारक है। यदि कोई मनुष्य मृत्यु पर्यंत कभी एक बार भी वीर्य पात न करे तो किंचित हानि नहीं वरन् अत्यन्त लाभ है। (२) ऐसी मान्यता, स्वाभाविक प्रेम, शुद्ध और निर्मल प्रणय एव प्रीतिकी रीतिमें धक्का पहुचाने वाली होती है। (३) जिन मनुष्यों व स्त्रियों को चेपी रोग हो या अन्य गुप्त रोग हों तो राज्य या समाजको चाहिये कि ऐसे मनुष्यों का विवाह न होने दें। उनका और समाज का मगल उनके ब्रह्मचर्य-व्रतमें ही है, विवाह में नहीं। (४) जो मनुष्य युवा हैं, किन्तु उन में युवावस्था के प्रत्यक्ष लक्षण नहीं हैं, उन को विवाह की लोलुपता को अपने वश में रखना चाहिये। (५) स्त्री और पुरुष को सर्वदा पृथक् २ शयन करना चाहिये। प्रसंग का यह सब से अच्छा नियम है कि जब प्रसंग इच्छा परस्पर प्रबल हो और स्वाभाविक हो (किसी बनावटी-

क्रिया द्वारा न हो) तब प्रसंग किया जाय। आज कल इस विषय में बड़ा अन्धेर दृष्टि पड़ता है। मनुष्य की तृप्ति, पशुओं से भी अधिक वीर्य्य-पात में नहीं होती। समाज ने जिस स्त्री के साथ उनका विवाह किया है, वह स्त्री उन के लिये पर्याप्त साधन नहीं। उन को कई स्त्रियों की आवश्यकता है। इस अमर्य्यादा और पाशव-वृत्ति के कारण अङ्ग इस प्रकार जर्जर हो जाते हैं, कि फिर धर्माधर्म और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ध्यान नहीं रहता। इस अनियमता से संतान का ही सर्वनाश नहीं होता बल्कि अपना जीवन और समाज-सौन्दर्य्य में भी उलट फेर हो जाता है। इस विषयमें हमलोगों को विशेष ध्यान देना चाहिये। अंगरेजी देशों में भी जवान लड़के और लड़कियां कड़ी दृष्टि में रक्खे जाते हैं। असभ्य जातियोंमें भी व्यभिचार,घोर दण्डनीय कर्म्म समझा जाता है। पशुओं में भी इतनी विषयवासना दृष्टि नहीं पड़ती। आज कल मनुष्य-स्वतंत्रता के उलटे अर्थ लगाये जाते हैं। हमारी स्वतन्त्रता ही हम को पाशव-वृत्ति की ओर खींचे लिये जाती है। मनुष्य जाति में वीर्य्य पात की जितनी स्वतन्त्रता है उतनी स्वतन्त्रता अन्य किसी विषय में नहीं है। हमारे लिये जिस प्रकार अवनति के साधन स्वतंत्र हैं, उसीतरह से उन्नति के साधन स्वतंत्र हैं। परन्तु, हम वस्तुतः अवनति की ओर ही बढ़े चले जाते हैं यही तो गुप्त रोगों को गुप्त लीला है।

कुछ सूचनायें--(१) युवा लड़के और लड़कियां इकट्ठे किसी घर में नहीं रहने चाहियें।

(२) बालिका या स्त्री को एकांत स्थान में पर पुरुष के साथ बात चीत करने में जोखम है।

(३) जिन का मन विलासी हो गया हो और वे अपना आत्म-सुधार करना चाहते हों तो उन को नियमपालक बनना चाहिये और नियम भंग होने पर उनको आत्म ग्लानि उत्पन्न होना चाहिये। व्यायाम, सुसंगत और स्वच्छाउक्ति के सदुपयोग द्वारा उन को अपना चरित्र ठीक करना चाहिये। बुरी पुस्तकों और बुरे नाटकों के दर्शों से सदैव बचना चाहिये।

(४) महीने में एक बार और अधिक आरोग्यता होने पर चार बार से अधिक स्त्री-प्रसङ्ग न करना चाहिये। एक समय एक से अधिक बार वीर्य्य-पात न करना चाहिये।

हम का ऐसे अवसर बराबर मिला करते हैं कि अब हमें इसमें

जीवनोपयोगी नियमों का अनुभव अथवा उपदेश प्राप्त होता है। परन्तु, हम सच्ची बातों का ज्ञान रखते हुये भी उन का पालन नहीं करते। यहां तक कि जो उपदेशक हैं, ज्ञानी हैं और समझदार हैं, वे भी बुरी तरह से इन्द्रियों के वश में दिखलाई पड़ रहे हैं। इस मर्ज की कोई ओषधि नहीं। हम शरीर द्वारा ही अपनी२इच्छित-लालसायें पूरी कर सकते हैं, यह समझ कर हम लोगों को अपने शरीर की स्वस्थता की सदा परवा रखना चाहिये। जिस वीर्य्य के कारण, हम को बुद्धि बल, इच्छा-बल, और आत्मिक-बल प्राप्त होता है, वह क्या इस प्रकार से व्यर्थ खोने की वस्तु है। ऐसे अमूल्य और पीयूष-धारा को जो हम ऐसी लापरवाही से बहा रहे हैं, तो इस का मुख्य कारण, गुप्त रोगों की भयंकरता के सिवाय और क्या समझा जाय।×

शिवनारायण वर्म्मा।

—o—

चिन्ता।

[१]

चञ्चल चित्त बनाय, सोच उपजावन वाली।
करती शक्ति विनष्ट, रक्त परिचालन वाली॥
मस्तक के स्नायु, नहीं क्षण भर रुकते हैं।
बिना किये विश्राम, काम करते रहते हैं॥

[२]

मिथ्या भय, आलस्य और हृत्पीड़ा-कारी।
रहती है दिन रात, अशान्ति सक्रीड़ा जारी॥
दिन भर क्या अवकाश, फिक्र से पा सकते हैं?।
कहाँ रात को बिना स्वप्न के सो सकते हैं?॥

[३]

जलता रहता रक्त, बढ़ा कर गरमी भारी।
रहता सूखा चित्त मेटती गुरुता सारी॥
शीघ्र करें आरम्भ, कार्य्य हम शीघ्र हटावें।
किसी काम के नहीं, शिर का भार बढ़ावें॥

[४]

"जीवित रहे अचेत, न जीवन का फल पाया"।

× गुजराती जैन हितेच्छु के एक लेख के आधार पर।

किया न जग का काम, पुरुष का नाम लजाया ॥
जीवित नर की भाँति, हमें कोई कब गिनता ?
हुई उसी दम मृत्यु, लगी थी जिस दम चिन्ता ॥

नवन ।

—०—

प्रकृति ।

संसारमें प्रकृति ही एक प्रधान वस्तु है। प्रकृति से ही सम्पूर्ण देह-धारी जन्तु उत्पन्न होते एवं पालन और संहार को प्राप्त होते हैं। प्रकृति ही गुण कर्म-स्वभाव का कारण है अतः भूमण्डल का सारलोकवा प्रकृति को ही ईश्वर मानलेना कोई भूल नहीं है। वास्तविक विचार से ईश्वर यदि कोई दूसरा व्यक्ति है तो फिरभी उन्हीं की सम्बन्धिनी अथवा प्रतिबिम्ब ही को प्रकृति भी कहसकते हैं। क्योंकि "पुरुषोऽस्ति प्रकृति-र्नित्या प्रतिच्छायेव भास्वतः"-के अनुसार ईश्वरवादी ईश्वर को नित्य और स्रष्टा मानते हैं। अस्तु, यदि ईश्वर ही नित्य तथा स्रष्टा है तो भी ईश्वरीय शक्ति ही का बोध होगा। खैर जो कुछ भी हो मुझे किसी पक्ष से प्रयोजन नहीं बल्कि आयुर्वेद का वचन मान प्रकृति के नियम तथा प्रकृति के कार्य दिखलाता हूँ। शास्त्र में प्रकृति का लक्षण इस प्रकार लिखा है—"एका तु प्रकृतिश्चेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी। प्रसवधर्मिणी अमध्यस्थधर्मिणीश्चेति"। अर्थात् अव्यक्तात्मकमूल प्रकृति एक है। चेतनारहित सत्व रज और तम तीनों गुणोंवाली है। समस्त पदार्थ बीजरूप होकर प्रलयमें इसीमें स्थित होते हैं अतः यह बीजधर्मा है तथा इसीमें सब उत्पन्न होते हैं, इस से यह प्रसवधर्मा है और यह सुखादि भोगवाली है—इससे मध्यस्थ धर्म वाली है। इस से यह सिद्ध होता है कि प्रकृति ही सर्व सांसारिक कार्यों का प्रधान कारण है, वही उत्पादक है। जब किसी वस्तु का साक्षात्कार होने को होता है तो उसको प्रेरक रूप प्रथम प्रकृति ही होती है। जैसे आप उष्मा प्रभाव-प्रकृति को लीजिये—जब शीत प्रकृति का विराम होता है तो साथ ही उष्ण का प्रभाव बढ़ने लगता है, यहांतक कि उष्ण प्रकृति का धर्म शीत प्रकृति के शेष ही में होने लगता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है-माघशुक्ला पंचमी जिस को सर्व साधारण वसंत पञ्चमी कहते हैं। इस तिथि के वार्षिक उत्सव को वसन्तोत्सव कहते हैं। वास्तव में वसन्तोत्सव से ही प्रकृति का धर्म बढ़ने लगता है। प्यारे पाठक पहले

आप यह सोच लें कि प्राकृतिक धर्म किसे कहते हैं। यह वही धर्म है कि जिसे प्रत्येक पदार्थ अपने २ सत्वों को भूल जाते हैं। प्राणीमात्र अपनी सत्ता को आप से आप भूल जाते हैं। कभी राजा रंक हो बैठता है तो कभी अकिंचन मण्डलेश्वर, कभी काग हंस को भी हंसने लगता है, उलूक गरुड़ पर चोंच मारने का साहस करता है और धूल का ववंडर मेघ का अपमान करता है, मूर्ख पण्डित को दांत दिखाता है। हाय ! यही प्रबला प्रकृति के वश हो जो कभी ऊंची से ऊंची चोटी पर कल्लोल करतेथे वे आज अंधकार के धूंओं में भी जगह नहीं पाते। धन्य हो जगदम्बा, तुम्हें धन्यवाद है। देखिये पाठक, आने वाले वसन्त पर ध्यान दीजिये। वृक्षों का कलेवर बदल गया, लाल लाल पल्लवों से लहलहाते डालियों को शोभित कर रहे हैं। कभी २ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु से दर्शकों का चित्त चकित हो वे इधर उधर ताकने लगते हैं। मत्तभ्रमर ठौर ठौर पर उत्साह दिखा रहे हैं साथ ही चिड़ियों का चहचहाना कैसा मनोहर मालूम होता है। कैसे२ पुष्प अपना २ दिल खोल बैठे हैं। यद्यपि इस समय में भी प्रकृति के विशेष उत्तम अंश होने से वसन्तऋतु ऋतुराज कही जाती है। तथापि यही प्रकृति किसी२ व्यक्ति को विकृति का भी फल देती है। वसन्तके होते हुए भी करीर विचारा पत्रहीन ही रहता है। विरहियों को भी दुःखदायिनी ही है। प्रकृति भी एक विचित्र वस्तु है। अब पाठकगण, अपने आयुर्वेद को देखिये—"कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदतु"। अर्थात् वसन्तऋतु में कफ दुष्ट होता है और वात, पित्त इस के संचारी होते हैं। कफ के दुष्ट होने से और पित्त के शमन से प्रायः कफज रोग होते हैं। वाग्भट का मत है कि "कफश्चितो हि शिशिरे वसन्ते किंशुतापितः। हत्वाग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत्॥" अर्थात् शिशिरऋतु में संचित हुआ कफ वसन्त में सूर्य की किरणों से तापित हो जठराग्नि को शमन कर रोगों को उत्पन्न करता है इस लिये शीघ्र ही कफ को जीतने वाले कार्य करने चाहियें।

वसन्तऋतु में कफनाशक, हलके और तीक्ष्ण आदि पदार्थ सेवन करने चाहियें। गरम जल से स्नान और अगर आदि पदार्थों का शरीर पर लेप, एवं व्यायाम, विशेष कर भ्रमण करना अतीव हितकारी है। पेट में गोलमाल होने पर जुलाब लेना और वमन करना भी अच्छा है।

आयुर्वेदाचार्य प माधवप्रसाद पाठक, नागपुर।

नव्य मतानुयायिनी विष-चिकित्सा।

[ले०—प्र०शान्तिलाल दाधीच, किंग मेडिकल कालेज, राजपूताना होस्टल, इन्दौर]

भारतवर्ष के लिये "विष चिकित्सा" अत्यन्त महत्व का प्रश्न है। कर्नल चेरी साहब के मतानुसार संसार भर में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ सहस्रों प्रकार के विष, उपविष, वानस्पत्य एवं खनिज उगते हैं तथा मिलते हैं। यहां के आचार्यों ने विज्ञान, दर्शन, ज्योतिष आदि साइंसों के साथ साथ इस (विष-विज्ञान) में भी अच्छी उन्नति की थी। वे इन विविध विषोंके प्रयोग से महान् दुश्चिकित्स्य असाध्य रोगों को भी आनन फानन नाश करते थे। किन्तु भारतवर्ष के दुर्भाग्यसे जिस प्रकार इस के बल, कौशल और विज्ञान की क्षति हो गई, उसी के साथ साथ विषों का भी दुरुपयोग होने लगा है।

संसार में सब से ज्यादा विष प्रयोग द्वारा मृत्यु हमारे भारत में ही होती है मनुष्य तो मनुष्य किन्तु बदला लेने के लिये पशुओं तक पर विष-प्रयोग किया जाता है। इसी वास्ते मैं ऊपर कह चुका हूं कि "विष-चिकित्सा" आज हमारे सम्मुख एक महत्व का प्रश्न है।

भारत में पापकर्म के लिये जिन जिन विषों का प्रयोग किया जाता है, उन में सबसे मुख्य आर्सनिक (Arsenic संखिया सोमल) है, तत्पश्चात दूसरा नाम ओपीयम (Opium-अफ़ीम-अमल) का आता है एवं इसके बाद धतूरा तथा नक्स वामिका (विष कुचला) का दर्जा है।

विष की तीन जातियां प्रधान हैं—खनिज, वानस्पत्य, एवं गैस रूपमें।

इन में से प्रत्येक विष का पूरा विवरण देने के पूर्व यहां पर हम विष मात्र पर एक साधारण दृष्टि डालेंगे, तत्पश्चात् प्रत्येक विष का जुदा जुदा वर्णन आगे किया जायगा।

विषों का प्रभाव दो प्रकार से होता है—

१—Local स्थानीय, जैसे किसी तेजाब की जाति के विष लगाने से उसी स्थानके तन्तुओं का नाश हो जाना।

Remote साधारण जैसे संखिया आदि विष के खाने से शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग पर प्रभाव का होना।

निम्नलिखित बातों में फेर बदल होने से विषों के प्रभाव में भी

घटा बढ़ी हो जाती है। वे कारण ये हैं—

(क) विष-प्रयोगकी रीति—जैसे यदि किसी धमनीमें छोटी पिचकारी (Hypodermic Syringe) के द्वारा विष पहुंचाया जाय तो उसका असर जल्दी होता है।

(ख) विष का रूप—जैसे यदि गैस अथवा वाष्पके रूपमें विष पहुँचाया जावे तो उस का प्रभाव तुरन्त होता है।

(ग) विषकी मात्रा—जैसे यदि बड़ी मात्रामें कोई विष दिया जाय तो उस का असर हृदय पर जल्दी होता है. यह कभी कभी बड़ी मात्रा में विष देने से उसी विष के प्रभाव से वमन होकर विष का प्रभाव कुछ शान्त भी हो जाता है। इसी प्रकार यदि छोटी मात्रा में कोई विष थोड़ी थोड़ी देरसे कई बार दिया जाय तो उस का असर कम हो जायगा।

(घ) शारीरिक अवस्था—यदि मनुष्य किसी रोग विशेषसे पीड़ित है और उस रोगके लक्षण, यदि दिये हुए विषके लक्षणोंसे मिलते हैं, तो अवश्य ही उस विषके प्रभाव में वृद्धि होती है। पर निद्रा तथा मदिरा के नशे में विष का असर कुछ कम हो जाता है और भोजनोपरान्त भी विष का असर कम होता है।

(ङ)—विशेषावस्था-खास खास चीज़ों के पेट में होने से भी खास खास विषोंका असर बढ़ जाता है-जैसे यदि जैतून का तैल (Oile) पहिले खाया जा चुका है, और बाद में यदि फास्फोरस (Phosphorus, खास दियासलाइयोंपर का एक विष) खाया जावे तो उसका विष जल्दी चढ़ता है। इसी प्रकार आमाशयमें पहिले मदिरा पहुँचा कर पीछेसे यदि अहिफेन खायी जावे तो उस का भी जहर जल्दी चढ़ता है।

अहिफेन, भङ्ग, संखिया तथा मदिरा, एवं तमाखू को नित्यप्रति खाते रहने से उन के विष का प्रभाव कम हो जाता है।

अब हम विषोंके साधारण निदान पर एक दृष्टि डालते हैं। विषों के लक्षणों से मिलते हुए लक्षणों को देखकर, विष को निश्चित कर लेना अथवा किसी रोग का निदान करलेना भूल है। लक्षण, मृत्यु के पश्चात् शव-परीक्षा तथा पृथक्करण का परिणाम, इन्हीं को देख विष का निदान करना होता है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि प्रत्येक विष का जुदा जुदा वर्णन आगे चल कर करेंगे, इस लिये यहाँ केवल विषमात्र के लक्षणों पर साधारण दृष्टिपात करेंगे।

नीचे लिखे लक्षणों से विषप्रयोग का अनुमान होता है:—

(क) लक्षणों का सहसा प्राकट्य (अनुमान दिखाई देना)

(ख) रोग के लक्षणों का एक दम बढ़ जाना।

(ग) सह-भोजकों में भी उन्हीं लक्षणों का प्रकट होना।

(घ) श्वासोच्छ्वास में विष की गन्ध।

कई विषों के लक्षण विशूचिका आदि रोगों से भी मिलते हैं; इस से इन में भूल करना ठीक नहीं।

वमन द्वारा विषों का बहिष्कार एवं अन्दर ही अन्दर सड़ने से विषों का दब जाना आदि कारणों से कभी कभी विषों का पता नहीं भी लग सकता है।

विषों की साधारण चिकित्सा।

विषों की चिकित्सा के साधारणतया तीन रूप हैं—

(क) विषों का बहिष्कार

(ख) विषों के विपरीत क्रिया तथा

(ग) विषजन्य लक्षणों की चिकित्सा।

(क) **विषों का बहिष्कार**--निम्न प्रयोगों से होता है—

१-यान्त्रिक-जैसे, Stomach pump or stomach tube, विष निष्कासन के निमित्त बनाई हुई रबरकी नलिका (ये रबरकी नलियां हैं, जो मुखद्वारा आमाशय में पहुंचा कर वमन कराने का काम देती हैं)

२—वमन कारक औषधियां।

३—शामक औषधियों का प्रयोग।

हम ऊपर कह आये हैं कि विष मुख्य तीन जातियोंका होता है:-

१ खनिज, २ वानस्पत्य एवं ३ वाष्परूप में। हम पहिले वानस्पत्य विषों को लेते हैं।

उर्वरा भारतभूमि सहस्रों विष, उपविष उत्पन्न करती है, इन में से कितने ही तो प्राचीन वैद्यों (डाक्टरों) को ज्ञात हैं, पर कितने ही विषों का अस्तित्व मालूम ही नहीं।

हम यहाँ उन्हीं विषों को लेंगे जो विशेषकर औषध के काम में आते हैं तथा दुष्टोंकी दुष्टता के भी साधन हैं।

Strychnia कुचलासत्व।

इसको हिन्दी और बंगला भाषा में कुचला, मुम्बई में काजर तथा तामिल में इत्तिकोताई कहते हैं। इस के छोटे मोटे कई रूप हैं।—

किन्तु गुणोंमें मिलते जुलते होनेके कारण सबोंका भिन्न भिन्न विवरण अनावश्यक है। इस के छोटे छोटे सफेद टुकड़े होते हैं, यह जल और मदिरा में घुल जाता है।

यह विष कुचला नामक वृक्ष के बीजों से निकाला जाता है। यह इतना कटु होता है कि यदि एक अंश विष कुचला में ७०००० अंश जल मिला दिया जावे तो भी कड़वापन रह जाता है।

Symptoms (लक्षण स्टिक्निया (कुचला-सत्व) खाने के पश्चात् २ मिनट से २० मिनट के अन्दर अपना प्रभाव दिखलाना प्रारम्भ कर देता है। शुरू ही में कण्ठावरोध तथा शुष्कता म लूम होती है कुछ ही पश्चात् पृष्ठ और कंठ के मांसपिण्डों में कड़ापन लाता है, कंठ, पीठ और हाथ पांव के भी पुट्ठों को अकड़ होने लगती है, यहां तक कि सिर और एड़ी ही बिस्तर पर टिकती है पीठ नहीं। आँखोंकी पुतलियां भी बहुत फट जाती हैं। यह पुट्ठों का अकड़ाव रह रह कर एक या दो मिनिट की देरी से होता है। इसी प्रकार अनुमान दो घंटों में रोगीको मृत्यु हो जाती है।

मृत्युकारक मात्रा--कुचला-सत्व की एक ग्रेनके चौथाई हिस्से (एक चावल) में मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा--उपरि लिखित स्टमक पम्प से विष को निकालने का प्रयत्न करना, पश्चात् आमाशय को धो डालना चाहिये। यदि स्टमक पम्प समय पर न मिले तो बड़ी मात्रा में वमन कारक औषधियां-जैसे नीलाथोथा, कडुई तोरई आदि देकर वमन कराना चाहिये। तत्पश्चात् माजूफलका सत्व (Tannic acid) तथा तेज चाय देनी चाहिये। जिससे विष आमाशय के रस में घुल कर शीघ्र प्रभाव न दिखला सके। यदि हो सके तो अत्यन्त युक्ति पूर्वक तनाव आनेके समयमें क्लोरोफार्म सुंघावे।

"कोकेन"।

प्रकृति के नियमानुसार संसार में दुर्बल मनुष्यों के लिये स्थान नहीं, दुर्बल जाति का जीवन नहीं, एवं दुर्बल देशका-अस्तित्व ही नहीं। जो देश, समाज अथवा जाति एक बार गिर जाती है, उस का उत्थान कठिन ही नहीं, किन्तु कभी कभी असंभव ही हो जाता है। समाज का पुनरभ्युदय जाति का पुनरुत्थान, उस के चरित्र-पतन, अथवा नैतिक अवनति पर निर्भर रहता है।

भारतकी अवनति के साथ ही उस के पतन के सब साधन शनैः शनैः मिल गये। पश्चिमीय सभ्यता-वृद्धि के साथ साथ हम कोकेन खाना भी सीख गये।

बम्बई गवर्नमेंट की विषशाला के आचार्य कर्नेल बेरी साहब ने लिखा है-इन्हीं दिनों में भारत में कोकेनका प्रचार इतना बढ रहा है कि गवर्नमेंट को इस के प्रचार को रोकने के लिये कठोर नियम बनाने ही पड़े। किन्तु इतने पर भी कोकेन के कई मुकद्दमे पुलिस कोर्ट में आते ही हैं। इन्हीं कर्नेल महोदय के कथनानुसार कोकेन का प्रचार नवयुवक विद्यार्थियों और छोटी कन्याओं में भी हो रहा है।

लक्षण—कठ तथा नासिका में शुष्कता, ज्वर, भोजन उतारने में अशक्तता, चक्कर आना, मूर्छा, ज्ञान तन्तुओं की क्रिया में बाधा, जिह्वा और दांतों में श्यामता।

मृत्युकारक मात्रा-अभी तक निश्चित नहीं की गयी है।

अहिफेन-अमल—अफीम।

चीन के पश्चात् अमल खाने में शायद भारत ही का स्थान है। इस को कसया (जलरूप), चंडू (धूम्ररूप) तथा खाने में अफीम के रूप में लेते हैं।

इस के खानेवाले का आरोग्य गिरजाता है, अपच होने लगता है, एव नाडी (संज्ञावहा-चेष्टावहा) क्रम भी दूषित हो जाता है।

इस के विष की तीन अवस्थाएं होती हैं।

प्रथमावस्था-गालों का सुर्ख हो जाना, नाडी की गति का तेज होना, हर्ष बद्धकोष्ठ, बेचैनी एव पीठ में पीडा होना।

द्वितीयावस्था-तन्द्रा, चक्कर आना, पुतलियों का सुकड़ना, अचेत होना, मांसपिंडों का ढीला होना, नाडी का सुस्त होना, शरीर के चर्म का शीतल होना तथा मूत्र का बन्द होना। इस अवस्था में रोगी को पुकारने से वह बोल भी लेता है।

तृतीयावस्था-श्वासावरोध, नाडी क्षीण, पुतलियों का (प्रथमावस्था के विपरीत) फटजाना, गहरी मूर्छा एव मृत्यु।

चर्म में छोटे मोटे घाव अथवा चट्टों के होने से यदि वहां अफीम लगाई जाय तो उस से भी विष चढ जाता है। इसी प्रकार मलद्वार अथवा गर्भाशयादि स्थानों में अहिफेन के रखने से भी मृत्यु होजाती है।

कुत्तों पर भी अहिफेन का प्रभाव मनुष्य की भाँति होता है। मण्डूकों पर भी विषैला प्रभाव होता है, किन्तु पक्षीगण पर अहिफेन का प्रभाव नहीं होता। यदि होता भी है तो बहुत कम। इसी प्रकार बकरों में भी इस का बहुत कम प्रभाव होता है। यहां तक कि मनुष्यों से १००० गुणी मात्रा देने पर कहीं विषैला प्रभाव प्रकट होता है।

मृत्यु का समय—जल्दी से जल्दी ४५ मिनिट में मृत्यु होती है, साधारणतया ५ से १० घटों में मृत्यु होती है। यदि रोगी २४ घटों तक जीवित रह जाय तो सम्भव है कि वह बच जाय।

मृत्युकारक मात्रा

अहिफेन ४ ग्रेन अहिफेन सत्व (मार्फिया Morphia) १ ग्रेन	युवा पुरुष में
अहिफेन एक ग्रेन का नब्बेवाँ अंश मार्फिया एक ग्रेन का एकसौ बीसवाँ अंश	बालक में

चिकित्सा।

स्टमकपम्प से अथवा वमनकारक औषधों (जैसे-लवण,जल, कड़वी तोरई आदि) से वमन कराना।

गीले टावल से बीमारको जगाते रहना अथवा उस को चलाना, मस्तक पर जल डालना, बिजली Galvanic Battery (गैलवानिक बेट्री) का लगाना।

विशेष—आधुनिक समय में अहिफेन मिश्रित कई पेटेण्ट औषधियों का बाजार गर्म हो रहा है। विशेष कर बालकों के लिये सूदिंग सिरप Soothing Syrup आदि मीठी औषधि का प्रयोग कभी नहीं कराना चाहिये।

तम्बाकू

तम्बाकू के सत्व को 'निकोटिन' कहते हैं। तम्बाकू पीने से जो कुछ विषैला प्रभाव होता है वह इसी निकोटिन का फल है। किन्तु निकोटिन साधारण विष नहीं, इस का एक या आधा ही बिन्दु प्राणों का हरण करने को पर्याप्त है। निकोटिन विष के लक्षण ये हैं:—

जी मिचलाना, वमन, चक्कर आना, कम्प, चमड़े का ठंडापन, श्वासोच्छ्वास का पहले तो जल्द आना, किन्तु पश्चात् मन्द मन्द हो जाना, अचेत हो जाना एव अन्त में मृत्यु।

मृत्यु--सवा तीन मिनट से ५ मिनट में होती है।

तम्बाकू की चाय के १२ बूंद पीने से कई मनुष्यों की मृत्यु हो गई है।

चिकित्सा—वमनादि उपचारा द्वारा विष निष्कासन, तत्पश्चात् उत्तेजक वस्तुओं का देना, उष्णता पहुंचाना, तेज चाय तथा छोटी पिचकारी द्वारा कुचले को शरीर में पहुचाना।

वच्छनाग। Aconite

यह भी एक विष है, इस को बंगला में बत्सनाग, मराठी में बछुनाग और तामिल भाषा में वषानयी कहते हैं। प्राच्य और प्रतीच्य दोनों वैद्यक में इस का उपयोग हुआ है।

लक्षण-- वष भक्षण के कुछ ही समय पश्चात् ओष्ठ और जिह्वा पर सनसना होती है, यह सनसनाहट धीरे धीरे सारे शरीर पर हो जाती है। जी मिचलाना, वमन, पेट में पीड़ा, अतिसार, नेत्रोंकी पुतलियों का चौड़ा होना और तारतम्यपूर्वक सिकुड़ना शरीर व चर्म का चिपचिपा होना, मांसपिंडो की निर्बलता, कम्प, क्षीण, श्वासोच्छ्वास शारीरिक उष्णता का न्यून होना, तन्द्रा, निद्रा एव नाड़ी का पहले निर्बल और धीरे होना पश्चात् द्रुततर होना एव पुन क्षीण होने के साथ मृत्यु होना।

मृत्यु—४५ मिनिट से ३ घंटों के भीतर होती है।

चिकित्सा—विष परिष्कार, वमन, बिजली लगाना, उष्णता और उष्णता उत्पन्न करने वाली उत्तेजक वस्तुओं को देना, एव जिह्वाको कुछ बाहर खींच कर पोलों को पकड़ना हाथों को भी पकड़ कर, उन को इस प्रकार हिलाना जिस से फुफ्फुसों में श्वासोच्छ्वास की क्रिया को सहायता मिले (इस सारी क्रिया को कृत्रिम श्वासोच्छ्वास की क्रिया कहते हैं अब से हम भी इसी नाम से इस क्रिया को लिखेंगे)

कनेर Nerin

इसको आंग्ल भाषामें Nerin odorum हिन्दी में कनेर, बंगला में करवी एव तामील भाषा में अलारी कहते हैं। इसकी जड़को चर्म और घावों पर, तथा नेत्र रोगों में काम में लाते हैं, सर्पदंश में भी इस का उपयोग किया जाता है।

लक्षण-इस का विषैला प्रभाव हृदय-पिण्ड पर शीघ्रता से होता है। तृषा, अरुचि, वमन, उदर पीड़ा तथा अतिसार होते हैं। हृदय के स्थान पर पीड़ा, शिर घूमना, नाड़ी की गति प्रथम तो तेज होती है; परन्तु पीछे से मन्द होते होते मिनिट में ३० तक रह जाती है।

इस की स्वतन्त्र चिकित्सा नहीं है। जो वच्छनाग की चिकित्सा है वही करना।

हृदय-स्थान पर राई की पट्टी लगाना, एवं तृषा के वास्ते बर्फ़ के छोटे छोटे टुकड़े निगलना हितकर है।

जमाल गोटा।

यह अंग्रेजी में Croton Tiglium हिन्दी और मराठी में जमालगोटा, वंगला में जैपाल, तामिल में नरवालम, नामों से प्रख्यात है। इसके बीजों में एक प्रकार का तैल होता है। एक मनुष्य को जमाल गोटों के बोरों को खाली करने में इसका विषैला प्रभाव होगया था।

लक्षण—उदरपीड़ा, अतिसार, नेत्रों की पुतलियों का फट जाना, एवं श्वासोच्छ्वास की क्रिया का शीघ्रतापूर्वक होना।

मृत्युकारक समय—चार घंटों में।

मृत्युकारक मात्रा—तीन या चार बीजों के खालेने से मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा।

विषका बहिष्कार, उत्तेजक द्रव्य तथा अहिफेन का देना।

भंग Caunabis।

भारत में भंग को चार रूपों में व्यवहार करते हैं।

भंग, चरस, गांजा और माजून।

इसके विष चढ़ने पर दो अवस्थाएं होती हैं।

आह्लादकी अवस्था—इस अवस्था में रोगी को आनन्द मालूम होता है वह हँसता है, गाता है और रोदन भी करता है।

तन्द्रावस्था—पूर्व में चमड़े पर सनसनी होकर पुतलियां फट जाती हैं, नाड़ी की गति मन्द और भरी हुई होती है। शिर घूमना, मांसपिण्डों की शक्ति का ह्रास, उन्माद।

मृत्युकारक समय—अनुमान १२ घंटे।

चिकित्सा—विष बहिष्कार, शिर पर शीतल जल की धार, तन्द्रावस्था से मनुष्य को जागृत करने का उपाय, एवं विद्युत्प्रयोग।

चित्रक Phembago Teylanıea

हिन्दी—चित्रक, बंगला चित्ता, मराठी चित्ता, और तामिल चित्तिरा। इस औषधि में जो विष होता है उस को लवेजिन कहते हैं।

लक्षण—भक्षण से निद्राजनक और लगाने से चर्म पर तेज़ाब की भांति प्रभाव करता है।

इस की जड को स्त्रियां गर्भस्राव के लिये भी काम में लाती हैं।

इसी प्रकार, कर्पूर, इन्द्रायण, भिलावा, सूरण आदि पदार्थों में भी विषैला अंश है; किन्तु लेख बढ जाने के भय से हम इन सब विषों को यहीं छोड कर दूसरे प्रकार के विषों की विवेचना करेंगे।

पिपीलिका।

अब हम चतुर्थ वर्ग के जन्तुज विषों को लेते हैं।

पिपीलिका (चींटियों का) विष चींटियां फार्मिक एसिड नामक विष अपनी पुच्छ से पैदा करती हैं। इसी प्रकार, मकडी, मधुमक्खी, बिच्छू आदि भी फार्मिक एसिड पैदाते कर हैं।

बहुत सी जाति की मछलियां भी विषैली होती हैं। यह विष कई जाति की मछलियों की जननेंद्रियों में होता है।

सर्पविष।

लक्षण--सर्प के काटने पर रोगी की दो अवस्थाएं होती हैं—दंश स्थान पर सूजन और पीडा होती है। इस के पश्चात् स्नायुक्रम पर विष का प्रभाव होने में अनुमान १ घंटा लग जाता है। किन्तु रोगी की शक्ति और आयु न्यूनाधिक होने से विष प्रभाव के समय में भी न्यूनाधिक्य हो जाता है। दंश के अनुमान एक घंटे के पश्चात्, शिर घूमना, थकावट, मांसपिण्डों की निर्बलता, एवं मदिरा पीने के समान नशा हो जाता है। रक्त में भी परिवर्तन हो जाता है, किन्तु पुतलियां, नाड़ी, श्वासोच्छ्वास और मानसिक अवस्था में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। इस के पश्चात् नीचे के अङ्गों की शिथिलता, मुख से लार का टपकना, साथ ही नाडी और श्वासोच्छ्वास की गति भी तेज़ हो जाती है। धीरे धीरे कंठ और श्वासोच्छ्वास-स्थल के मांसपिण्डों में शिथिलता होती जाती है, एवं श्वासोच्छ्वास की

क्रिया बंद हो जाती है। श्वास के रुक जाने पर भी हृदय कई मिनिट तक धड़कता रहता है। इसी प्रकार कुछ समय के पश्चात् अभागा मनुष्य यमदेव का अतिथि हो जाता है।

चिकित्सा-दुर्भाग्य से सर्पदंश की अभी तक कोई भी रामबाण औषधि प्रतीच्य वैज्ञानिकों को नहीं मिली है। हाँ, कोबरा सर्प विष के लिए "विषस्य विषमौषधम्।" चरितार्थ हुआ है। कोबरा सर्प के विष की एक पिचकारी तैयार की जाती है, यह अत्यन्त आशु विष नाशक है। इस को अंग्रेजी में Anti Venomons Serum कहते हैं; किन्तु इस का बनाना सुगम नहीं, इस वास्ते इस का विशेष विवरण अनावश्यक है।

सर्प विष की साधारण चिकित्सा यह है कि जहां सांप ने काटा हो, उस को कुछ ऊपर दृढ़तापूर्वक बांध देना चाहिये, यदि अँगुली आदि स्थान पर काटा हो तो उस को काट डालना चाहिए।

संखिया-विष के लक्षण- कंठावरोध और कंठ की शुष्कता, पेट में पीड़ा, वमन और अतिसार, नेत्ररोग, और चर्मरोग, वमन में कभी कभी रक्त का होना, चमड़ा ठंडा और गीला होना, मूत्र का बंद होना, मूत्र में रक्त का होना, बेहोशी आदि

जो मनुष्य सदैव संखिया खाते रहते हैं, उनको संखिया के विष में उपर्युक्त लक्षणों से कुछ भिन्नता होती है। वे लक्षण ये हैं:-

अरुचि, अजीर्ण, शिर:पीड़ा, अतिसार, शरीर पर पित्तियों का निकलना, लार टपकना, रक्तशून्यता, पीलिया, अण्डकोशों पर घाव, पक्ष धनुर्वात।

विष-भक्षण के आधे घंटे के पश्चात् लक्षणों का प्रादुर्भाव होता है, किन्तु कभी कभी शीघ्र भी हो जाता है। कम से कम २० मिनिट में मृत्यु होती है। दो ग्रेन से कुछ अधिक अर्थात् एक ग्रेन का पाँचवां भाग अधिक अथवा १ रत्ती संखिया लेने से मृत्यु होना संभव है।

चिकित्सा-पहले स्टमक पम्प द्वारा विष निष्कासन करना चाहिये, पश्चात् घृतादि पदार्थ देने चाहिये।

गंधक तथा शोरे का तेजाब पी लेने पर, स्टमकपम्प को काम में नहीं लाना चाहिये, लवणादि देने चाहियें, घृतादि भी पिलाने चाहियें।

सिंह की मूँछें—सिंह की मूँछे भी बड़ी विषैली होती हैं। इन के खाने से विषप्रकोप होता है।

पारा—यदि अशुद्ध पारा कुछ दिनों तक औषध के रूप में खिलाया जाय तो उस से विषैला असर हो जाता है।

वे लक्षण ये हैं:-

मुख, जिह्वा, कंठ और उदर में दाह, श्वेत वस्तु का वमन, अरुचि, अपच, वमन, उदरपीड़ा, लार टपकना, मसूड़ों से रक्त का निकलना।

चिकित्सा--मन कराना, अंडे की सफेदी खिलाना आदि चिकित्सा कराना।

(वैद्य सम्मेलन पत्रिका)

अम्ल रस।

(खटाई)

अम्ल रस छै रसों में एक प्रधान रस है। अम्लरस को हिन्दी में खट्टा, खटाई या खट्टा रस कहते हैं। खट्टा रस बड़ा ही रुचिकर होता है, इस लिये खट्टे पदार्थों को देखने से मुख में तत्काल पानी आजाता है। बालक से लेकर वृद्ध तक सभी खट्टी चीज खानेकी इच्छा करते हैं। मधुर पदार्थों के अधिक खाने से मुख में जो एक प्रकार की विरसता पैदा हो जाती है, अम्लरस उस को दूर कर के मुख में एक उत्तम स्वाद पैदा कर देता है। अम्ल रस-अत्यन्त रुचिकर, अग्निप्रदीपक, तृप्तिकारक, हलका, उष्ण, तीक्ष्ण, स्निग्ध, वायु का अनुलोमन करने वाला, बलकारक, शरीर में मृदुताजनक, पित्त-कफवर्द्धक और, कुछ विरेचक (दस्तावर) है। इस लिये हमारे खाद्य पदार्थों में खट्टा रस भी एक आवश्यक पदार्थ समझा जाता है। इस को सेवन करने से मुख में लार अधिक उत्पन्न होती है। एवं पाचक रस अधिकता से उत्पन्न होता है और पित्त का प्रवाह आँतों के ऊपर सुचारु रूप से होता है। शरीर की जिन ग्रन्थियों में से लार रस निकलता है उनकी क्रिया उत्तेजित होती है। स्थानिक प्रदाह उत्पादक, त्वचा पर फफोले डालना, घर्म में उष्णता उत्पन्न करना और निकट की समस्त रक्तकी नलिकाओं को संकुचित करता है। अतएव अम्लरस आवश्यकतानुसार ही सेवन करना चाहिए। अधिक अम्लरस खाने से भ्रम, तृषा, दाह, ज्वर, कण्डू (खुजली), विसर्प, शोथ, विस्फोटक और कुछ प्रकृति दारुण व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। खट्टे पदार्थ अधिक

खाये जाते पर पक्वाशय में प्रवल दाह, मलभेद, वमन आदि उपद्रव पैदा होते हैं, इस कारण हमेशा अम्लरस वाले पदार्थ थोड़े ही खाने चाहिए।

पक्वाशय में लवण द्रावक की क्रिया के द्वारा परिपाक क्रिया सम्पन्न होती है। पक्वाशय में भुक्त पदार्थों की उत्सेचन क्रिया साधित होती है और अन्यान्य प्रकार के शरीर में अम्लरस उत्पन्न होते हैं। इस कारण भोजन के पश्चात् कुछ खट्टे पदार्थ खाने से भोजन के पचने में विशेष सहायता मिलती है। पक्वाशय में अम्लताजन्य दाह और खट्टी डकारों के आने पर भोजन के पहले अम्लरस को सेवन करने से विशेष उपकार होता है।

ज्वरावस्था में परिपाकस्थली में अम्लरस की अल्पता होती है। इस कारण ज्वर मे, विशेष कर पित्तज्वर मे अम्लरस वाले पदार्थ देने से पिपासा तत्काल कम हो जाती है, मुख और तालु का शोष दूर होता है यह रक्त की अम्लता को बढ़ा कर उसकी संयत क्रिया की वृद्धि करता है। इस कारण अम्लरस का सेवन करने से रुधिरस्राव बन्द होता है।

ग्रैष्टिक रस की न्यूनता से खाद्य पदार्थों में एलब्यूमिन पदार्थ का अंश द्रवीभूत न होसकने के कारण अजीर्णता उत्पन्न होती है। अतः भोजन करने के बाद अम्लरस वाले पदार्थों का सेवन करने से परिपाकक्रिया में सहायता मिलती है और ग्रैष्टिक यूष की अधिकता से जो एक प्रकार का अजीर्ण उत्पन्न होता है उस में अधिक अम्लतायुक्त ग्रैष्टिक यूष द्वारा हमारी श्लैष्मिक झिल्ली उत्तेजित होकर उदर में पीडा, खट्टी डकारों का आना और अन्यान्य कष्टजनक उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था में भोजन के पहले अम्लरस वाले पदार्थ खाने से अधिक ग्रैष्टिक यूष नहीं निकल सकता, इस कारण उपर्युक्त उपद्रव उत्पन्न नहीं होसकते।

कभी कभी खाद्य पदार्थों की उत्सेचन क्रिया द्वारा एसिटिक विय्युटिरिक और लाकटिक एसिड अधिक परिणाम में उत्पन्न होकर एक प्रकार का अजीर्ण और उदरामय उत्पन्न होता है। इस अवस्था में आहार के पश्चात् अम्लपदार्थ सेवन करने से उत्सेचन क्रिया दूर होकर उदरामय निवारण होता है।

अम्लरस दाँतों का खराब करता है। दाँतों में अधिक अम्लरस के लगने से दाँतों का क्षय होता है। इसीलिए जो लोग खटाई अधिक खाते हैं उन के दाँत जल्द खराब होजाते हैं। खट्टे पदार्थ खाने के

पश्चात् तत्काल सेलखड़ी के चूर्ण या नमक के चूर्ण से दाँतों को मलने से, खट्टे पदार्थों के दाँतों में लगने से जो खराबियाँ पैदा होती हैं वे बहुत कुछ दूर होजाती हैं।

अम्ल रस के साथ मधुर रस मिश्रित होने से एक खट्टा-मीठा और ही प्रकार का सुन्दर और सुरुरोचक स्वाद होता है और यह अम्ल रस की अपेक्षा उपकारी भी अधिक है। गरम देशों में विशेषकर जिन स्थानों में खारी जल अधिक व्यवहृत होता है, वहां खट्टे पदार्थों का सेवन विशेष उपकारी है।

पुरानी खाँसी में, विशेषकर जिस खाँसी में नमकीन या खारी कफ निकलता है उस में खट्टे रस वाले पदार्थों का सेवन अधिक हितप्रद है।

कोष्ठकाठिन्यता में खट्टे पदार्थों का सेवन करने से दस्त खुलासा होता है।

खट्टे पदार्थों को पीस कर लेप करनेसे स्फोटक प्रभृति की पीड़ा और दाह दूर होती है।

हमारे देश में नीबू, नारङ्गी, आम, अनार, इमली, आलूबुखारे, आमला, करौंदा, कमरख आदि फल और तरह तरह के शाक प्रभृति कितने ही खट्टे पदार्थ प्रचुरता से उत्पन्न होते हैं। इन सब के गुणदोषों का विवेचन, यहां लेख बढ़ जाने के भय से नहीं किया जा सकता।

जिन फलों मे अम्ल और मधुर रस दोनों हैं वे अधिक उपयोगी हैं। उन के अधिक सेवन करने में वैसी हानि नहीं है जैसी निरे खट्टे फलों के खाने से होती है।

नारङ्गी, सन्तरा, अनार, आलूबुखारा आदि फल अम्ल और मधुर रसान्वित हैं। इमली में भी किञ्चित् मधुरता है। ×

—o—

हवा।

इस बात को सब लोग जानते हैं कि जीवन के लिये हवा, पानी और भोजन अत्यन्त आवश्यक वस्तुएं हैं। किन्तु, हवा के सम्बन्ध में हम लोग इतने अज्ञान हैं कि जिसकी कोई सीमा नहीं। हम पानी का स्वाद जानते हैं, भोजन का स्वाद पहचानते हैं, किन्तु जीवन की अत्यावश्यक वस्तु हवा का स्वाद तक नहीं जानते। यदि कोई विज्ञानी

× डा० ही० के सौरी के एक लेख के आधार पर।

चिकित्सक महोदय कुछ समय लगा कर हवा के विषय पर लिखें तो मेरी सम्मति में इस विषयमें एक बहुत बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकताहै। मैं इस छोटेसे लख में बतलाऊगा कि केवल हवा से मनुष्य जीवित रह सकता है बिना आहार और जल के जीवन स्थिर रह सकता है। यदि हवा का महत्व समझ में आ जावे तो मनुष्य 'अमर' पदवी पा सकता है।

निद्रा और मृत्यु एक ही बात है। इन मे कुछ भी अन्तर नहीं है। साधारणत' कहा जा सकता है कि निद्रावस्था में प्राण नहीं निकलते और मृत्यु हो जाने पर प्राण निकल जाते हं। किन्तु वास्तव में मृत्यु के पहले—कुछ समय से—मनुष्य के शरीर में एक प्रकार की निद्रा स्थान कर लेती है कि जो दिन-रात साथ रहा करती है। एक दिन वही निद्रा धीरे २ अपने पूर्ण रूप पर पहुच जाती है और मनुष्यको मार देती है। यदि यह निद्रा शरीर मे स्थान न पा सके तो मनुष्य कभी नहीं मर सकता। रात में जब मनुष्य सोते हैं, तब यदि ऐसा प्रवन्ध कर दिया जाय कि उन के पास शुद्ध हवा न जा सके तो वह निद्रा अदृढ होकर मृत्यु का रूप धारण कर लेगी। और यदि ऐसा प्रवन्ध किया जाय कि किसी सोते हुए मनुष्य को उतनी ही शुद्ध हवा प्राप्त हो कि जितनी वह अशुद्ध हवा छोड रहा है तो वह मनुष्य वर्षों सोता रहेगा। इस के सिवाय यह भी अनुभव हुआ है कि यदि रजाई से मुख ढांक कर सोया जाय तो निद्रा का राज्य अधिक समय तक रहता है और यदि मुख खोल कर खुली हवा में सोया जाय तो निद्रा की प्रवलता नष्ट हो जाती है; जरा सी आहट से आँख खुल जाती है।

यदि इस बात को उन महात्माओं के सिद्धान्तों से सिद्ध किया जाय कि जो कभी सोते ही न थे तो यह विषय अत्यत गम्भीर और ऊँचा हो जायगा। हम यहां पर विलायत के उन विद्वान् डाक्टर महोदय का मत लिखते हैं कि जो दिन और रात मे 'केवल दो घटे ही सोया करते हैं। उनका कहना है "समस्त शरीर का विकार हृदय में जमा हुआ करता है और निर्मल वायु उस को नाक द्वारा बाहर निकाला करती है। यह हृदयस्थ विकार आहार-विहार और विचारों द्वारा इतनी अधिकता से घना करता है कि उसकी सफाई कभी नहीं हो सकती है। शरीर के अङ्गों की थकावट भी उसी विकार में शामिल है। प्रत्येक रात को प्रेहनि, मनुष्य को इस प्रकार लिटा देती है कि जिस से यह कोई काम न कर सके और तब यह पवन द्वारा

बड़ी तेज़ी के साथ उस विकार को बाहर निकालती है। इस प्रकार प्रकृति माता पवन द्वारा हमारी "पवन-चिकित्सा" किया करती है। प्रातः उठते ही अङ्ग प्रत्यङ्ग बलवान् और शरीर फुर्तीला हो जाता है। अब विचार किया जाय कि यदि हम प्रकृति माता द्वारा अपनी चिकित्सा न कराके स्वयं ही पवन चिकित्सा करें तो कैसा हो? इस विषय पर विचार और अनुभव करते हुए मैं इतना तो समझ गया हूं कि आदमी को कभी नींद नहीं आ सकती है। मैं भी केवल दो घन्टे सोता हूँ। परन्तु शरीर का सारा विकार निकाल देना सहज कार्य नहीं है। जिस समय मनुष्य विकारहीन होजायगा उस समय वह अनन्त जीवन पा जायगा और वह 'देवता' बन जायगा। मेरी राय में यह साधना 'साधु' ही कर सकते हैं। श्वास विज्ञान और प्राकृतिक—सिद्धान्तज्ञाता ही हमारी बात समझ सकते हैं। 'प्राण'—वायु है! यदि हम वायु को 'प्राण' समझ कर प्यार करें तो 'प्राण' नहीं निकल सकते हैं।"

इस विषय को दो शब्दों में यों समझना चाहिये कि यदि हम वायु को प्राण समझ प्यार करें, तो 'प्राण' नहीं निकल सकते हैं। अब हम नीचे कुछ ऐसी बातें लिखेंगे कि जिस से यह ज्ञात हो जायगा कि हमारे शरीर मे कैसे २ विकार उत्पन्न हुआ करते हैं।

शरीर के विकारों का कुछ अंश नासिका द्वारा, कुछ अंश पेशाब द्वारा और कुछ अंश पाखाना द्वारा बाहर निकलता है। इसके सिवाय शरीर के प्रत्येक रोम से ये विकार बाहर निकला करता है। यहां पर यह भी समझ लेना चाहिये कि नासिका द्वारा और शरीर के स्रोतों द्वारा जो दूषित वायु बाहर निकला करता है उस में 'मल' का अंश भरपूर शामिल होता है। अतएव, यदि किसी स्थान पर तीन चार मनुष्य साथ सोते हैं और कमरे के दरवाज़े बन्द हैं तो वे लोग एक दूसरे की दूषित हवा अर्थात् मल ग्रहण किया करते हैं।

नासिका द्वारा जो अशुद्ध वायु बाहर की जाती है, वह कुछ दूर तक सामने जाती है और फिर उस का दूषित अंश ऊपर को उठ जाता है। इस कारण यदि कोई मनुष्य खुली हवा में भी, नाक द्वारा सामने की हवा खींचता है तो वह अपनी अशुद्ध हवा का अधिकांश पुनः भीतर ले जाने की मूर्खता किया करता है।

यदि कोई मनुष्य शीत काल में अग्नि द्वारा प्राकृतिक हवा को

गरम करता है, एवं ग्रीष्म काल में जल टट्टियों द्वारा प्राकृतिक हवा को ठंडा करता है तो मानों प्रकृति-प्रदत्त पवन-चिकित्सा का काट छांट कर अपने अनन्त जीवन को नष्ट करता है और अकाल मृत्यु को निमन्त्रण देता है।

जरा और खाद्य से उत्पन्न हुए विकार का बहुतेरा अंश पवन को साफ करना पड़ता है। अतएव यदि कोई मनुष्य खाने पीने में लापरवाह है तो वह पवन पर और भी बोझा बढ़ा रहा है। हमारे शरीर में इस विकार या मैले की इतनी गरमी है कि जिस से प्रतिक्षण हम बेचैन रहते हैं। विशुद्ध पवन उस गरमी को रोकती हुई बाहर निकाला करती है। अब आप समझ गये होंगे कि इस प्रकार से हमारा जीवन कब तक स्थायी रह सकता है। हम लोगों में पवन के सम्बन्ध में कितना अज्ञान है। यदि पवन की क्रिया ठीक समझ में आजावे तो कितना लाभ हो सकता है।

शहरों में प्रायः गन्दे पाखाने बने होते हैं। उन में जितनी देर तक बैठा जाता है और वहां की जितनी बदबूदार हवा ग्रहण की जाती है उतना ही मल ग्रहण किया जाता है। यदि कोई पेशाबघर के पास होकर निकले और नाक द्वारा वहां की गन्दी पवन भीतर चली जावे तो केवल पेशाब ही नहीं वहां के पेशाब के साथ मिले हुए रोगकण भी भीतर जा पहुंचते हैं।

इन बातों के सिवाय, विदेशी खांड, चर्बी वाला घी रोगी पशुओं का और मिलावटी दूध, घुने गेंहुओं का आटा, खराब चावल, दूषित मिठाई, सड़े फल, खटाई, मिर्च और तैल आदि के खाद्य जो हम को नित्य खाने पड़ते हैं—इतना अधिक मैला जमा किया करते हैं कि जिस को बाहर करने में 'पवन' अशक्त हो जाती है। ऐसी अवस्था में अनंत जीवन प्राप्त करने के विषय में कुछ लिखना, असामयिक चर्चा है। अतएव, यहां पर पवनसम्बन्धी कुछ सूचनाएं मात्र निवेदन की जाती हैं।

प्रातःकाल साढ़े चार बजे से साढ़े पाँच बजे तक की हवा बड़ी अमूल्य होती है। इस समय खुले शिर और खुले पैर बस्ती के बाहर भ्रमण करना चाहिये। इस समय उत्तर दिशा की ओर मुख रहना चाहिये।

सन्ध्या के समय की यदि स्वच्छ हवा प्राप्त हो सके तो उस समय

ग्रहण करना चाहिये जब ठीक सन्ध्या हो जावे। उस समय किसी निर्जन स्थान पर पूर्व की ओर मुख करके खड़े होकर स्वच्छ पवन ग्रहण करना चाहिये।

ग्रीष्म काल में दोपहर की हवा अत्यन्त बलवर्द्धक होती है। किंतु उस समय की हवा बलवान् जीव ही ग्रहण कर सकता है। निर्बल को 'लू' लग जाती है। शीत काल की हवा भी शक्तिवर्द्धक है! उस समय शरीर पर अधिक कपड़े न पहरने चाहिये।

प्रतिक्षण जो श्वास खींचा जाता है, उसकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। हमेशा पृथ्वी की ओर से खींचना और सामने की ओर त्यागना चाहिये। जिस समय श्वास खींचा जावे उस समय इस बात का अनुभव करना चाहिये कि हम "प्राण वायु", प्राप्त कर रहे हैं और जब श्वास बाहर निकाला जावे तो इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि यह अत्यन्त प्राणनाशक वस्तु है। साथही यह भी अनुभव करना चाहिये कि खींचा हुआ श्वास अंदर जाकर विकार को प्रचुर परिमाण में बाहर कर रहा है। खींचते समय श्वास पर ध्यान देने से कुछ समय बाद इस बात का अनुभव होने लगेगा कि हम प्राण-समान प्यारी वस्तु को पारहे हैं। उस पवनका अत्यंत मधुर स्वाद होता है।

प्रातः और साय काल स्वस्थ चित्त होकर ठीक आसन पर (जिसमें कोई शारीरिक कष्ट नहो) नीचे से ज़ोरके साथ हवा खींचना चाहिये और यह अनुभव करना चाहिये कि यह पवन समस्त शरीर में व्याप्त होकर दूषित वायु-विकार को बाहर कर रहा है। यह क्रिया प्राणायाम से कहीं अधिक लाभप्रद है।

कई मनुष्यों को एक कमरे में एक साथ न सोना चाहिये। शीत-काल मे भी कमरे के दरवाजे खुले रहने चाहियें और रजाई के भीतर मुख न छुपाना चाहिये। खाना और पीना भी सादा एवं स्वच्छ होना चाहिये। इतना कर लेने पर आगे का कर्त्तव्य स्वयम् समझने की शक्ति प्राप्त कर सकोगे।

एक प्रकृतिसेवक

—o—

परीक्षित-प्रयोग।

सिद्ध हरीतकी।

(अर्श, अग्निमांद्य तथा मलस्तम्भ पर)—

प्रथम १२१ बहुत मोटी हरड़ों को लेकर जल से धो लेवे। फिर पाँच सेर गौ के मट्ठे को एक चौड़े मुख वाले मिट्टी के वर्तन मे भरदे और साथ ही उन धुली हुई हरडों को उस मे डाल देवे। उक्त पात्र को रात्रि भर ओस में अथवा खुले स्थान पर बारीक और स्वच्छ कपडे से ढक कर रक्खे। प्रात काल उस पात्र को चूल्हे पर चढ़ा कर मन्द मन्द अग्नि से पकावे। जब हरडें गल जायँ (सोज जायँ) तब किसी बाँस आदि की डलिया मे उन्हें लौट दे और ठण्डी हो जाने पर हरडों की गुठली निकाल कर निम्नलिखित ओषधियों के चूर्ण को खूब दाब दाब कर भर देवे। हरडों को मट्ठे मे पकाने से पहले ही चूर्ण तैय्यार कर लेना चाहिए। चूर्ण की ओषधियाँ ये हैं—सैंधा नमक, विरिया सञ्चर नमक, सावर नमक, पांगा नमक, सज्जी, जवाखार सोंठ, काली मिरच, पीपल, अजवायन अजमोद चव्य, चीते की मूल की छाल और कलौंजी ये प्रत्येक दो दो तोले, घी मे भुनी हुई हींग एक तोला और नीबू का रस आध सेर लेवे। इन ओषधियों को एकत्र कूट पीस कर बारीक चूर्ण कर के पत्थर, मिट्टी या कांच के स्वच्छ पात्र में रखकर ऊपर से नीबू के १पाव रस को डालकर खूब मिलादे। पूर्वोक्त विधि के अनुसार इस चूर्ण को हरड़ों में भर कर उन को मूँज के धागों से अथवा सूत के धागों से उत्तम प्रकार से लपेटकर रखना चाहिये। पश्चात् आधे बचे हुए नीबू के रस को हरडों पर छिड़क कर छाया में सुखा लेवे। जब खूब सूख जायँ तब चीनी, मिट्टी अथवा काँच के वर्त्तन में भर कर रख देवे। रोग का तारतम्य देखकर इस में से १ से २ हरड तक गौ के मट्ठे या उष्ण जल के साथ प्रात और सायङ्काल को सेवन करे। अर्श (बवासीर), मन्दाग्नि अजीर्ण और मलस्तम्भादि रोगों की यह उत्तम औषधि है।

हमने इस का प्रयोग आमातिसार की प्रथमावस्था में तथा सग्रहणी, उदर, आध्मान, आनाह और गुल्म आदि रोगों में भी कर के देखा है, इस से आशातीत लाभ हुआ है।

ज्वरातिसार पर।

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, लौंग १ तोला, पीपल

१ तोला, जायफल १ तोला, सिंगिया विष १ तोला और अफीम ३ माशे लेवे। पहले लवङ्गादि चारों चीजों को पृथक् २ कूट छान कर पारे गन्धक की १ प्रहर तक घुटी हुई कज्जली में मिलाकर खूब घोटे। पश्चात् बकरी का दूध डालकर खरल कर मटर की समान गोलियाँ बनालेवे। अनुपान—बकरी का दूध अथवा शीतल जल। दिन रातमें तीन २ गोली सेवन करने से ज्वरातिसार शीघ्र नष्ट होता है।

वैद्य लक्ष्मीनारायण ललितपुर (झांसी)

सोज़ाक पर।

दारचीनी २ तोले, शीतलचीनी २ तोले, रेवट चीनी २ तोले और चोपचीनी २ तोले, इन सब को एकत्र कूट पीस कर कपड़छन कर लेवे। इस में से चूर्ण १ माशा और शुद्ध गोंड ४ माशे मिलाकर बकरी के कच्चे दूध के साथ प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्याकाल में सेवन करे। इस को १५ दिन तक नियमानुसार सेवन करने से चाहे जैसा सोजाक हो निस्सन्देह दूर होता है।

अगर मवाद ज़्यादा आता हो तो पहले नीचे लिखी हुई औषध जब तक मवाद निकलना बन्द न हो जाय तबतक सेवन करे। वह दवा ये है—राल १ तोला, जवाखार १ तोला और मिश्री १ तोला, इन तीनों को एकत्र पीस कर तीन२ माशे प्रातः,मध्याह्न और सायङ्काल में सेवन करे। इस प्रकार एक सप्ताह पर्यंत शीतल जल के साथ सेवन करने से मवाद और जलन का होना शर्तिया अच्छा होजाता है। इसके बाद पूर्वोक्त दवा १५ दिन की बजाय ७ दिन तक बकरी के दूध के साथ सेवन करने से उक्त रोग कभी भी उत्पन्न नहीं होता।

राजवैद्य पं० नाथूराम ओझा, करांची
(बराड़ राजपूताना निवासी)

रक्त बन्द करने पर।

सोंठ ६ माशे, मिरच ६ माशे, पीपल ६ माशे, जीरा २॥ तोले, शुद्ध भिलावे २॥ तोले, रसोत ६ माशे, तज ६ माशे, बड़ीइलायची ६ माशे, नागकेशर १ तोला, धनियाँ १। तोला, खस १। तोला, दारु ६ तोले, असगन्ध २॥ तोले, शतावर २॥ तोले, विदारीकन्द २॥ तोले, मुलैठी १। तोला, कमलगट्टे की गिरी १। तोला, नागरमोथा १। तोला, पेठे के बीजों की गिरी ५ तोले, बादामगिरी ५ तोले, मेंहदी के बीज

२ तोले, शुद्ध शिलाजीत १ तोला, लोहभस्म १ तोला, अभ्रक भस्म ६ माशे और गौ या बकरी के दूध का खोया १ पाव लेवे। इन सबको एकत्र बारीक पीस छान कर और खोये को घी में भूनकर ३ पाव मिश्री की चासनी बनाकर उस में डालदेवे, फिर नीचे उतार कर दो दो तोले के लड्डू बनालेवे। इन में से एक मोदक सुबह और १ शाम को गौ या बकरी के १ पाव दूध के साथ सेवन करे। यह औषध, रक्तपित्त, खूनी बवासीर प्रदर आदि रक्त गिरने वाले रोगों में अनेक बार परीक्षा की गई है। तत्काल असर करती है।

वैद्य जीवनलाल जी जैन, मु० पो०—फतेहपुर (दमोह)

श्लैष्मिक ज्वर और खाँसीपर।

सत्व गिलोय, फुलाई हुई फिटकरी, भुना हुआ नौसादर, सत्व अद्रख और गोदन्ती हरताल की भस्म; इनको समान भाग लेकर बारीक पीस कर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण एक २ माशे की मात्रा से शहद में मिलाकर रोगी को दिनमें ३ बार चटावे। इसके सेवन करने से सम्पूर्ण उपद्रवों सहित नया ज्वर (इन्फ्लूएञ्जा) तत्काल दूर होता है। यह प्रयोग नये ज्वर पर मेरा अनुभव किया हुआ है। खाँसी और साधारण ज्वर में भी यह अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है।

पं० केदारसिंह शर्मा वैद्य, श्रीमृत्युञ्जय-औषधालय, पो० बारी, धौलपुर (स्टेट)

प्रमेह पर।

त्रिफले का चूर्ण १० तोले और गोखुरू का चूर्ण १० तोले इन दोनों को एकत्र कूट पीस कर कपड़छन कर लेवे। इस में से ९ माशे चूर्ण को १ तोला शहद के साथ मिला कर दोनों वक्त सेवन करे तो इस से सर्व प्रकार के प्रमेह दूर होते हैं। इस का सेवन करते समय-तैल, गुड़, खटाई, लाल मिरच और बासी भोजन इन चीजों का परित्याग कर देना चाहिए।

वैद्य मोहनलाल शर्मा, सरतगढ़ (बीकानेर)

सन्निपातनाशक वटिका।

ताम्रभस्म १ तोला, जायफल १ तोला, लौंग १ तोला, अहिफेन ३ माशे, इन सब औषधियों को चार तोले शराब में खरल करके उड़द की बराबर गोलियाँ बनालेवे। सन्निपात रोग ग्रसे को एकतोला इलायची के क्वाथ साथके देवे। इस प्रकार बीस२ मिनटके बाद रोगीका बलाबल विचार कर ४-५ मात्रा तक देवे। इससे शीघ्र ही सन्निपात

दूर होता है और रोगी शीघ्र ही चैतन्य लाभ करता है। जिन मनुष्यों के शरीर में कामशक्ति कम होगई है उन के लिए इसका सेवन अतीव लाभदायक है। ऐसे रोगियों को एक गोली प्रति दिन भैंस या गौ के दूध के साथ सेवन करनी चाहिये। संग्रहणी रोग में मलाई के साथ देनी चाहिए। रिङ्गन वातपर घृत को गरम करके उस के साथ यह गोली प्रयोग करनी चाहिए। यह हमारा अनेक रोगियों पर अनुभव किया हुआ प्रयोग है।

ताम्रभस्म विधि।

शुद्ध ताँबा लेकर उसको रेती से रेतकर चूरा कर ले। फिर उस को इन्द्रायण के फल में भर कर उस पर कपरमिट्टी करके छाया में सुखा लेवे। पश्चात् उस को १५ सेर उपलों की अग्नि दे। इसतरह क्रम से बीस इन्द्रायन के फलों में रखकर अग्नि दे तो ताँबे की उत्तम भस्म होजाती है। यह ताँबे की भस्म पूर्वोक्त औषधि में डालनी चाहिए।

प॰ मोतीराम शर्मा वैद्य मु॰ छापपुर, जि॰—अमृतसर

—०—

अकरकरा।

सं॰—आकारकरभ, हिं॰—अकरकरा, म॰ क॰—अक्कलकरा गु॰—अक्कलकरो, इं॰—पेलिटरीरूट्। अकरकरा चर्वण करने में प्रथम कुछ मिष्ट प्रतीत होता है, पश्चात् मुख में झनझनाहट होने लगती है। मुख में तीक्ष्णता, जिह्वा के अग्रभाग एवं होठ में जलन होती है। कोई कोई इसे "अकरकरा वच" भी कहते हैं। वस्तुतः अकरकरा और वच दोनों भिन्न भिन्न वस्तुयें हैं।

गुण—अकरकरा उष्ण वीर्य्य, बलकारक, चरपरा, प्रतिश्याय, शोथ, एवं वात को नष्ट करता है। (नि॰ र॰)

औषधि के लिए व्यवहार-मूलकमूल (सुमीशद)।

वैद्यक में अकरकरे का व्यवहार—

फिरंगरोग में—शुद्ध पारा ६ माशे, खदिर चूर्ण ६ माशे, अकरकरे का चूर्ण १ तोला और मधु ३॥ तोला, इन सब औषधियों को खरल में एकत्र खूब अच्छे प्रकार घोट कर ७ गोलियां बनाले। नित्य प्रति प्रातःसमय एक गोली जल के साथ सेवन करने से फिरङ्गरोग

(सिफलिस) नष्ट होता है। औषध सेवन करते समय अम्ल (खटाई) और लवण त्याग देने चाहिए। (भा० प्र० फिरङ्गरोग चि०)

वक्तव्य—चरक, सुश्रुत, वाग्भट, धन्वन्तरि और राजनिघण्टु आदि ग्रन्थों में अकरकरे का कहीं उल्लेख नहीं देखाजाता।

नवीन मत—अकरकरा उष्ण, उत्तेजक एवं प्रलेप करने से त्वचा को लाल रंग कर देता है। अकरकरा चर्वण करने से जिह्वा में चिनचिनाहट, मुख गरम और भीजा प्रतीत होता है। जलन एवं लाला का प्रचुरता से मस्राव होता है। अधिक मात्रा में सेवन करने से आँतों की श्लैष्मिक भिल्ली में उत्तेजना होकर रक्तमिश्रित मल का उतरना, बार बार मल त्यागने की इच्छा, सशाहीनता एव नाडी वेगवती होजाती है। अल्पमात्रा में उष्णता और जडता नाशक है।

आर्द्रक (अदरख) के साथ अकरकरे का क्वाथ तन्द्रा एव जडता को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है। अकरकरे का टिंचर शिरोरोग विशेष Neuralgichedache एव कृमिभक्षितदन्त-रोग में शूलनिवारणार्थ व्यवहृत होता है। अधिकतर यह जिह्वा स्तम्भ एव मुखमण्डलस्थ युवा पिडिका (मुहासे आदि) की पीडा में हितकारी है। अकरकरे के टिंचर द्वारा प्रस्तुत लोशन अथवा अकरकरे का शीतकषाय प्रस्तुत करके गलक्षत एवं उपजिह्वा (काग) लटकने पर एव मूक, मिनमिन, गद्गद तथा स्वरभङ्गादि रोगों मे कवल और मुखधावनार्थ व्यवहार करना चाहिए। इसे क्षवथूत्पादक (छींकजनक) कहते हैं इस लिए प्रतिश्याय और पीनस रोग में अकरकरे के चूर्ण की नस्य देनी चाहिए। अकरकरा खण्डमोदकादि रूप में, ध्वजभङ्ग और पुराने शुक्रक्षय की दुर्बलता में सेवन करने योग्य है। अकरकरा लालास्रावकारी और आइडिन से उत्पन्न हुए पुराने विष रोग मे फलप्रद औषध है। (मेटीरिया मेडिका आफ इन्डिया-आर, एन् छोरी, पार्ट ११ पृष्ठ ३४६)

प० रामचन्द्र रामप्रसाद दीक्षित वैद्य,
श्रीधन्वन्तरि औषधालय, सरदार शहर।

—०—

विविध-विषय।

आयुर्वेद की निन्दा—डाक्टर लेफ्टिनेएट कर्नल सदरलैएड ने, इण्डियनमेडिकल गजट में "आयुर्वेदीय चिकित्सा की निन्दा" लिखकर एक प्रबन्ध प्रकाशित कराया है। आप का कहना है—आयुर्वेदीय चिकित्सा अवैज्ञानिक है। हमारी राय में डाक्टर सदर लैण्ड आयुर्वेदीय चिकित्साप्रणाली के विज्ञान को कुछ भी नहीं समझे। यदि वे किसी आयुर्वेदाध्यापक की सेवा में कुछ दिनों तक रह कर चरक, सुश्रुतादि ग्रन्थों का विधिपूर्वक अध्ययन करें तो 'आयुर्वेदीय चिकित्सा निन्दनीय है, या सम्पूर्ण चिकित्सा शास्त्रों का मूल है'—यह बात कहने के अधिकारी हो सकते हैं। डा० सर पारडेल्यूकिस, मार्टिन युक्त राज्य के फिलाडेलफिया के डाक्टर क्लार्क आदि महानुभाव, 'आयुर्वेद शास्त्र' सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा शास्त्र है यह बात स्वीकार करगये हैं। डाक्टर सर पारडेल्यूकिस ने कहा था कि-"हम भारत वर्ष में जितने दिनों अधिक रहेंगे उतना ही इस देश के साथ हमारा परिचय अधिक बढता जायगा और इस देश के वैद्य और हकीमों की चिकित्सा के सम्बन्ध में भी हमें उतनी ही अधिक जानकारी होगी।" डाक्टर क्लार्क भी इस विषय में कह गये हैं कि-"यदि चिकित्सा-शास्त्र में से आधुनिक समस्त ओषधियों और रासायनिक पदार्थों के नाम निकाल कर चरक की चिकित्सा-प्रणाली के अनुसार चिकित्सा की जावे तो चिकित्सकों का कार्य्य बहुत हलका होजाय और पृथिवी मे से पुराने और जटिल रोगों की संख्या बहुत कम होजाय।" डाक्टर सदर लैण्ड ने क्या इन विद्वानों का मत नहीं देखा? जो चिकित्सा हज़ारों वर्षों से भारत में चली आती है और जो नाना प्रकार के घात, प्रतिघातों के द्वारा भी लोप नहीं हो सकी उस के विषय में ऐसा लिखना डाक्टर साहब की अज्ञानता के सिवा और क्या समझा जा सकता है?

राजपूता वैद्य सम्मेलन—राजपूताना प्रान्तिक वैद्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन ३-४ और ५ अप्रैल को आनन्दाद्रि भरतपुर में बड़े समारोह के साथ होगया। सम्मेलन की तैयारियाँ बहुत थोड़े समय में बड़ी शीघ्रता से की गई थीं। तथापि सम्मेलन का उत्सव अच्छा होगया।

प्रथम दिन श्रीगोस्वामि देवकीनन्दनाचार्य्य जी के स्मारक चिकित्सालय का पञ्चम वार्षिकोत्सव मनाया गया। सभापति

का आसन महाराजा भरतपुर ने सुशोभित किया था। आपने अपने भाषण में आयुर्वेदचिकित्सा का अन्य चिकित्साओं की अपेक्षा विशेष महत्त्व दिखाते हुए भारत में सर्वत्र आयुर्वेदीय चिकित्सा के प्रचार की आवश्यकता बतलाई। आपने कहा-"यदि औषधि चिकित्सा, आयुर्वेदीय चिकित्साप्रणाली के अनुसार और शल्यचिकित्सा, डाकृरी चिकित्साप्रणाली से की जाय तो इस से देशवासियों का बड़ा उपकार हो सकता है।"

आप ने अपने राज्य में सर्वत्र डाक्टरी अस्पतालों के साथ आयुर्वेदीय-चिकित्सालय स्थापित कर दिये हैं। इस के लिए आप को सम्मेलन की तरफ से विशेष धन्यवाद दिया गया।

दूसरे दिन वैद्य-सम्मेलन का उत्सव जयपुर के वैद्यरत्न पण्डित लक्ष्मीराम जी स्वामी के सभापतित्व में आरम्भ हुआ। कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए और कुछ वक्तृतायें हुईं। इस सम्मेलन का सारा श्रेय गोस्वामि श्रीमद्वल्लभाचार्य्य जी महाराज और महन्त श्रीजगन्नाथदास जी को है, जिन के विशेष साहाय्य और यत्न से यह सम्मेलन सफलता को प्राप्त हो सका।

गवालियर राज्य में आयुर्वेदीय शिक्षा का प्रचार—हमारे भारतवर्ष की आयुर्वेदिक शिक्षा का गौरव किसी पर छिपा नहीं है। चरक, सुश्रुत आदि वैद्यक के प्राचीन ग्रंथों को डाकृरी, यूनानीवाले सभी ने बड़े महत्व से माना और जाना है। यद्यपि बड़े बड़े नगर व शहरोंमें अब डाकृरी चिकित्सा के लिए बड़ी तैयारी के साथ अति उत्तम प्रबन्ध मौजूद है जिन से प्रजा को निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंच रहा है तथापि छोटे छोटे गांव व कस्बों के निवासियों का इलाज तथा स्वास्थ्यरक्षा केवल वैद्यों ही की योग्यता और सहारे पर निर्भर है। गवालियर राज्य में यहां की राजधानी लश्कर में आयुर्वेदिक औषधालय के साथ एक आयुर्वेदीय पाठशाला भी-पब्लिकइन्स्ट्रक्शन की ओर से गवालियर के राजवैद्य पण्डित रामकृष्ण वेणीमाधवशास्त्री, उपकारक की अध्यक्षता में-करीब ३साल से खुली हुई काम कर रही है। जिस में अबतक आयुर्वेदोपाध्याय, शास्त्री और आचार्य परीक्षा के लिए केवल संस्कृत पढ़े हुए उम्मेदवार लिये जाते हैं और अब तक ८ उम्मेदवार पास होचुके हैं। किन्तु सर्वसाधारण के सुभीते और पब्लिक के फायदे के लिए इसी के साथ एक वैद्य परीक्षा क्लास इस साल से और खोलदिया गया है जिस में हिन्दी

मिडिल पास उम्मेदवार भरती किये जावेंगे। जिन को सब प्रकार की शिक्षा हिन्दी भाषा में दी जावेगी और योग्य विद्यार्थियों के लिए गुञ्जायश के अनुसार वजीफा भी दिया जावेगा। यह लोग केवल दो साल तालीम पाकर परीक्षा पास कर सकेंगे। इस प्रकार गवालियर राज्य की प्रजा की चिकित्सा के सुभीते और स्वास्थ्यरक्षा के लिए जो प्रबन्ध किये जारहे हैं उस के लिये गवालियर गवर्नमेंट का प्रबन्ध यथार्थ में सराहनीय है। (जयाजी प्रताप।)

क्षय का कारण—स्वास्थ्य कमीशन के डाकूर बेंटली साहब ने अपनी वक्तृता में इस देश में क्षयरोग के अधिक होने का कारण खाद्य पदार्थों पर मक्खियों का बैठना बताया है। उनका कहना है कि हलवाइयों की दूकानों पर सदा ही मक्खियां भिनभिनाया करती हैं। मक्खियां सड़े हुए और दुर्गन्धित स्थानों में पैदा होती हैं। उन के सर्वाङ्ग में रोगोत्पादक जीवाणु लिपटे रहते हैं। यह मक्खियाँ उन बीजाणुओं को मिठाई आदि खाद्य द्रव्यों के ऊपर छोड़ आती हैं। एक बाल्टी दूध के ऊपर एक मक्खी एक मिनट तक बैठ कर दो हजार रोगों के बीजाणु और आध घण्टे बैठकर २ लाख ५० हजार रोगों के बीजाणुओं को छोड़ आती है।

मक्खियों के द्वारा कालरा, टायफाइड फीवर आदि रोगों के बीजाणु तो व्याप्त होते ही हैं किन्तु क्षयकी प्रबलता भी मक्खियों द्वारा होती है। अतएव दूकानों पर खाद्य पदार्थ जिस से उघड़े न रहें इस पर कर्तृपक्ष की कड़ी दृष्टि रहनी चाहिए।

भारत में विलायती औषधियोंकी उपज-यूरोपीय महायुद्ध के समय यूरोप से औषधियों के आनेमें असुविधा होने के कारण भारत के अनेक स्थानों में औषधियां उत्पन्न करने की व्यवस्था की गई है। उस के फल से इस समय यहां बेलेडोना, इपिकाकोहाना पडोफिलाम, नक्सवोमिका, कौनैन प्रभृति कितनी ही औषधियों की प्रचुरता से उपज होरही है। भारतवासियों को इस विषय में और भी अधिक उद्योग करना चाहिए।

बड़नगर जैन औषधालय की सहायता—हमें यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि उक्त औषधालय को श्रीमान् हिज हाइनेस महाराजा गवालियर ने ३०) रुपया मासिक की सहायता देना स्वीकार किया है।

प्राप्तिस्वीकार।

चोंसोबूँटी गुणसंग्रह—इस पुस्तक को गुरुकुल-कांगड़ी के वैद्यविशारद पण्डित ज्ञानचन्द्र वैद्यभूषण ने संग्रह किया है। इसमें चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीतसंहिता, धन्वन्तरि, भावप्रकाश, शालिग्राम निघण्टु आदि ग्रन्थों से ब्राह्मी के गुण और उस के विविध प्रयोग संग्रह कर लिखे गये हैं। पुस्तक साधारणतः अच्छी है। चार आने में ग्रंथकर्ता के पास से मिलती है।

चन्द्रोदय मकरध्वज—लेखक, स्वर्गीय राधावल्लभजी वैद्यराज। प्रकाशक—बाँकेलाल गुप्त। मैनेजर—धन्वन्तरि कार्य्यालय, विजयगढ़, अलीगढ़। मूल्य।)

इसमें चन्द्रोदय (मकरध्वज) प्रस्तुत करने की विधि, उस के गुण और प्रत्येक रोग पर उस के भिन्न भिन्न अनुपानों का वर्णन आदि विषय विस्तृतरूप से लिखे गये हैं। भाषा सीधी सादी है। पर समस्त पुस्तक में ऐसी कितनी ही भद्दी अशुद्धियां रह गई हैं जो सर्वथा अक्षम्य हैं। तथापि पुस्तक वैद्यों और मकरध्वज प्रेमियों के बड़े काम की है।

सौ वर्ष जीवित रहनेके सुगम उपाय—इस के लेखक-सी० एस० द्विवेदी, सुल्तानपुरा, आगरा छावनी हैं। उन्हीं के पास से यह पुस्तक एक आने में मिलती है।

इस केवल छोटे छोटे २२ पृष्ठों की पुस्तक में प्राकृतिक ढंग से स्वास्थ्यसम्बन्धी कितने ही विषयों का उल्लेख किया गया है। प्रत्येक विषय अति संक्षिप्तता से लिखे जाने के कारण पुस्तक की उपयोगिता कम होगई है तो भी साधारण मनुष्य इस के द्वारा स्वास्थ्य-सम्बन्धी कितनी ही बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीमती निवेदिता-लेखक, बाबू अवधकिशोर नारायणसिंह, छितरौर, जि० मुंगेर। प्रकाशक—लक्ष्मीप्रेस गया। मूल्य।-)

यह उन्हीं श्रीमती भगिनी निवेदिता (अँगरेज महिला) का पवित्र चरित है कि जिन्हों ने स्वामी विवेकानन्द जी का उपदेश ग्रहण कर के अपना समस्त जीवन आध्यात्मिक उन्नति और भारत के हितके कामों में अर्पण किया था। भाषा बुरी नहीं है। प्रत्येक हिन्दी भाषाभाषी मनुष्य को यह पुस्तक मँगा कर पढ़नी चाहिए।

—०—

प्रेरित पत्र।

महोदय,

वाग्भट संहिता शारीरस्थान में लिखा है कि जिस मनुष्य के मल मूत्र थूक और वीर्य्य जल में डूब जायँ उस की १ मास में मृत्यु हो जाती है। और बातें तो हम ठीक समझते हैं किन्तु वीर्य्य के जल में डूबने से मृत्यु होती है यह बात समझ में नहीं आती। कई डाक्टर जल में डूब जाने वाले वीर्य्य को उत्तम, पुष्ट कहते हैं और जो तैरता है उसे व कमज़ोर बतलाते हैं। कारण वीर्य्य में जीव होता है इसलिए सजीव वीर्य्य ही (जल में डूब जाता है और निर्जीव तैरता रहता है। जैसे सजीव गेहूं जल में डूब जाता है और निर्जीव (सड़ा, घुना) जल पर तैरता रहता है। दूसरे बिना तैरने वाला मनुष्य जीव होते हुए जल में डूब जाता है और मरने (निर्जीव होने) के पश्चात् वह तैरने लगता है। इस लिए हम समझते हैं कि सजीव वीर्य्य (उत्तम वीर्य्य) जल में अवश्य डूबजाना चाहिए। इस विषय में आप अपनी सम्मति भी लिखिये और इस प्रश्न को वैद्य में प्रकाशित कर दीजिए, जिससे दूसरे विद्वान् वैद्यों की सम्मतियाँ भी मालूम होजायँ। इस विषय का अवश्य निर्णय होना चाहिए।

कविराज बाबू ब्रह्मानन्द रईस, बरौन पो०-पनागर जिला जबलपुर।

आयुर्वेदीय पाठशाला—अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आज मगढ़ में कुछ सज्जनों की विशेष सहायता से संस्कृत पाठशाला के अन्तर्गत एक आयुर्वेदीय शिक्षाविभाग खोलागया है। इसमें आयुर्वेदाचार्य्य पं० भगवतीप्रसाद जी पाठक अवैतनिकरूप से प्रधानाध्यापक का कार्य करेंगे। यहां निखिलभारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के नियमानुसार ही शिक्षा दी जायगी। इस पाठशाला के विद्यार्थी व्याकरण न्यायादि अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन करते हुए भी आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। विद्यार्थियों को उन की योग्यतानुसार कुछ छात्रवृत्ति भी दी जायगी। अतः आयुर्वेदाध्यायी विद्यार्थियों को इस पाठशाला में शीघ्र ही भर्ती होना चाहिए। एक आयमगढ़निवासी

श्री आयुर्वेदीय धर्मार्थ औषधालय काशी का उद्देश्य।

(१) समस्त भारतवर्षीय मनुष्य मात्र को बिना मूल्य औषधि देना। जगह जगह पर धर्मार्थ औषधालय स्थापित करना और लुप्त प्राय आयुर्वेदीय वैद्यक का पुनरुद्धार करना।

(२) निष्काम वैद्यक सेवा करनेवाले वैद्यों को तैयार करना।
(३) हर एक प्रकारकी औषधि पाठानुसार शुद्ध बनाई
( ) यह धर्मार्थ औषधालय का खर्चा जहांपर
किया जायगा वहां पर पैसा फण्डकी पेटी घुमाकर पूरा
जायगा।
(५) आयुर्वेदीय धर्मार्थ औषधालय के पैसा फंड की
खोलने का और इस पैसे का हिसाब रखने का
नगर के विश्वासी सद्गृहस्थ को दिया जाया जायगा।
(६) जिस गांव के सद्गृहस्थ धर्मार्थ औषधालय के खर्च पूरा
(का भार उठावेंगे। वहांपर औषधालय स्थापित कर
) प्रत्येक गांव के योग्य सद्गृहस्थको धर्मार्थ देनेके लिये
चार प्रकार की अति आवश्यक औषधि पैकिंग और
खर्च के लिये ६ आने का टिकट भेजने पर पारसल से
दी जाती है।
(८) आरोग्यसम्बन्धी ज्ञानका प्रचार करना और अनुकूलता होने
पर एक वैद्यक मासिकपत्र निकालना।
(९) इस औषधालयको एक पैसा दान देनेवाला सद्गृहस्थ
दिनमें दस मनुष्यों को धर्मार्थ औषधि देनेका पुण्य
कर सकता है।
(१०) इस औषधालय का कार्य प्रीतिपूर्वक किसी की उपेक्षा
बिना परम कृपालु परमात्मा की सहायता से किया जाता है।

आप का सेवक-वैद्य विशनजी,

श्री आयुर्वेदीय धर्मार्थऔषधालय काशी।

वैद्य की आवश्यकता।

म्यूनिसिपल कमेटी से सहायता प्राप्त
में एक विद्वान् अनुभवी सुयोग्य वैद्य की आवश्यकता है जो
सेवा के उच्च आदर्श को भले प्रकार आदर करता हुआ गरीबों
चिकित्सा सप्रेम निःस्वार्थ भाव से (केवल वेतन मात्र से सन्तुष्ट
करने के लिये तैयार हो। अपनी दक्षता के विवरण सहित
आदि के लिए पत्र व्यवहार करें।

वैद्य प्र० वकर्तृसमिति, परोपकारी औषधालय, ब्यावर-राजपूताना

—०—

आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय।

१०) से अधिक की औषधियाँ एक साथ खरीदने से

१०) रु० सैकड़ा कमीशन दिया जाता है।

चन्द्रोदयमकरध्वज	मू० फी तोला	२४)
रससिंदूर	,,	४)
स्वर्णमालिनीवसन्त	,,	२४)
लघुमालिनीवसंत	,,	४)

भस्में।

अभ्रकभस्मसहस्रपुटित	,,	२४)
अभ्रकभस्म शतपुटित	,,	५)
अभ्रकभस्म दशपुटित	,,	२)
रौप्यभस्म	,,	८)
कांत लोहभस्म	,,	१०)
लोह भस्म नं० १	,,	४)
लोह भस्म नं० २	,,	२)
मंडूर भस्म	,,	१)
हरिताल भस्म (तबकी)	,,	१०)
गोदन्ती हरितालभस्म	,,	॥)
ताम्र भस्म	,,	१)
सीसक भस्म (नागरस)	,,	१)
रंग (बंग) भस्म	,,	१)
सुवर्ण माक्षिक भस्म	,,	५)
यशद भस्म	,,	॥)
खर्पर भस्म	,,	१)
प्रवाल (मूँगा) भस्म	,,	१)
मौक्तिक भस्म	,,	३०)
कपर्दिक भस्म	,,	।)
शंख भस्म	,,	।)
शुक्ति (मोती की सीप) भस्म	,,	।॥)

शोधितद्रव्य।

शोधित पारा	फी तोला	॥)
सिंगरफ से निकाला हुआ पारा		१)
शोधित मैनशिल	,,	।)
शोधित गंधक	,,	।)
शोधित शिलाजीत	,,	१।)
शोधित हिंगुल	,,	॥)
शोधित हरिताल	,,	।)
पारे और गंधक की कजली		१)

आसव अरिष्ट।

द्राक्षासव	फी शीशी	१)
लोध्रासव	,,	१)
दशमूलासव	,,	१)
कुमार्यासव	,,	१)

औषधियों के तेल।

विरोजे का तेल	फी तोला	।-)
चन्दन का तेल	,,	॥।)
बादाम का तेल	,,	।)
मगज कद्दू का तेल	,,	।)
नीम का तेल	फी सेर	२)

बाबूने का तेल	,,	२)
मेंहदी का तेल	,,	५)
दारचीनी का तेल फी शीशी		॥)
इलायची का तेल	,,	।)
पीपरमेंट का तेल	,,	॥)
कपूर का अर्क	,,	।≈)
धनिये का तेल	फी सेर	५)

वनौषधियें।

शिवलिंगी बीज फी तोला		१)
ब्राह्मी पत्र	फी सेर	४)
शंखपुष्पी (पञ्चाङ्ग)	,,	४)
साधारण भांगरा	,,	१)
चिरचिटा (ओंगा)	,,	१)
सफेद कनेर	,,	४)
दुद्धी	,,	१)
अधाहुली	,,	१)
हिरनखुरी	,,	२)
ब्रह्मदण्डी	,,	॥)
जलनीम	,,	१)
बड़ाल	,,	१)
नील	,,	१)
करञ्ज बीज	,,	॥)
गूमा	,,	१)
सालपर्णी	,,	२॥)
पृष्ठपर्णी	,,	२॥)
थूहर	,,	२)
रास्ना	,,	१)
पियावांसा	,,	१)
कुडा	,,	१)
नागरमोथा	,,	१)
चौलाई	,,	॥)
काले धतूरे के बीज फी० तो०		२)
अग्नि मथ (अरणी) फी सेर		१)
कुम्भेर	,,	२)
पांडर	,,	२)
कटेरी	,,	॥)
बडी कटेरी	,,	२)
श्योनाक (अरलू)	,,	२)
विधारा	,,	२)
सतावर	,,	२)
अश्वगंध	,,	२)
सेमल की मसली	,,	१)
सफेद मसली	,,	१२)
सालम मिश्री	फी तोला	।)
तालमखाना	फी सेर	२)
सकाकुल मिश्री	,,	६)
पुनर्नवा	,,	१)
निर्विषी (पंचाग)	,,	१)
निर्विषी कन्द	फी तोला	॥)
दशमूल	फी सेर	२)
विदारीकन्द	,,	४)
वाराहीकन्द	,,	४)
खिरेंटी	,,	॥)
कंघी	,,	॥)
सहदेई	,,	१)
विष्णुकांता	,,	२)
पातालगरुडी	,,	४)
दन्ती	,,	४)
प्रियगू	फी तोला	॥)
रेणुका	फी सेर	४)
अर्जुन की छाल	,,	२)
वरुणछाल	,,	२)
अनन्तमूल	,,	३)
उसवा	,,	१०)
वासा (अडूसा)	,,	१)
निर्मली बीज	फी तोला	।)
त्रिफला	फी सेर	॥)

इन के सिवा आर्डर आनेपर और वनौषधियें भी भेजी जासकती हैं।

पता—वैद्य शंकरलाल हरिशंकर।

आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय, मुरादाबाद।

आयुर्वेदोद्धारक औषधालय की-

परीक्षित औषधियां ।

सर्व प्रकार के रक्तविकारों पर

❀ अमृत संजीवनी वटिका ❀

इन को सेवन करने से सब प्रकार की खुजली, दाद, चकत्ते, रुधिर विकार, वातरक्त, उपदंश (आतशक, गर्मी) अंगोंका भग होना, शरीर में छिद्रों को होना, नाक का टेढ़ा पड़जाना, हाथ पावों का पसीजना, त्वचा के रोग, 'कोढ़, शरीर का 'फूटना, पारे के विकार और सब प्रकार के दुष्ट घाव आराम होते हैं। नवीन रुधिर उत्पन्न होता है। मुख पर कांति और शरीर में फुर्ती उत्पन्न होती है। दस्त खुलासा होता है। मू० १) डिब्बी। डा० म०।)

सर्व प्रकार के ज्वरों पर।

❀ अजयावटिका ❀

यह गोली सब प्रकार के नये पुराने ज्वरों को दूर करती है। जिन लोगों को कोनेन माफिक नहीं पड़ती उनके लिये यह बहुत अच्छी है। इस से मलेरिया, विषमज्वर, एकतरा, तिजारी, चौथिया, सर्दीलगकरआनेवाला ज्वर प्लीहा और यकृत् युक्तज्वर शीघ्रदूरहोता है। मू०१) रु०शी०डा म०।)

❀ महालाक्षादि तैल ❀

जीर्ण ज्वर की प्रसिद्ध औषध है। इस को व्यवहार करने से बहुत दिनों का पुराना ज्वर, ज्वर की दाह, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, हड्डी और सन्धियों की पीड़ा, शरीर का टूटना, खुजली, और असमर्थता दूर होती है तथा वायु और कफ के रोग, पसली का शूल, कमर व पीठ की पीड़ा, घुटनों का दर्द, शिर का दर्द शरीर का कांपना, मृगी मूर्छा, पागलपना, भ्रम और प्रसूतरोग में यह अत्यन्त हितकारी है। मूल्य २० तोले की शीशी २) रुपया डाक महसूल ।≡)

❀ योगवाही वटिका ❀

इन को सेवन करने से ज्वर, खांसी, श्वास, अरुचि, अजीर्ण, भूख का न लगना, भोजन का अच्छे प्रकार न पचना, शिर का घूमना, आलस्य, नींद का नहीं आना, दिमाग की खुश्की, प्लीहा, यकृत, पांडु, कामला, बवासीर, कब्ज, प्रमेह, प्रतिश्याय और प्रसूता स्त्रियों के ज्वरादि रोग नष्ट होते हैं यह गोली चढ़े बुखार को उतारती हैं और आने वाले ज्वर को रोकती हैं। यह बालक वृद्ध स्त्री सब ही को परमोपयोगी हैं। मू० ४० गोली की शी० का १) रु० डा० म०।)

❀ क्षुधाप्रदीपिनी वटी ❀

इसको सेवन करने से सब प्रकार की मंदाग्नि और अजीर्ण तत्काल शांत हो जाता है। तथा जठराग्निदीपन होकर क्षुधा बढ़ती है। किया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है। एवं अम्लपित्त, खट्टी डकारों का आना भोजन का अच्छे प्रकार नहीं पचना, अफारा; पेटमें गड़गड़शब्दकाहोना, मुख से पानीका गिरना, अरुचि, सब प्रकारकी उदरकी पीड़ा, नाभिशूल दस्त और कैका होना, संग्रहणी, अतिसार हैजा और प्लीहा आदि रोग नष्ट होते हैं। दस्त खुल कर आता है। मूल्य १) रु० डिब्बी डा०म०)

❀ च्यवनप्राशावलेह ❀

यह राजयक्ष्मा और जीर्णज्वर की प्रसिद्ध औषधि है। इससे स्त्री, पुरुषों के धातुदोष, क्षय, खांसी, श्वास, ज्वर आदि रोग दूर होकर शरीर में अपूर्व बल और तरुणता उत्पन्न होती है। दो सप्ताह सेवन करने योग्य का दाम २) डा० म० ।≈) आ०।

* चन्दनादि तैल ❀

यह तैल जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, शरीर का टूटना, बेहोशी, पागलपन, दिमाग की कमजोरी, घबराहट, खुश्की, खुजली, दाह, चकत्ते, फुंसियें, शिर दर्द, सूजन और रक्त पित्तादि रोगों को दूर कर के शरीर में अपूर्व बल और फुर्ती उत्पन्न करती है मू० १) रुपये शीशी डा० म० ॥≡)

❀ ब्राह्मी घृत ❀

(मृगी और उन्माद की परीक्षित औषधि)

इस घृत को सेवन करने से सब प्रकार के मानसिक रोग दूर हो कर चित्त यथा अवस्था में स्थित होता है तथा मृगी पागलपना, बुद्धि की मन्दता, भ्रम, मूर्छा और उन्माद प्रभृति समस्त रोग दूर होते हैं, नशीले पदार्थों के सेवन करने से जिन मनुष्यों की बुद्धि और स्मरण शक्ति मन्द हो गई है उन के लिये यह परमोपयोगी औषधि है। मू० १॥) रुपया शीशी डा० म० ।≈)

❀ योगराजगूगल ❀

योगराजगूगल आमवात रोगों की प्रसिद्ध औषधि है। इसको सेवन करने से सन्धिवात (शरीर के समस्त जोड़ों की पीडा) आमवात, (गाँठ, कमर व पीठ की पीडा) पसली कंधों का दर्द तथा सब प्रकार की वायु की पीडा दूर होती है। मू० १) रु० डि०। डा० म० ।)

Reg. No A. 687

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिकपत्र

सम्पादक-शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ७	मुरादाबाद, मई १९१९	संख्या ५

विषय-सूची ।

प्रकाशक-हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद ।

वार्षिक मूल्य २)

Printed by Kailaschandra
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD.

* वैद्य के नियम *

(१) 'वैद्य' प्रति मास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १।) रु० है।

(३) 'वैद्य' नमूने में केवल एक अंक भेजा जाता है। दूसरा बिना ग्राहक होने की सूचना मिले नहीं भेजा जाता। नमूने में कोई सा अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिए जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए जिस से उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँच कर भेजा जाता है, किन्तु तो भी बहुत से ग्राहक किसी अंक के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं, इस का कारण रास्ते की असावधानी ही हो सकती है। जिन महाशयों को जो अंक न मिले वह दूसरे अंक के पहुंचते ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्व प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस, मुरादाबाद के पते से भेजने चाहिएँ।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ७ | मुरादाबाद, मई १९१८ | संख्या ५

आयुर्वेद वैभव

(लेखक—श्रीयुत कविकुमार पण्डित महेश्वरप्रसादजी शास्त्री साहित्याचार्य)

(१)

उठो ! वैद्य-विद्या प्रचारो प्रचारो ।
गुणों की महत्ता विचारो विचारो ॥
कला डूबती है बधारो उधारो ।
दशा दैन्य छूटे सुधारो सुधारो ॥

(२)

उसे पूर्वजों ने तुम्हारे बनाई ।
बना बोध विज्ञान-लीला जनाई ॥
सभी भेद भारी उन्होंने दिखाये ।
परीक्षा किये योग सारे सिखाये ॥

(३)

यहां दिव्य भैषज्य हैं जन्म पाते ।
विचित्र क्रिया के फलोंको दिखाते ॥
अहो ! देश से क्या दवा भीगई है ! ।
सभी सिद्ध सम्पत्ति खोभी गई है ॥

(४)

करें कर्म से ईश उत्पन्न देही।
हमारे हितैषी सभी भाँति वेही॥
चलाते जगच्चक्र को निर्विराम।
वही क्षेम के धाम श्रीराम नाम॥

(५)

तुम्हारे लिए सौम्य,सम्पत्ति सारी।
बनाके दिया सत्व पूर्णाधिकारी॥
सभी हाथ हाथों वृथा खोरहे हो।
जगे तो,उठे क्या ? सभी सोरहे हो॥

(६)

तुम्हारा यहां क्या ? तुम्हारा रहा है।
मिले क्यों? भला जो किसीने चहा है॥
अहो ? दास्यकी पाशकी वासनायें।
भला क्यों न? स्वातन्त्र्य सत्ता नशायें॥

(७)

तुम्हें है मिली विश्व में दिव्य काया।
करो कार्य जो चित्त में चारु भाया॥
सभी खेल है अन्त संसार सारा।
रहेगी बनी कीर्ति की नित्यधारा॥

(८)

इसी से उठो नींद को छोड़ देवो।
कड़े कर्म, के योग में भाग लेवो॥
उठो एकता की पताका उड़ावो।
जले जन्मभू के हिये को जुड़ावो॥

(९)

जगो वैद्य के शास्त्र के तत्व छानो।
बनो सिद्धशास्त्री क्रिया भेद जानो॥
रहें लोग आरोग्य जो देश वाले।
बनें पौरुषी कर्म भी हों निराले॥

(१०)

इसी से भलाई भली देश की हो।
मिले स्वस्थता हीनता क्लेश की हो॥
यही ईश का दत्त अद्वैत रत्न।
यही देह के स्थैर्य के हेतु यत्न॥

(११)

बड़े धन्य थे धीर प्राचीन सिद्ध ।
रची वैद्य-विद्या जिन्हों ने समृद्ध ॥
उसी को बढ़ाना पढ़ाना सिखाना ।
प्रमा पूर्ण प्रत्यक्षता से दिखाना ॥

(१२)

इसी श्रग्र कर्तव्य का लक्ष्य रक्खो ।
सुधा शक्ति का स्वस्थ हो स्वाद चक्खो ॥
भला ? पौरुषी को असाध्य क्या है ।
यही साहसी का जिसे चित्त चाहे ॥

दिनचर्य्या ।

स्वास्थ्य की इच्छा करने वाले मनुष्य ब्राह्ममुहूर्त्त में अर्थात् चार घड़ी के तड़के शय्या को त्याग देवें । बहुत सवेरे उठने से स्वास्थ्य की रक्षा और दीर्घायु प्राप्त होती है । स्वास्थ्य की हानि करने वाले संसार में जितने विषय हैं उन में प्रातःकाल निद्रा का सेवन भी एक प्रधान विषय है । प्रकृति के नियमों का पूर्णरूप से पालन करने वाले पशु-पक्षियों पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि वे बहुत सवेरी जागते हैं अतः स्वास्थ्य की चाहने वाले मनुष्यों को बहुत सवेरी ही उठना चाहिए । उठते ही प्रथम भगवान् का नाम स्मरण करना चाहिए । इस से मन में दृढ़ता और शान्ति उत्पन्न होती है एवं अल्प कारण से मन विचलित नहीं होता । पश्चात् प्रातःकालीय चिन्ता से निवृत्त होकर शौच कार्य्य में प्रवृत्त होना उचित है ।

यहाँ शरीर-विषयक चिन्ता का अर्थ यह है कि शरीर को स्वास्थ्य कैसा है ? पहले दिन किया हुआ आहार जीर्ण हुआ है या नहीं इत्यादि । प्रातःकाल की शरीर-चिन्ता के ऊपर ही सम्पूर्ण दिन का कर्त्तव्य निर्भर है । शरीर के स्वस्थ होने पर दिन के समस्त कार्य्य स्वस्थ मनुष्य के समान करने चाहियें । किन्तु शरीर में अजीर्ण

आदि के होने पर या अन्य किसी प्रकारसे शरीर के अस्वस्थ होने पर स्नान, आहार, परिश्रम आदि शारीरिक कार्य विशेष विचार पूर्वक करने चाहिएं। पश्चात् शौच कार्य से निवृत्त होना चाहिए। प्रतिदिन प्रातःकाल यथोचित रूपसे मलोत्सर्ग अर्थात् दस्त का खुलासा होना ही स्वास्थ्य का प्रथम लक्षण है। तदनन्तर दन्त-धावन और जिह्वानिर्लेखन करना चाहिए। दतौन के लिये कषैले, मधुर, कड़वे और चरपरे रसवाले वृक्षों की दतौन (लकड़ी) लेनी चाहिये। नीम, खैर, मौलसिरी, करञ्ज, कनेर, आक, अर्जुन आदि वृक्षों की दतौन भी व्यवहृत होती है। सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा और आमला इन के चूर्ण को मधु, तैल और लवण के साथ मिला कर दांतों पर मलना चाहिए। किन्तु जिससे दन्तमांस अर्थात् मसूड़े आहत न हों इस पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार दन्तधावन करने से जिह्वा, दांत और मुख का मैल बाहर होता है। मुख की दुर्गन्ध और विरसता नष्ट होती है। दाँत साफ होते हैं और भोजन में रुचि उत्पन्न होती है। गले के रोग, तालुरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, मुख के क्षत, श्वास, खाँसी, हिचकी, वमन, मूर्च्छा, मदात्यय, अर्दित, कर्णशूल, दन्तरोग और हृदयरोग के होने पर दतौन कभी नहीं करनी चाहिए। ऐसा होने पर पूर्वोक्त चूर्ण से दाँतों को मार्जन करना चाहिए।

दन्तधावन के पश्चात् सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, शीशा अथवा लोहे की बनी हुई जीभी के द्वारा जिह्वा को घिसना चाहिए। इस से जिह्वा का मैल और मुख की दुर्गन्ध दूर होती है। इस के बाद मुख में गण्डूष धारण करने के लिए आचार्य्यगण उपदेश करगये हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल सरसों या तिल का तेल गण्डूष मुख में धारण करने से हनु (ठोडी) में बल बढ़ता है, स्वर सुन्दर होता है; भोजन में रुचि उत्पन्न होती है, ओष्ठ फटने का भय नहीं रहता, दन्त शीघ्र नष्ट नहीं होते, किन्तु दाँतों की जड़ें मजबूत होजाती हैं और दन्तशूलादि सर्व प्रकार के रोग नष्ट होते हैं। इस प्रकार करने से अधिक अम्ल पदार्थों के खाने पर भी दाँत खराब नहीं होते और अति कठिन पदार्थ भी चबाकर खाये जा सकते हैं। वास्तव में तैल का गण्डूष धारण करना अतीव उपकारी है। किन्तु दुःख का विषय है कि गण्डूष का रिवाज इस समय देश में कहीं भी प्रचलित नहीं है। जो हो, प्रतिदिन मुख में तेल का एक गण्डूष धारण करना

विशेष लाभप्रद है। तेल का गण्डूष १५ मिनट तक धारण करना चाहिए।

अनन्तर सम्पूर्ण शरीर में तेल की मालिश करके स्नान करना चाहिए। जिस प्रकार घड़े पर वार वार तेल चुपड़ने से, चमड़े के ऊपर वार वार तेल मलने से, गाड़ी के धुरे पर तेल मलने से वे दृढ़ और भार सहने को समर्थ होते हैं उसी प्रकार तैलाभ्यङ्ग के द्वारा शरीर दृढ़ और त्वचा उत्तम होती है एवं शरीर में वायुरोग उत्पन्न नहीं होते। मस्तक को तेल के द्वारा भीजा रखने से शिरःशूल उत्पन्न नहीं होता। खालित्य (गञ्ज) पलितरोग (वालों का पकना) निवारण होता है और वाल नहीं गिरते। एवं वाल सुदीर्घ, कृष्ण वर्ण और दृढ़ होते हैं। मस्तक की अस्थियें दृढ़ और बलवती होती हैं। इन्द्रियों में प्रसन्नता, त्वचा सुन्दर और उज्वल होती है। निद्रा सहज में आती है।

नित्यप्रति कानों में तेल डालने से वायुजनित कर्णरोग नहीं होते। मन्यास्तम्भ, (नाड़ का जकड़ जाना) किम्वा हनुग्रह (ठोड़ी का जकड़ जाना) ऊँचे से सुनना, और वधिरता आदि रोग उत्पन्न नहीं होते।

तेल त्वचा के लिए अत्यन्त हितकारी है। इसलिए नित्यप्रति नियमित रूपसे शरीर की समस्त त्वचा के ऊपर तेल की मालिश करनी चाहिए। नित्यप्रति तेल की मालिश करने वाले मनुष्य के शरीर में किसी प्रकार का आघात (चोट) लगने पर भी अधिक पीड़ा नहीं होती। वलप्रयोग या अत्यन्त परिश्रम का काम करने पर भी शरीर सहसा पीडित नहीं होता। अभ्यङ्ग करने वाले मनुष्य के शरीर को जरा सहज में जर्जरीभूत नहीं कर सकती।

दोनों पाँवों में प्रतिदिन तेल की मालिश करने से पैरों का फटना, शुष्कता, रूक्षता, शिथिलता और ग्लानि तत्काल नष्ट होती है। दोनों पांव कोमल सवल और दृढ़ होते हैं। दृष्टिकी शक्ति वढ़ती है, वायु शान्त होती है और गृध्रसी (रांगन) रोग नहीं होता। एवं पैरों की शिरा और स्नायुओं में संकोच नहीं होता।

शरीर में आमदोष के होने पर अजीर्णरोग में और वमन, विरेचन के पश्चात् तेल का मलना निषिद्ध है। कारण इस से अग्निमान्द्यादि अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न होसकते हैं।

तेल मर्दन के पश्चात् स्नान करना उचित है। स्नान पनिग्रता-

जनक, शुक्रवर्द्धक, आयुवर्द्धक, श्रम, स्वेद और मलनाशक, बलकारक एवं अत्यन्त ओजोवर्द्धक है। स्नान करने से दाह और पिपासा दूर होती है। समस्त इन्द्रियें शुद्ध होती हैं, मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती है और रुधिर शुद्ध होता है।

साधारणतः सदैव शीतल जल के द्वारा स्नान करना श्रेष्ठ है। परन्तु जिन को शीतल जल अनुकूल नहीं पड़ता उन को गरम जल से स्नान करना चाहिए। पर गरम जलसे शरीर के नीचे भाग को ही धोना चाहिए, किन्तु शिर के ऊपर गरम जल कभी नहीं डालना चाहिए। कारण कि मस्तक पर गरम जल डालने से बाल और नेत्रों के बलका क्षय होता है। इसलिए मस्तक पर शीतल जल ही डालना चाहिए और बाकी के समस्त अंगों को गरम जल से धोना चाहिए। पर अत्यन्त वात-श्लेष्मप्रकोपजनित रोग की अवस्था में उष्ण जल को मस्तक पर डालने में कुछ हानि नहीं है।

अत्यन्त शीतकाल में अत्यन्त शीतल जलसे स्नान करने से कभी कभी वायु और कफ अधिक कुपित होजाते हैं और उष्णकाल में अत्यन्त उष्ण जल से स्नान करने से रक्त और पित्त कुपित होते हैं, इसकारण उक्त दोनों ही विधि वर्जनीय हैं।

जिनके शरीर में वायु और कफ का प्रकोप अधिकता से है उनके लिए शिर से नीचे के अंगों को उष्ण जलसे धोना चाहिए और मस्तक पर उष्णजल शीतल करके डालना चाहिए। पित्त प्रकृति वाले पुरुषों को हमेशा शीतल जलको ही स्नान करना हितकर है। उष्ण जल हो या शीतल जल हो जिस से शरीर का उपकार हो उस प्रकार के जल से स्नान करना चाहिए।

अतिसार, ज्वर, कर्णशूल और विविध प्रकार के वातरोग आध्मान, (अफारा) अरुचि एवं अजीर्ण रोग में स्नान करना निषिद्ध है। आहार करने के बाद, परिश्रम करने के पश्चात्, धूप में घूमने और भयभीत होने पर किम्वा शरीर और मन के स्वस्थ न होने पर स्नान नहीं करना चाहिए।

वस्त्रधारण-स्वच्छ वस्त्रों का धारण, आयुप्रद और अलक्ष्मी नाशक है। मन में उत्साह और कान्तिवर्द्धक है। किन्तु प्रत्येक देश और ऋतु के अनुसार ही वस्त्र धारण करने ठीक हैं। पैरों में सदैव पादुका धारण करनी चाहिए। नङ्गे पैरों फिरना ठीक नहीं पादुका का धारण नेत्र और स्पर्शेन्द्रिय के लिए अतीव हितकारक, पाँवों

की विपदूनिवारक, बलवर्द्धक, चलने में सुखकारक और पुरुषत्व-जनक है।

सप्ताह में दो बार क्षौर कराना चाहिए। केश, नख, दाढ़ी, मूछ आदि का कर्त्तन, शरीर में हर्ष और लघुता-उत्पादक है। सौभाग्यजनक उत्साहवर्द्धक, पवित्रताकारक और लावण्यताजनक है। कङ्घे या कङ्घी से बालों का काढ़ना, केशों को स्वच्छ एवं सिर की धूल, जू और सिर के मैल को दूर करता है। केशों को उत्तम तथा शोभायुक्त करता है। शरीर में चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों का कभी कभी प्रलेप भी करना चाहिए। यह सौभाग्यजनक, घण, प्रीति, ओज और बल वर्द्धक है। एवं स्वेद, दुर्गन्ध, विवर्णता और श्रम को दूर करता है। जिन लोगों के लिए स्नान करना निषिद्ध बताया गया है उन को चन्दनादि पदार्थों का अनुलेपन भी निषिद्ध है।

धूप, वर्षा और धूल आदि से बचने के लिए छत्र धारण करना चाहिए। छत्र या छाता वृष्टि, वायु, धूल, धूप और ओस व तुषार को निवारण करता है। शरीर के वर्ण की रक्षा करता, नेत्रों को हितकारी और ओज की वृद्धि करता है।

दण्डधारण—दण्डका धारण करना भी अतिलाभदायक है, क्योंकि इससे कुत्ता, सर्प आदि हिंसक जन्तुओं का भय निवारण होता है। पैर डिगमिगाते नहीं, चलने में श्रम कम करना होता है। उत्साह, बल, स्थिरता और धैर्य्य की वृद्धि होती है।

पगड़ी—पगड़ी का धारण करना अत्यंत स्वास्थ्यप्रद है। क्योंकि इससे मस्तक की रक्षा होती है और केश सुरक्षित और पवित्र रहते हैं। तथा वायु, धूप और धूल से बचाव होता है एवं नेत्रों को अधिकतर लाभ होता है।

शौच—दोनों पांवों और मल, मूत्रादि के मार्ग सदैव स्वच्छ रखने चाहिए। इनको स्वच्छ रखने से आयु और मेधा की वृद्धि होती है।

शरीर का मार्जन—नित्यप्रति शरीर का मार्जन करनेसे शरीर की दुर्गन्ध, भारीपन, तन्द्रा, खुजली, शरीर का मैल और कायरता नष्ट होती है एवं भोजन में रुचि उत्पन्न होती है।

उद्वर्त्तन—शरीर पर केशर, हल्दी आदि द्रव्यों के मलने या उबटन करने को उद्वर्त्तन कहते हैं। यह मेद, कफ और वायु को नष्ट करता है। समस्त अङ्गों को दृढ़ करता है और शरीर के चर्म को

उज्ज्वल करता है। संवाहन—अर्थात् शरीर को मर्दन करना या दबाना निद्रा व प्रीति जनक है। पुरुषत्ववर्द्धक, कफ, वायु और श्रमनाशक है। मांस, रक्त और त्वचा को सुखकारक है।

स्वास्थ्य रक्षा के लिए प्रतिदिन यथाशक्ति चंक्रमण—अर्थात् भ्रमण करना भी आवश्यक है। इससे जठराग्नि दीप्त होती है। आयु, बल और बुद्धि की वृद्धि होती है। इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है।

वायु सेवन—प्रतिदिन सुबह, शाम स्वच्छ और खुली हुई हवा का सेवन अत्यन्त आयुवर्द्धक और आरोग्यप्रद है। स्वच्छ वायु की संसार का कोई पदार्थ भी तुलना नहीं कर सकता।

व्यायाम—साधारणतः शारीरिक परिश्रम को ही व्यायाम कहते हैं। नियमितरूप से व्यायाम करने से कोई भी रोग प्रबलता से शरीर पर आक्रमण नहीं कर सकता। व्यायाम के पश्चात् सम्पूर्ण शरीर को उत्तमरूप से सुखपूर्वक धीरे धीरे मर्दन करना चाहिए। व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग दृढ़ और सुडौल होते हैं। शरीर में कान्ति बढ़ती है, अग्नि दीपन होती है, आलस्य दूर होता है। शरीर में विशुद्धता, दृढ़ता और लघुता उत्पन्न होती है। एवं श्रम, क्लान्ति, पिपासा, शीत और गरमी को सहन करने की सामर्थ्य उत्पन्न होती है और अतिशय आरोग्यलाभ होता है। व्यायामकी समान शरीर की स्थूलतानाशक दूसरा पदार्थ नहीं है। व्यायाम करनेवाले मनुष्य को सहज में जरा (बुढ़ापा) आक्रमण नहीं कर सकता। उसके शरीर का मांस दृढ़ होता है। क्षुद्रमृग जिस प्रकार सिंह को आक्रमण नहीं कर सकते उसी प्रकार व्यायाम और उद्वर्त्तन करने वाले मनुष्य को रोग सहसा आक्रमण नहीं कर सकते। व्यायाम करने वाला मनुष्य तरुण न होने पर भी देखने में सुन्दर मालूम होता है। नित्य व्यायाम करने वाला मनुष्य कितना ही विरुद्ध, गुरुपाकी और दुष्पाच्य पदार्थों का भोजन क्यों न करे उस के सब निर्विघ्न रूप से पच जाता है।

बलवान् और स्निग्ध भोजन करने वाले मनुष्यों को व्यायाम अतीव हितकर है। शीतकाल और वसन्त ऋतु में व्यायाम करना विशेष पथ्य है। बलार्द्ध के परिमाण तक व्यायाम करनी चाहिए क्योंकि इस से अधिक करने से मृत्यु होना सम्भव है। जब हृदयस्थित वायु मुख में उपस्थित हो अर्थात् जब व्यायाम करने वाला

मनुष्य हाँपने लगे व हाँप कर श्वास खींचने लगे तो बलार्द्धक परिमाण कहाजाता है। अन्य ग्रन्थों में लिखा है कि जब बगल, कपाल, नासिका और हाथ पैरों में पसीने का सञ्चार हो और मुख शुष्क होजाय तब बलार्द्धक परिमाण-व्यायाम हुई जानना। हमेशा वय, बल, शरीर, देश, काल और खाद्य पर लक्ष्य रखकर व्यायाम करनी चाहिए। इसके विरुद्ध करनें से नानाप्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। अधिक व्यायाम करने से क्षय, तृष्णा, अरुचि, वमन, रक्तपित्त, भ्रम, ग्लानि, खांसी, शोष, ज्वर और श्वासादि रोग उत्पन्न होते हैं।

रक्तपित्त, शोष, श्वास, कास, भ्रम और क्षतरोगग्रस्त मनुष्यों को एवं जो स्त्री का अधिक संसर्ग करने से क्षीण होगये हैं उन को व्यायाम करना निषिद्ध है। आहार के पश्चात् कदापि व्यायाम नहीं करना चाहिए। व्यायाम की उपकारिता के सम्बन्ध में शास्त्र में जो कुछ लिखागया है उस के ऊपर लिखना केवल धृष्टतामात्र है। व्यायाम के विना शरीर स्वस्थ नहीं रहसकता इस के सम्बन्ध में एक सुन्दर गल्प नीचे लिखी जाती है:—

किसी समय महर्षि धन्वन्तरि जंगल में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए-मनुष्य किस प्रकार नीरोग रह सकता है-इस विषय की चिन्ता कर, रहे थे। उस समय एक पक्षी कहीं से उड़ कर उस वृक्ष की शाखा पर आकर बैठगया और वह "कोऽरुक्, कोऽरुक्" शब्द करने लगा। पक्षी अपनी स्वाभाविक भाषा में बोल रहा था। किन्तु तत्त्वतत्त्वज्ञ ऋषि उसके शब्दको सुनकर यह समझे कि-पक्षी हम से यह प्रश्न करता है "कोऽरुक्" अर्थात् नीरोग कौन है। कुछ देर विचार करके महर्षि ने उत्तर में कहा— "हितभुक्"। अर्थात् जो मनुष्य हितकारक भोजन करता है वही नीरोग है। किन्तु इससे पक्षी का चिल्लाना बन्द न हुआ। वह फिर शब्द करने लगा-'कोऽरुक्'? ऋषि फिर सोचने लगे कि उत्तर ठीक नहीं हुआ। उन्हों ने विचार कर देखा कि केवल हितकारक भोजन करने से ही नीरोग नहीं होता; परिमित रूप से आहार करना भी आवश्यक है। कारण, हितकारक द्रव्य भी अल्प या अधिक परिमाण में खाने से रोग हो सकता है। इस कारण उन्हों ने उत्तर में कहा—"हितभुक्, मितभुक्"। अर्थात् हितकारक पदार्थों को जो परिमित रूपसे आहार करता है वही नीरोग है। किन्तु फिर भी पक्षी का शब्द बन्द न हुआ। उस ने फिर कहा—"कोऽरुक्।" महर्षि ने समझा

अब भी उत्तर ठीक नहीं हुआ। उन्हों ने फिर विचार कर देखा कि हितकारक द्रव्यों को परिमित रूप से आहार करने पर भी शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता। परिमित आहार किसप्रकार जीर्ण होता है यह विचार कर अब की बार उन्हों ने यह उत्तर दिया—"हितभुक्, मितभुक्, श्रमोपभुक् यश्च।" अर्थात् जो व्यक्ति हितकारक द्रव्यों का परिमित रूप से भोजन करता है और जो परिश्रम करके आहार करता है वही आरोग्य प्राप्त कर सकता है। इस उत्तर को सुन कर पक्षी तत्काल उड़कर अन्यत्र चला गया।

व्यायाम किस को कहते हैं-पहले कहचुके हैं कि साधारणतः शारीरिक परिश्रम का ही नाम व्यायाम है। अन्यत्र लिखा है कि शरीर की जिस चेष्टा के द्वारा देह दृढ़ और सबल हो उसको व्यायाम कहते हैं। वस्तुतः जिस से शरीर के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग पूर्णरूप से दृढ़ हों वही व्यायाम है। भ्रमण करने या मार्ग चलने से भी शारीरिक परिश्रम होता है, इसलिए इसे भी व्यायाम कहसकते हैं। किन्तु इससे केवल दोनों पैरों को ही व्यायाम होती है, समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गों का सञ्चालन नहीं होता। कुस्ती, दण्ड,जोड़ी घुमाना आदि उत्तम व्यायाम हैं। इससमय सैण्डो साहब की आविष्कृत नाना प्रकार की व्यायामें प्रचलित हो रही हैं।

कुली, मजदूर आदि निम्नश्रेणी के लोगों को अपने दैनिक कामों में यथेष्ट परिश्रम करना पड़ता है,इसलिए उन को अन्य किसी प्रकार की स्वतन्त्र व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं है। साधारण व दरिद्री लोगों के घरोंमें स्त्रियाँ गृहसम्बन्धी कार्य्यों में अधिक परिश्रम करती हैं इसलिए उनको भी किसी प्रकार की स्वतन्त्र व्यायाम करना अनावश्यक है। इनके सिवा अन्य सभी मनुष्यों को नित्यप्रति यथाशक्ति कुछ न कुछ व्यायाम अवश्य करनी चाहिए। कुछ देर तक पैदल चलना या भ्रमण करना बड़ी अच्छी व्यायाम है किन्तु आजकल गाड़ी घोड़ा,साइकिल,मोटर आदि सवारियों के जमाने में बहुत लोग दस कदम पैदल चलना भी पसन्द नहीं करते। पहले बड़े लोग भी बहुतसा बोझ लेकर दस पाँच मील चलने में सङ्कुचित नहीं होते थे, किन्तु आजकल हम ज़रासे परिश्रम के कार्य्य को अपने हाथ से करने में अपना अपमान समझते हैं। इस प्रकार परिश्रमहीनता ही आजकल अजीर्णादि विविध प्रकारके रोगों का कारण बनरही है।

शास्त्र में लिखा है कि—बलवान् और स्निग्ध भोजन करने वाले

मनुष्यों को ही व्यायाम करना हितकारी है। इसके विरुद्ध अर्थात् दुर्बल और रूक्ष भोजन करने वाले मनुष्यों के लिए व्यायाम करना अहितकर है। पर भारतवासी इस समय दुर्बल और रूक्षभोजी हैं। घृत, दुग्धादि पदार्थ इस समय साधारण ही नहीं बड़े बड़े आदमियों को भी प्राप्त होना दुर्लभ हैं। अतएव इस समय हम लोगों को अपनी शक्ति और आहार के अनुसार ही थोड़ी व्यायाम करना उचित है। प्रथम क्रमशः थोड़ी२ व्यायाम करने से शरीर में बलकी वृद्धि होने पर पश्चात् अच्छे प्रकार से व्यायाम करनी चाहिए। साथ साथ कुछ न कुछ थोड़ा बहुत स्निग्ध भोजन भी अवश्य करना चाहिए।

सदैव वयस्, बल, शरीर और देश, काल तथा आहारादि के विषय में विचार कर व्यायाम करनी चाहिए। वयस् अर्थात् बाल्य और वृद्ध अवस्था में व्यायाम करना उचित नहीं है। बालक जो प्रति दिन अनेक प्रकारके खेल कूद करते हैं उस से ही उनकी यथेष्ट व्यायाम होजाती है। वृद्धावस्था में व्यायाम करने की सामर्थ्य नहीं रहती है, इसलिए इस अवस्था में यथाशक्ति भ्रमण करना ही अतीव हितप्रद है। यौवनकाल में अच्छे प्रकार और प्रौढ़ावस्था में यथासामर्थ्य व्यायाम करनी चाहिए। बलवान् मनुष्यों को उत्तम प्रकार से व्यायाम करनी चाहिए। दुर्बल मनुष्यों के लिए अल्प व्यायाम या भ्रमण करना ठीक है। कृश मनुष्यों को भी अल्प व्यायाम व भ्रमण करना उचित है। जो न अत्यन्त कृश हैं और न अत्यन्त स्थूल हैं ऐसे मनुष्यों को अधिकतर व्यायाम करनी श्रेष्ठ है। स्थूल शरीरवाले मनुष्यों को निज शक्त्यनुसार व्यायाम करनी चाहिए। व्यायाम स्थूलतानाशक होने के कारण स्थूल शरीरवाले मनुष्यों के लिए विशेष हितकारी है। किन्तु बल न होने पर यह सदा अनिष्ट करती है।

शीतप्रधान देशों में अधिक और ग्रीष्मप्रधान देशों में अल्प व्यायाम करने की आवश्यकता है। शीत और वसन्तऋतु में अधिक एवं अन्यान्य ऋतुओं में न्यून व्यायाम करनी चाहिए। स्निग्ध और बहुत भोजन करने वाले मनुष्यों को अधिक एवं रूक्ष तथा अल्प भोजन करने वाले मनुष्यों को अल्प व्यायाम करनी चाहिए। अधिक व्यायाम करनेके दोष पहले लिखचुके हैं। इस देशमें आजकल अनेक दुर्बल बालकों को अधिक व्यायाम करनी पड़ती है। कितने ही स्कूलों के विद्यार्थी अधिक समय तक फुटबाल खेलकर अधिक व्यायाम करते हैं। इसप्रकार की व्यायाम सर्वथा त्याज्य है। वैद्यराज (क्रम)

इन्द्रिय-संयम।

प्रायः समस्त प्राणियों पर कामदेव की कृपा है। किन्तु यदि प्राकृतिक नियमानुसार कामदेव को नियमबद्ध न किया जाय तो यह मनुष्यजाति का और समाज का पूर्ण शत्रु प्रमाणित होता है। जिस प्रकार बुद्धिहीन पतङ्गे मृत्यु की सम्भावना समझते हुए भी दीपक के मोह से प्राण विसर्जन करते हैं, उसी तरह से कामदेव के मिथ्या प्रेम में अल्पज्ञ मनुष्य धन और स्वास्थ्य की आहुति देता हुआ संज्ञाहीन हो जाता है। कामक्रिया के नशे में मनुष्य इतना अन्धा होजाता है कि वह अपनी खराबियों को जानता हुआ भी नहीं जानता। एवं मृत्यु को सम्मुख खड़ा देखता हुआ भी नहीं देखता। कोई २ मनुष्य इस प्रकार से विवेचना करते हैं कि नवयौवनावस्था में इन्द्रिय-संयम करना असम्भव है ? और यदि किसी प्रकार संयम किया जाय तो उस से जो २ हानियां होती हैं वे असंयम अवस्था से अधिक भयानक होती हैं। वास्तव में इस प्रकार की विवेचना प्रमाणरहित कोरी कल्पना है। कितने ही सज्जनों ने दिखला दिया है कि प्रत्येक अवस्था में कामदेव नियमबद्ध किया जासकता है। काम प्रभाव अनायास ही खर्व होसकता है ? कोई २ यह भी कहते हैं कि कान, नाक, नेत्र, पाकस्थली, हाथ और पैर आदि अङ्ग अभ्यासरहित होने से निकम्मे और अस्वस्थ होजाते हैं। इसी तरह यदि जननेन्द्रिय से दीर्घकाल तक काम न लिया जाय तो वह भी निर्बल और अयोग्य हो जावेगी। इस के सिवाय कई प्रकार के रोगों की उत्पत्ति भी हो सकती है। इस प्रकार की विवेचना भी कुछ अधिक महत्त्व नहीं रखती। कितने ही मनुष्यों ने आजीवन ब्रह्मचर्य रहकर यह दिखला दिया कि उन के स्वास्थ्य में कुछ भी बुराई पैदा नहीं हुई और कितने ही लोगों ने चालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण कर स्त्रीप्रसंग की क्षमता में कोई त्रुटि अनुभव नहीं की है। यदि वे लोग कामासक्त मनुष्यों की विविध और मज़ेदार आसनप्रणालियों का ज्ञान न रक्खें तो यह कोई हानि की बात नहीं है, वरन् लाभ की बात है। चिरब्रह्मचर्य्यव्रतधारिणी सती स्त्रियां कोई हानि अनुभव नहीं करती हैं। जेलखानों में रहने वाले अभियुक्त लोग दस, बारह वर्ष तक बिना स्त्रीप्रसङ्ग किये आरोग्य रहते हैं। फिर यह कैसे कहा जासकता है कि इन्द्रिय-संयम से हानि होने की

सम्भावना है ? इन्द्रिय-संयम करने के कुछ नियम नीचे लिखे जाते हैं।

धर्मशिक्षा—पूर्वकाल में समस्त पाठशालाओं में "पर तिय मातु समान" की शिक्षा दी जाती थी। लोग इस प्रकार से इन्द्रिय सेवन करते थे कि जिससे बीस वर्ष तक बालक यही न जान सकता था कि समाज में इन्द्रियसेवन प्रचलित है या नहीं! हमारा मन एक ऐसी वस्तु है कि उसको जिस ओर झुकाया जाय वह उसी ओर झुक जाता है। संसार के समस्त विषयों में धर्म सब से अधिक पवित्र वस्तु है। यदि माता, पिता और गुरुजन चाहें तो अनायास ही बालक का चित्त धर्मरत हो सकता है। उस समय उसका मन स्थिर हो जाता है और वह विषय की प्रबलता को रोक देता है। जो लोग बाल्यकाल में अज्ञानवश असंयमता से इन्द्रिय-परिचालन करते रहे हैं, यदि युवावस्था में उनको किसी प्रकार से धर्म में श्रद्धा उत्पन्न हो गई तो वे जान लेते हैं कि धर्म, इन्द्रिय की अस्थिरता को किस तरह स्थिर करता है। एक ही समय में मन के सम्मुख उच्च और तुच्छ भावनायें समानभाव से नहीं आसकती हैं। यदि मन में धर्मभाव है तो उच्च भावना की प्रधानता स्वाभाविक ही है। अत एव यह बात सिद्ध है कि धार्मिक मनुष्य अनायास ही संयम धारण कर सकता है। धर्म का लक्ष्य इतना ऊँचा है कि यदि उसकी ओर दृढ़तापूर्ण पैर बढ़ाया जाय तो अल्पशक्ति वाली ग्राम्य बातें स्वयं ही कुचल जावेंगी। इसी प्रकार यदि बुरे भाव प्रबलता पा जावेंगे तो अच्छे भाव पयभ्रष्ट हो जावेंगे। ऐसा हो नहीं सकता कि अच्छे और बुरे भाव समान परिमाण में स्थिर रहें। अत एव निर्मल धार्मिक शिक्षा कामजनित उत्तेजना के लिए रामबाण औषधि है। इन्द्रियजीत जीव जिस स्वर्गीय सुख का भोग किया करता है, यदि वह सुख कामी से कामी मनुष्य समझ पावे तो वह एक क्षण में काम-प्रियता त्याग दे! इस सुख को शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह अनुभव करने की बात है, बतलाने अथवा दिखलाने के लिये नहीं! इसी मर्म को पाकर, इसी स्वर्गीय सुख को बशमें करके, कुछ धन्यनामा अतीत महापुरुष रतिमान स्वरूपवती कामिनियों को हाथ में पाकर छोड़ देने में समर्थ हुए थे। कुछ लोग कहते हैं कि बुरी प्रवृत्ति की ओर चित्त शीघ्र और तेजीसे आकर्षित होता है, इस कारण मालूम होता है कि बुरे भाव ही स्वाभाविक

तत्व हैं। अत एव इन का त्यागना सहज नहीं है। मन एक नमनीय वस्तु है। उस को जिधर चाहो घुमा सकते हो। कठिनता उसी समय उपती है कि जब बुरे कार्य करते २ एक दम अच्छे कामों की तरफ मुड़ना होता है। बड़ा वृक्ष शीघ्र नहीं मुड़ सकता। यदि अधिक मोटा हो जावे तो उस का लचना असम्भव है। किन्तु, यदि बुरी आदतों वाला मनुष्य उन को छोड़ना चाहे, तो अभ्यास द्वारा छोड़ सकता है। उस के लिये असम्भव शब्द व्यवहृत नहीं किया जासकता क्योंकि वह चेतन है—जड़ नहीं।

नीतिशिक्षा-मानव जाति की उन्नति के लिये नीति परम आवश्यक चीज़ है। नीति ही नियम है। शिक्षा का मुख्य उद्देश नीतिज्ञान है। केवल नैतिक बल ही से मनुष्य सिंहादि बलवान् जीवों से भी अधिक बलवान् और पशु जाति से अधिक श्रेष्ठ है। यदि नीतिज्ञान लोप होजावे तो हम लोग पशुओं से भी हीन, निर्बल और मूर्ख हो जावें। इसी समय देखा जा सकता है कि जिस समाज में नैतिक जीवन नहीं है वह निरादरपूर्ण पशुजीवन व्यतीत करता है। धर्म, कर्म और सुख, दुःख के विषय में भी वह समाज कोरा रहता है। जिस समय भारतवर्ष में नीतिज्ञान था उस समय उसमें इतना नैतिक बल था कि जिसपर सारा भूमण्डल मोहित और कम्पित था। जब तक नीति का वही रूप नहीं होगा, तब तक इस दुर्दशा का अन्त न हो सकेगा। नीतिवान् पुरुष दूसरों के आक्रमण से बचने का उपाय ढूंढ निकालता है। इसी तरह वह कामदेव के अनुचित आक्रमण को भी असत् कर देता है।

कामोद्दीपक चिन्ता-वर्त्तमान समय में कामदेव की शक्ति को सर्वव्यापक और ज्ञानाज्ञानशून्य बनाने में बाजारू स्त्रियोंने खूब भाग लिया है। पुस्तकों की दूकानों पर भी ऐसी २ पुस्तकें अधिकता से बिका करती हैं कि जिनकी संगत एक कुलटा स्त्री की संगत से कम नहीं होती। कितने ही सभ्य लेखकों के उपन्यास इस आदिरस से परिपूर्ण रहते हैं और खासकर हिन्दी भाषा के उपन्यास इस विषय में सबसे प्रथम हैं। नाटकमण्डलियों में जो अभिनय होतेहैं, वे प्रायः इसी रस को साकार रूपसे प्रकट करते हैं। इन बातोंसे कामोद्दीपक चिन्ता प्रबल होती है और फिर लोग आपस में इसी विषय पर बात चीत किया करते हैं। इस प्रकार यह विषय जीवनका एक खास और आवश्यक विषय हो जाता है। इन बातों से शीघ्र ही कामदेव

जागृति धारण करती है। इस का सब से सहज दृष्टान्त यही है कि वेश्या द्वारा पालित बालिका अल्पायु ही में महारथी हो जाती है। इन दूषित चिन्ताओं के कारण इस विषय में इतनी अनीति व्याप रही है कि जिस की कोई सीमा नहीं।

कामदेव का एक नाम मनसिज भी है, अर्थात् चिन्ताद्वारा ही कामदेव का प्रभाव उन्नति करता है।

प्रलोभन-मनुष्य का मन अत्यन्त दुर्बल है। विद्या और ज्ञान के बल से प्रत्येक समय अपना मन वश में नहीं किया जा सकता। हमारा मतलब यह है कि आग और फूँस को निकट रखकर उन को जलने से बचाना एक प्रकार से असम्भव है। जो चीज़ आँखों के सामने रहती है वह मनुष्य को अपने प्रलोभन में अवश्य फाँसती है।

शारीरिक और मानसिक श्रम-यदि शारीरिक श्रम न किया जाय तो कामदेव की चेष्टाओं पर ध्यान विशेष रूप से जाता है। यदि अधिक श्रम किया जाय तो कामदेव का प्रभाव तो अलग रहा भूख और प्यास का प्रभाव भी दूर भाग जाता है। जो लोग पेट के लिये दिन रात श्रम किया करते हैं उनके ऊपर कामदेव का अत्याचार नहीं होता। इसके विरुद्ध जिन के शरीर मखमली गद्दों पर पड़े रहते हैं वे कामदेव का अत्याचार सहते सहते मृत्यु के मुख में जागिरते हैं। इसके सिवा मादक आदि द्रव्य मस्तक को उत्तेजित कर वीर्य्य को भी उत्तेजित करते हैं। मादक द्रव्यों से विवेकशक्ति भी नष्ट होती है और विवेक शक्ति से ही कुप्रवृत्ति अंकुश में रहती है। इस विषय में बुरी सोहबत से बड़ी हानि होती है क्योंकि मनुष्य स्वभाव अनुकरणप्रिय है। यदि छोटा सा बालक भी बुरी संगत में पड़जाय तो उसपर भी यह भूत सवार होजाता है। बाल्य अवस्था में इच्छित, प्रभाव सरलता पूर्वक डाले जासकते हैं। अतएव सन्तानको विलासी आलसी और बुरीसंगत के साथी न होने देना चाहिये। धनवान् लोगों को भी अपनी सन्तान के लिये शारीरिक और मानसिक कार्य्य निश्चित कर देने चाहिएँ। कुछ लोग माता पिता आदि के भय से ही इस विषय में उदासीन रहा करते हैं। उनके हृदयों में धर्म भय बैठाल देना चाहिये। ओजवान् और लज्जावान् बालक इस विषय में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुये हैं। +

—०—

शिवनारायण वर्मा

+ वैज्ञानिक दाम्पत्यशास्त्र से अनुवादित।

शरीर के मर्म्मस्थल ।

एक समय वह था जब भारत का चिकित्सा-विज्ञान उन्नति की चर्म्मसीमा पर पहुँचा था। एवं जगत् की सम्पूर्ण चिकित्साएँ इसी चिकित्सा-विज्ञान के आलोकसे उद्भासित हुई थीं। समयके परिवर्त्तन से आज वही चिकित्सा-विज्ञान महा अवनति को प्राप्त हो रहा है। अनेक विलायती डाक्टर इस समय हमारी चिकित्सा को अवैज्ञानिक या मूर्खों की चिकित्सा बताकर उस की धूल उड़ारहे हैं। आयुर्वेद की आलोचना के अभाव से ही ऐसी अज्ञानपूर्ण धारणा लोगों में होगई है। अत एव आयुर्वेद के प्रत्येक विषय की आलोचना होना आवश्यक है। आर्य्यजाति ने शारीरिकविषय में कितनी खोज की थी उस को जानने के लिए आयुर्वेदोक्त मर्म्मस्थानों के सम्बन्ध में नीचे अतिसामान्यरूप से आलोचना की जाती है।।

हमारे शरीर में ऐसे अनेक स्थान हैं जिन में आघात लगने से या संघर्षण होने से प्राण नष्ट होजाने अथवा प्राणों के निकलने की समान घोर वेदना होती है। आयुर्वेद में उन को मर्म्म या मर्म्मस्थल कहते हैं। हिन्दी भाषा में हम उन को मरम या मर्म्मस्थान बोलते हैं।

शरीर के जिन जिन स्थलों में—शिराओं में शिरायें, स्नायुओं में स्नायु, सन्धिओं में संधि, मांस में मांस अथवा अस्थियों में अस्थि मिली हैं वे सबमर्म्मस्थलहुए हैं। और उनकी संख्या१०७है शिराओं में शिराओं के मिलनेसे जो मर्म्मस्थल हुए हैं उनकी संख्या ४१ है। स्नायुओं में स्नायुओं के मिलने से२७ मर्म्मस्थल हैं। सन्धियोंमें सन्धियोंके मिलने से होने वाले मर्मों की संख्या२० है। मांस में मांस के मिलने से ११ मर्म्म हुए हैं और अस्थि में अस्थिके मिलनेसे जो मर्म्म हुए हैं वे८ हैं। ये मर्म्म २२ दोनों हाथों में,२२दोनों पैरों में,१२ पेट और वक्षमें,१४पीठमें और ३७ ग्रीवा से ऊपर शिरऔर मुखमें अवस्थित हैं। शरीरके समस्त मर्म्म स्थान साधारणतः पाँच श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं। कितने ही मर्म्म ऐसे हैं जिन में आघात लगनेसे अल्पसमय में मृत्यु हो जाती है और कितने ही मर्म्मों में आघात लगने से बहुत समय के बाद मृत्यु होती है। इन दोनों प्रकार के मर्मों को यथाक्रम से सद्यः प्राणहर और कालान्तर प्राणहर मर्म्म कहते हैं। जिन मर्म्मों में शल्य (अस्त्र) आदि के विद्ध होने पर प्राण नष्ट नहीं होते, किन्तु

शल्य के निकालने पर मनुष्य मरजाता है उनको विशल्यघ्न मर्म्म कहते हैं। ऐसे अनेक मर्म्म हैं जिन में आघात लगने से अङ्गहानि होती है, उनको विशल्यकर मर्म्म कहते हैं। जिन मर्म्मों में आघात लगने से अत्यन्त पीड़ा होती है आयुर्वेद में वे रुजाकर मर्म्म कहे जाते हैं। सद्यःप्राणहर मर्म्मों में कोई शृङ्गाटक, कोई अधिपति कोई शंख, कोई कण्ठशिरा, कोई गुदा, कोई हृदय, कोई वस्ति और कोई नाभि नाम वाले हैं।

मनुष्य के सिर में ऐसे चार स्थान हैं जिनके एक स्थान में नाक में से, एक स्थान में कान में से, एक स्थान में नेत्र में से और एक स्थान में जिह्वा में से शिरा आकर मिलगई हैं। मनुष्य इन्हीं शिराओं के द्वारा सूँघते, देखते, सुनते और रस ग्रहण करते हैं। पूर्वोक्त चारों के मिलने का नाम शृङ्गाटक है।

हम सिर के जिस स्थान को मोड़ व बालों का भँवर कहते हैं उसके नीचे जो शिरा और सन्धियां मिली हैं उनको अधिपति कहते हैं। कपाल के दोनों तरफ जो कनपटी है वही शंखमर्म है।

ग्रीवा के दोनों तरफ चार चार शिरायें जो मस्तक की ओर गई हैं उन शिराओं का ही नाम कण्ठशिरा मर्म्म है।

हृदयमर्म्म हृदय में अवस्थित है।

मलद्वार के बीच में जो नाड़ी है वही गुदमर्म्म है। मूत्र के आधार का नाम वस्ति है। और नाभि को ही नाभिमर्म्म कहते हैं।

कालान्तरप्राणहर मर्म्म—वक्षोमर्म्म, सीमन्त, तल, क्षिप्र, इन्द्र, वस्ति, बृहती, पार्श्वसन्धि, कटि,तरुण और नितम्ब नामसे ख्यात हैं।

वक्षःस्थल के दोनों तरफ जो दो स्तन अवस्थित हैं। उन दोनों स्थानों की और इन स्थानों के ऊर्द्धभाग में २ अँगुल परिमाण जिस २ अंश में मांस में मांस मिलगया है उनको वक्षो मर्म्म कहते हैं। कितनी ही शिरायें ग्रीवा के निम्नभाग से वक्षःस्थल के दोनों पार्श्व में आकर श्वास प्रश्वास की सहायता करती हैं। वक्षःस्थल के जिस अंश में ये सम्पूर्ण शिरायें आनकर मिली हैं उनको वक्षो मर्म्म कहते हैं।

हमारे मस्तक में जो ५ सन्धिस्थान हैं उनका नाम सीमन्त है।

प्रत्येक हाथ और पैर की मध्यम अँगुलि की सन्धि में हाथ एवं पांवों के तलुए में जो स्थान है वही तलमर्म है।

प्रत्येक हाथ और प्रत्येक पैर के अँगूठे और उसके पास की

अँगुलि के बीच में जो स्थान है उसको क्षिप्रमर्म्म कहते हैं।

प्रत्येक हाथ की कोहनी से लेकर पहुंचे तक के मध्यस्थल में और प्रत्येक पांव के जानु से लेकर एड़ी तक के मध्यभाग में एक एक मांसमर्म्म हैं इन सब मर्म्मों का नाम इन्द्रवस्ति है।

स्तनमूल के ठीक पीछे मेरुदण्ड के दोनों तरफ एक एक शिरा मर्म्म है, इनको वृहती कहते हैं।

दोनों पार्श्वों के बीच में जो स्थान मिलगये हैं वे दो शिरामर्म्म हैं और इनको पार्श्वसन्धि कहते हैं।

मेरुदण्ड जिस स्थान में मध्यभाग के साथ मिल गया है वहां दो अस्थिमर्म हैं। इन अस्थिमर्मों के नाम क्रमशः कटिक और तरुण हैं।

प्रत्येक नितम्ब में एक एक अस्थिमर्म है उन को नितम्ब मर्म्म कहते हैं।

विशल्यघ्न मर्म्म तीन हैं। उन में दो के नाम उत्क्षेप और एक का नाम स्थपनी है। प्रत्येक कनपटी के उपरि भाग में जहां से केशों की सीमा प्रारम्भ होती है वहां एक एक स्नायुमर्म्म है। इन का नाम उत्क्षेपक है।

दोनों भौंओं के मध्य में नाक की हड्डी के पास का जो स्थान है उस का नाम स्थपनी है।

वैकल्यकर मर्म्म अनेक हैं। स्थानभेद से उनके नाम लोहिताक्ष, आणि, जानु, उर्वी, कूर्च, विटप, कूर्पर, कुकुन्दर, कक्षाधर, विधुर, कृकाटिका, अंस, असफलक, अपाङ्ग, नीला, मन्या, फण और आवर्त्त हैं।

प्रत्येक बाहु और प्रत्येक ऊरु में जो एक एक शिरामर्म्म है उन का नाम उर्वी है। ये सम्पूर्ण शिरामर्म्म और कोहनी तथा बगल के बीच में और भी एक प्रकार के जो शिरामर्म्म हैं उनको लोहिताक्ष कहते हैं।

प्रत्येक जानु के तीन अँगुलपरिमाण ऊपर दो दो स्नायु मर्म्म हैं। इन मर्म्मों का नाम आणि है।

जङ्घा के साथ ऊरु के मिलन स्थान में एक एक सन्धिमर्म्म है। चिकित्साशास्त्र में इसको जानुमर्म्म कहा जाता है।

पैर के अँगूठे और उसके पासकी अँगुलि के मध्य में जो क्षिप्र मर्म्म है उसे पहले कह चुके हैं। क्षिप्रमर्म्म के ऊपर और नीचे एक एक स्नायुमर्म्म है। इन मर्म्मों का नाम कूर्च है।

जांघ की सन्धि और अण्डकोष के मध्य में भी एक एक स्नायुमर्म देखा जाता है इन सब मर्मों को विटप कहते हैं।

एक एक कोहनी मे एक एक सन्धिमर्म है इनका नाम कूर्पर है। शरीर का मध्यभाग या कटिभाग का जो जो अंश ऊरु के साथ मिलगया है वहां एक एक निम्नस्थान देखा जाता है इन सब को कुकुन्दर कहते हैं।

कक्षधर एक स्नायुमर्म है। यह वक्ष स्थल और कान इन दोनों के मध्यस्थान में अवस्थित है।

विधूर और स्नायुमर्म ये प्रत्येक कान के पीछे की तरफ निम्न भाग में अवस्थित हैं।

ग्रीवा के साथ मस्तक से मिलनेवाले स्थान के दोनों ओर दो सन्धिस्थान देखे जाते हैं वे कृकाटिका नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रत्येक कन्धे के ऊपर जो एक एक स्नायुमर्म है उनका नाम अंस है।

पीठ के जिस स्थान में ग्रीवा के साथ कन्धों का मिलान हुआ है वहां दो अस्थियां मालूम होती हैं उन को अंसफलक कहते हैं।

चक्षुओं के प्रान्तभाग का नाम अपाङ्ग है।

गले के दोनों तरफ चार धमनी हैं, उन में दो नीला और दो मन्या नाम से कही जाती हैं।

फण एक प्रकार के सन्धिमर्म हैं। इनका अवस्थान नासिका के प्रत्येक छिद्र के मध्यभाग मे है।

प्रत्येक भौं के ऊपर और नीचे एक एक सन्धिमर्म है। इन का नाम आवर्त्त है।

रुजाकर मर्मों की संख्या सब मिलाकर आठ है। प्रत्येक पांव के टखने मे जो एक एक सन्धिमर्म है उसका नाम गुल्फ है।

प्रत्येक हाथ के पहुँचे में इसीप्रकार का एक एक सन्धिमर्म देखा जाता है इनका नाम मणिबन्ध है।

प्रत्येक पैर के टखने के दोनों पार्श्वों के निम्नभाग मे एक एक स्नायुमर्म है, आयुर्वेद में इसको कूर्चशिर कहते हैं।

आयुर्वेद मे जो मर्मस्थानों का विवरण दिया गया है उसी के आधारपर यह लेखलिखा गया है किन्तु यह विषय इतना कठिनहैकि इस प्रकार लिखने से मर्मस्थान सम्बन्धी विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होसकता। इसलिए इस विषय पर फिर कभी विस्तृत रूप से लिखा जायगा।

—•—

निषध

सप्तपर्ण।

(सतौना)

सं०—सप्तपर्ण, सप्तच्छद, छत्रपर्ण, गुच्छपुष्प, बृहत्त्वक्, शाल्मलिपत्रक, मदगन्ध इत्यादि। हिं०—सतवन, सतौना, छतिवन। बं०—छातिनगाछ, म०-सातवीन, छातविन, सातवना। क०—पलेलग, तै०-एडाकुल, ता०-एभिलइच्चालइ, अँ०—लैटिन (Latin) Alstonia Scholaris.

सप्तपर्ण या सतौने के वृक्ष भारत के अनेक स्थानों में उत्पन्न होते हैं। अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में भी ये वृक्ष देखेजाते हैं। सप्तपर्ण का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। पत्ते एक गुच्छे में सात सात आते हैं, इस कारण इस को संस्कृत में सप्तपर्ण या सप्तच्छद कहते हैं। पत्ते आकार में प्राय सेमल के पत्तों की समान अथवा जामुन के पत्तों की आकृति से कुछ मिलते जुलते होते हैं। वृक्ष की त्वचा मोटी और शुभ्रवर्ण की होती है। उस को छेदने से उस में से सफेद रंग का दूध निकलता है। इस के फूल छोटे छोटे कुछ पीले और सफेद होते हैं। उन में मद की समान गन्ध आतीहै। औषधोपयोग में इस की छाल, फूल और पत्ते आदि लिये जाते हैं। सप्तपर्ण की छाल, पत्ते आदि सब कडुवे होते हैं और उन में एक प्रकार की गन्ध आती है।

वैद्यक मत से सप्तपर्ण—त्रिदोष नाशक, उष्णवीर्य्य, अग्निप्रदीपक, तिक्तरसान्वित, हृदय को हितकारी, बलकारक, शक्तिवर्द्धक और कुछ सङ्कोचक है। एवं रुधिर के विकार, व्रण, कृमि, ज्वर, अतीसार, शूल, गुल्म, कुष्ठ, वातरक्त, श्वास, कफरोग, वातरोग, प्रमेह, हिचकी, प्रवाहिका, संग्रहणी आदि रोगों में इस का बहुत अच्छा उपयोग होता है। ज्वर में, विशेषकर जीर्णज्वर में यह आशुफलप्रद महौषध है। ज्वर को दूर करने की इस में भारी शक्ति है और कोनैन की अपेक्षा यह निर्दोष है।

सतौने की छाल में पृथक्करणशास्त्र की दृष्टि से डिटाइन Ditain नामक एक प्रभावज द्रव्य होता है। यह पदार्थ बड़ा उपयोगी है। यह सल्फेट ऑफ कोनैन के जोड़ का है। बल्कि कोनैन की अपेक्षा अधिक गुणकारी है। क्यों कि कोनैन के सेवन से जो बहरापन, सिर का घूमना, अनिद्रा, कर्णनाद आदि विकार पैदा होते हैं

वे इससे नहीं होते। डिटाइन और कोनेन इन दोनों का एक ही सा उपयोग होता है । मात्रा भी दोनों की बराबर ही है। कोनेन का कभी कभी बहुत बुरा परिणाम देखने में आता है, परन्तु इस का परिणाम हमेशा अच्छा होता है। इस के द्वारा शीघ्र ही सन्ततादि ज्वर नष्ट होते हैं। विशेषकर तिजारी, चौथिया और विषम ज्वरों पर इस का बड़ा अच्छा उपयोग होता है। जिन रोगियों को कोनेन बिलकुल अनुकूल नहीं पड़ती या जो कोनेन से डरते हैं उन को सतौने का डिटाइन द्रव्य या सतौने की छाल का काढ़ा, चूर्ण आदि बनाकर देना चाहिए। अत्यन्त विषैले या मलेरिया ज्वर में सतौने का काढ़ा या उस की छाल का भवके के द्वारा निकाला हुआ अर्क प्रयोग करने से आशातीत लाभ होता है। जिसप्रकार कोनेन में मलेरियाज्वर को नष्ट करनेकी तीव्रशक्ति है उसीप्रकार सप्तपर्ण में भीहै। विशेषकर कोनेन का नवीन या तरुण ज्वर में जैसा प्रभाव देखा जाता है जीर्णज्वर में वैसा नहीं देखा जाता। पर सप्तपर्ण जीर्णज्वर की अमोघ औषधि है। जो ज्वर नानाप्रकार की देशी, विलायती और ज्यादहतर कोनेनमिश्रित औषधियों के खाने से निवारण नहीं होते वे एकमात्र सप्तपर्ण के उपयोग से दूर किये जा सकते हैं। कोनेन के एवज में यह बेखटके व्यवहार किया जा सकता है और कोनेन की अपेक्षा बहुत थोड़े मूल्य में मिलसकता है।

इसके सिवा सप्तपर्ण ज्वरके पीछेकी अशक्तता व दुर्बलताको शीघ्र दूर करता है। ज्वर ही नहीं, किन्तु अन्यान्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई क्षीणता, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कृशता, रुधिर की अल्पता आदि विकार इसके सेवन से तत्काल दूर होजाते हैं। यह आमाशय के लिए अतीव हितकर है इसलिए अतीसार, पुरानी संग्रहणी और प्रवाहिकादि रोगों में विशेष लाभ करता है। यह जठराग्नि को दीपन करता और आमाशय व जठरसम्बन्धी अनेक रोगों को दूर करता है।

एक प्रसिद्ध डाक्टर का मत है कि कफजग्रहणी रोग में सतवन की छाल का चूर्ण बड़ा हितकारी है। रात्रि में सोते समय इसका चूर्ण १५ ग्रेन जल के साथ सेवन करना चाहिए। कोकनदेश में सतौने की छाल का रस दूध के साथ कुष्ठ रोगी को सेवन कराया जाता है और इस के क्वाथ के द्वारा रोगी को स्नान भी कराया जाता है।

दुष्ट व्रण रोगमें सतौने की छाल के रस व दूध को गुथाकर लेप

करने से व्रण भरने लगता है। श्वास, खाँसी और हिक्का रोग में सतौन की छाल के रसमें पीपल का चूर्ण और शहद मिलाकर पान करने से अथवा सतौने के फूल और पीपल इन दोनों का चूर्ण दही के तोड़ के साथ पान करने से बहुत उपकार होता है। कफजमेह विशेषकर सान्द्रमेह में सतौने की छालका क्वाथ बनाकर पान करने से बहुत उपकार होता है।

जब दाँतों में विषैले पदार्थों के मलने से अथवा विषैले वृक्षों की दतौन करने से मसूड़े आदि सूज जाते हैं तब सतौने की छाल का चूर्ण मधु में मिलाकर दाँतों की जड़ों में लगाने से अत्यन्त लाभ होता है। सतौने के दूध को कृमि से खाये हुए दाँतों में भरने से कृमिजनित दन्तपीड़ा दूर होकर दाँत की खोखल जगह भर जाती है।

बालक के लिए कितनी निद्रा की आवश्यकता है।

बालक और वृद्ध सभी के लिए निद्रा अत्यावश्यक है। उपयुक्त समय निद्रा न लेने से किसी मनुष्य का भी स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। निद्रा के समय सम्पूर्ण शरीर उत्तम रूपसे विश्राम करता है। निद्रा न लेने से शरीरका सम्पूर्ण कार्य्य शिथिल हो जाता है। हृदयपिण्ड का स्पन्दन धीरे धीरे होने लगता है। श्वास स्वल्प गम्भीर और मृदुरूप से चलता है। जागृत् अवस्था में शरीर की समस्त पेशियां निरन्तर कर्म्मरत रहने पर भी कर्मशून्य होती हैं। निद्रा में मस्तिष्क विश्राम करता है। मस्तिष्क के जो अंश हृदय और फुफ्फुसका कार्य्य नियन्त्रित रूप से करते हैं वे उस समय भी कर्म्म रत अर्थात् जागृत् रहते हैं। पेशियों का परिचालन करनेवाले अन्य अंश विश्राम का सुख अनुभव करते हैं। इस प्रकार हमारी दैनिक क्षय की पूर्ति होती रहती है।

कितने ही मनुष्य अधिक उम्रवाले मनुष्यों के लिए सात या आठ घंटे निद्रा की आवश्यकता बताते हैं। परन्तु बहुत लोग ५ या ६ घंटे से अधिक निद्रा की आवश्यकता नहीं बताते। कितने ही आदमियों को हम देखते हैं कि वे २४ घंटे में केवल ३ या ४ घंटे ही सोते हैं और दिन भर बड़ी फुर्ती के साथ कार्य्य करते रहते हैं। इससे जान पड़ता है कि निद्राका ह्रास और वृद्धि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के ऊपर निर्भर है।

बड़ी उम्रवाले लोगों की अपेक्षा बालकों के लिए अधिक निद्रा की आवश्यकता है । विशेषकर छोटे बालकों के लिए तो अधिकतर निद्राकी ज़रूरत है । बालक दिनमें निरन्तर शरीर का हलन चलन करते हैं इस कारण उन को शारीरिक शक्ति की हानि होती है। उस हानिकी पूर्त्ति केवल गाढ़ निद्रासे ही होसकती है । जो बालक किसी कारण से उपयुक्त निद्रा नहीं ले सकते उनकी भविष्य में विशेष स्वास्थ्य-हानि होने की सम्भावना है । बालक के मस्तिष्क की सात वर्ष तक बड़ी शीघ्रता से वृद्धि होती है । इस समय मस्तिष्क के गठन के लिए अधिक निद्रा की आवश्यकता है । अभिभावक लोगों की इस विषय में अज्ञता वा लापरवाही होनेके कारण अनेक बालकों के शरीर और मन के विकास में बड़े विघ्न उपस्थित होते हैं । उपयुक्त निद्रा का अभाव होने से बालक के मुखका भाव बदल जाता है और नेत्रों के नीचे काले दाग पड़जाते हैं । मन में प्रसन्नता नहीं मालूम होती और धारणा शक्ति कम होजाती है । यथेष्ट निद्रा के लेने पर बालक के शरीर में नवीन बलका सञ्चार होता है, मन प्रसन्न मालूम होता है और दिन भर वह हलन चलन या खेल कूद के लिए आग्रह करता है।

बड़े बड़े शहरों में दरिद्र वा धनहीन लोगोंके बालक प्रायः यथेष्ट निद्रा प्राप्त नहीं करसकते । कारण-वे प्रायः जनपूर्ण और जहाँ वायु का आवागमन अच्छे प्रकार से नहीं होता ऐसे बंद स्थानों में सुलाये जाते हैं । अनेक बालक सोते समय नाना प्रकार के स्वप्न देखते हैं । बालकों को इस अवस्था में स्वप्नों का दीखना बहुत ही हानिकारक है ।

सुशिक्षित माता पिता भी कभी कभी बालक की निद्राके विषय में बड़ी भूल करते हैं । कोई कोई माता पिता बालक को अधिक समय तक जगाये रखते हैं । धनिकों के घरों में प्रायः उन के बालक अत्यधिक भोजन करते हैं और सब कामोंमें अपनी इच्छा के अनुसार चलते हैं । अपनी इच्छानुसार ही वे सोते हैं । माता पिता उनके लिए निर्धारित समय नहीं करते । कितने ही बालकों को माता पिता के साथ थियेटर, बायस्कोप और अन्यान्य उत्सवों में रात्रिभर जागरण करना पड़ता है जिस का परिणाम यह होता है कि ये बालक स्फूर्त्तिहीन, म्लानमुख और जड़ से दिखाई देते हैं । निम्नलिखित प्रकार से बालकों की निद्रा का समय निर्धारित करना उचित है ।

जन्म से ५ वर्ष तक.........१३ घंटे

५	वर्ष से	८	वर्ष	तक......१२	घंटे
६	वर्ष से	११	वर्ष	तक......११	,,
१२	वर्ष से	१५	वर्ष	तक......१०	,,
१५	वर्ष से	१७	वर्ष	तक...... ६	,,

इससे आगे क्रमशः ८ या ७ घंटे तक निद्रा का समय निर्धारित करना चाहिए।

बालक की निद्रा का समय निर्धारित करना माता पिता का कर्त्तव्य है। अति शैशवकाल से बालक को सम्पूर्ण विषयों में नियम पालन करने की शिक्षा देना माता पिता का पहला कार्य्य है। इसी प्रकार निद्राका समय भी निर्धारित करना आवश्यक है। अधिक रात्रि बीतने पर शयन करने से सबेरे को बालक देरमें उठता है। यह बात परीक्षा करके जानीगई है कि प्रथम रात्रि की निद्रा ही अधिकतर गाढ़ और स्वास्थ्य के लिए अधिक उपयोगी है। बालक जिससे शीघ्र ही अर्थात् रात्रिके पहले पहरमें सो जायँ माता पिताको इस विषयमें विशेषरूप से व्यवस्था करनी चाहिए। एक बार नियमबद्ध होने पर बालक के लिए किसीप्रकार की असुविधा नहीं होती। मस्तिष्क की नियमितरूप से वृद्धि होती है और निर्दिष्ट समय निद्रा का आविर्भाव होता है।

बालक को जिस से बहुत समय तक गाढ़ी निद्रा आजाय इस विषय में अभिभावक लोगों को विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। गाढ़ निद्रा के लिए निम्नलिखित नियमों पर दृष्टि रखनी चाहिए। (१) रात्रि का भोजन भारी या दुष्पाच्य नहीं होना चाहिए। (२) सोने से आधा घण्टा पहले पाठ्य पुस्तक छोड़ देनी चाहिए। (३) शयनगृह में निर्मल वायु के चलने की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए। (४) बालक के पास अधिक आदमियों की बोलचाल नहीं होनी चाहिए। (५) बालक के शरीर के सब वस्त्र उतार देने चाहियें। इन सब विषयों पर दृष्टि रखने से बालक स्वप्नशून्य होकर गाढ़ निद्रा का अनुभव करता है। उसके शरीर की समस्त क्लान्ति दूर होती है और सम्पूर्ण शरीर में नवीन बलका सञ्चार विशेषकर उसके मस्तिष्कशक्ति की वृद्धि हो कर जीवन का अधिकतर कल्याण होता है।

परीक्षित-प्रयोग।

(चर्मरोग—अर्थात् दाद, खुजली आदि पर)

आमलासार गन्धक १ तोला, पारा १ तोला, सफेद राल १तोला, नीला थोथा ३ माशे, चौकिया सुहागा ६ माशे, संगजरात १ तोला, मुर्दासंख ६ माशे, बावची १ तोला और खुरासानी अजवायन १ तोला लेवे। प्रथम पारे और गन्धक की एकत्र घोट कर कज्जली बनावे। पश्चात् नीलेथोथे और सुहागे को अलग अलग मिट्टी के पात्रमें रख कर फुला लवे। फिर सब औषधियों को एकत्र कूट पीस कर उत्तम प्रकार खरल करके जलके योग से सुपारी के समान गोलियाँ बनालेवे। शुष्क दाद्पर इस गोली को पानी में घिस कर लेप करे और तरल-दाद पर (जो कि हाथ पैरों को अँगुलियों में पड़जाते हैं) सौबार धोये हुए घृत अथवा मक्खन में मिलाकर लगावे। एवं कण्डू (खुजली) पर उक्तबटी को सरसों के तेल में मिलाकर समस्त शरीर पर मालिश करे। यह औषधि यदि प्रातः काल लगावे तो सायङ्काल में और सायङ्काल में लगावे तो प्रातः समय मे सरसों का तेल लगा कर नीम के पानी से धो डालना चाहिए।

इस औषधि को श्वेतकुष्ठ के कई रोगियों पर आजमा कर देखा गया है। आशातीत लाभ हुआ।

पण्डित वैद्य रामप्रसादमिश्र शर्मा, मूँगापट्टी, कलकत्ता।

अर्श (बवासीर) रोग पर।

गुजराती फटकरी, मलपुत्रसार (मीठा विष) सोरा, कलमी, तूतिया, हीरा कसीस, चूना और नौसादर इन सब को समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर कपड़छन करले। फिर मनुष्य के मूत्र में खरलकर बवासीर के अङ्कुरों पर लेप करे। यह औषधि तीन दिन में ही बवासीर को समूल नष्ट करदेती है। किन्तु यह औषधि अत्यन्त तीक्ष्ण व विषैली होने के कारण बड़े कष्ट से सहन कीजाती है। इस लिए कोमल सुकुमार और दुर्बल मनुष्यों को इसका व्यवहार औषधि की तीक्ष्णता को खूब सोच समझ कर करना चाहिए।

बल-पुष्टिकारक रमणशक्तिवर्द्धक और परम बाजीकरण योग—बबूर के आधपाव बीजों को अच्छे प्रकार कूट पीसकर बड़(बरगद) के १पाव दूध में खरल करलेवे। फिर हरे बाँस की नली

में भरकर सुखालेवे। जब सूख जाय तब इस औषधिको छः माशे प्रमाण दूध में खरल करके रात्रि को प्रतिदिन सोते वक्त सेवन करे। इससे कान्ति की वृद्धि, शरीर की पुष्टि, स्फूर्त्ति की उत्पत्ति और स्मरण-शक्ति की वृद्धि होती है,। इसको २० दिन तक सेवन करना चाहिए।

वैद्य सोहनलाल परमात्माशरण
सूरतगढ़, बीकानेर।

—०—

सन्निपात ज्वर पर।

तालकादि चूर्ण—गोदन्ती हरिताल १ तोले, सीपी ५ तोले, संगजरात ५ तोले, और अजवायन ७ तोले लेवे। पहिले पूर्वोक्त तीनों औषधियों को एकत्र कूट पीस कर चूर्ण करलेवे फिर एक सकोरा ले कर उसमें एक या दो अरण्ड के पत्ते बिछाकर उसपर आधी अजवायन डाल देवे। पश्चात् उसके ऊपर उपर्युक्त हरिताल आदि औषधियों का चूर्ण रखकर शेष अजवायन को भी उस पर बिछा देवे और उसपर दो अरण्डके पत्ते ढककर कपरमिट्टी करके धूपमें सुखालेवे। फिर २५-३० सेर आरने उपलों की अग्नि में फूंक देवे। जब स्वाङ्ग शीतल होजाय तब निकाल कर उत्तम प्रकार खरल करके शीशी में भरकर रखदेवे। इस का रंग कुछ नीलापन लिए हुए श्वेत होता है। इसको प्रतिदिन प्रातः और सायङ्काल तीन तीन माशे अथवा अपने बलाबल को विचार कर उपयुक्त मात्रा से शर्बत बनफशे में मिलाकर सेवन करे और ऊपर से अर्क-गाजुवां पान करे। यह औषधि-पीनस रोग, गलग्रह, सन्निपात और अन्यान्य सर्वप्रकार के ज्वरोंको नष्ट करती है। यह प्रयोग हमारा कई बार परीक्षा किया हुआ है, इससे कितने ही रोगियों को लाभ पहुँचा है।

पं० मोतीराम शर्मा वैद्य
छालपुर, अमृतसर।

—०—

आयुर्वेद-महाविद्यालय।

आयुर्वेदकी उन्नति व अवनतिसे देशके गौरव और उन्नति, अवनतिका सम्बन्ध है। अतएव आयुर्वेदका प्रश्न राष्ट्रीय प्रश्न है और इसके आन्दोलन की ओर देश की दृष्टि उसी प्रकार है जैसे अन्य राष्ट्रीय आन्दोलनों की ओर। आयुर्वेद की उन्नति के लिए जितने आन्दोलन हों वे अभीष्ट ही हैं; किन्तु किसी विज्ञानकी उन्नति उसके

साहित्यप्रचार और विद्यावृद्धिके बिना नहीं हो सकती। इसलिए आयुर्वेदिक आन्दोलनों को यदि सचमुच सफल बनाना हो तो यह आवश्यक है कि कम से कम एक सुसंगठित आयुर्वेदमहाविद्यालय बहुत शीघ्र स्थापित करना चाहिए। इसके बाद देशकी आवश्यकता के अनुसार और भी विद्यालय स्थापित होते रहेंगे। तीन वर्ष पहले महाराजा रीवाँकी संरक्षकता में वैद्यसम्मेलन ने प्रयाग में एक आयुर्वेद महाविद्यालय खोलने का आयोजन किया था और उसकी प्रारम्भिक कार्रवाई भी आरम्भ कर दी थी; किन्तु डेढ़ वर्ष से इस विषय में कोई नई बात सुनने में नहीं आई है। इसका दोष चाहे जिसपर हो किन्तु इस चुप्पी का दूर होना आवश्यक है और इसका कार्य आगे बढ़ाना भी अभीष्ट है।

अब तक के निश्चय के अनुसार विद्यालय प्रयाग में स्थापित होनेवाला है, स्वर्गीय महाराज रीवाँ की सम्मति और इच्छा भी यही थी। इसके सिवाय प्रयाग वैसा स्थान है जहाँ अनेक कारणों से देश भरके लोगों का आवागमन होता रहता है। प्रथम भी मानवसृष्टि में आयुर्वेद का प्रचार प्रयाग से ही हुआ है और वैद्यसम्मेलन का पुनरुत्थान और अभ्युदय भी प्रयाग से ही हुआ है। प्रयाग की भूमि आयुर्वेद के लिए शुभ और अनुकूल प्रतीत हुई है, अत एव वहाँ सम्मेलन द्वारा आयुर्वेदविद्यालय का स्थापन सब प्रकार उचित है। इस कार्य के सञ्चालन के लिए वैद्यसम्मेलन ने जो समिति बनाई है, उसके मन्त्री कलकत्तावासी महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ-सेन हैं। इतने सुयोग्य होने पर भी कविराज जी अब तक विद्यालय-सम्बन्धी विशेष उद्योग नहीं करसके अवश्य ही उस का कोई प्रबल-कारण होना चाहिए, आवश्यकता इस बात की है कि कविराज जी के मन्त्री रहते हुए भी वैद्यसम्मेलन प्रयाग में आयुर्वेदविद्यालय सम्बन्धी एक प्रबन्धकारिणी समिति बना दे और उसके कार्यकर्ता और सभासद् ऐसे चुन कर रखे जो उत्साह और परिश्रम से कार्य करने में समर्थ हों। प्रयाग के वैद्य और प्रयाग की "आयुर्वेदप्रचारणीसभा" इस विषय में पूरी सहयोगिता और सहायता करने को तैयार है। बिहार, राजपूताना और संयुक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन-कार्यालय भी इसका कार्य सञ्चालन करने में अपनी तत्परता बतावेंगे। कानपुर और लखनऊ की वैद्यसभा भी सहयोग करने का प्रस्ताव पास कर चुकी हैं। ऐसी दशा में यही उचित है कि

वैद्यसम्मेलन इस कार्य को शीघ्र पूर्ण करे। इस से कार्य्य भी शीघ्र होगी, काम करने में सुविधा होगी और कविराज गणनाथ सेन को भी काम में सहायता मिलेगी। आशा है सभी प्रान्तों में नि॰भा॰ वैद्यसम्मेलन के जो सभासद् हैं,वे स्थायी समिति को आग्रह के साथ ऐसी ही सम्मति देंगे। ऐसे उपयोगी काम को हाथ में लेकर वैद्य लोग शीघ्र पूर्ण न कर सकें और पूर्ण करने के उपायों को काम में न लासकें तो यह उन की कर्तृत्वशक्ति के लिए शोभाजनक नहीं है। इसले हमें आशा है कि सम्मेलन कार्यसिद्धि की ओर शीघ्र ध्यान देगा।

कविराज उमाचरण भट्टाचार्य काशी, वैद्य ब्रजविहारी चतुर्वेदी बाँकीपुर, राजवैद्य वाल्मीकिप्रसाद शर्मा रीवाँ, वैद्य रामावतार शर्मा मुस्तफापुर, वैद्यश्यामारामशर्मा लखनऊ, वैद्यरामनारायण मिश्र लखनऊ, वैद्य रामेश्वरमिश्र कानपुर, वैद्य रघुवरदयालु भट्ट कानपुर, वैद्य किशोरी दत्त शास्त्री कानपुर, वैद्य सूर्य्यप्रसाद वाजपेयी कानपुर, कविराज प्रतापसिंह शर्मा ऋषीकेश, वैद्य केदारनाथ चौबे प्रयाग, वैद्य प्राणनाथ चौबे प्रयाग, वैद्य ठाकुर प्रसादमणि प्रयाग, डाक्टर लक्ष्मीकान्तमणि प्रयाग, वैद्य जयकुमारजैनी प्रयाग, वैद्य जगन्नाथप्रसाद शुक्ल प्रयाग।

—o—

आयुर्वेद-महाविद्यालय की।

अपील।

पिछले कई वर्षों मे आयुर्वेद के सम्बन्ध में जो समुचित आन्दोलन देश के कुछ प्रान्तों मे हुआ था उसे देखकर आयुर्वेदप्रेमियों को आशा हुई थी कि अब अनतिदूर भविष्य में आयुर्वेद की उन्नति का कोई न कोई कार्य्य आरम्भ होनेवाला है। किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में दो चार दिनों की 'व्याख्यानबाज़ी' और 'प्रस्तावपासी' के सिवा अब तक आयुर्वेद की यथार्थ उन्नति करनेवाला कोई कार्य्य आयुर्वेद के नेताओं ने नहीं किया। हम आन्दोलन के विरोधी नहीं हे। आन्दोलन को आज उस के समय का प्रधान साधन समझते हैं, पर उस आन्दोलन के साथ कुछ वास्तविक कार्य्य को होता हुआ देखने के लिए भी हम सदा व्यग्र रहते हे। आज चारों ओर से आयुर्वेद पर जो आक्षेप होरहे हैं और उसका मज़ाक उड़ाया जा रहा है इन सब बातों का प्रतिवाद हम आयुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाली हर सभा में सुनना

चाहते हैं। पर इतना होने से ही हम कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझते, हम उस का आचरणगत प्रतिवाद चाहते हैं, हम चाहते हैं आयुर्वेद को जाननेवाला वैद्य संसार में प्रचलित किसी चिकित्सा-प्रणाली के जाननेवालों से कम योग्य न हो। यह आयुर्वेद का तो पूर्ण जाननेवाला हो पर आस पास की अन्यचिकित्साप्रणालियों से भी उस का थोड़ा बहुत परिचय अवश्य हो। बात आपड़े तो तुलनात्मक आलोचना से आयुर्वेद की श्रेष्ठता बिना आँखें लाल किए और मुखाकृति बिगाड़े सिद्ध करदे।

अब तक आयुर्वेद का जो अमूल्य विज्ञान पुस्तकों में भरा पड़ा है वह किसी स्थान पर देश, काल और पात्र के विचार के साथ उपयुक्त छात्रों को नहीं सिखाया जाता। वैद्यों के स्थान पर अवश्य कुछ दीन विद्यार्थी आयुर्वेद की दीनता को दूर करने के लिए लघु और बृहत्त्रयी का पाठ पढ़ते हैं। पर क्या इतने से ही बीसवीं शताब्दी के इस प्रतिद्वन्द्विता के युग में आयुर्वेद की विजयपताका विदेश की तो कौन कहे देश में भी अपने ठीक रूप में फहर सकती है।

आयुर्वेद की यथार्थ उन्नति के लिए उसके प्रभावपूर्ण प्रचार के लिए देशकी सच्ची सेवाके लिए कम से कम एक आदर्श आयुर्वेद-महाविद्यालय के जल्द खुलनेकी बड़ी कड़ी आवश्यकता है। और उक्त विद्यालय के लिए प्रयाग ही उपयुक्त स्थान हो सकता है। इस विषय में हम पहले भी अपनी सम्मति देचुके हैं। शोक की बात है कि रीवाँ के गोलोकवासी महाराज ने जिस कार्य्य का सूत्रपात अपने हाथों से किया था वह उन के सामने पूरा न होसका। उनकी बड़ी इच्छा थी कि आयुर्वेदविद्यालय शीघ्र खुलजाय और उस के लिए उन्हों ने एक बड़ी रकम भेट की थी। यही नहीं भारत के अन्य नरेशों से भी उस के लिए बहुत कुछ दिलवाने का विश्वास दिलाया था और कुछ धन दिलवाया भी था। इस में शक नहीं कि अब कोई इतना बड़ा आदमी इस बड़े कामके लिए उस लगन के साथ काम करने वाला दिखाई नहीं देता। पर हमें भारत के धनियों पर विश्वास है, अच्छे उद्देश से माँगने के लिए कोई योग्य पुरुष निकले तो वह खाली नहीं लौटता। आयुर्वेदविद्यालय की स्थापना बड़े पुण्य का काम है, उस के लिए पुण्यशील धनाढ्य यथाशक्ति दान देंगे-इस का हमें विश्वास है। एक रोगी की सहायता करना या उस की चिकित्सा करादेना जब बड़े पुण्य का काम समझा जाता है और ठीक समझा

जाता है तब जिस विद्यालय से निकलने वाले धर्मभीरु, पर कार्य्य-कुशल वैद्य अनेक रोगियों की चिकित्सा करके उन्हें आरोग्य प्रदान करेंगे उस की स्थापना कितने पुण्य का काम होगा। उस में सहायता करने से कोई नहीं चूकेगा। काम आरम्भ करदेना चाहिए। श्रीगणनाथसेनजी को अपने गणों के साथ इस शुभकार्य्य की श्रीगणेश कर देनी चाहिए और लोगों को बतादेना चाहिए कि वे इस का शुभ कार्य्य के आरम्भ में गणेश की तरह विघ्नों को दूर करेंगे न कि उसके आरम्भ में स्वय विघ्न बनेंगे।

इसी विषय पर हम आज की संख्या में एक पत्र छापते हैं पाठक उसे ध्यान से पढ़ें और महाविद्यालय के लिए आन्दोलन शुरू करें-यह हमारी प्रार्थना है।

—o—

प्रेरितपत्र।

गतमास वैद्य की संयुक्त संख्या में एक प्रकृतिसेवक महाशय का "सब रोगों का आदि मूल अजीर्ण" शीर्षक नाम का जो लेख छपा है उसमें हमें कुछ शङ्का है। आशा है कि उक्त लेखक महाशय हमारी शङ्का का समाधान करके कृतार्थ करेंगे।

आप लिखते हैं कि "भोजन करते समय एक बूँद भी पानी नहीं पीना चाहिए। दो घंटे पश्चात् पानी पीना उचित है।" क्या लेखक महाशय जी, इस बात को करनेके लिए कोई शास्त्रीय प्रमाण देसकते हैं? फिर आगे चलकर आप लिखरहे हैं कि फलाहार के पश्चात् दो घंटे तक प्यास लगती ही नहीं कारण कि उनमें आवश्यक जल स्वयं ही विद्यमान है। इस से सिद्ध होता है कि आवश्यक जल भोजन के मध्य में अवश्य पीना चाहिए। हां, लोटे के लोटे चढ़ाने में तो अति हो जावेगी जो सर्वत्र वर्जनीय है।

इस से आगे चलकर आप लिखते हैं कि एक डाक्टर का मत है कि दूध को भी चबाकर पीना चाहिए। इस मत के अनुसार आप भी ऐसी ही आज्ञा देते हैं। इसको मैं अत्युक्ति समझता हूँ। डाक्टरों के मत हमारे लिए हमारे उन महर्षियों के मत से श्रेष्ठ नहीं होसकते जिन्हों ने अपने अपूर्व योगबल से अमूल्य शास्त्र हमारे लिये रच दिये हैं। nature भी इस बात को मंजूर नहीं करता। यदि ऐसा ही होता तो बच्चे दाँत लेकर पैदा होते। अथवा माता के स्तनों में

दूध नहीं होता इधर दाँत नहीं हैं उधर दूध है तो क्या यह कहा जा सकता है कि दूध और पानी भी चबा २ कर पीना चाहिए ?

लेखक महाशय जी क्षमा करें। मैंने यह आक्षेप नहीं किया है, किन्तु पाठकों को मैं ऐसा करना उचित नहीं समझता। जैसे अति ऋणी मनुष्य अपना ऋण चुकाने की परवाह ही नहीं करता है।

कु० जगसिंह वैद्य सर्वे मास्टर जिला—महिदपुर तराना।

बड़ौदा (पनागर) के बाबू ब्रह्मानन्द जी कविराज के पत्र का उत्तर।

गतमास के वैद्य में जो आपने वीर्य्य के जल में डूबने के सम्बन्ध में प्रश्न छपवाया है, उस का उत्तर इस प्रकार है:—

वाग्भट के कथनानुसार जिस के मल, मूत्र, थूक और वीर्य्य जल में डूब जायँ उसकी मासान्त मे मृत्यु होती है। इस में आप अन्य बातें तो ठीक मानते हैं, पर वीर्य्य का जल में डूबना ठीक नहीं समझते। हमारी राय में आपकी यह शङ्का निर्मूलक है। क्योंकि चरक में ऐसा लिखा है कि:—

"रेतो मूत्रपुरीषाणि यस्य मज्जन्ति चाम्भसि।
स मासात्स्वजनद्वेष्टा मृत्युवारिधि मज्जति॥"

(च०अ० ११ श्लो०९)

जिस के मल, मूत्र और वीर्य्य ये तीनों एक साथ जल मे डूब जायँ एवं स्वजनों से द्वेषहो उस की एक मास में मृत्यु होती है। मल, मूत्र अथवा वीर्य्य पृथक् पृथक् जल में डूबनेसे एक मासमें मृत्यु होती है यह वाग्भट का कथन अयुक्तिसगत है। क्योंकि आठ शुक्र के रोगों में वीर्य्य का डूबना भी एक रोग है। यह रोग औषधोपचार करने से दूर होजाता है, इसलिए यह अरिष्ट नहीं है। इसी प्रकार अतीसार मे मलका डूबना आमातिसार का एक लक्षण है। रोगी का मल पानी में डूबने से "•यस्तमप्स्ववसीदति-" इस वाक्यानुसार आमातिसार का ज्ञान होता है। यह रोग भी चिकित्सासाध्य है, अत यह भी अरिष्ट नहीं है। साधारणतः शुद्ध शुक्र भी जल में डूब जाता है। पर अरिष्टवाले मनुष्य का वीर्य्य जितनी जल्दी डूबजाता है, स्वस्थ मनुष्य का वीर्य्य उतनी जल्दी नहीं डूबता। यह उसकी अपेक्षा कुछ अधिक क्षण में डूबता है।

शुक्र का घन और भारी होना उसकी शुद्धता का लक्षण है। गुरुत्व के कारण ही वह जल में डूब जाता है।

वीर्य में फाइब्रीन नामक एक पदार्थ होता है जिस से वीर्य इन्द्रिय से स्खलित होने के पश्चात् शीघ्र जमजाता है। इसी हेतु वह जल से डूब जाता है। शुक्र ही नहीं, किन्तु मूत्र का गुरुत्व भी जलकी अपेक्षा अधिक होता है, अत एव मूत्र का जल में डूबना भी स्वाभाविक है और यह बात विज्ञानसम्मत है। उक्त वाग्भट के वचन का यह अर्थ प्रतीत होता है कि रोगी के शरीर में से रोग के प्रभाव से मल, मूत्र और वीर्यादि के साथ ऐसी कितनी ही अधिक गुरुत्ववाली धातुएँ (क्याल्शियम,गन्धक, लोहादि) निकलती हैं जिनके कारण शुक्रादि का जल में तत्काल डूबजाना सम्भव है।

सारांश यह है—अरिष्टवाले रोगी के मल, मूत्र और शुक्र ये तीनों एक साथ, स्वस्थ मनुष्यों के शुद्ध मल, मूत्र शुक्रादि की अपेक्षा तत्काल डूबजाते हैं। यहाँ तीनों वस्तुओं का एक साथ शीघ्र डूबना ही मासान्त अरिष्टदोष है। और जहां ये तीनों द्रव्य एक साथ न डूबें वहां पूर्व कथनानुसार अरिष्ट दोष नहीं है।

वैद्य मनानन्द पन्त (आयुर्वेदार्णव)

वैद्यों की सूचना।

बहुत से वैद्यराज सन्निपात की अवस्था में धतूरे के पत्तों का रस आदि पदार्थों को गरम करके शरीर पर लेप कराते हैं, परन्तु ऐसे लेप शीतल होने पर अत्यन्त हानिकारक होते हैं। इससे यहां तक हानि होती है कि शरीर में जो दूसरी औषधियां पहुँचाई जाती हैं, उनका गुण भी नष्टप्राय हो जाता है। इसी प्रकार बहुत से वैद्य लोग सन्निपात की दशा में मूत्रावरोध होने पर सोरा वगैरह का नाभि पर लेप कराते हैं, वास्तव में यह भी अत्यन्त हानिकारक है। बहुत से वैद्य लोग हैज़े के रोगी को प्याज का रस पिलाते हैं। साधारणतः प्याज का रस हैज़े में हितकारी है, पर वमन और दस्त के बन्द होने पर जब कि उदर की गर्मी व दाह उत्पन्न होगई हो कदापि प्रयोग न करना चाहिए कारण कि इस का अच्छा फल नहीं होता। यह मेरा कितने ही बार अनुभव किया हुआ है।

विशेषकर मध्यप्रदेश के वैद्य लोग उपर्युक्त प्रयोग अधिकतर करते हैं इसलिए उन्हें इस विषय में अपने विचार प्रकट करने चाहिएँ।

वैद्य पं० गदाधरप्रसाद शर्म्मा दीक्षित अवलतरा.

निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदविद्यापीठपरीक्षाफलम् १९१९ (श० १९८६)

अथ प्रदर्शिता परीक्षार्थिनः नि० भा० आ० विद्यापीठस्य विविधपरीक्षासु समुत्तीर्णा इति प्रकटीक्रियते ॥

(आयुर्वेदाचार्य)

क्रम संख्या	रोल न	नाम	अध्ययनस्थानम्	केन्द्र	श्रेणी
१	१	रामेश्वरशास्त्रि शुक्ल	आयुर्वेदपाठशाला, लश्कर, ग्वालियर	देहली	प्रथमः
२	४१	त्रिलोकनाथ उपाध्याय	आयुर्वेद औषधालय, बांकीपुर	बांकीपुर	द्वितीय
३	२४	पाण्डुरङ्गशिवराम पंडे	गणेश चिकित्सालय, भवसागर	प्रयाग	"
४	२३	बाबूराम शर्मा	जलालाबाद (प्राइवेट)	देहली	"
५	१०२	शिवकण्ठ मिश्र	जीवनप्रभा औषधालय, पिलखाना, कानपुर	प्रयाग	"
६	१३	बी० एल० सर्णालिस सिल्व	प्राइवेट, सिलोन (कोलम्बु)	मद्रास	तृतीय

(विशारद)

क्रम संख्या	रोल न	नाम	अध्ययनस्थानम्	केन्द्र	श्रेणी
१	१५२	गोविन्दहरि घर्षेकर	कृष्णशास्त्रिकवडे आयुर्वेदविद्यालय, पूना	पूना	द्वितीयः
२	६०	रघुनन्दन मिश्रा	प्राइवेट	बांकीपुर	"
३	७६	जगदीशचन्द्रशर्मा	आयुर्वेदविद्यालय, हृषीकेश	हरिद्वार	तृतीयः

४	४	दामोदर सीताराम जोग्लेकर	मारवाडी आयुर्वेदपाठशाला, मुम्बई	मुम्बई	तृतीयः
५	६५	रामप्रसादशर्मा मिश्र	आयुर्वेदविद्यालय, हृषीकेश	हरिद्वार	,,
६	७४	अनन्तरामशर्मा	,, ,,	लुधियाना	,,
७	६३	रामचन्द्रशर्मा	,, ,,	हरिद्वार	,,
८	८७	शिवसहायशर्मा	मारवाडी रिलीफ सोसाइटी सि. एच. डिस्पेन्सरी कलकत्ता	कलकत्ता	,,
९	३४	चावलि राममूर्तिशास्त्रि	प्राइवेट्	मद्रास	,,
१०	२१	द्विजेन्द्रशर्मा	रसशाला, कनखल	हरिद्वार	,,
११	८६	लक्ष्मीदत्तशर्मा	लक्ष्मणदास आयुर्वेदपाठशाला, खुर्जा सिटी	देहली	,,

(वैद्य)

१	५६	रामलाल रावल	आयुर्वेदविद्यालय, हृषीकेश	हरिद्वार	द्वितीयः
२	३६	जगन्नाथत्रिपाठी	आयुर्वेदऔषधालय, बांकीपुर	बांकीपुर	,,
३	३	गंगादत्त शर्मा	यूनानी तिब्बीकालेज, देहली	देहली	तृतीयः
४	१२८	श्रीमती लक्ष्मीबाई भागवत	लाग्वन्कर आयुर्वेदविद्यालय, पूना	पूना	,,
५	४१	नागेशदत्तात्रयकुलकर्णी	लाग्वन्कर आयुर्वेदविद्यालय, पूना	पूना	,,
६	१७	दत्तात्रेय रामचन्द्रशर्मा	मारवाडी आयुर्वेदपाठशाला, मुम्बई	मुम्बई	,,
७	११	रामनाथत्रिपाठी	प्राइवेट्	कानपुर	,,

८	१०१	जयनारायण जोशी	प्राइवेट	अजमेर	तृतीय
९	८५	कपिलदेवशर्मा द्विवेदी	विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, कलकत्ता	कलकत्ता	"
१०	३१	गजाननशर्मा	मारवाडी आयुर्वेदपाठशाला, मुम्बई	मुम्बई	"
११	३२	किशोरीलाल पालिवाल	प्राइवेट	देहली	"
१२	३०	विट्ठलप्रसादशर्मा	मारवाडी आयुर्वेदपाठशाला, मुम्बई	मुम्बई	"
१३	४५	व्रजलालशर्मा	"	"	"
१४	४६	आनन्दस्वरूप शर्मा	आयुर्वेदयूनानीतिब्बीकालेज, देहली	देहली	"
१५	४५	श्रीमती सौभाग्यवती	प्राइवेट	"	"

इस वर्ष रोलनम्बर १ ग्वालियरनिवासी श्रीयुत रामेश्वर शास्त्री शुक्ल आचार्य परीक्षा के प्रथम वर्ष के सब विषयों मे प्रथम श्रेणी मे प्रथम नम्बर पास हुए हैं। अत एव इनको वैद्यरत्न पण्डित डि० गोपालाचार्लु महाशय ने सानन्द और सम्मानपूर्वक स्वर्णपदक प्रदान किया है।

रोलनम्बर १२८ पूना निवासिनी श्रीमती लक्ष्मीबाई भगवती 'वैद्य' परीक्षा के प्रथम वर्ष के सब विषयों तृतीय श्रेणी में पास हुई हैं। अत स्त्रियों मे वैद्यक का प्रचार होने की इच्छा से इनको भी डि० गोपालाचार्लु महाशय ने सम्मानपूर्वक स्वर्णपदक दिया है।

रोल नम्बर ४१ देहलीनिवासिनी श्रीमती सौभाग्यवती वैद्य परीक्षा मे तृतीय श्रेणी उत्तीर्ण हुई हैं पूर्वोक्त महाशय ने इनको स्त्रियों में आयुर्वेद का प्रचार करने के लिए सहर्ष स्वर्णपदक दिया है।

आयुर्वेदोद्धारक औषधालय की—

❀ परीक्षित औषधियां ❀

सर्व प्रकार के रक्तविकारों पर

❀ अमृत संजीवनी वटिका ❀

इस को सेवन करने से सब प्रकार की खुजली, दाद, चकत्ते, रुधिर विकार, वातरक्त, उपदंश (आतशक, गर्मी) अंगोंका भंग होना शरीर में छिद्रों का होना, नाक का टेढ़ा पड़जाना, हाथ पावों का पसीजना, त्वचा के रोग, कोढ, शरीर का फूटना, पारे के विकार और सब प्रकार के दुष्ट घाव आराम होते हैं। नवीन रुधिर उत्पन्न होता है। मुख पर कांति और शरीर में फुर्ती उत्पन्न होती है। दस्त खुलासा होता है। मू० १) डिब्बी। डा० म० ।)

सर्व प्रकार के ज्वरों पर।

❀ अजया वटिका ❀

यह गोली सब प्रकार के नये पुराने ज्वरों को दूर करती हैं। जिन लोगोंको कोनैन माफिक नहीं पड़ती उनके लिये यह बहुत अच्छीहै। इस से मलेरिया, विषमज्वर, एकतरा, तिजारी चौथिया, सर्दीलगकर आनेवाला ज्वर। प्लीहा और यकृत युक्तज्वर शीघ्रदूरहोना है। मू० १) ह० शी० डा० म० ।)

❀ महालाक्षादि तैल ❀

जीर्ण ज्वर की प्रसिद्ध औषध है। इस को व्यवहार करने से बहुत दिनों का पुराना ज्वर, ज्वरकी दाह, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, हड्डी और सन्धियों की पीडा, शरीर का टूटना खुजली, और असामर्थता दूर होती है तथा वायु और कफ के रोग, पसली का शूल, कमर व पीठ की पीडा, घुटनों का दर्द, शिर का दर्द, शरीर का कांपना, मृगी मूर्छा, पागलपना, भ्रम और प्रसूतरोग में यह अत्यन्त हितकारी है। मूल्य २० तोले की शीशी २) रुपया डाक महसूल ॥-)

❀ क्षुधाप्रदीपिनी वटी ❀

इनको सेवन करनेसे सब प्रकारकी मंदाग्नि और अजीर्ण तत्काल शांत हो जाता है। तथा जठराग्निदीपन होकर क्षुधा बढ़ती है। किया हुआ भोजन शीघ्र पचजाता है। एवं अम्लपित्त, खट्टी डकारोंका आना

Regd. No A. 687

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिकपत्र

सम्पादक–शंकरलाल वैद्य

वर्ष ७ } मुरादाबाद, जून १९१९ { संख्या ६

विषय-सूची।

प्रकाशक–हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य १)

Printed by Kailasachandra
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD.

के दोष और वातरक्त यह सब शीघ्र दूर होजाते हैं। इससे न क़य है न दस्त आते हैं और न मुंह आता है। मू० १) रु० शीशी डा० म०

उपदंश नाशक मरहम—केवल, ३-४ बार लगाने से आतशक के घाव, दाह, खुजली आदि उपद्रव छूट जाते हैं। मूल्य डिब्बी।

एलादिवटिका।

यह गोली प्रत्येक मनुष्यका अपने पास रखनी चाहिये करने से हैज। बदहज़मी पट का दर्द, शूल; क़य, दस्तों का होना सब प्रकार का अजीर्ण दूर होता है। मू० १) रु० डिब्बी। डा०

अबलाहितकारिणी वटी।

इन गोलियों का सेवन से कष्ट से मासिकधर्म का होना, कालं की भयानक पीड़ा मासिकधर्म का न होना, घुटने पीड़ा, बोझ सा मालूम होना, मस्तक को घूमना कम या दिनों में रजोदर्शन होना, बच्चे में दाग का लगना, शरीर की नाभि के नीचे की पीड़ा, मनका अप्रसन्नता आदि, सब उपद्रव होकर मासिकधर्म यथा समय सुखपूर्वक होता है। मू०१)० डा० य० ।) आ०।

श्रीसञ्जीवनशङ्कर घृत।

इस परम कल्याणकर घृत का सेवन करने स्त्रियों का (सफ़ेद पानी का जाना) रक्तप्रदर,(लाल पानी का जाना) शिरपीड़ा, मूर्च्छा, दाघ सहित धातुका गिरना, दुर्बलता, कमरका और चित्तका न लगना यह सब विकार दूर होकर, शरीर होता है। शरीर का वर्ण सुन्दर होता है। तथा गर्भ उत्पन्न होता है जिन स्त्रियों को गर्भनहीं रहता या रह कर गिरजाता है। उनके यह दोषों को दूर करता है। मूल्य २) रु० शी० । डा० म० ।=) आ०

बालसंजीवन वटिका।

इन गोलियों को सेवन करने से बालकों के, समस्तरोग, सर्दी, खांसी ज़ुकाम, ज्वर, पसली, मुख का आजाना दूध का नहीं पीना, मसानका बाधा, बार बार दूध डालना निरन्तर रोना सूखना, दस्तों का होना, दांत निकलते समय की पीड़ा आदि सब उपद्रव दूर होते हैं मू० १) रु० शी० डा० म० ।)

प्रकारके उदर रोगोंकी तत्काल गुणकारक और प्रशंसित औषधि

(जम्बीर द्राव)

य[illegible] अनेक प्रकार के क्षार, लवण, गंधक, लोहा और [illegible] को अनुशोधन करनेवाले पाचक पदार्थों के द्वारा [illegible] नीबू के रस में गलाकर बनाया गया है। पीने में स्वादिष्ट और रुचिकर है। इस को सेवन [illegible] से शूल, अम्लशूल, बस्तिशूल, प्लीहा (तिल्ली), [illegible] (जिगर), गुल्म, (बायगोला), रक्तगुल्म, अजीर्ण, [illegible] (हैज़ा), उदररोग, सूजन, मन्दाग्नि और [illegible] दूर होती है। इसकी केवल एक मात्रा सेवन करने ही सब प्रकार का शूल क्षणभर में शान्त होजाता है। शुद्ध आती है, कच्चा भोजन शीघ्र पचजाता है और अत्यन्त भूँख लगतीहै। मू०फी शीशी १) डा०म०।=)आ०

पत्र

(१) वैद्यजी ! ३ शीशी जम्बीरद्राव पहुँचा वास्तव में जैसा गुण आप लिखते हैं वैसा ही है। इसकी हम सच्चे दिलसे तारीफ लिखते हैं। यह बहुत उम्दा है ४ शीशी और भेजिये। प० [illegible]राघव शवस्त खीस्त असिस्टेंट मालगुजात आंतरी (ग्वालियर)

(२) आपने जो १ शीशी जम्बीरद्राव भेजा था उससे हम को बहुत फायदा हुआ। कृपा करके दो शीशी और भेजिये प्यारेलाल महादेवप्रसाद मार्केट नं ९४ कलकत्ता

(३) आपके जम्बीरद्राव ने हमारे प्राणों की रक्षा की नहीं तो हमारे बचने का उपाय न था।

ठाकुर कालीसिंह मु० पो० नवागढ़ (सिंहभूमि)

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर आयुर्वेदोद्धारक औषधालय मुरादाबाद.

* वैद्य के नियम *

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १।) रु० है।

(३) 'वैद्य' नमूने में केवल एक अंक भेजा जाता है। दूसरा बिना ग्राहक होने की सूचना मिले नहीं भेजा जाता। नमूने में कोई सा अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिए जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक का होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहकनम्बर अवश्य लिखना चाहिए जिस से उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँच कर भेजा जाता है, किन्तु तो भी बहुत से ग्राहक किसी अंक के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं इस का कारण रास्ते की असावधानी ही हो सकती है। जिन महाशयों को जो अंक न मिले वह दूसरे अंक के पहुँचते ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्व प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि, "वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस, मुरादाबाद" के पते से भेजने चाहिएँ।

श्रीधन्वन्तरये नमः।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

वर्ष ७ } मुरादाबाद, जून १९१९ { संख्या ६

विनय।

मिटा दो रोग-समूह समूल।

जिस को आम मान हित कीना, निकला वही बबूल।

किन्तु विदित यों हुआ हाथ में चुभा भयानक शूल॥

मेरे अङ्ग—दूसरे मन के—करें कर्म प्रतिकूल।

उन का फल कैसे हो सकता है मेरे—अनुकूल॥

प्रकृति आज्ञा त्यागन ही से, हुई नाथ ! ये भूल।

किन्तु, न तब ये ज्ञान मिला था, पूर्ण रूप वेमूल॥

हम अपराधयुक्त हैं तो भी, विनती करो कबूल।

जिस से फाँसी वाली लगती, स्वयम् न जावे भूल॥

'नयन'

—०—

सोमलता।

(प्रोफ़ेसर श्रीयुक्त सत्येन्द्रनाथ सेन, विद्यावागीश एम० ए० महोदय के लेख से अनुवादित।)

सोमलता वैदिक-साहित्य में विशेष प्रतिष्ठित औषधि है। यह इस समय देवदुर्लभ होने पर भी कहीं कहीं इस का मनुष्यों को अवश्य परिचय हुआ है, यह बात सुनी जाती है। किन्तु इस समय उक्त लता के विषय में हम बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। अत एव जो जिस को सोमलता बता दे हमें उसको ही सोमलता समझ कर ग्रहण करना पड़ेगा। मालूम होता है आधुनिक आविष्कारकर्त्ताओं का यही आन्तरिक अभिप्राय है। इन कारणों से सोमलता का कुछ संक्षिप्त परिचय पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। सोमलता के साथ प्रसङ्गवश सोमरस का भी कुछ विवरण दिया जायगा।

सोमलता का परिचय देने के लिए निम्नलिखित विषयों की आलोचना करना आवश्यक है:—

(१) सोमलता का विवरण।
  (क) वैदिक।
  (ख) ज़ेन्द आवेस्ता (Zend Avesta) ग्रन्थोक्त।
  (ग) आयुर्वेदीय।
  (घ) पौराणिक।
(२) सोमलता नाम की व्युत्पत्ति।
(३) सोमलता का प्रकारभेद।
(४) सोमलता की उत्पत्ति और उत्पत्तिस्थान।
(५) सोमरस प्रस्तुत करने की प्रणाली।
(६) सोमरस के गुण।

१ सोमलता का विवरण।

(क) मालूम होता है सम्पूर्ण आर्य्यजाति का गौरवस्वरूप ऋग्वेद पृथ्वी में अतिप्राचीन ग्रन्थ है। उक्त ग्रन्थ को देखने से जाना जाता है कि वह अनेक देवी देवताओं की स्तुतियों से परिपूर्ण है। उन देव देवियों में शीतला, मनसा, काली आदि पौराणिक देवताओं का नाम नहीं है। परन्तु वे सब प्रकृति के किसी न किसी विषय के अधिष्ठाता हैं। सरलविश्वासी आर्य्यगण प्राकृतिक

सौन्दर्य और गाम्भीर्यदर्शन पर मुग्ध हो कर उस उस विषय का एक एक अधिष्ठाता कल्पना कर उस को देवता समझ कर पूजते हैं× । इसी प्रकार इन्द्र मेघ का, मित्र दिन का, वरुण रात्रि का इत्यादि ये सब अधिष्ठातृ रूप से कल्पित हुए हैं । पृथ्वी में अग्नि के बिना कोई कार्य्य भी सम्पन्न नहीं होसकता अतएव अग्नि भी देवता रूप में परिगणित होता है। होमादि सम्पादन के लिए प्रथम ही अग्नि की आवश्यकता होती है। इस कारण जाना जाता है कि ऋग्वेद का प्रथम सूक्त ही अग्नि के उद्देश से रचा गया है। प्रथम मण्डल के द्वितीय सूक्त के देवता वायु, इन्द्र, मित्र और वरुणादि हैं। किन्तु इस सूक्त की प्रथम ऋचा में ही सोम का उल्लेख देखा जाता है। वेद में सोम भी एक देवता है। सम्पूर्ण ऋग्वेद और सामवेद की एकत्र विवेचना करने से जान पड़ता है कि उस में सोम का जितना अधिक उल्लेख है उतना किसी देवता का नहीं। ऋग्वेद में आदि से लेकर अन्ततक प्रायः सर्वत्र ही सोम का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद का सम्पूर्ण नवममण्डल केवल सोम के ही उद्देश से रचा गया है। अन्यान्य मण्डलों में इन्द्र, मित्र, वरुण, त्वष्टा, पूषा, यम और परमात्म प्रभृति अनेक देवताओं के स्तव दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु नवम मण्डल में एक मात्र सोम के अन्य किसी देवता की स्तुति नहीं है। वैदिक-साहित्य में सोम का इस प्रकार अत्यधिक और विलक्षण उल्लेख देखने से सहज ही अनुमान होता है कि-वैदिकयुग में एक समय सोम की उपासना विशेष रूप से होती थी। यहां यह प्रश्न होसकता है-यह सोम क्या है? हम इस प्रबन्ध में पहले ही जिस अधिष्ठातृवाद की अवतारणा कर चुके हैं इस लिए इस प्रश्न के उत्तर में भी उस अधिष्ठातृवाद का साहाय्य लेना होगा। हम स्वीकार करते हैं कि सोमलता और सोमरस के अधिष्ठातृ देवता का नाम ही सोम है और यही हमारा वेदोक्त सोमदेवता है। सोमरस की अद्भुत और अनिर्वचनीय शक्ति पर मोहित होकर महर्षिगण उस की पूजा के लिए प्रवृत्त हुए थे। यहां तक कि सोमयाग में स्रुक्, स्रुव और चमसादि सामग्री भी देवता के आसन से वञ्चित नहीं रहती थीं।

(ख) पारसी लोगों के प्राचीन धर्मशास्त्र जेन्द आवेस्ता (Zend Avesta) ग्रन्थ में होम (Haoma) नामक एक पदार्थ

× अभिमानि व्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् (२ । १ । ५ । यह ब्रह्मसूत्र इस विश्वास की पोषकता करता है)।

का बहुत जगह उल्लेख देखा जाता है। प्राचीन पारसी लोग अपने यागादि कार्यों में इसी होम को व्यवहार करते हैं। वैदिक यज्ञानुष्ठान के पहले ब्राह्मणगण सोम को जिस प्रकार सिञ्चन करते हैं, पारसी लोग भी उसी प्रकार अपने यज्ञ के पहले मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल से होम को प्रोक्षित करलेते हैं। वैदिक ग्रन्थों में जिस प्रकार सोम रस की अशेष गुणावली का उल्लेख है, पारसी लोगों के ज़ेन्द आवेस्ता नामक ग्रन्थ में भी होमकी उसी प्रकार अनिर्वचनीय शक्तिका उल्लेख देखा जाता है। इन सब कारणों से सहज ही अनुमान होता है कि ज़ेन्द आवेस्ता ग्रन्थोक्त होम और वेदोक्त सोम ये दोनों शब्द एक ही पदार्थ के वाचक हैं। शब्दशास्त्र में भी होम और सोम इन दोनों शब्दों का एक ही मूल है। अतएव शब्द शास्त्र भी उपर्युक्त सिद्धान्त का समर्थन करता है।

(ग) आर्यों के अमूल्य आयुर्वेद शास्त्र में सोम का उल्लेख देखा जाता है। चिकित्सा स्थान के प्रथम अध्याय रसायन प्रकरण में महर्षि चरक इस को "औषधिराज" कह गये हैं। यथा-"सोमनामा औषधिराजः"-इत्यादि।

सुश्रुतसंहिता में सोम को "औषधीनां पतिः"-कहा है। इस ग्रन्थ में इसका विवरण विस्तृत रूप से पाया जाता है। स्वभाव-व्याधिप्रतिषेधनीय रसायनाधिकार में सोम एक अति प्रयोजनीय औषधि है। सुश्रुत का कथन है-जरा और मृत्यु को नष्ट करने के लिए ब्रह्मादि देवताओं ने सोम की सृष्टि की। सोम शूद्र को छोड़ कर तीनों वर्णों को उपयोग करना चाहिए। यथा-

"ब्रह्मादयोऽसृजन्पूर्वममृतं सोमसंज्ञितम्।
जरामृत्युविनाशाय विधानं तस्य वक्ष्यते॥
शूद्रवर्ज्यं त्रिभिर्वर्णैः सोम उपयोक्तव्यः॥
(सुश्रुत चि० २९)

सोमलता के विषय में चरक की उक्ति इस प्रबन्ध के द्वितीय प्रसङ्ग में अर्थात् "सोम रस की व्युत्पत्ति" शीर्षक प्रसङ्ग में लिखी जायगी।

(घ) पौराणिक साहित्य में "सोम" शब्द का अर्थ चन्द्रमा है। पुराण शास्त्रों की आलोचना करने से मालूम होता है कि वैदिक "सोम" शब्द ही कालक्रम से पौराणिक युग में चन्द्रमावाचक हो

गया है। पौराणिकयुग में यह धारणा केवल बद्धमूल होगई है। वस्तुतः उक्त विश्वास का बीज बहुत पहले ही अंकुरित होगया था। यहाँ तक कि ऋग्वेद में ही इस विश्वास का सूत्रपात देखा जाता है। जैसे-

"अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥"

(ऋग्वेद १०।८५।२)

(भावार्थ-सोम नक्षत्रों के बीच में स्थित है)। यहाँ अवश्य यह सन्देह होसकता है कि इस स्थान में सोम शब्द का अर्थ क्या है? सोमलता का अधिष्ठातृ देवता अथवा चन्द्रमा। अन्तिम अर्थ ग्रहण करने में भी यहाँ कुछ विशेष असंगति नहीं होती। अत एव सोम शब्द में इन्दु अर्थ का ग्रहण करने पर इस की अपेक्षा उत्कृष्ट प्रमाण की आवश्यकता है। जो हो, ऋग्वेद ९।४०।३६ और ९।७६।२ को देखने से इस सम्बन्ध में और भी निश्चय होजाता है। यथा--

"नूनो रयिं महाम् इन्दोऽस्मभ्यंम्।

सोम विश्वतः। आपवस्व सहस्रिणम्॥"(९।४०।३।)

हे सोम, हे इन्दो, तुम अभियुत होकर हमारे उद्देश के लिए सहस्रों प्रकार के धनसमूह को चारों ओर से वर्षाओ।

पुनान इन्दवाभर सोम द्विवर्हिसं रयिम्।

वृषन्निन्दो न उक्थ्यम्॥ (९।४०।६)

हे पवित्र इन्दो, और हे पूजनीय सोम, तुम हमारे लिए आकाश और भूमि से अत्यन्त प्रवृद्ध धन को संचित करो और हे वर्षक इन्दो, तुम हमारे लिए विशेष धन प्रदान करो।

अपस्युभिर्हिन्वानो भज्यते मनीषिभिः। (९।७६।२)

कर्म की इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् ऋत्विक् लोगों से प्रेरणा करने पर सोम किरणों द्वारा प्रकाश करता है।

सामवेद भी "इन्दु" के अर्थ में सोम शब्द का प्रयोग करने में पराङ्मुख नहीं है। (२।५।५)

अथर्व वेद में अतिस्पष्टरूप से घोषण किया है कि--"सोम मा देवो गच्छतु यमाहुश्चन्द्रमा इति।" (११।६।७)

अर्थात् सोम, जिस को लोग चन्द्रमा कहते हैं वह हमारी रक्षा करे। शतपथ ब्राह्मण कहता है:--

"एष वै सोमो राजा देवानाम्, अन्नं यच्च चन्द्रमाः।"
(१,६, ४, ५ । ११, १, ३, २ । ११, १, ३, ४ । ११, १, ४, ४)
"चन्द्रमा वै सोमो देवानामन्नम् ॥" ११,१.३,५।)

अर्थात् सोम और चन्द्रमा अभिन्न पदार्थ हैं। यह देवताओं का अन्न (भोज्य) है।

विष्णुपुराणादि ग्रन्थों में जो देव और पितृगणों का चन्द्रकला-पानका × विवरण देखा जाता है उस में भी देवगणों और पितृगणों का वेदोक्त सोमपान है। जो हो, इस पौराणिक युग में भी चन्द्र और सोम का औषधित्व एकदम लुप्त नहीं हुआ। विष्णुपुराण में इसको लताओं का राजा कह कर वर्णन किया गया है। यथा—

"नक्षत्रग्रहविप्राणां, वीरुधां चाप्यशेषतः।
सोमं राज्ये ददौ ब्रह्मा, यज्ञानां तपसामपि॥"

इस श्लोक में नक्षत्रादि शब्दके साहाय्य से अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ सोम शब्द में ज्यौतिष्क सोम ही सूचित होता है। अमावास्या तिथि में इसके द्वारा जो औषधिसमूह तेजष्मान् होता है उसका भी स्पष्ट उल्लेख देखा जाता है। यथा—

"अमायाञ्च सदा सोम ओषधिः प्रतिपद्यते।"

इस स्थल में यह भी वक्तव्य है कि औषधिसमूह के साथ चन्द्रमा का अत्यन्त निकट सम्बन्ध देखा जाता है। इसमें चन्द्रमा और सोम के एकत्व विधान की भ्रान्ति मात्र है। अतः यहाँ चन्द्रमा वाचक सोम के साधित होने की पूर्ण सम्भावना है। दूसरे प्रस्ताव में यह विषय और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा।

२ सोमलता की व्युत्पत्ति क्या है?

हमारा दूसरा प्रश्न यह है कि "सोमनाम" की व्युत्पत्ति क्या है? उपर्युक्त प्रसङ्ग में हमने दिखाया है कि सोमलता कालक्रम से ज्यौतिष्क सोम समझी जाने लगी है। इससे जाना जाता है कि इन दोनोंमें अवश्य किसी प्रकार का सम्बन्ध है। सोमलता का स्थान भूमि है और सोम-ग्रह का स्थान आकाश है। केवल नाम की एकता से इन

× अन्यच्च—"तञ्च सोम पपुर्देव पर्यायेणानुपूर्वशः। पिबन्ति विमल सोम विशिष्टा नस्य या कला॥ सुधामृतमयीं पुण्या तामिन्दो पितरो मुने॥"

दोनों का सम्मिश्रण सम्भावित होना नहीं जान पड़ता। अत एव इन दोनों में कुछ अधिक निकट का सम्पर्क है इसको स्वीकार कर हम इस समय इसकी आलोचना करने में प्रवृत्त होसकते हैं। प्रथम तो यह देखना उचित है कि ग्रह से लता का नाम या लतासे ग्रह का नाम हो सकता है कि नहीं। यदि हो सकता है तो कौन पक्ष ठीक है। इस विषय में पहले ही प्रश्न यह होता है कि सोमग्रह और सोमलता इन में किसका ज्ञान लोकसमाज में प्राचीन काल से है। अवश्य ही यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सोमग्रह का ज्ञान सोमलता के ज्ञान की अपेक्षा बहुत प्राचीन है। सोमग्रह आकाश में अनादिकाल से विद्यमान है। बालक भूमिष्ट होते ही माता की गोद में चन्द्रदर्शन करता है, पर वह उस समय सोमलता का अस्तित्व और कल्पना नहीं कर सकता। अत एव सोमलता का ज्ञान सोमग्रह ज्ञानकी अपेक्षा बहुत पीछे है यह कहना बाहुल्य मात्र है। इस लिए हमारे उपर्युक्त प्रस्तावित आलोचना का एक अंश शेष हुआ। अर्थात्, चन्द्रमा के नाम से लता का नाम हो सकता है। किन्तु लताके नाम से चन्द्रमा का नामकरण होना असम्भव है। यहां पर प्रश्न हो सकता है कि चन्द्रमा के नाम पर लता का नाम क्यों हुआ ? इस सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य अनेक विद्वानों ने विशेष गवेषणापूर्ण आलोचना की है। किन्तु वे सभी इस विषय में अभी तक कुछ भी निश्चय न करसके। हमने बहुत आशा करके इस विषय का सत्यनिरूपण करने के लिए आयुर्वेद शास्त्रका अनुसन्धान किया है। हमारा परिश्रम व्यर्थ होगा यह भी हम नहीं कह सकते। चरक और सुश्रुतसंहिता में इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसको पढ़ने से बहुतसे सन्देह दूर होते हैं। पाठकों को अवगत होने के लिए चरक और सुश्रुत से विशेष अंश नीचे उद्धृत करते हैं:—

सोम नामौषधिराजः पञ्चदशपर्णः।
स सोम इव हीयते वर्द्धते च॥

(चरक चि० १अ०)

अर्थात् सोम नामक औषधिराज (परम रसायन) है। उसके १५ पत्र हैं। वह चन्द्रमा की समान ह्रास और वृद्धि को प्राप्त होता है। यथा—

"सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दशपञ्च च।

तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च ॥
एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा ।
शुक्लस्य पौर्णमास्यान्तु भवेत्पञ्चदशच्छदः ॥
शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः ।
कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला ॥

(सु० चि० २६)

भावार्थ—सर्वप्रकार की सोमलताओं में १५ पत्ते होते हैं। प्रत्येक महीने के शुक्लपक्ष में इस पर सब पत्ते निकलते हैं और कृष्णपक्ष में वे सब गिर जाते हैं। शुक्लपक्ष में प्रति दिन सोमलता का एक एक पत्ता निकलता है—अर्थात् प्रतिपदा तिथि में एक पत्र होता है, फिर दूसरे दिन द्वितीया को चन्द्रकला की वृद्धि के साथ एक एक पत्र बढ़ता जाता है अर्थात् प्रतिपदा में एक पत्र, द्वितीया में दो पत्र, तृतीया में तीन पत्र; इसी क्रम से पूर्णमासी तक सोमलता में १५ पत्ते होजाते हैं। फिर कृष्णपक्ष में प्रतिदिन चन्द्रकला के क्षय के साथ एक एक पत्र गिरने लगता है। अमावास्या को सम्पूर्ण पत्र गिर कर केवल लतामात्र शेष रहजाती है।

इससे स्पष्ट ही जाना जाता है कि सोमलता चन्द्रमा से ही स्वनाम को प्राप्त हुई है।

३ सोमलता का प्रकारभेद ।

सुश्रुत कहता है कि-सोमलता एक पदार्थ होने पर भी स्थान, नाम, आकृति और वीर्य के भेद से उस के २४ भेद कल्पित हुए हैं। * (सु० चि० २६)

किन्तु समस्त ऋक्, साम और अथर्व वेद में अबतक इस विषय का हमने कोई उल्लेख नहीं पाया।

४ सोमलता की उत्पत्ति और उत्पत्तिस्थान ।

सोमलता की उत्पत्ति के विषयमें अनेक स्थलों में विविध प्रकार का विवरण पाया जाता है। ऋग्वेद के १, ८०, २ और ३। ४३, ७ म हम देखते हैं कि यह एक श्येन के द्वारा स्वर्ग से लाई गई थी। ऋक् १, ९३, ६ के पाठ से जाना जाता है कि वरुण ने इस को एक

---

* एक एव खलु भगवान् सोमः स्थाननामाकृतिवीर्यविशेषैश्चतुर्विंशतिधा भिद्यते। तद् यथा,—"अंशुमान् मुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः" इत्यादि।

पर्वत पर स्थापित किया था और वहाँ से श्येन इस को पृथ्वी में लाया। उस स्थल में इस पर्वत का और कुछ भी विवरण नहीं है। यहाँ तक कि पर्वत के नाम का भी कोई उल्लेख नहीं है। जो हो, मालूम होता है इस पर्वत का नाम मूजवन् है। कारण ऋक् १०, ३४, १में —"सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः" इस पाठ से जाना जाता है कि सोमलता सब से पहले मूजवत् पर्वत में उत्पन्न हुई थी। मूजवत् यह एक पर्वत का नाम है इस का निरुक्तकार ने उल्लेख किया है।

(निरुक्त ६-८)

ऋक् १। ९३। ६ और १। ३४। १ इन दोनों स्थलों को मिलाकर पढ़ने से एक सुन्दर शृङ्खलाबद्ध विवरण संगृहीत होसकता है। ऋक् ९। ८२। ३ और अथर्ववेद १६। ६। १६ × के अनुसार सोम यथाक्रम से पर्जन्य और पुरुष से उत्पन्न हुआ है। पर्जन्य वृष्टि का देवता है। वृष्टि के द्वारा सोमलता की वृद्धि होती है। अतएव पर्जन्य सोम का पिता है यह उक्ति विशेष समीचीन मालूम होती है। सुश्रुत कहता है कि पूर्वकाल में ब्रह्मादि देवताओं ने जरा और मृत्यु के नाश के लिए सोम की सृष्टि की थी। यथा—

"ब्रह्मादयोऽसृजन्पूर्वममृतं सोमसंज्ञितम्।
जरामृत्युविनाशाय विधानं तस्य वक्ष्यते॥"

सोमलता भारत में सर्वत्र नहीं पाई जाती, किन्तु कहीं कहीं मिलती है। ऋग्वेद में और सामवेद में शर्यणावत् हृद,* सरस्वती आदि पुण्यनदी और आर्जीकि = एवं दुष्टदेश † आदि सोमलता के उत्पत्ति स्थल बहुत जगह कहेगये हैं। यथा—

"शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा। ९। ११३। १।

× यथा—राज्ञः सोमस्य [illegible] पुत्र [illegible]। मन्त्र-अथर्ववेद का यह सूक्त, ऋग्वेद के, १०। ९० सूक्त का (विराड् पुरुषसूक्त का) अविकल अनुवाद है।

* सायणाचार्य कहते हैं—शर्यणावद् नामक सरोवर कुरुक्षेत्र के निम्नभाग में अवस्थित है।

= अआर्जीकीया [illegible] कहते हैं कि आधुनिक आर्जीकीया नदी का नाम विपाशा है। [illegible] कहते हैं "ऋजीकनामकदूरस्था आर्जीकदेश, तेषु आर्जीकेषु।

† ऋग्वेद का यह [illegible] ठीक नहीं कहा जा सकता। सायण कहते हैं— [illegible] देशाभिजनवत्सु [illegible] देशेषु।

अर्थात् शर्य्यणावत् नाम के सरोवर में जो सोम है उसे वृत्रसंहारक इन्द्र पान करे।

"आर्जीकात्सोम मीढ्वः" ।९।११३।२।

अर्थात् हे सोम, तुम आर्जीक नामक देश से आकर क्षरित होओ "ये (सोमासोवादः शर्य्यणावति)" ।८।६५।२२।

अर्थात् सब सोम शर्य्यणावत् नामक सरोवर में प्रस्तुत होते हैं।

"ये आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।(८।६५।२३)।

जो सोम आर्जीक देश में किम्वा कृत्वदेश में अथवा सरस्वती आदि पुण्यनदियों में प्रस्तुत होते हैं।

सुश्रुत में सोमलता के कितने ही उत्पत्ति स्थान लिखे हैं। यथाः—

"हिमवत्यर्बुदे सह्ये महेन्द्रे मलये तथा ।
श्रीपर्वते देवगिरौ गिरौ देवसहे तथा ॥
पारिपात्रे च विन्ध्ये च देवसुन्दे हृदे तथा ।
उत्तरेण वितस्तायाः प्रवृद्धा ये महीधराः ॥
पञ्च तेषामधो मध्ये सिन्धुनामा महानदः ।
काश्मीरेषु सरो दिव्यं नाम्ना क्षुद्रकमानसम् ॥
हठवत्प्लवते तत्र चन्द्रमाः सोमसत्तमः ।
तस्योद्देशेषु वाप्यस्मिन् मुंजवानंशुमानपि ॥
गायत्र्यस्त्रैष्टुभः पांक्तो जागतः शांकरस्तथा ।
अत्र सन्त्यपरे चापि सोमाः सोमसमप्रभाः ॥

हिमालय, अर्बुद (आबू पहाड़), सह्याचल, महेन्द्र और मलय पर्वत में एवं श्रीशैल, देवगिरि, देवसह पर्वतों में ये सोम उत्पन्न होते हैं। और पारिपात्र, विन्ध्याचल, देवसुन्द सरोवर तथा वितस्ता नदी के उत्तर में जो बड़े ५ पर्वत हैं उनकी जड़ में तथा मध्य में और सिन्धु नामक महानद में चन्द्रमा नामक सोम तोंबी की भांति तिरते हुए मिलते हैं। काश्मीर देशमें एक छोटमान नामक दिव्य सरोवर है वहां गायत्र नामक, त्रैष्टुभ, जागत, पांक्त और शांकर नामक सोम होते हैं। यहां और सोम भी चन्द्रमा की समान कान्तिमान् होते हैं।

जब सोमलता की उत्पत्ति के अनेकों स्थान कहे गये हैं तब हम उस को क्यों नहीं देख पाते। इस आशंका को दूर करने के लिए

सुश्रुत ने इस का उत्तर स्वयं ही नीचे देदिया है। यथा—

न तान्पश्यन्त्यवर्भिष्ठाः कृतघ्नाश्चापि मानवाः।
भेषजद्वेषिणश्चापि ब्राह्मण द्वेषिणस्तथा॥ इत्यादि॥

(अपूर्ण)

आहार–सम्बन्धी कुछ उपदेश।

आहार के बिना हम किसी प्रकार जीवन धारण नहीं कर सकते, पर आहार के दोषसे अनेक समय हम जीवन को नष्ट भी कर देते हैं। अतएव सदैव नियमितरूप से आहार करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। इस समय हम अनुकरणप्रिय होकर आहार विहार सम्बन्धी नियमों की अवहेलना कर रहे हैं। पहले लोग सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहते थे, किन्तु इस समय देश में अकाल मृत्यु की संख्या बढ़ रही है। यह सब हमारी बुद्धि और शिक्षा ही का दोष है। हम यदि उस समय के ऋषियों के मतानुसार कार्य्य करें तो अवश्य दीर्घायु पासकते हैं। नीचे महर्षि चरक के मत से आहार सम्बन्धी कुछ उपदेश लिखे जाते हैं।

परिमितभोजी होना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। आहार करते समय अपनी जठराग्नि के बलाबल पर लक्ष्य रखना अत्यावश्यक है। शालि, साठी, मूँग, गोदुग्ध आदि पदार्थ यद्यपि लघुपाकी हैं तथापि ये उतने ही परिमाण में खाने चाहिएं जितने कि वे सहज में पच सकें। उसी प्रकार उड़द, गेहूं, मांस या दूध और दूध के बने हुए समस्त पदार्थ स्वभाव से भारी हैं। इन को भी मात्रानुसार ही खाना चाहिए। यहां उक्त द्रव्यों का जो गुरुत्व और लघुत्व निर्देश किया गया है उसका विशेष कारण यही है कि लघुद्रव्यों में वायु और अग्नि के गुणों की बाहुल्यता होती है। एवं गुरुद्रव्य सोमगुण और पृथ्वीगुण की बाहुल्यता वाले हैं। इस कारण समस्त लघुद्रव्य अपने गुणों से ही अग्निसंदीपक, अल्पदोषकारक और तृप्तिजनक हैं। गुरुद्रव्य इस के विपरीत गुणवाले होने के कारण अग्नि के दीप्त करने में सहायक नहीं हो सकते। इसलिए गुरुपाकी द्रव्य कुछ अधिक मात्रा में खाये जाने पर अत्यन्त दोषकारक होजाते हैं। शारीरिक परिश्रम न करने पर व जठराग्नि के बलिष्ठ न होने पर भारी पदार्थ कदापि पेट भर कर नहीं खाने चाहियें।

गुरुपाकी पदार्थों का भोजन करते समय पेट का आधा भाग अथवा चौथाई भाग खाली रखना चाहिए और लघुपाकी द्रव्यों को भी पेट में खूब ठूँस ठूँसकर नहीं भरना चाहिए। अत्यन्त अधिक मात्रा में, कितना ही लघुपाकी और पथ्य भोजन क्यों न हो अवश्य जठराग्नि में व्याघात करता है। किन्तु मात्रानुयायी आहार करने वाले मनुष्य की जठराग्नि में किसी प्रकार का व्याघात नहीं होता और वह अवश्य बल, वर्ण तथा सुख को प्राप्त करता है। पहला किया हुआ भोजन जब तक अच्छे प्रकार जीर्ण न होजाय तबतक किसी प्रकार का आहार नहीं करना चाहिए। बहुत भारी पदार्थ साधारण या अल्पक्षुधा में कभी नहीं खाने चाहिएँ। अधिक क्षुधा में भी मात्रानुसार ही सदैव भोजन करना चाहिए। किन्तु अत्यन्त भारी और दुष्पाच्य पदार्थ नित्यप्रति नहीं खाने चाहिएँ। मूँग, शालि चावल, गेहूं, घृत, दुग्ध, परवल, तोरई, लौकी आदि शाक और अंगूर, अनार, सेब, सतरा आदि मिष्टफलों को प्रतिदिन सेवन करने में कुछ हानि नहीं है।

इसके सिवा प्रत्येक ऋतु में आहार-विहार किस प्रकार करना आवश्यक है इस बात को भी विशेषरूप से जान लेना उचित है। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ये तीन ऋतु सूर्य्य के उत्तरायण में होती हैं और शास्त्र में इन को आदानकाल कहते हैं। वर्षा, शरद् और हेमन्त इन तीन ऋतुओं को दक्षिणायन या विसर्गकाल कहते हैं। इन दोनों समयों में वायु दो प्रकार का होता है। विसर्ग काल में रूक्षताहीन अर्थात् स्निग्धगुण विशिष्ट और आदानकाल में अत्यन्त रूक्ष होता है। कोई कोई आचार्य्य आदानकाल की वायु को आग्नेय कहते हैं। विसर्गकाल में चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों के द्वारा जगत को आनन्दित करता है, इस कारण वह काल सोमगुणविशिष्ट है। इन दोनों समयों में चन्द्र, सूर्य और वायु जगत में अपने अपने स्वभाव के द्वारा मनुष्यशरीर में रस, दोष और बलादि को उत्पन्न करते हैं।

आदानकाल में सूर्य्य भगवान् अपनी किरणों के द्वारा पृथिवी के रस को ग्रहण करते हैं, वायु अत्यन्त तीव्र और रूक्ष होकर रस का शोषण करता है। इस कारण इस ऋतु में रूक्षता के अधिक बढ़ने से मनुष्य दुर्बल होजाते हैं। किन्तु विसर्गकाल में इसके विपरीत होता है। इस समय सूर्य का तेज, मेघ, वायु और वर्षा के द्वारा

विरा सुधा होने से चन्द्रमा का बल विशेषरूप से देखा जाता है। इस लिए पृथ्वी में मधुर रसादिकों के बढ़ने से मनुष्यों में क्रमशः बलकी वृद्धि होती है। साधारणतः वर्षा और ग्रीष्मकाल में मनुष्यों का बल क्षीण होता है और इन दोनों समयों के मध्य शरद् एवं वसन्तऋतु में मानवशरीर मध्यबलयुक्त होता है। इन दोनों काल के अन्त में अर्थात् हेमन्त और शिशिरऋतु में अधिक बल होता है। शीतकाल में शीतलवायु के स्पर्श से बलवान् मनुष्यों की अग्नि अधिक बलवान् होने के कारण गुरुपाकी द्रव्यों को अधिकता से पचाने में समर्थ होजाती है। इसी कारण हमारे देश में अतिप्राचीनकाल से शीत ऋतु में अनेक प्रकार के पौष्टिक पाक, मोदक और तरह तरह के भारी पदार्थों को सेवन करने की प्रथा प्रचलित है। अपनी जठराग्नि का जैसा बल हो तदनुसारही हमेशा आहार करना चाहिए। अग्नि के अत्यन्त बलवान् होने पर अधिक गुरुपाकी पदार्थ भी सहज में पचजाते हैं। ऐसी अवस्था में गुरुपाकी पदार्थों के न खाने से वह प्रचण्ड अग्नि शरीरस्थ रस को सुखा देती है जिससे शरीर का क्षय होना अनिवार्य्य होजाता है।

शीतकाल में दूध, गुड़, नया अन्न, तेल, घृत और उष्ण जल को सेवन करने से आयु की वृद्धि होती है। इस ऋतु में लघु और वात-कारक समस्त अन्नपान, शरीर पर शीतल वायु का प्रवाह, अल्पाहार और जल में घोले हुए सत्तू आदि पदार्थ त्याग ने योग्य हैं। वसन्त ऋतु में भारी, खट्टे, स्निग्ध और मधुरद्रव्य एवं दिन में सोना, ये सब त्याग देने चाहिएँ। जौ, गेहूँ और मूँग आदि हलके अन्न भक्षण करने चाहिएँ।

ग्रीष्मकाल में सूर्य्य भगवान् अपनी प्रखर किरणों के द्वारा जगत् के रसको पान करते हैं इसकारण इससमय मधुर और शीतल द्रव्य तथा स्निग्धपान अत्यन्त हितकार हैं। ग्रीष्मऋतु में शीतल शर्करायुक्त-मन्थ-अर्थात् सत्तुओं को खाँडके शर्बत में घोलकर पीना अधिक हित-कारी है। उसीप्रकार तरह तरह के शीतल शर्बत और ठण्डाई पीना भी अच्छा है। इस ऋतु में घृत, दुग्धयुक्त शालिधानों का भात या खीर आदि का भोजन करने से मनुष्यों के बलका क्षय नहीं होता। मद्यपान करना इस मौसम में सर्वथा त्याज्य है। किन्तु जो लोग मद्यपान के बहुत ही आदी हैं उनको अधिक जल मिलाकर पीना चाहिए। एवं लवणरसवाले (नमकीन, चरपरे) पदार्थ, खट्टे

चरपरे और उष्ण पदार्थ इस ऋतु में यथासाध्य त्याग देने चाहिएं।

वर्षाऋतु में प्रायः सम्पूर्ण ऋतुओं के लक्षण होते हैं। इसलिए जिस दिन वर्षा के अधिक होने के कारण शीतांश विशेष हो उसदिन शीतकाल की समान और जिसदिन आकाश के स्वच्छ होने से और सूर्य्य की किरणों के तीक्ष्ण होने से ग्रीष्मकालका अनुभव हो उस दिन ग्रीष्म ऋतु की समान आहारादि के नियम पालन करने चाहिएं। जलपान के ऊपर इस ऋतु में विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। इस ऋतु में जितना शुद्ध जलपान किया जाय उतना ही अच्छा है।

शरदृऋतु में प्रायः पित्त कुपित हुआ करता है इसकारण प्रत्येक मनुष्यको अपने आहारके ऊपर विशेष लक्ष्य रखना चाहिए। इस समय मधुर और हलके, शीतल एवं किञ्चित् तिक्त और पित्तनाशक समस्त खाद्यपदार्थ क्षुधा के समय उचितमात्रा से सेवन करने चाहिएँ, एवं शालि चावल, जौ, गेहूँ, गोदूध आदि पदार्थ विशेष हितकर हैं। तेल, चर्बी, जलचर और अनूपदेश के जीवों का मांस एवं क्षार, दही प्रभृति पदार्थ छोड़ देने चाहिएँ।

श्री०शर्मा

बकरी का दूध।

दूध का इस समय बड़ा अभाव होगया है। पहले की अपेक्षा तिगुने चौगुने मूल्य में भी आज उत्तम दूध नहीं प्राप्त होसकता। जो पदार्थ दुग्ध नाम से बाज़ार में विक्रय होता है वह विशुद्ध दूध नहीं है। ग्वाले लोग दूधमें ढेरों पानी और न मालूम क्या क्या हानिकारक पदार्थ मिलाते हैं। बाज़ार में हलवाइयों की दूकानों पर जो दूध विक्रय होता है उसके विषय में लिखते हुए लज्जा आती है। कई शहरों में हलवाइयों की दूकानों पर मक्खन निकाला हुआ निःसार दूध विक्रय होता है दही मलाई,रबड़ीआदि सभी पदार्थ मक्खन निकाले दूध से बनाकर बेचे जाते हैं। मक्खन निकाला दूध दो तीन पैसे सेर मिलजाता है,और वह कुछ पकाकर४-५आने सेर तकमें बेचा जाता है। क्या हिन्दू कहानेवाले हलवाई भाइयों के लिए यह लज्जा का विषय नहीं है? कितने ही दुग्ध ग्वाले भी गोदुग्धमें मक्खन नि-

औटा हुआ दूध मिलाकर बेचते हैं। इसके सिवा मयदा, आरारोट आदि कितने ही पदार्थों के योग से कृत्रिम दूध तैयार किया जाताहै।

दूधमें जल का मिलाना तो एक साधारण बात है। पर जब से दूध का भाव बहुत चढ़गया है तबसे जल का कुछ ठिकाना ही नहीं है। मतलब यह है कि खालिस या विशुद्ध दूध प्राप्त होना आजकल कठिन ही नहीं बल्कि बड़ा दुष्प्राप्य है। गरीब और साधारण मनुष्य तो क्या बहुतेरे बड़े बड़े आदमी भी दूधके दर्शन नहीं कर पाते किन्तु बालक, रोगी और दुर्बल व सुकुमार मनुष्यों के लिए दूध की बड़ी आवश्यकता है। बालक के लिए दूध की समान दूसरा हितकर पदार्थ ही नहीं है। रोगी के पथ्य के लिए दूध अत्यावश्यक पदार्थ है। दुर्बल और कोमलप्रकृति वाले मनुष्यों का काम भी दूध के बिना नहीं चलसकता।

ऐसी अवस्था में क्या कर्तव्य है? हमारी रायमें ऐसी अवस्था में-गाय या भैंस के दूध के अभाव में-बकरी का दूध काम में लाना चाहिए। वास्तव में बकरी का दूध बड़ा ही उपयोगी है। यह गाय के दूध से उपयोगिता में किसी प्रकार कम नहीं है। कितने ही लोग बकरी के दूध को बहुत बुरा समझते हैं पर वास्तव में यह वैसा नहीं है। बकरी के दूध में एक प्रकार की गन्ध आती है, शायद इसी कारण लोग इसको बुरा समझते हैं।

साधारणतः बकरी का दूध गाय के दूध से गुणों में कुछ हीन समझा जाता है। किन्तु बकरी के दूध में कई गुण ऐसे हैं जो गाय के दूध में नहीं पाये जाते और गोदुग्ध में जो जो तत्त्व पाये जाते हैं वे सब बकरी के दूध में भी मौजूद हैं।

बकरी के पालन और आहार-विहार पर विशेष ध्यान रखने से बकरीके दूधमें उतनी गन्ध भी नहीं आती। कारण, बकरी के रहन सहन और खान पानके ऊपर ही बकरी के दूधका स्वाद और गन्ध निर्भर है। पर हमारे देश में बकरी के रहन सहन और खान-पान पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। इसीकारण बकरीके दूध में बड़ी अप्रिय गन्ध आती है यूरोप में बकरीके रहन सहन और खानपानकी स्वच्छता पर अधिक दृष्टि रक्खी जाती है, इसलिए वहां की बकरियों का दूध वैसा दुर्गन्धित नहीं होता।

बकरी का दूध गायके दूध की अपेक्षा अधिक हलका होने से शीघ्र पचजाता है। आयुर्वेद में लिखा है कि—"अजानां लघुकायत्वान्मा-

द्वन्यनिषेवणात्। अत्यम्बुपानाद् व्यायामात्सर्वव्याधिहरं परम्॥"
अर्थात् बकरियों का शरीर हलका होने से, और वे नाना प्रकार की वनस्पतियां भक्षण करनेवाली होने से, अत्यन्त जलपान करनेवाली और अधिक व्यायाम (परिश्रम) करनेवाली होने के कारण उन का दूध सर्वरोगनाशक है।

बकरी के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा स्नेह का भाग सूक्ष्म होता है, इस लिए वह सहज में ही पचजाता है। पैरिस के एक-प्रसिद्ध डाक्टर को परीक्षा द्वारा ज्ञात हुआ है कि गाय का दूध पेट में जाकर जिस प्रकार जमजाता है उस प्रकार बकरी का दूध नहीं जमता। इस लिए बकरी का दूध जितनी जल्द हजम होजाता है उतनी जल्दी गाय का दूध नहीं होता। बकरी का दूध बहुत कर गुणों में और पचने में प्रायः स्त्री के दूध की समान है।

बकरी के दूध का व्यवहार—हमारे देश में बकरी के दूध का व्यवहार बहुत अरसे से देखा जाता है। जिन बालकों को गाय का दूध अनुकूल नहीं पड़ता उन को बकरी का दूध व्यवहार कराया जाता है। इस समय अनेक पाश्चात्य विद्वान् बालकों को बकरी का दूध देने की राय दे रहे हैं। किसी किसी देश में बालक के मुख में बकरी का स्तन देकर दुग्धपान कराया जाता है।

कितने ही रोगी और दुर्बल बालक बकरी के दूध के व्यवहार से शीघ्र ही आरोग्य लाभ करते देखे गये हैं। बकरी के दूध में स्नेह के कण बहुत सूक्ष्म होनेके कारण बालक के पेट में जाकर वह शीघ्र ही पचजाता है।

गाय के दूध में, क्षय रोग के बीजाणुओं के होने की अधिक सम्भावना है। इस लिए गाय का दूध बिना अग्नि पर पकाये बालक को कभी नहीं देना चाहिए। परन्तु बकरी को क्षयरोग नहीं होता, अतः उस के दूध में क्षय के बीजाणुओं के होने की किसी प्रकार सम्भावना नहीं है। बकरी का दूध बिना पकाये भी बालक को दिया जासकता है।

भारत में रोगी को बहुत समय से पथ्य रूप से बकरी का दूध देने की रीति देखी जाती है। विलायत के अनेक डाक्टर भी इस समय रोगी के पथ्य के लिए बकरी के दूध की व्यवस्था करते हैं। कितने ही रोगों में बकरी का दूध औषधि की समान कार्य्य करता है। आयुर्वेद में क्षयरोग पर बकरी के दूध की बड़ी प्रशंसा लिखी है।

कई चिकित्सकों का मत है कि बकरी के दूध में क्षय के बीजाणुओं को नष्ट करने की तीव्र शक्ति है इस लिए क्षयरोग में बकरी का दूध अतीव हितकारी है। साधारणतः क्षयरोग में दुग्ध, घृतादि स्नेह पदार्थ अधिक उपकारी हैं। किन्तु रोगी की परिपाक शक्ति दुर्बल होने के कारण घृत, दुग्धादि पदार्थ अधिक अनुकूल नहीं पड़ते। पर बकरी के दूध में यह विशेष सुविधा है कि उस में जो स्नेह का अंश होता है वह बहुत सूक्ष्म होने के कारण उस के पचाने में जठराग्नि को अधिक कष्ट नहीं होता। क्षयरोग में बकरी का माखन और बकरी का घृत भी अधिक उपयोगी है।

फ्रांस और स्वीज़रलेण्ड के अनेक स्वास्थ्य-निवासों में रोगियों को बकरी का दूध सेवन कराया जाता है। जिन स्वास्थ्य-निवासों में किसी प्रकार का दूध व्यवहृत नहीं होता वहाँ भी बकरी के दूध का व्यवहार देखा जाता है।

बालकों के क्षय व सूखे के रोग में भी बकरी का दूध बेखटके व्यवहार कराया जासकता है।

अतिसार, रक्तातिसार और प्रवाहिकादि रोगों में गाय का दूध अनुकूल नहीं पड़ता। किन्तु उक्तरोगों में थोड़ा जल मिला कर बकरी का दूध दिया जासकता है।

गर्भवती स्त्रियों के जब भयङ्कर दस्त होते हैं और किसी औषधि से बन्द नहीं होते तब एकमात्र बकरी का दूध देने से वे आराम हो जाते हैं।

पेट की पीड़ा और अजीर्ण रोग में भी बकरी का दूध अतीव लाभप्रद है। इस के सिवा रक्तपित्त, रुधिरस्राव, पित्तरोग, पुरानी खाँसी, विशेषकर बालकों की कालो खाँसी, श्वास, राजयक्ष्मा, शोथ, दाह और पित्तज्वरादि रोगों में बकरी का दूध अत्यन्त हितकर है।

—o—

सर्पाघात की चिकित्सा में परमेंगनेट-पोटास की उपकारिता।

सरकारी रिपोर्ट से जाना जाता है कि इस देश में प्रतिवर्ष प्रायः बीस हज़ार मनुष्य सर्प-दंश से प्राणत्याग करते हैं। ग्रीष्म-प्रधान देशों में सर्पों का भय अधिक और शीत-प्रधान देशों में कम होता है। न्यूज़ीलैंड और आयरलैंड में सर्प नहीं होते। शीतकाल के बाद सर्प

अपने सूराख से निकलकर आहार की खोज करते हैं। ये बहुत समय तक अनाहार जीवित रह सकते हैं। समस्त सर्पों में विष नहीं होता। देश के भेदानुसार, विषधर सर्पों की संख्या, प्रतिशत पन्द्रह से चौबीस तक होती है। शीत-काल में सर्प का विष निस्तेज होजाता है और ग्रीष्म-काल में साधारणतः अधिक प्रबल हो जाता है। सर्प के विष का प्रभाव मनुष्य की शारीरिक अवस्था के अनुसार न्यूनाधिक होता है। मेजरवाल साहब का कहना है कि-भारतवर्ष में ६८ तरह के विषधर सर्प देखे जाते हैं। इन में ४० प्रकार के सर्प थलचर हैं, और शेष २८ प्रकार के सामुद्रिक हैं। असामुद्रिक जलचर सर्पों में विष नहीं होता। भारतवर्ष में लोगों की मृत्यु प्रायः चार प्रकार के सर्पों द्वारा होती है। इन चारों में गो-खुरा अर्थात् काला सांप सब से अधिक विषधर है। जितने विष से एक पूर्ण वयस्क मनुष्य की मृत्यु हो सकती है, काले सांप के एक बार के आघात से, उस विष से दस गुने से लेकर बीसगुना तक विष निर्गत होता है। कुछ सर्पों का विष हलका और थोड़ी मात्रा में बाहर निकलता है, ऐसे सर्पों के एक बार के काटने से मनुष्य की मृत्यु नहीं हो सकती।

विषधर सर्पों के ऊपरी जावड़े में दो बड़े तीक्ष्ण और छिद्रयुक्त दांत होते हैं। उन दांतों की जड़ों के पास एक विष से भरी हुई थैली होती है। काटते समय, वह विष तुरन्त निर्गत होकर, क्षत-मुख द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाता है। इन दाँतों के पीछे बहुत से छोटे २ दन्त-बीज हुआ करते हैं। जब वे दांत टूट जाते हैं, तब फिर जम आते हैं। जितनी बार दांत टूट जाते हैं उतनी ही बार दुबारा उगते हैं। सपेरे लोग काले सांप के साथ जो खेल किया करते हैं, उन को देखकर आश्चर्य होता है। ये लोग बड़ी कुशलता से सर्प को पकड़ते हैं। सांप का विष श्वेतसार (Starch) रस की तरह तरल पदार्थ होता है। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा जाना गया है कि यह पदार्थ क्षार अथवा अम्लगुणात्मक कोई वस्तु नहीं है। यह अग्नि से जलता नहीं है। जल में मिलाने से मिल जाता है, इस में साधारण जल से अधिक गुरुत्व होता है। यह विष ताप से दाने युक्त होजाता है। कहा जाता है कि यदि इस विष को सेवन किया जाय तो कोई हानि नहीं होती। मुख द्वारा अथवा किसी अन्यमार्ग से, विष का सम्पर्क रक्त के साथ होने से ही विष क्रिया का प्रकाश होता है।

कठिन विषधर सांप के काटने से जितनी जल्द मृत्यु होती है उतनी

बलद अन्य किसीप्रकार नहीं होती। कारण, सर्प का विष अत्यन्त शीघ्र प्रभावजनक होता है और रोगी को चिकित्सक के पास ले जाने के अवसर तक वह अपना काम कर जाता है। आयुर्वेद में सर्वविषनाशक अनेकों औषधियां हैं जिन का विलक्षण प्रभाव समय समय पर देखा गया है। किन्तु, इस लेख में हमें सर्प विष पर परमैंगनेट पोटास नामक डाक्टरी औषधि की उपकारिता दिखानी है इस लिए नीचे केवल इस औषधि का उल्लेख किया जाता है:—

डाक्टरी चिकित्साप्रणाली में—इस समय परमैंगनेट आफ पोटास (Permangante of potash) सर्प विष की सर्वोत्कृष्ट औषध बाद कर गृहीत हुई है। सन् १८६६ ई० में डाक्टर जोसेफ ने सब से पहले इस को जल में मिला कर दंश स्थान पर मल कर और सिर में प्रवेश करा कर इस दवा को उपयोगी सिद्ध करने की चेष्टा की थी, किन्तु वैसा नहीं हुआ। सन् १८८१ ई० में यूरोपनिवासी डाक्टर विंसेन्ट रिचार्डस और डाक्टर कोर्टी एवं डाक्टर ल्यासरडा (Corty and Lacerda) जन्तुओं के शरीर में इसका प्रयोग करके अधिक सफल हुए थे। किन्तु, डा० रिचार्डस के मतानुसार सर्प से काटे गये मनुष्य के सिर में, काटने के चार मिनट बाद तक इस दवा को जल में मिला कर के प्रवेश कर देना चाहिए। इस कारण, परीक्षा में सफलता पाने पर भी यह दवा अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। क्योंकि सर्पदंश के चार मिनट बाद उसका कुछ फल नहीं होता और इतने अल्पसमय में चिकित्सा होना असम्भव है। इस दवा को सर्वोपयोगी बनाने के लिये सर लडार ब्रान्टन (Sirlauder Bruntor) साहब ने खूब चेष्टा की। अन्त में उन्होंने एक ऐसी छुरी बनाई कि जिसके चारों ओर तक आवरण और निम्न अंश में पोटास परमैंगनेट का दाना (Cryatals of potash permanganate) रखने का स्थान था। इस अस्त्र से कर्नल रिचार्डस साहबने इंग्लैंड और कलकत्ते में कितनी ही परीक्षाएं की थीं। पहले मालूम हुआ था कि यह पोटास केवल काले सांप के विष को दूर करती है, परन्तु इस छुरी से मालूम हुआ कि अब दोनों श्रेणी के सांपों का विष इससे दूर किया जा सकता है।

निम्नरीति से इसकी परीक्षा की जा सकती है। जिस जंतु के शरीर से परीक्षा करनी हो उसको प्रथम "क्लोरोफार्म" द्वारा अज्ञान

कर उसके शरीर में एक दम मरणात्मक परिणाम में विष प्रवेश कर दो। कुछ निर्दिष्ट समय के बाद विष प्रवेश करने के छिद्र से, इतना ऊंचा शरीर कसकर बांध दो कि जहां तक विष चढ़ जाने की सम्भावना हो। फिर उस छिद्र को एक से दो इंच तक लम्बा करके और निकलते हुए रक्त को धीरे से दबाकर बंद करके, अल्प मध्यस्थ पोटास के दाने को ततस्थान में प्रयोग कर के सामान्य जल से क्षत स्थान उत्तम रीतिसे उस समय तक मलो कि जब तक वह स्थान काला न होजाय। इस तरह रक्त से विष का प्रभाव दूर होजाता है। मरणात्मक परिमाण से दस गुना अधिक विष (काले सांप के विष से) प्रवेश कर के आध मिनट बाद पांच गुना प्रवेश करके, ५ मिनट बाद तीन गुना प्रवेश करके दस मिनट बाद, एवं दो गुना प्रवेश करके आध घंटे के बाद तक चिकित्सा आरम्भ की जासकती है। किन्तु, "रिसेल वाईपर" सांपके विष से पांच गुना अधिक प्रवेश करके आध मिनट बाद और तीन गुना प्रवेश करके दस मिनट बाद चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। डाक्टर रिचार्डस ने यह भी परीक्षा करके मालूम किया है कि काला सांप मनुष्य के मरने के लिये पर्याप्त विष से, दस गुना अधिक विष प्रवेश कर सकता है। किन्तु "रिसेल—वाईपर" जातीय सांप एकबार में, दो गुने से अधिक विष को प्रवेश नहीं कर सकता। इस सिद्धान्त से मालूम होता है कि ब्रान्टेन साहब के इस यंत्र (Snake-laneet) से सर्प दंश का विष दूर किया जा सकता है।

इस यंत्र द्वारा बहुत से मनुष्य बचाये गये हैं। और बड़े २ डाक्टरों व वैद्य महाशयों ने इस चिकित्सा को एकमात्र सर्प-विष नाशक औषधि कहा है।

सर्पविषचिकित्सा विषय पर कुछ उपदेश।

इस चिकित्सा के लिए चार वस्तुओं की आवश्यकता है। (१) परमेंगनेट आफ पोटास। इस का मूल्य बहुत थोड़ा है, एक रोगी के लिए दो आने की दवा काफी होती है। (२) एक तीक्ष्ण धार की छुरी, सब से अच्छी ब्रान्टेर साहब की आविष्कृत छुरी है। उस में स्वयं पोटास रहता है। इस छुरी का मूल्य सिर्फ आठ आने है। (३) एक उपकरण, जिस से काटे गये स्थान से कुछ दूर का शरीर भाग अच्छी तरह से कसकर बाँधा जासके। (४) सामान्य जल।

अच्छी तरह से बाँधने के लिये कोई काठ का टुकड़ा या कलम-पेंसिल भीतर रख कर ऊपर से बांधना चाहिए। सांप के काटते ही यदि तुरंत काटा हुआ स्थान उत्तम रीति से बांध दिया जाय तो अच्छा है, नहीं तो अटकल से जहाँ तक विष का प्रवेश होगया हो उस के ऊपर बांधना चाहिए। काटे हुये स्थान को दो इंच तक चौड़ा कर सकते हो। फिर पानी की मालिश ऊपर लिखी हुई रीति से करना चाहिए। इस के बाद क्षत स्थान को बांध कर रोगी को सुलादेना चाहिए। यदि श्वास बंद होने के लक्षण प्रकट होनेलगें तो तौलिये या रूमाल से छाती, मुख और मेजे को धीरे २ मलदेना चाहिए। एव किसी चिकित्सक की सहायता द्वारा रोगी के मस्तिष्क में, कालेम्टी साहब का Antevenin प्रवेश करा देना चाहिए। अस्त्र के प्रयोग के पहले, पोटास को भी इसी रीति से रक्त बंद न होने के लिए व्यवहार कर सकते हैं।

बस यही पाश्चात्यविज्ञान-सम्मत सर्पविष की उत्कृष्ट चिकित्सा है। आयुर्वेद में, सर्प-विष-चिकित्सा विस्तृतभाव से लिखी है। *

स्वास्थ्य और आनन्द ।

हे, आनन्द, परमानन्द !
चमतारे हो, क्यों प्यारे हो !
हो आनन्द,
करुणाकन्द !!
तब तो, आह-भारी चाह-
सब कुछ छोड़-छाड़ कर तुम से अविरत लगन लगाऊँगा ।

(२)

हे-आदर्श-
तेरा दर्श।
कैसे होगा !--जैसे होगा !
बड़ कुल पाय ,
धन बल पाय ,
सुन्दर तन से--नारीगन से ।
नहीं, नहीं--आनन्द ! बस तब स्वास्थ्य--रसिक बन जाऊँगा ॥

'नयन'

* चिकित्सा सम्मिलनी के एक लेख के आधार पर।

शौच !

हम देखते हैं कि हमारे शिक्षित मित्र संसार भर की बातें जानते हैं। भूमण्डल के भूगोल को स्मरण रखते हैं और आध्यात्मिक विचारों से दिलचस्पी रखते हैं, किन्तु उन को (अधिकांश को) यह भी ज्ञात नहीं है कि शौच किस प्रकार जाना चाहिए। शौचादि सम्बन्धी बातें बाल्यकाल में जाननी चाहिएं। स्वास्थ्यसम्बन्धी समस्त साधारण ज्ञान की शिक्षा सब से प्रथम (शिक्षा) समझनी चाहिए।

एक बड़े लोटे को जल से भरकर पाखाना जाना चाहिए। ईसाइयों की भांति कागज़ आदि और मुसलमानों की भांति मिट्टी आदि से गुह्येन्द्रिय शुद्ध नहीं होसकती है। जिस तरह स्नान के लिए जल की परमावश्यकता है; कागज़ या मिट्टी से काम नहीं चल सकता। ठीक इसी तरह से इन्द्रिय शुद्धि की आवश्यकता के लिए जल अनिवार्य है। गुप्त इन्द्रियों की सफ़ाई स्नान करते समय नहीं हो सकती है। न्हाते समय ऐसा करना भी नहीं चाहिए। यदि कोई अङ्ग बिना मल २ कर धोये रक्खा जायगा तो वह गन्दा हो जायगा। हमने अपनी आंखों से देख लिया है कि यदि गुप्त इन्द्रियाँ गन्दी रक्खी जावें तो वे गन्दा काम करने लगती हैं और यदि कोई योगी अपनी आत्मिक शक्ति से गन्दा कार्य रोक दे तो वे इन्द्रियाँ निकम्मी अवश्यमेव हो जावेंगी। जो लोग इन्द्रियों को न तो गन्दा रखना चाहते हैं और न निकम्मी करना चाहते हैं, उन का कर्तव्य है कि वे इन दोनों इन्द्रियों को जलद्वारा खूब मल २ कर नित्य साफ़ किया करें। शारीरिक शुद्धि के लिए जल के सिवा और कोई वस्तु प्रकृति माता ने निर्माण नहीं की है। जो अंग्रेजी फ़ैशन के लोग ऐसा नहीं करते हैं उन को सचेत होना चाहिए।

जहाँ तक हो सके खुले मैदान में पाखाना जाना चाहिए। टट्टियों में जाने से गन्दी वायु के सिवा शरीर को जो हानि होती है वह विचारणीय है। हम यह कहना चाहते हैं कि जिन अङ्गों में शुद्ध वायु के झोंके नहीं लगेंगे वे निकम्मे, रोगी और गन्दे हो जावेंगे। नंगे रहने से बड़ा लाभ है, किन्तु समाजनियम के कारण ऐसा नहीं हो सकता है। अतएव जिन गुप्त इन्द्रियों को सर्वदा ढका रक्खा जाता है, उन को कम से कम शौच के समय प्राणवायु का दान देना नवजीवन प्राप्त करने के तुल्य समझना चाहिए। जो लोग ग्रामों में

रहते हैं उन को यह सुयोग प्राप्त होता है। ऐसे ही कारणों से शहर वालों से ग्रामीण लोगों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

जिनको बिना तम्बाकू खाये या बिना तम्बाकू पिये अथवा अन्य किसी नशे के खाये बिना दस्त नहीं उतरता उन को समझ लेना चाहिए कि उनकी पाचनशक्ति निर्बल है और ये नशे उस दुर्बलता को घटा नहीं रहे हैं बल्कि बढ़ा रहे हैं। हम यहां पर नशों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते हैं। परन्तु यह बात निश्चय है कि नशों के कारण पाचनशक्ति बहुत निर्बल होजाती है और पाचनशक्ति की खराबी से "प्राकृतिक शौच" नहीं हो सकता। यदि नियमानुसार शौच नहीं होता है तो रोगी और अकाल मृत्यु आदि व्याधियों की शिकायत करना घोर अन्याय है।

प्राकृतिक शौच होने के ये चिन्ह हैं। बैठते ही अपान वायु और पेशाब का आना, बिना दर्द, ज़ोर या देरी के पाखाना होना, पाखाना पतला, गंदा या खूब सख्त न होना, सिर्फ पांच मिनट में यह कार्य समाप्त होना चाहिए। पाखाने के बाद पुनः वायु निकलनी चाहिए। यदि वायु नहीं निकली और पेट भारी बना रहे तो समझना चाहिए कि ठीक पाखाना नहीं हुआ। साधारणतः पशुगण जो पाखाना करते हैं उन का गोबर अपने आप शरीर से अलग होजाता है, इसी तरह मनुष्यों का भी पाखाना होना चाहिए। पशु, पक्षी और मनुष्य पाखाने की क्रिया में समान हैं। जितनी जल्दी पशु पाखाना करता है, उतनी ही जल्दी मनुष्य को मल, मूत्र त्यागना चाहिए। जब कोई पालतू पशु पाखाना करते समय कष्ट अनुभव करता है या पतला एवं गन्दा पाखाना करता है तब उस का मालिक उसे बीमार समझ चिकित्सा के लिए दौड़ धूप करता है। किन्तु, वही मनुष्य स्वयं अपने सम्बन्ध में यह बात विचारणीय नहीं समझता है। लोग पशु का पाखाना काम में लाते हैं, किन्तु मनुष्य का पाखाना कोई नहीं छूता है। इसका मुख्य कारण यही है कि मनुष्य के पाखाने में गन्दगी होती है और यह गन्दगी पेट की बीमारियों से उत्पन्न होती है। अतएव, जिन लोगों का पाखाना गन्दा, पतला, देरी में, कष्ट से, और नशे की सहायता से होता है वह अपने को रोगी समझ लें। ये रोग सामान्य नहीं है। यदि किसी को समझमें यह बातें सामान्य अथवा लापरवाही की दृष्टि से देखने योग्य मालूम पड़ें, तो उस को सब से पहले अपनी मूर्खता अथवा चित्तविकृति नामक भीषण बीमारी की चिकित्सा

करनी चाहिए। चिकित्सा करना या कराना नितान्त आवश्यक है।

शौच की खराबी का मुख्य कारण अखाद्य है। घोड़े, घास छोड़ कर आमके पत्ते नहीं खाते हैं। किन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि को सदुपयोग में लाकर (१) सभी खाद्य और अखाद्य को मसालों और घृतादि के बल से भक्षण कर लेता है। इस स्थल पर खाद्य के सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा जा सकता है कि सादा, सुपाच्य और बनावट रहित भोजन ग्रहण करना चाहिए। एक एक ग्रास को खूब चबाना चाहिए। मसाले, मांस और अपवित्र वस्तुएँ अहितकर हैं। शुद्ध और ताज़ा जल पीना चाहिए।

कोई कोई मनुष्य दिन रात में तीन बार, कोई कोई दो बार और कोई कोई केवल एक बार पाखाना जाते हैं। प्राकृतिक ढङ्ग से केवल एक ही बार--प्रातः काल पाखाना जाना चाहिए। दो बार जाना भी बुरा नहीं है। हमारे देश में एक कहावत है कि 'एक बार योगी, दो बार भोगी, तीन बार रोगी।'

समय असमय गन्दी वायु का निकलना भी अच्छा नहीं है। सभ्यता के सिवाय स्वास्थ्य विज्ञान से भी यह खराब बात है। जिस प्रकार पानी डालकर टट्टियां साफ की जाती हैं। उसी तरह इन्द्रिय विज्ञान पेट की टट्टी को वायु द्वारा साफ करता है। नाक द्वारा जो वायु बाहर निकलती है उस का सारा गन्दा भाग पाखाने की वायु होता है। किन्तु, पेट के मलाशय की ठीक सफाई तभी होती है जब कि गुदा द्वारा गन्दा वायु बाहर निकलता है। जिस प्रकार अधिक गन्दगी के कारण बाहर के पाखाने की बार बार सफाई करानी होती है—उसी तरह समझना चाहिए कि यदि समय-असमय गन्दा वायु निकलता है तो मलाशय अत्यन्त गन्दा हो रहा है।

शौचके नियमित रूपसे होने के लिए दो बातें आवश्यक हैं। (१) जुलाब लेना और (२) उपवास करना। वर्ष में दो बार साधारण जुलाब की दवा लेकर मलाशय को साफ करना चाहिए। उपवास द्वारा मलाशय का स्थान सुदृढ़ और कार्यकारी होजाता है। मास में पन्द्रह दिन उपवास रखना चाहिए। यह बातें साधारण स्वास्थ्य वालों के लिये हैं और रोगी मनुष्यों को चिकित्सकों से सम्मति लेनी चाहिए।

शिवनारायण शर्मा।

बालकों का क्षयरोग।

बहुत लोगों का विश्वास है कि छोटे बालकों के क्षय नहीं होता पर डाक्टरी पुस्तकों में बालकों के क्षयरोग का उल्लेख स्पष्टरूप से देखा जाता है। आयुर्वेद में भी बालकों के क्षय का वर्णन सूक्ष्म रूप से है। किन्तु बालकों के क्षयरोग का निरूपण करना बड़ा कठिन है। विशेषरूप से विचार न करने से रोग समझ में नहीं आसकता।

शहर में रहने वाले प्रायः छोटे बालकों के गले में बहुत सी ग्रन्थियाँ फूलजाया करती हैं उन के फूलने से बालक सहज ही सर्दी, खाँसी आदि रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं; इस कारण उन का स्वास्थ्यभङ्ग होजाता है। एव देह क्षीण और मन स्फूर्तिहीन होजाता है। उक्त बालकों का लालन पालन यदि विशेष सावधानता से न किया जाय तो वे शीघ्र ही क्षयरोग से ग्रसित हो जाते हैं। किन्तु दुःख का विषय है कि प्रायः बालकों के क्षय की प्रकृत चिकित्सा नहीं हो सकती। क्यों कि रोग निर्णय करना बड़ा कठिन होजाता है। यहाँ तक कि बड़े बड़े विद्वान् वैद्य और डाक्टरों की समझ में भी बालकों का रोग सहज में नहीं आता। इस का कारण यही है कि युवक वा किशोर अवस्था के लोगों के जो क्षय होता है उस में जो लक्षण होते हैं वे लक्षण प्रायः बालकों के क्षय में नहीं होते। कभी कभी अस्पष्टरूप से कुछ लक्षण दिखाई देते हैं। बड़ी उमर के मनुष्यों के क्षय में जिस प्रकार फेफड़ा विशेष रूप से खराब होता है, उस प्रकार बालकों का फेफड़ा खराब नहीं होता। बालकों का फेफड़ा सामान्य रूप से ही खराब होता है। बालकों के खाँसी में खून नहीं गिरता और खाँसी भी प्रायः कम होती है। कफ भी बहुत कम गिरता है।

बालकों के शरीर में क्षयका मुख्य लक्षण अत्यन्त पसीने का आना और निरन्तर मन्दज्वर का रहना ये लक्षण भी प्रायः नहीं होते।

जब बालकों के क्षय रोग का सूत्रपात होता है तब उसकी श्वास-नली में अत्यन्त दाह होती है। यह प्रायः 'ब्रानकाइटिस' (Bronchitis) की समान मालूम होती है। बालक के फेफड़े में कभी कभी इतनी दाह होती है कि बालक की मृत्यु तक होजाती है। इन्फ्लुएञ्जा में पहले जिसप्रकार की खाँसी होती है बालकों के क्षय में भी प्रायः वैसी ही खाँसी होती है। बालकों के स्वरभङ्ग प्रायः कम होता है। इत्यादि कारणोंसे बालकों के यक्ष्मा का निश्चय करना बड़ा कठिन है।

बालकों के क्षय रोग में प्रायः निम्नलिखित लक्षण देखे जाते हैं:-

(क) फेफड़े में अधिक पीड़ा या ब्रोनकाइटिस का होना।
(ख) शारीरिक गुरुत्व का ह्रास अर्थात् शरीर का वज़न घटना।
(ग) बहुत समय तक उदररोग अर्थात् दस्तों का होना।
(घ) निरन्तर ज्वर का रहना।
(ङ) प्रायः वमन का होना।
(च) मन्दाग्नि व क्षुधा का ह्रास।
(छ) अरुचि।
(ज) शीतल पदार्थों को सेवन करने की इच्छा। (यह शरीर में दाह की अधिकता के कारण होती है)।
(झ) लारिंक्स (स्वरयन्त्र) में क्षत उत्पन्न होना।
(ञ) कभी सूखी खाँसी एवं कभी तर खाँसी का होना।
(ट) छाती का बैठना।
(ठ) कम्पन अर्थात् बालक जब बोलता है तब उस की छाती पर हाथ रखकर देखने से मालूम होता है कि वह भीतर से ख़ूब काँपता है।
(ड) छाती पर अँगुलि से बजाने से भद भद शब्द का होना।
(ढ) स्टेथस् कोप को लगाकर देखने पर उस में से तरह तरह के शब्दों का होना। बद्धमूल रोग होने पर कभी फट् फट् शब्द, कभी गुड़ गुड़ शब्द और कभी भड़ भड़ शब्द होता है।
(ण) स्वभाव में उग्रता होना।
(त) नेत्रों में विशेष उज्ज्वलता।
(थ) बीच बीच में ग्रन्थियों का फूलना।
(द) जिह्वा के बीच में काले रंग का दाग़ सा होना।
(ध) मट्टी खाने की अधिक इच्छा होना।
(न) मूत्रद्वार का बीच बीच में उत्तेजित होना।
(प) सदैव सुस्त रहना।
(फ) बालों का गिरना।
(ब) पेट का अफ़रना इत्यादि।

बालकों के अनेक कारणों से यक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है। उन में से कुछ प्रधान कारणों का नीचे उल्लेख किया जाता है:—

(१) पिता के वीर्य्य और माता के आर्त्तव का दोष। (२) दूषित दुग्धपान। (३) अत्यधिक मिष्टान्न पदार्थों का भोजन। (४) जलशील स्थान में रहना। (५) शुद्ध वायु और धूप का

अभाव। (६) सर्वदा, बन्द स्थान, भीजे या गीले स्थान में रहना। (७) सदैव बालक के शरीर में कपड़े, जामा आदि का लिपटा रहना। (८) पुष्टिकारक खुराक का अभाव। (९) विरुद्ध भोजन। (१०) भय दिखाना। (११) अत्यन्त रोना। (१२) शरीर में घावों की अधिकता। (१३) क्षयरोग वाली स्त्री का दुग्धपान। (१४) उच्चस्थान से गिरना। (१५) स्वाभाविक फुफ्फुस की दुर्बलता इत्यादि बालकों के राजयक्ष्मा उत्पन्न होने के अनेक कारण हैं।

सामान्य विधि—बालकों के क्षयरोग की चिकित्सा बड़ी साव-धानी से करनी चाहिए। अधिक औषधियों की भरमार न करके इस रोग में उनके रहन-सहन, और आहार-विहार पर अधिक ध्यान रखना चाहिए। ऐसे बालकों को सदैव स्वच्छ हवा मिलनी चाहिए। स्वच्छ हवा ही क्षयरोग की एकमात्र सर्वोत्तम औषधि है। उन की शारीरिक स्वच्छता पर भी अधिक ध्यान रखना चाहिए। जो बालक अस्वच्छ या गन्दे रहते हैं उन के शरीर में इस रोग का प्रकोप बड़ी शीघ्रता से होता है।

जब तक बालक के दाँत न निकलें तब तक उस को एकमात्र दूध ही पिलाना चाहिए। रोगी बालक की माता को हमेशा सादा, हलका और पथ्य भोजन करना चाहिए। माता को दूध की शुद्धि के लिए चिरायता, सुदर्शनचूर्ण आदि औषधियाँ आवश्यकतानुसार सेवन करानी चाहियें।

माता के दूध के अभाव में गाय या बकरी का दूध देना चाहिए। गाय का दूध सदैव पका कर ही देना चाहिए। बकरी के दूध को पीपल डालकर पका कर देना चाहिए। जिन बालकों के दाँत निकल आए हैं उन को भी इस रोग में यदि अन्न न देकर केवल दूध ही दिया जाय तो बहुत जल्द लाभ होने की आशा है। यदि अन्न देना ही हो तो मूँग का यूप, गेहूं का या जौ का दलिया, साबूदाना आदि हलके पदार्थ देने चाहियें। हलवाई की दूकान की मिठाई या अन्य दुष्पाच्य और हानिकर पदार्थ बालक को कभी भूल कर नहीं देने चाहियें।

चिकित्सा—प्रथम बालक को और वह यदि माता का दूध पीता हो तो उस की माता को भी एकाध हलका जुल्लाब देना चाहिए। पश्चात् माता को पूर्वोक्त दोनों औषधियों में से कोई औषधि तीन २ माशे की मात्रा से प्रात काल और सन्ध्या समय जल के साथ सेवन

करानी चाहिए । बालक का कोठा साफ होजाने के पश्चात् निम्नलिखित औषधियाँ सेवन करानी चाहिएँ । यह सब योग अनेकों बार परीक्षा किए हुए हैं। कितने ही बालक इन औषधों के द्वारा क्षय के पञ्जे से मुक्त हो चुके हैं।

(१) गिलोय का सत्त, वंशलोचन और छोटी इलायची के दाने प्रत्येक औषधि डेढ़ २ माशे, मुलेठी १ माशा, पीपल ४ रत्ती, दारचीनी ४ रत्ती, चाँदी के वर्क ४ रत्ती, सोने के वर्क २रत्ती, सहस्र पुटित या कम से कम पञ्चशतपुटित अभ्रक भस्म २ रत्ती और लोहभस्म २ रत्ती इन सब को एकत्र खरल करके एक एक रत्ती की पुड़िया बनाले । बालक की अवस्थानुसार एक पुड़िया या आधी पुड़िया शहद, मक्खन या मलाई में मिला कर चटानी चाहिए । ऊपर से कभी कभी गिलोय का पुटपाक विधि से रस निकाल कर पिलाना चाहिए ।

(२) अथवा सितोपलादि अवलेह में कुछ चाँदी के वर्क और किञ्चित् लोहभस्म मिला कर अच्छे प्रकार खरल कर मधु और घृत के साथ अल्पमात्रा से बालक को चटाने से भी बहुत लाभ होता है।

(३) च्यवनप्राश— क्षय रोग की प्रसिद्ध औषधि है। बालकों के क्षयरोग में इसका बड़ा विलक्षण फल देखा जाता है । जब बालक सर्दी, जुकाम से पीड़ित होकर सूखा खाँसता है और उस का शरीर क्रमशः प्रतिदिन क्षीण होने लगता है कभी पतले दस्त एवं कभी कब्ज मालूम होता है तब तत्काल उस को च्यवनप्राशावलेह बकरी के दूध के साथ देना आरम्भ कर देना चाहिए । प्रथम दो रत्ती की मात्रा से देना चाहिए अर्थात् दो रत्ती सवेरे, और दो रत्ती सन्ध्या को देवे। बालक के बलाबल और अवस्थानुसार मात्रा घटा बढ़ा कर भी दी जा सकती है । च्यवनप्राश के सेवन से बालक को शीघ्र लाभ मालूम होने लगता है । तीन चार दिनमें ही अग्नि अत्यन्त दीपन होकर क्षुधाकी वृद्धि होती है। बालकों के बल, वर्ण रुधिर और मांस की वृद्धि होती है । कफ, खाँसी और क्षय का विष निवारण होता है । सचमुच च्यवनप्राश की समान बालकों के क्षय की दूसरी औषधि आज तक संसार में आविष्कृत नहीं हुई ।

—o—

इन्फ्ल्यूएंजा, नवज्वर।

वर्त्तमान काल में इस ज्वर को अँगरेजी में इन्फ्ल्यूएंजा और हिन्दी में नवज्वर या श्लेष्मज्वर कहते हैं।

यह ज्वर ६ प्रकार का है। इस में प्राधान्य कफ का है। यह ज्वर वास्तव में ऐसा भयानक नहीं है-जैसी मृत्यु हो रही हैं। मृत्यु का लेखा देखने से प्लेग को भी मात कर दिया है। इस कदर मृत्यु होने का कारण चिकित्सा की त्रुटि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कहा जा सकता है। कई त्रुटियां इस प्रकार की हैं कि बहुत से लोग बिना दवा सेवन किये ही भोजन करते हुए और कोई बिना दवा के सिर्फ लंघन करने से ही अच्छे हुए। ऐसे ही देखादेखी करके बहुत से लोग धोखा उठा रहे हैं। वास्तव में इन पर हलका असर पड़ा है। इस रोग में जो उचित दवा होनी चाहिए वह नहीं होती। सैकड़ों प्राणियों की आमें मुफ्त जा रही हैं। इसलिए सर्वसाधारण के सुभीते के लिए इस ज्वर के दो भेद करके दो प्रकार की चिकित्सा जो कि सैकड़ों रोगियों पर परीक्षा होचुकी है प्रकाशित कीजाती है:-

(१) जिस रोगीको केवल ज्वर हो, छाती या गलेमें दर्द न हो उस की चिकित्सा इसप्रकार करनी चाहिए-"मिश्री १६ तो०, वंशलोचन ८ तो०, पीपल ४तो०, छोटी इलायची के बीज २तो०, दालचीनी १ तो०, काकड़ासिंघी ६तो०, बहेड़े के फल का छिलका ६ तो०, गिलोयका सत्व ६ तो०," इन सबों का एकत्र चूर्ण कर प्रति दिन १ माशे से ४ माशे तक रोगी की अवस्थानुसार दिन में तीन बार और रात्रि को तीन बजे ऐसे चार खुराकें शहद के साथ देनी चाहिएँ। जो लोग मधुसेवन नहीं करते वे खांड के शर्बत के साथ खावें। छुरा (फिल्टर किया हुआ) हुआ जल इच्छानुसार पीनेको देना चाहिए। भोजन की इच्छा न होने पर नहीं देना चाहिएँ। यदि इच्छा हो तो हलका भोजन खिचड़ी या दाल भात देना चाहिए। नशे की चीजें, दूध, चा, काफी, सागूदाना आदि देने की ज़रूरत नहीं। चा पीने की इच्छा होने पर तुलसी, अदरख, सोंठ, दालचीनी आदि को पकाकर दूध बूरा मिला कर चा के बदले देना चाहिए। बदन में दर्द होने पर, दिल बहलाव के लिए तिल के तेल की मालिश करना अच्छा है। रोगी को जल नहीं देना अत्यन्त निर्दयता व रोगी को नुकसान पहुँचाना है।

(२) जिस रोगी के छाती या गले में दर्द और ज्वर हो उसे उपरोक्त दवा देना व सरसों का तेल या महानारायण तेल या विष-

गर्म तेल लगाकर (जैसे छोटा बच्चा सेंका जाता है) हाथ से सेंक कर शीघ्र ही सेंका हुआ स्थान ढाक देना चाहिए। इसी प्रकार दिन रात में ३-४ बक सेंक करना चाहिए जब तक कि दर्द अच्छा न हो जाय। इसके अतिरिक्त इस दर्दवाले बुखार में एक उत्तम दवा यह है कि-नीम की छाल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, कचूर, पीपल, भटकटैया, फलवाली कटेरी के फूल या जड, नागरमोथा, आंवा, हल्दी, कालीमिरच, गटारन (?) के पत्ते फल या जड़, दालचीनी, और तुलसी के पत्ते, ये सब औषधियां साढ़े तीन तोले एक पाव पानी में पकावे और १ छटांक पानी रहने पर पीने को देना चाहिए। क्वाथ दिन में दो बार सुबह व शाम को देना चाहिए। १ बक का बनाया हुआ दुबारा काम में नहीं लाना चाहिए। उपरोक्त दवाइयां सब कोई बना सकते हैं और सब स्थानों में मिल सकती हैं।

पं० गदाधरप्रसाद शर्मा दीक्षित,

आयुर्वेदीय औषधालय, गोलबाज़ार बिलासपुर सी, पी.

—०—

विविध-विषय।

विलायत में आयुर्वेदीयचिकित्सा का प्रभाव—श्रीयुक्त मि० एस० मित्र ने विलायत के बोरनमाउथ नगर में आयुर्वेदीय-चिकित्सा के द्वारा कितने ही कठिन कठिन रोगों को आरोग्य करके खूब ख्याति प्राप्त की है जिस से वहाँ के निवासियों पर आयुर्वेद चिकित्सा का अच्छा प्रभाव पड़ा है। इस के सम्बन्ध में सहयोगी भारतमित्र के एक नोट को नीचे उद्धृत करते हैं।

"ऐलोपथ डाकृर आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के दोष बराबर दिखाया करते हैं और हमारे हिन्दुस्थानी डाकृर इनकी हां में हां मिलाया करते हैं। कई महीने हुए लेफ्टिनेंट कर्नल सदरलैंड आई० एम० एस० ने इण्डियन मेडिकल गजट में आयुर्वेद की निन्दा की थी, और इसके पहले लार्ड पेटलैण्ड और सरयेलेग्ज़ेंडर केडयू भी आयुर्वेद पर अनुचित आक्रमण करचुके थे। परन्तु यूरोप में आयुर्वेद का सिक्का जमरहा। १९१३ मे सब राष्ट्रों के डाकृरों की कांग्रेस में आयुर्वेदिकचिकित्सकों को स्थान मिला था और अब तो मि० एस० एम० मित्र ने ब्रिटिश डाकृरों के देखते देखते कई असाध्य रोगी अच्छे किये हैं। मई के "एम्पायर रिव्यू में" मिस इरीन बैंक हाउस ने

मि० मित्र की वैद्यकी का कुछ वर्णन किया है। इन्हों ने बोर्नेमाउथ नामक स्थान में अपना चिकित्सालय खोला है। मि० मित्र बहुत दिलके के रोगियों की ही चिकित्सा करते हैं। उन्हों ने कई ऐसे रोगियों को अच्छा किया है। शेल गोले के गिरने से जिनके दिल को धक्का पहुंचा है, भूकम्प, तूफान या छत से गिरने के कारण जो धक्का लगता है, उस की जैसी चिकित्सा होती है वैसी ही चिकित्सा गोले का धक्का लगे रोगियों की मि० मित्र करते हैं। उन्हों ने आर० ए० एम० सी० वारायल मेडिकल कोर अर्थात् गोरी पल्टन के डाक्टर को इस रोग से छः सप्ताह में अच्छा किया है और वह फिर लड़ाईपर भेजा गया है। वैद्यराज मित्र का इस प्रकार के रोगी अच्छे करने से बड़ा नाम होगया है और अङ्गरेज़ लोग आयुर्वेद का महत्व समझने लगे हैं। लार्ड पेंटलैंड, सर एलेग्ज़ेंडर केरड्यू या ले० क० सदरलैंड को विलायत में कौन सुनेगा ?"

बालकों की मृत्यु ।

हमारे देश में प्रतिवर्ष छोटे बालकों की जितनी मृत्यु होती हैं उतनी शायद पृथ्वी के किसी देश में नहीं होतीं। बड़े बड़े शहरों में जितने बालक उत्पन्न होते हैं उन में से प्रायः आधे मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य्य और दुःख होता है कि इस हृदयविदारक प्रश्न की ओर अभी तक गवर्नमेंट और भारतवासियों का अधिक ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है। इस महत्व के पूर्ण विषय पर पाश्चात्य देशों में विशेषरूप से ध्यान दिया जाता है। इस कारण उन देशों में बालकों की मृत्युसंख्या बहुत कम होगई है।

इङ्गलैण्ड, फ्रांस जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि देशों में बालकों की मृत्युसंख्या कम करने के लिए नानाप्रकार के उपाय किये जाते हैं। क्या यहाँ ऐसे उपायों का अवलम्बन कर इस देश के लाखों निर्दोष बालकों के प्राणों की रक्षा नहीं की जासकती ?।

इन्फ्ल्यूएन्ज़ा रोग में ताँबा—बङ्गभाषाके आयुर्वेदनामक मासिकपत्र में प्रकाशित हुआ है, कि डाक्टर सालज़र, वाटसन, हबिन्स आदि विलायती डाक्टरों ने परीक्षा द्वारा जाना है कि ताँबे के उपयोगसे कालरा (हैजा), क्षयकी खाँसी, बवासीर, पुराना अतिसार, मृगी आदि कितने ही रोग आराम होते हैं। आयुर्वेदमें

ताम्रभस्म का व्यवहार अधिकता से देखा आता है
ने देखा है कि जो लोग ताँबेकी खान में काम करते हैं वे अनेक
से बचे रहते हैं। पिछले दिनों जब देशमें भयङ्कर
रहा था उस समय बहुत आदमियोंको ताँबेका तावीज
अच्छी सफलता प्राप्त हुई थी।

दीर्घजीवन प्राप्ति के उपाय—सर नियुमानने एक
में प्रकाशित कराया है कि मनुष्य १००वर्ष या उससे अधिक
क्यों नहीं जीवित रह सकता ?

उनका कहना है—सभी वैज्ञानिकों का मत है कि यदि शरीरमेंसे क्षयकारक द्रव्य और रोगके कारण बाहर करदिये जायँ तो वह १०० वर्ष ही नहीं, किन्तु पूर्ण शारीरिक और मानसिक शक्ति प्राप्त करके एक सहस्र वर्ष तक जीवित रह सकता है।

मनुष्यकी शिरा और ग्रन्थियोंके बीच में चूने की समान एक प्रकारका पदार्थ जमकर मनुष्यको वृद्ध करदेता है। इससे वह क्रमसे शरीरका कार्य्य करनेमें असमर्थ होजाता है। अन्तमें मृत्यु होजाती है। इस क्षयकारी पदार्थ को शरीर में से बाहर कर दिया जाय तो विज्ञानके मतसे दीर्घजीवनमें कोई भी सन्देह नहीं है।

दही, घोल (बिना पानी का मट्ठा) और सेवफल में एक ऐसा पदार्थ है कि जो शरीरमें जमेहुए उस वृद्धताजनक चूने को निकाल कर बाहर कर सकता है। अतः दही, घोल और सेव को प्रतिदिन सेवन करनेवाले मनुष्यको सहजमें वृद्धता आक्रमण नहीं कर सकती।

इन्फ्लुएन्ज़ा में उपदेश—बङ्गाल सेनेटरी कमीशनके डाक्टर बेन्टली साहब ने इन्फ्लुएन्ज़ा के सम्बन्ध में निम्नलिखित उपदेश दिया है—

जब कभी कहीं इन्फ्लुएन्ज़ा का प्रारम्भ हो तब प्रतिदिन तीन बार दारचीनी के दो बिन्दु तेल गरम जलमें मिलाकर पान करे तो इन्फ्लुएन्ज़ा से बचनेकी सम्भावना है। रोगी का थूक, कफ यहाँतक कि निश्वासके द्वाराभी यह रोग होसकता है इसलिए रोगी को पृथक् रखना उचित है। परिचर्य्या करने वालों को नाक और मुख ढककर रोगीकी सेवा करनी चाहिए।इसलिये उसे रोग होनेका भय नहीं रहता।

इन्फ्लुएन्ज़ा का टीका—लन्दनके टेलिग्राफिक पत्र में प्रकाशित हुआ है कि लन्दन के ६०० मनुष्योंके इन्फ्लुएन्ज़ा का टीका लगाया गया था, उनमें से केवल एक आदमी को इन्फ्लुएन्ज़ा हुआ।

(आगे टाइटिल के दो पृष्ठों को देखो)

आयुर्वेदोद्धारक औषधालय की—

❀ परीक्षित औषधियां ❀

सर्वप्रकार के रक्तविकारों पर

❀ अमृतसंजीवनी वटिका ❀

इन को सेवन करने से सब प्रकार की खुजली, दाद, चकत्ते, रुधिरविकार, वातरक्त, उपदंश (आतशक, गर्मी) अंगों का भंग होना शरीर में छिद्रों का होना, नाक का टेढा पड जाना, हाथ पावों का पसीजना, त्वचा के रोग, कुष्ठ शरीर का फूटना पारे के विकार और सब प्रकार के दुष्टघाव आराम होते हैं। नवीन रुधिर उत्पन्न होता है। मुख पर कांति और शरीर में फुर्ती उत्पन्न होती है। दस्त खुलासा होता है। मू० १) डिब्बी। डा० म०।)

सर्वप्रकार के ज्वरों पर।

❀ अजया वटिका ❀

यह गोली सब प्रकार के नये पुराने ज्वरों को दूर करती हैं। जिन लोगोंको कोनेन माफिक नहीं पडती उनके लिये यह बहुत अच्छीहै इस से मलेरिया, विषमज्वर एकतरा तिजारी, चौथिया सर्दीलगकर आनेवाला ज्वर प्लीहा और यकृत् युक्तज्वर शीघ्र दूर होता है। मू०१) हं०शी० डा०म०।)

❀ महालाक्षादि तैल ❀

जीर्ण ज्वर की प्रसिद्ध औषध है। इस को व्यवहार करनेसे बहुत दिनों का पुराना, ज्वर ज्वरकी दाह, राजयक्ष्मा खांसी श्वास हड्डी और सन्धियों की पीड़ा शरीर का, टूटना खुजली, और असमर्थता दूर होती है तथा वायु और कफ के रोग, पसली का शूल कमर व पीठ की पीडा, घुटनों का दर्द शिर का दर्द शरीर का कांपना मृगी मूर्छा, पागलपना भ्रम और प्रसूतरोग में यह अत्यन्त हितकारी है। मूल्य २० तोले की शीशी २) रुपया डाक महसूल ||=)

❀ क्षुधाप्रदीपिनीवटी ❀

इनको सेवन करनेसे सब प्रकारकी मन्दाग्नि और अजीर्ण तत्काल शांत हो जाता है। तथा जठराग्नि दीपन होकर क्षुधा बढ़ती है। किया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है। पेट अफरना खट्टी डकारों का आना

भोजन का अच्छे प्रकार नहीं पचना, अफारा, पेट में गडगडशब्द का होना मुखसे पानी का गिरना, अरुचि, सब प्रकार की उदरकी पीडा नाभिशूल दस्त और कै का होना, संग्रहणी, अतिसार हैजा और प्लीहा आदि रोग नष्ट होते हैं। दस्त खुल कर आता है। मूल्य १) रु०) डिब्बी म० ।)

* च्यवनप्राशावलेह *

यह राजयक्ष्मा और जीर्णज्वर की प्रसिद्ध औषधि है। इसमें स्त्री पुरुषों के धातुदोष, क्षय, खाँसी श्वास, ज्वर आदि रोग दूर होकर शरीर में अपूर्व बल और तरुणता उत्पन्न होती है। दो सप्ताह सेवन करने योग्य का दाम २) डा० म० ।०) आ।

चन्दनादि तैल

यह तैल जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, शरीर का सूखना बेहोशी, पागलपन, दिमाग की कमज़ोरी, घबराहट, खुश्की खुजली, दाह, चकत्ते फुन्सियें, शिरदर्द, सूजन और रक्तपित्तादि रोगों को दूर करके शरीरमें अपूर्व बल और फुर्ती उत्पन्न करती है। मू० २) रुपये शीशी डा० म० ।।~)

योगराजगूगल।

योगराजगूगल आमवात रोगों की प्रसिद्ध औषधि है। इस को सेवन करने से सन्धिवात (शरीरकेसमस्त जोड़ों की पीडा) आमवात (गाँठ, कमर व पीठ की पीडा) पसली कन्धों का दर्द तथा, सब प्रकार की वायु की पीडा दूर होती है। मू० १) रु०डि०। डा० म।)

व्रणनाशकतैल।

इसको व्यवहार करने से आतशक और गर्मी के घाव, पारे के घाव, नासूर इत्यादि सब प्रकार के घाव शीघ्र आराम हो जाते हैं। मूल्य ।।) शीशी डा० म० ।)

सुज़ाक की दवा।

इसको सेवन करने से नया पुराना सब प्रकार का सुजाक पीव का निकलना, कुप्पे का पकजाना, जलन का होना, खड़िया की समान पेशाब का आना इत्यादि सब उपद्रव ७ दिन में दूर हो जाते हैं। मू० १) डा म०।)

कासघ्नी वटी।

इन गोलियों को सेवन करने से सब प्रकार की खाँसी कफ का गिरना, दमा और हिचकी आदि सब उपद्रव दूर होते हैं। मू०॥) शीशी। डा० म०।)

दाद की दवा।

इसको लगाने से नया पुराना सब प्रकार का दाद खुजली इत्यादि बहुत जल्द आराम हो जाते हैं। किसी प्रकार की जलन नहीं होती। मू० ।=) शीशी.

शोधित शिलाजीत।

यह रसायन और वाजीकरण कार्य्य में सर्वोत्कृष्ट औषधि है। संसार में शिलाजीत की समान वीर्य्य को पुष्ट करनेवाली अन्य औषधि नहीं है। अनुपान विशेष से शिलाजीत मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात खड़िया की समान पेशाब का आना, दाह का होना, प्रमेह, उपदंश, व्रण, चोट का लगना, हड्डी आदि का उतर जाना, धातु दौर्बल्य, क्षय, खांसी श्वास, कफ सम्बन्धी पीड़ा और सब प्रकार की कमजोरी दूर होती है। मू० तोले की डिब्बी का २॥)

प्रमेहचिंतामणि।

इसको सेवन करने से नया, पुराना, प्रमेह पीब के साथ धातु का गिरना, रुधिर का निकलना, लाल पेशाब का आना, चिनक के पेशाब का उतरना, सोज़ाक, पथरी, स्वप्नदोष, मूत्रनाली में घाव का होना उसमें दरद का लगना, पेशाब का बार बार आना पेशाब से पहिले या पीछे वीर्य का गिरना और खड़िया की समान पेशाब का होना इत्यादि समस्त विकार दूर होते हैं। मू० १) रु० शीशी। डा० म०।) आना।

बवासीर की दवा।

इस को सेवन करने से सब प्रकार की खूनी बादी बवासीर और उससे उत्पन्न दाह और रुधिर का निकलना, मलबद्धता, दुर्बलता और शारीरिक एवं मानसिक समस्त कष्ट दूर होते हैं। मू० ॥) आ० शीशी डा० म०।)

उपदंशनाशकघृत।

इस दवा को सेवन करने से आतशक गर्मी और उसके विकार सारे

निखिलभारतवर्षीय एकादश वैद्य-सम्मेलन इन्दौर।

इन्दौर में होने वाले निखिलभारतवर्षीय एकादश वैद्य सम्मेलन के लिए स्वागतकारिणी समिति का सगठन करने को ता० २० जून सन् १९१९ ई० को श्रीयुत रायबहादुर सिरेमल जी बापना होम-मिनिस्टर इन्दौर के सभापतित्व में एक वृहत् सभा हुई। सभा में इन्दौर के प्रायः सभी प्रख्यात वैद्य, हकीम, डाक्टर, अन्य नगर-निवासी तथा राजकर्मचारी उपस्थित थे। आरम्भ में अनेक सज्जनों ने आयुर्वेदीय चिकित्सा के लाभों पर मनोहर व्याख्यान देकर सम्मेलन के उद्देश्य को समझाया। पश्चात् सर्वसम्मति से श्रीयुत राय-बहादुर ठाकुर सरयूप्रसादजी स्वागतकारिणी समिति के सभापति चुने गये और पं० स्यालीराम जी द्विवेदी वैद्य प्रधानमन्त्री चुने गये। इसके अतिरिक्त तीन उपसभापति (१) सरदार माधोराव जी कीबे साहब रेवन्यू मिनिस्टर इन्दौर (२) पं० आत्माराम जी शास्त्री वैद्य (३) पं० मथुराजी शास्त्री वैद्य और दो उपमन्त्री (१) ठाकुर लाल सिंह जी (२) बाबू गोपालचन्द्र जी मुखोपाध्याय और १५ सदस्य प्रबन्धकारिणी समिति के चुने गये। सर्वसम्मति से यह भी निश्चित हुआ कि स्वागतकारिणी समिति का सदस्य होने के लिए प्रवेश फीस पाँच रुपये रक्खी जावे। जो कोई महानुभाव पाँच रुपये फीस के भेजेंगे उन के नाम स्वागतकारिणी समिति के मेम्बरों में लिखे जायेंगे। सम्मेलन के विषय में चिट्ठी पत्री आदि नीचे लिखे पते पर होना चाहिए और अपने ग्रामों के वैद्यों की सूची भी पूरे पते सहित भेजना चाहिए।

पं० स्यालीराम जी द्विवेदी वैद्य

प्रधान मन्त्री।

निखिलभारतवर्षीय एकादश वैद्यसम्मेलन

आड़ाबाजार बाज़ार, इन्दौर।

Regd No A. 587

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यक सम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिकपत्र

सम्पादक-शंकरलाल वैद्य

वर्ष ७ } मुरादाबाद, जौलाई, अगस्त १९१९ { संख्या ७-८

विषय-सूची।

प्रकाशक-हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य २)

Printed by Kailasachandra
at the Lakshmi Narayan Press
MORADABAD

के दोष और घातक्ते यह सब शीघ्र दूर होजाते हैं। इस से न के है न दस्त आते हैं न मुँह आता है। मू० १) रु० शीशी डा० म० ।

उपदंशनाशक मरहम—केवल, ३ ४ बार लगाने से आतशक के घाव, दाह, खुजली आदि उपद्रव छूट जाते हैं। मूल्य डिब्बी।

एलादिवटिका।

यह गोली प्रत्येक मनुष्यको अपने पास रखनी चाहिये ईनको करने से हैजा, बदहजमी पेट का दर्द शूल; के दस्तों का होना सब प्रकार का अजीर्ण दूर होता है। मू० १) रु० डिब्बी। डा० मं०।)

अनलाहितकारिणी वटी।

इन गोलियों के सेवन से कष्ट से मासिक धर्म का होना, ऋतु-काल की भयानक पीड़ा मसिकधर्म का न होना, घुटने और कमरकी पीड़ा, बोझ सा मालूम होना, मस्तक का घूमना कम या ज्यादे दिनों में रजोदर्शन होना, वस्त्रमें दाग का लगना, शरीर की दुर्बलता, नाभि के नीचे की पीडा, मनकी अप्रसन्नता आदि सब उपद्रव दूर होकर मासिकधर्म यथासमय सुखपूर्वक होता है। मू०१) रु० डिब्बी डा० म० ।) आ०।

स्त्रीसञ्जीवनशङ्कर घृत।

इस परम कल्याणकर घृतका सेवन करने से स्त्रियों का श्वेतप्रदर (सफेद पानी का जाना) रक्तप्रदर (लाल पानी का जाना) अरुचि, शिरपीड़ा, मूर्च्छा, राध सहित धातु का गिरना दुर्बलता, कमरका दर्द और चित्त का न लगना यह सब विकार दूर हो कर शरीर आरोग्य होता है। शरीर का वर्ण सुन्दर होता है। तथा गर्भ उत्पन्न होता है। जिन स्त्रियों को गर्भ नहीं रहता या रह कर गिर जाता है उनके यह सब दोषों को दूर करता है। मूल्य २) रु० शी०। डा० म० =) आ०

बालसंजीवन वटिका।

इन गोलियों को सेवन करने से बालकों के, समस्तरोग, सर्दी, खांसी जुकाम, ज्वर, पसली, मुख का आजाना दूध का नहीं पीना, मशानकी बाधा, बार बार दूध डालना निरन्तर रोना सूखना, दस्तों का होना, दांत निकलते समय की पीडा आदि सब उपद्रव दूर होते हैं। मू० १) रु० शी० डा० म० ।)

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशंकर
आयुर्वेदोद्धारक औषधालय, मुरादाबाद।

* वैद्य के नियम *

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १,

(३) 'वैद्य' नमूने में केवल एक अङ्क भेजा जाता है। दूसरा ग्राहक होने की सूचना मिले नहीं भेजा जाता। नमूने में कोई सा अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिए जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेख घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहकनम्बर अवश्य लिखना चाहिए जिस से उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँच कर भेजा जाता है, किन्तु तो भी बहुत से ग्राहक किसी अंक के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं, इस का कारण रास्ते की असावधानी ही हो सकती है। जिन महाशयों को जो अंक न मिले वह दूसरे अंक के पहुँचते ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्वप्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि, "वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस, मुरादाबाद" के पते से भेजने चाहिएँ।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ७ } मुरादाबाद, जुलाई, अगस्त १९१९ { संख्या ७-८

धन्वन्तरि गुण-गान ।

(१)

परम सौम्य शुचिशील-शान्तियुत सर्वसिद्धियों का आगार ।
प्रकट हुआ था परमतत्व से, श्रीधन्वन्तरि का अवतार ॥
होकर अटल प्रतिज्ञ किया था—जिसने वैद्यक का उत्थान ।
केवल तन विज्ञान विचारा, सारा आयुर्वेदिक ज्ञान ॥
परोपकार के लिए विसारा, जिस ऋषि ने निजसौख्य—विलास ।
उसकी परम-पवित्र कीर्त्ति पर, कौन न लावेगा विश्वास ? ॥

(२)

उस उदार-बुद्धि के द्वारा, मिला दीर्घ-जीवन का मूल ।
विदित हुईं नैसर्गिक भूलें, विदित हुईं तन मन की भूल ॥
निर्मल शुभ उपदेश मदन का, मद भी करते रहते चूर्ण ।
ब्रह्मचर्य्य-व्रत-शील, नियम-युत, होते हैं हम मानव, पूर्ण ॥
आध्यात्मिक-जग का भी कोई, नहीं शेष रह सका विकास ।
उसकी परम-पवित्र कीर्त्ति पर, कौन न लावेगा विश्वास ? ॥

(३)

देखो, यह मन-पापी पूरा, हुआ कमल सम निर्मल फूल।
महा भयानक, जीवन-नाशक, तीनों ताप हुए निर्मूल॥
बिना स्वास्थ्य के श्रीरति, श्रीहत, दोनों थे सुख से लाचार।
निभा रहे सब कोविद, भूपति, कवी चराचर शुभ आचार॥
जिसके बिना जगत का होता, अब तक बिलकुल सत्यानास।
उसकी परम-पवित्र कीर्ति पर, कौन न लावेगा विश्वास?॥

—०—

'नयन'

सोमलता।

सोमरस प्रस्तुत करने की विधि।

(गत संख्यासे आगे)

ऋग्वेदके समस्त नवम मण्डल का देवता सोम है। इस मण्डलमें सोम के सिवा अन्य किसी देवता के उद्देश से कोई सूक्त नहीं रचागया। उक्त मण्डल का पाठ करने से सोमरस प्रस्तुत करने की विधि बहुत कुछ अवगत होजाती है। ९-३६ सूक्त में इस विषय की आलोचना इतनी विस्तृत है कि केवल इस सूक्तका पाठ करनेसेही उक्त विषयका यथेष्ट ज्ञान होसकता है, उसके कुछ प्रयोजनीय अंशोंको नीचे उद्धृत करतेहैं:-

* * ये पवमानधामनो प्रतीची तस्थतुः २।

(हे सोम, तुम्हारे दो पत्र वक्रभावसे अवस्थित थे।)

सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः॥ ७॥

(तुमको निष्पीडन कियागया है, तुम धारा रूपसे इन्द्रके निकट गमन करो।)

समु त्वा धीभिरस्वरं हिन्वती सप्त जामयः॥ ८-७॥

(होतृ आदि) सात जन, बन्धुगण (सर रमेशचन्द्र दत्तके मत से ७ स्त्रियें) अँगुलियोंसे तुमको चालन करते हैं।

मृजन्ति त्वा समग्रुवो ऽव्ये जीरावधिष्ठनि॥ ९॥

जब तुम शब्द करते हुए जलके साथ मिलते हो तब कई अँगुलियाँ* एकत्र होकर भेड के रोमों के (अथवा बकरी के रोमों के) ऊपर तुमको शोधन करती है।

* दोनों हाथों की दशों अँगुलियों से सोमका निष्पीडन कीजाती है। यथा-"एना ता हरितो दशमर्मृज्यन्ते अवस्युवः क्र०-९-३८-३। (दस हरिद्वर्ण अँगुलियां इस सोमको मार्जित करती हैं)

"पवमानस्यते" ॥ १० ॥

जब तुम क्षरित होते हो।

"अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये। अवावशन्त धीतयः।"

तब (कलश के ऊपर × भेड़ के रोम स्थापन कर अँगुलियाँ से सुमधुर रस को क्षरण करनेवाले अर्थात् बरसनेवाले सोमरो वारम्बार चालन (मथन) करता जाय।

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ॥ १२ ॥

(सोम रस कलश के मध्य में उस प्रकार लय होजाता है जिस प्रकार नवप्रसूता गौएं गृहमध्य में प्रवेश करती हैं)।

प्राण इन्दो महेरण आपो अर्षन्ति सिन्धवः। यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥

(हे सोम, जब तुम (दही, दूध आदि) गव्य पदार्थों के साथ मिलते हो तब तत्काल जल प्रवाहित होकर विलक्षण शब्द करता हुआ तुम्हारी तरफ़ जाता है।

"पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत्"। २४॥

क्षरणशील सोमरस ने एक अत्यन्त शुभ्रवर्ण के ज्योतियुक्त पदार्थ को उत्पन्न किया।

एष सोमो अधित्वचि गवां क्रीडत्यद्रिभिः ॥२९॥

(यहसोमरस गौके चर्म पर पत्थर के साथ क्रीडा करता है)।

इस विषय में सुप्रसिद्ध पण्डित रमेशचन्द्रदत्त महोदय जो कुछ लिखगये हैं उस का सौन्दर्य और उपयोगिता दिखाने के लिए उस को नीचे उद्धृत करते हैं:—

"प्रथम सोम, लतारूप में होता है। उस के शे पत्र चमरूप से निकलते हैं। स्त्रियाँ उस लता को पत्थर से निष्पीडन कर के अँगुलियों से मलकर उसके रस को निकालती है। पश्चात् वह रस जल

× कलश साधारण लोहनिर्मित व सुवर्णनिर्मित होता है। यथा "कनकुनान् चक्रः।" । "अचिक्रदन्‌भियमानः कोश आहिरण्यये।" (जल क्रन्दित चर्म चढ़ाकर सुवर्णपात्र में स्थापन करें)। ९-७५ ३।

आरोहत् यानिमारोहसि घमान् ९... ७। हे सोम, तुम लोहनिर्मित अपने स्थान में आरोहण करो।

के साथ मिश्रित होकर भेड़के लोमों से बनेहुए 'पवित्र' अर्थात् ऊनी छन्ने के द्वारा छाना जाता है। यह छन्ना कलश के मुंह के ऊपर स्थापित किया जाता है और अंगुलियों के द्वारा उस के ऊपर रस सञ्चालित किया जाता है। इसप्रकार छनाहुआ शोधित रस कलश के भीतर गिरता है। यह शोधित रस दही और दूध आदि के साथ मिलाकर पान कियाजाता है। क्षरणशील सोमरस शुभ्रवर्ण है+। यह रस गौके चर्म्मद्वारा बनेहुए पात्र में स्थापित होता है। ऋ०-९-८म की ७ मी और ९ मी ऋक् द्वारा संक्षेप रीति से सोमरस प्रस्तुत करने का विधान और सोमरस की गुणावली संग्रह की जा सकती है। उस में अति उत्तम रीति से अनेक विषय संक्षेप से वर्णित हुए हैं। यहाँ उपयोगिता दिखाने के लिए उनका भी अनुवाद लिखा जाता है।

"हे सोम, दोनों हाथों की दस अंगुलियाँ मिलकर तुमको भेंड़ों के लोमोंपर शोधन करती हैं। तुम निष्पीड़न के द्वारा ऋषियों से उत्पन्न हुए हो, शोधन के समय तुम्हारे उद्देश से अनेक प्रकार के स्तवपाठ किये जाते हैं। तुम एक पात्र से दूसरे पात्रमें स्थापित होते हो"।

जिन देवताओं का नाम लिया गया है, उनके लिए तुम अन्न वितरण करो। यह तुम्हारा काम है।

जब सोमरस चमत्कार रूप से एक पात्र से दूसरे पात्र में गमन करता हुआ उत्तम रूप से स्थित होता है तब उस के लिए अभीष्ट स्तवों के पाठ किये जाते हैं। यह सोमरस अत्यन्त मधुर धारा के आकार में आकाश से पतित होकर जलके साथ मिश्रित होता है। इस की सहायता से शत्रु की सम्पत्ति जीत ली जासकती है। यह देवता की समान अमर है। इसके प्रभावसे उत्तम वाक्यरचना की जाती है।

सुश्रुतोक्त सोमपान विधान में कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होती है। मंत्रोक्त २४ प्रकार के सोमों में से किसी के पत्तों का रस, किसी के मूल व कन्द का रस अथवा किसी के सम्पूर्ण पञ्चाङ्ग का रस इस प्रकार समस्त लता का रस ग्रहण किया जाता है। इन रसों में से कोई सोम इकला पिया जाता है और कोई दुग्धादि पदार्थों के साथ मिला कर पान किया जाता है।

६ सोमरस के गुण।

सोमरस एक मादक पदार्थ है; इसमें सन्देह नहीं। किन्तु सोमरस में एक विशेषता है। वह यह कि अन्यान्य मादक द्रव्यों में विशेष

+ सोमरस अनेक स्थानों में किञ्चित हरितवर्ण व पिंगलवर्ण भी बतलाया है।

गुण होने पर भी प्रत्येक के साथ कोई न कोई कुफल अवश्य लगा हुआ है; किन्तु सोमरसपान में उस प्रकार के किसी कुफलके होने, की आशंका नहीं है। ऋ० १-८४-४ इस को "ज्येष्ठममर्त्यं मदम्"— अर्थात् अमरत्व विधायक श्रेष्ठमद कहा है। सायणाचार्य ने इस स्थल पर निम्नलिखित व्याख्या की है। यथाः—

"सोमपानजन्यो मदो मदान्तरवत् मारको न भवतीत्यर्थः"

सोमपान से उत्पन्न मद अन्य मादक द्रव्यों के समान मारक नहीं है। ऋग्वेदादि ग्रन्थों में सोमके अनेक गुणोंका उल्लेख देखाजाता है।

यह बात कही गई है कि सोमलता एक कल्पलता है। संसार में ऐसा कोई कार्य्य नहीं है जो इस के द्वारा सिद्ध न हो सकता हो। भगवान् सुश्रुत ने—"शतशोऽथ सहस्रशः"। अर्थात् इसके सैंकड़ों, हजारों गुणों का कीर्त्तन किया है। ऋग्वेदादि ग्रन्थों में भी इसकी असंख्य गुणावलीका उल्लेख पाया जाता है। उनमें निम्नलिखित विषय विशेष उल्लेख योग्य हैं। सोमरस को पान करने से शरीर में बल, वाक्य में स्फूर्त्ति और मन में आनंद का सञ्चार होता है। (ऋ०-६-४७। १-२-३

इस के द्वारा पाण्डित्य और कवित्वशक्ति प्राप्त होती है। 'पदवीः कवीनाम्' ऋ० ९-९६-६ 'इयर्त्ति वाचम्' ९-६८-८। ४७-३। इस के द्वारा सर्वप्रकार की व्याधियें दूर होती हैं। 'तदातुरस्य भेषजम् ९-६१। १७। उत्कट और दुस्साध्य रोगों की चिकित्सामें सोम ही एक मात्र सहायक है। 'अपश्यअस्थूरनिरा अमीशा'—(८-४८-११) सब प्रकार के असाध्य और कठिन रोग उसके द्वारा चिकित्सा करने से दूर होते हैं। यहाँतक कि सोमरस को विधिपूर्वक पान करने से, अमरत्व तक प्राप्त हो सकता है। सोमरस को पान करके ऋषियों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उच्चस्वर से गाया है। यथा—

अपाम सोममसृता अभूम अगन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः किमुधूर्त्तिरमृत मर्त्यस्य॥८-४८-३

हे अमृत सोम, हम तुम को पान करके अमर हुए हैं। हमने दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है। एवं देवतागण को मालूम हुआ है कि शत्रु हमारा क्या करेंगे? मनुष्यों की धूर्त्तता हमारा क्या करसकती है?

जबसे इस प्रकारका भारत में उद्बोधन उच्चारित नहीं हुआ और

के साथ मिश्रित होकर भेड़के लोमों से बनेहुए 'पवित्र' अर्थात् ऊनी छन्ने के द्वारा छाना जाता है। यह छन्ना कलश के मुंह के ऊपर स्थापित किया जाता है और अंगुलियों के द्वारा उस के ऊपर रस सञ्चालित किया जाता है। इसप्रकार छनाहुआ शोधित रस कलश के भीतर गिरता है। यह शोधित रस दही और दूध आदि के साथ मिलाकर पान कियाजाता है। क्षरणशील सोमरस शुभ्रवर्ण है+। यह रस गौके चर्मद्वारा बनेहुए पात्र में स्थापित होता है। ऋ०-९-६८की ७ मीं और ८ मी ऋक् द्वारा संक्षेप रीति से सोमरस प्रस्तुत करने का विधान और सोमरस की गुणावली संग्रह की जा सकती है। उस में अति उत्तम रीति से अनेक विषय सक्षेप से वर्णित हुए हैं। यहाँ उपयोगिता दिखाने के लिए उनका भी अनुवाद लिखा जाता है।

"हे सोम, दोनों हाथों की दस अगुलियाँ मिलकर तुमको भेंड़ों के लोमोंपर शोधन करती हैं। तुम निष्पीड़न के द्वारा ऋषियों से उत्पन्न हुए हो, शोधन के समय तुम्हारे उद्देश से अनेक प्रकार के स्तवपाठ किये जाते हैं। तुम एक पात्र से दूसरे पात्रमें स्थापित होते हो"।

जिन देवताओं का नाम लिया गया है, उनके लिए तुम अन्न वितरण करो। यह तुम्हारा काम है।

जब सोमरस चमत्कार रूप से एक पात्र से दूसरे पात्र में गमन करता हुआ उत्तम रूप से स्थित होता है तब उस के लिए अभीष्ट स्तवों के पाठ किये जाते हैं। यह सोमरस अत्यन्त मधुर धारा के आकार में आकाश से पतित होकर जलके साथ मिश्रित होता है। इस की सहायता से शत्रु की सम्पत्ति जीत ली जासकती है। यह देवता की समान अमर है। इसके प्रभावसे उत्तम वाक्यरचना की जाती है।

सुश्रुतोक्त सोमपान विधान में कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होती है। तंत्रोक्त २४ प्रकार के सोमों में से किसी के पत्तों का रस, किसी के मूल व कन्द का रस अथवा किसी के सम्पूर्ण पञ्चाङ्ग का रस इस प्रकार समस्त लता का रस ग्रहण किया जाता है। इन रसों में से कोई सोम इकला पिया जाता है और कोई दुग्धादि पदार्थों के साथ मिला कर पान किया जाता है।

६ सोमरस के गुण।

सोमरस एक मादक पदार्थ है; इसमें सन्देह नहीं। किन्तु सोमरस में एक विशेषता है। वह यह कि अन्यान्य मादक द्रव्यों में विशेष

+ सोमरस अनेक स्थानों में किञ्चित हरितवर्ण व पिंगलवर्ण भी कहागया है।

गुण होने पर भी प्रत्येक के साथ कोई न कोई कुफल अवश्य लगा हुआ है; किन्तु सोमरसपान में उस प्रकार के किसी कुफलके होने की आशंका नहीं है । ऋ० १-८४-४ इस को " ज्येष्ठममर्त्यं मदम्"- अर्थात् अमरत्व विधायक श्रेष्ठमद कहा है । सायणाचार्य ने इस स्थल पर निम्नलिखित व्याख्या की है । यथाः--

"सोमपानजन्यो मदो मदान्तरवत् मारको न भवतीत्यर्थः"

सोमपान से उत्पन्न मद अन्य मादक द्रव्यों के समान मारक नहीं है । ऋग्वेदादि ग्रन्थों में सोमके अनेक गुणोंका उल्लेख देखाजाता है।

यह बात कही गई है कि सोमलता एक कल्पलता है । संसार में ऐसा कोई कार्य्य नहीं है जो इस के द्वारा सिद्ध न हो सकता हो। भगवान् सुश्रुत ने-"शतशोऽथ सहस्रशः" । अर्थात् इसके सैकड़ों, हजारों गुणों का कीर्त्तन किया है । ऋग्वेदादि ग्रन्थों में भी इसकी असंख्य गुणावलीका उल्लेख पाया जाता है । उनमें निम्नलिखित विषय विशेष उल्लेख योग्य हैं । सोमरस को पान करने से शरीर में बल, वाक्य में स्फूर्त्ति और मन में आनन्द का सञ्चार होता है । (ऋ०-६-४७।१-२-३

इस के द्वारा पाण्डित्य और कवित्वशक्ति प्राप्त होती है ।'पदवीः कवीनाम्' ऋ० ९-९६-६। 'इयर्त्ति वाचम्' ९-९८।८-६।४७-३। इस के द्वारा सर्वप्रकार की व्याधियें दूर होती हैं। 'तदातुरस्य भेषजम्' ९-६१।१७। उत्कट और दुस्साध्य रोगों की चिकित्सामें सोम ही एक मात्र सहायक है। 'अपत्यअस्यूरनिरा अमीशा'-(८-४८-११) सब प्रकार के असाध्य और कठिन रोग उसके द्वारा चिकित्सा करने से दूर होते हैं। यहाँतक कि सोमरस को विधिपूर्वक पान करने से अमरत्व तक प्राप्त हो सकता है। सोमरस को पान करके ऋषियों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उच्चस्वर से गाया है । यथा—

अपाम सोमममृता अभूम अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः किमुधूर्त्तिरमृत मर्त्यस्य॥८-४८-३

हे अमृत सोम, हम तुम को पान करके अमर हुए हैं। हमने दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है। एवं देवतागण को मालूम हुआ है कि शत्रु हमारा क्या करेंगे ? मनुष्यों की धूर्त्तता हमारा क्या करसकती है ?

जबसे इस प्रकारका भारत में उद्बोधन उच्चारित नहीं हुआ और,

आर्यों के इतिहास में प्रतिष्ठाप्राप्त, प्रकृत कल्पलतिका सोमलता जब से दुर्लभ होगई है तबसे सोमयाग का नाममात्र शेष रहागया है। कदाचित् किसी स्थान में इस यागके अनुष्ठित होनेपर भी उसमें सोमकी विद्यमानता का विषय कभी भी कर्णगोचर नहीं होता। सर्वत्र ही सोम के अभाव में पूतिका (पोई) अथवा वैसे ही पत्तों वाली अन्य कोई लता व्यवहृत होती है। बम्बई कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर वैदिक शास्त्र के सुपण्डित मि० मार्टन हौग (Martin Haug) साहब अपने कौतूहल की निवृत्ति के लिए वैसे ही कहे हुए सोमरस का पान करके कहते हैं:—"इस रस का आस्वाद अतिजघन्य है, उस में स्फूर्त्तिजनकत्व गुण किञ्चित् भी नहीं है, वह केवल मादकता को ही उत्पन्न करने वाला है। मालूम होता है वह सोमलता नहीं थी। क्योंकि उसके साथ सोमरस का पूरा विवरण नहीं मिलता था।

सोमलता अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ है इस में कुछ सन्देह नहीं। उस के अभाव में जो दूसरी लतायें व्यवहृत होती हैं यह उक्ति भी आधुनिक नहीं किन्तु पुरानी है। प्राचीनसूत्र और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में भी यह उक्ति प्रतिपादित की गई है।

प्रायः पन्द्रह, सोलह वर्ष हुए कि हमारे परम आराध्य पितृव्यदेव स्वर्गगत महामहोपाध्याय कविराज द्वारिकानाथ सेन कविरत्न महाशय का विष्णुदत्त नामक एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी छात्र था। वह युवावस्था के पूर्व में ही संन्यास लेकर हिमालय प्रान्त में हरद्वार के निकट अपने जीवन को व्यतीत करने लगा। पश्चात् उसने अपनी विद्या की पूर्त्ति के लिए आयुर्वेद के अध्ययनकी आकांक्षासे चार वर्ष तक हमारे स्व० पितृव्यदेवके गृहमें वास किया। उस समय उसने किसी पर्वतीय देश से एक क्षुद्रलता लाकर हमें दिखाई थी और कहा था कि जहाँ से यह लता लाई गई है वहाँ इसको सोमलता कहते हैं। हमने उस लताको बड़े यत्न से एक गमले में रक्खा, किन्तु उस की रक्षा न होसकी। कारण कि वह इस देश की वस्तु नहीं थी। ताम्बूल अथवा पोई के पत्तों के साथ उक्तलता के पत्त बहुत कुछ मिलते जुलते थे। पर इससे किसीको यह न समझ लेना चाहिए कि सभी सोमों की आकृति पान अथवा पोई के पत्तों की सी होती है। सोम की जातिभेद से उस के पत्तों में भी आकृति सम्बन्धी विलक्षणता देखी जाती है। इसके सिवा आकृतिगत पार्थक्य के सम्बन्धमें भी स्पष्ट उल्लेख देखाजाता है:—

अंशुमानाज्यगन्धस्तु कन्दवान् रजतप्रभः।
कदल्याकारकन्दस्तु मुञ्जवाल्लशुनच्छदः॥
चन्द्रमाः कनकाभासो जले चरति सर्वदा।
सर्पनिर्मोकसदृशौ नौ वृक्षाग्रावलम्बिनौ॥

सोमलता के सम्बन्धमें यथामति जो कुछ लिखा गया है, उस का पाठकर यदि सोमलता के प्रति पाठकों का ध्यान कुछ भी आकृष्ट होगा तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। अन्तमें कहना यह है कि सोमरस के पानकी युक्तियुक्तता तथा उसके विरुद्ध आलोचना करना इस प्रबन्ध का उद्देश नहीं है। किन्तु इसमें कुछ सन्देह नहीं कि सोमरस आर्य्यों के इतिहास की एक अमूल्य सामग्री है। सोमरस पान आवश्यक हो या न हो, किन्तु वर्त्तमान भेषज्यभाण्डार में सोमलता की सत्ता आविष्कृत होकर जब तक यह साधारणजनों के सम्मुख उपस्थित न होगी तबतक समस्त आर्य्य लोगों के विशेषकर ऐतिहासिक और भेषज्यतत्वविशारद पण्डितों के मनमें गम्भीर क्षोभ का कारण विद्यमान रहेगा इसमें सन्देह नहीं।

श्री सत्येन्द्रनाथसेन एम॰ए॰

—०—

इन्फ्लुएञ्जा और उसकी चिकित्सा।

इन्फ्लुएञ्ज़ा का इतिहास—प्रथम ईसा की सोलहवीं शताब्दी में यह रोग भूमण्डल में दिखाई दिया था, पश्चात् १८३०-३३। १८३६-३७। १८४७-४८। १८८९-९० और १८९१ ई० में इसप्रकार ५ बार इस का आक्रमण और सक्रामकता देखी गई है। १८८९ में इस का जो आक्रमण हुआ था उस का कुछ विवरण नीचे दिया जाता है। सन् १८८९ के मई महीने में इस का बुखारे में प्रथम आक्रमण आरम्भ होकर सितम्बर में मास्को, अक्टूबर में सेन्ट पिटर्सबर्ग (पेट्रोग्राड) और नवम्बर के मध्य में बर्लिन, दिसम्बर के मध्यभाग में लन्दन और शेषभाग में न्यूयार्क में इन्फ्लुएञ्ज़ा का प्रकोप प्रकट हुआ। इस प्रकार एक वर्ष में ही इसने पृथ्वी पर सर्वत्र यात्रा कर डाली।

रोग का कारण।

डाक्टरी मत से इस रोग के एक प्रकार के सूक्ष्म जन्तु होते हैं। इन्फ्लुएञ्ज़ा रोगी के मुख और नासिका से निकले हुए कफ में ये सूक्ष्म जन्तु पाये जाते हैं। साधारणतः रोगी के मुखगह्वर और नासिका

के छिद्रों द्वारा इस रोग के जन्तु मनुष्य शरीर में प्रवेश करते हैं। इन्फ्लूएञ्जा के जन्तु पहले कैसे उत्पन्न हुए इस विषय की पूर्ण मीमांसा करने में पाश्चात्य डाक्टर आजतक भी समर्थ नहीं हो सके हैं। साधारणतः चिकित्सकों का यही अनुमान है कि अत्यन्त ठण्ड के लगने से, मिलावटी और दूषित पदार्थों का भोजन करनेसे, अधिक परिश्रम करने से और आहार, विहार के नियमों का उल्लङ्घन करने से इस रोग का आक्रमण अधिकता से होता है।

गतिविस्तार और परिणति--प्रायः एक स्थान में इस रोग का प्रकोप व अवस्थिति दससप्ताह से ८सप्ताहतक होतीहै। साधारणतः२०से लेकर ४० वर्ष तक के मनुष्य इसके द्वारा आक्रांत होते हैं। वृद्धावस्था में इस रोगके उत्पन्न होने पर उससे बचने की कोई आशा नहीं है। जो मनुष्य स्नायविक दुर्बलता, गलक्षत, खाँसी, सर्दी, श्वास, हृदय रोग, प्रदररोगादि व्याधियोंसे पीड़ितहैं उनके शरीरमें इन्फ्लूएञ्जाके सूक्ष्म जन्तु सहज ही—कुछ ठण्डके लगने मात्रसे ही प्रवेश कर अपने प्रभाव के विस्तार का अवसर और सुयोग पातेहैं। घरमें एक मनुष्य के बीमार होनेसे ही घरके अन्य समस्त मनुष्य बीमार होजाते हैं। प्लेग, शीतला आदि रोगों की अपेक्षा यह अधिक संक्रामक और जन पदव्यापक है। इन्फ्लूएञ्जा रोगी के संस्पर्श से स्वस्थ मनुष्य के शरीरमें इसका विष सहज ही संक्रमित हो सकता है। एक बार इस रोग से पीड़ित होने पर फिर इसके आक्रमण करने की अधिक सम्भावना है। अर्थात् यह रोग एक बार आराम होने पर फिर बार बार आक्रमण करता है। इस रोग से बारबार आक्रांत होने पर प्रायः निमोनिया होकर मृत्यु होती है। सन् १८८९ में जो इन्फ्लूएञ्जा का प्रकोप हुआ था उसमें जर्मन सेनाके ५५२६३ मनुष्य आक्रांत हुए थे, उन में ६० मनुष्य मरे। जर्मनी की साधारण जनता में २२६७२ मनुष्य आक्रांत हुए थे, उनमें १३३ मनुष्य मरे अर्थात् सैनिक लोगोंमें प्रति हजार एकसे कुछ अधिक और साधारण जनता में प्रतिशत एक से कुछ कम लोग मृत्युके मुख में पतित हुए। परन्तु ये जो मृत्यु हुई, उनमें से आधी से अधिक मृत्यु इन्फ्लूएञ्जाजनित निमोनिया के द्वारा हुई थी। इन्फ्लूएञ्जा का निमोनिया अत्यन्त भयङ्कर और मारात्मक रोग है। विशेषकर गतवर्ष जो इन्फ्लूएञ्जा का निमोनिया देखा गयाथा, उसकी कोईभी चिकित्सा कार्य्यकारिणी नहीं हुई। बड़ेबड़े डाक्टरों और वैद्यों द्वारा सैकड़ों

प्रकारके यत्न कियेगये, पर वे सब व्यर्थ हुए। गतवर्ष प्रारम्भमें तो कुछ इन्फ्लूएञ्जाजनित निमोनिया के रोगी आराम भी हुए थे, पर पीछे कोई भी नहीं बचा। इन्फ्लूएञ्जा के आक्रमण होने के तीसरे चौथे दिन निमोनिया होकर प्राय ५-७ दिन में मृत्यु हो जाती है। ऐसी अवस्था में इन्फ्लूएञ्जा की गति और परिणति की निर्दिष्ट करना बड़ा ही कठिन कार्य्य है। पहले सर्दी जुकाम के साथ साधारण ज्वर का होना ही इन्फ्लूएञ्जा का प्रधान और प्रथम लक्षण था, किन्तु इस समय अनेक प्रकार के लक्षण और विभिन्न प्रकार की परिणति देखी जाती हैं। किसी को इससे उन्माद हो जाता है किसी के प्राण नष्ट होजाते हैं। बहुत थोड़े मनुष्य इन्फ्लूएञ्जा-निमोनिया से आक्रांत होकर बड़ी कठिनाईसे बचते हैं। कितने ही मनुष्यों के यह रोग अन्त में यदमारूप में परिणत होजाता है।

रोगके लक्षण और रोग का निर्वाचन।

साधारणत नासिका से इस रोग का आक्रमण आरम्भ होता है। नाक से पानी गिरना, सर्दी—जुकाम का होना, सिर में भारीपन और पीड़ा, भूँख का न लगना, भोजन में अरुचि, सर्वाङ्ग में विशेष कर कमर में अत्यन्त पीड़ा, नेत्र कुछ कुछ लाल और जिह्वा प्राय श्वेतवर्ण की होजाती है। तीन व चार दिन तक प्रबल ज्वर रहकर फिर कम होजाता है या बिलकुल छुट जाता है। किन्तु दुर्बलता बहुत समय तक रहती है। किसी किसी के इन्फ्लूएञ्जा के अन्तमें टन्सिल 'Tonsil' (तालु के पार्श्व में स्थित ग्रन्थि के बढ़जाने से भयानक खुश्क खाँसी व कान में असह्य पीड़ा होजाती है। बस येही इन्फ्लूएञ्जाज्वर के प्रधान लक्षण हैं। किन्तु गतवर्ष जो इन्फ्लूएञ्जा हुआ था उसमें अत्यन्त विलक्षणता देखी गई। लक्षणों का कोई ठीक नियम नहीं रहा। किसी के प्रतिदिन ज्वर बारी छोड कर आता और सामान्य रूप से रहता था। तथा तीसरे चौथेदिन भयङ्कर दाह व प्यास प्रकट होकर निमोनिया के व टाइफाइड फीवर के लक्षण दिखाई देते थे और किसी के प्रथम शिर में असह्य पीड़ा, नेत्र लाल, भयङ्कर ज्वर, अत्यन्त पसीने का आना, कमर गले और छाती में पीड़ा एव नासिका में कफ व सर्दी का अभाव। एक साथ चार पाँचदिन में छाती पर कफ सञ्चित होकर और श्वास में कष्ट होकर मृत्यु हो जाती थी। और कितने ही मनुष्य इसमें सामान्य सर्दी, जुकाम व ज्वर से पीड़ित, होकर अपना साधारण रीति से सब काम काज करते रहते थे, पर कभी

कभी वे एक साथ उन्मादरोगी की समान प्रलाप और नृत्य करने लगते थे। इन सब बातों को देखनेसे स्पष्ट विदित होता है कि यह ज्वर नवीन प्रकार का ज्वर है। पहले जिस को इन्फ्लूएञ्जा कहते थे वह यह नहीं है। यह इन्फ्लूएञ्जामिश्रित नये प्रकारका रोगसङ्कर है, इस लिए इस को नव इन्फ्लूएञ्जा कहना ठीक होगा।

इस नव इन्फ्लूएञ्जा को साधारणतः तीन श्रेणियों में विभक्त किया जासकता है। इस के प्रकोप और प्राधान्य के द्वार भी तीन हैं। जैसे मस्तिष्क फुफ्फुस और वृहदन्त्र। नव इन्फ्लूएञ्जा के आक्रमण करते ही इन तीन स्थानों में कुछ न कुछ व्यतिक्रम अवश्य होता है। इस के मस्तिष्क में आक्रमण करने पर वात-श्लैष्मिकजन्य उन्माद के समस्त लक्षण प्रकाशित होते हैं और भयङ्कर कोष्ठकाठिन्यता होजाती है। फुफ्फुस के आक्रान्त होनेपर निमोनिया के लक्षण प्रकट होते हैं। पहले कफ नहीं निकलता। नाड़ी की गति प्रति मिनट में १०० से लेकर ११२ तक और श्वास-प्रश्वास की गति ५० से लेकर ७२ तक होजाती है। वृहदन्त्र के आक्रान्त होजानेपर विसूचिका (कालरा) ज्वरातिसार व टाइफाइड फीवर के सम्पूर्ण लक्षण मालूम होते हैं। बहुत पतले दस्तों का होना व पेट में अफारा होना, ज्वर की अनियमित रीति से ह्रास, वृद्धि, पेट में दाह, पेट के दहिनी तरफ अंगुली से दबाने से कलकल शब्द और अनेक प्रकारके उपद्रव जाने जाते हैं।

इस नव इन्फ्लूएञ्जा में मस्तिष्क और वृहदन्त्र के आक्रान्त होने पर आयुर्वेदीय औषधियों के द्वारा चिकित्सा करने से रोगी शीघ्र ही आरोग्य होसकता है। किन्तु फुफ्फुस के आक्रान्त होने पर अनेक प्रकार की चिकित्सा करने से भी बहुत कम रोगी आराम होते हैं। विशेष अनुसन्धान करने से यह नव इन्फ्लूएञ्जा वात श्लेष्मप्रधान और मध्यपित्तयुक्त सान्निपातिक लक्षणों वाला ज्वर अनुमान किया जाता है। इसकी निम्नप्रकार से चिकित्सा करने से अच्छी सफलता देखी गई है।

चिकित्सा—जब रोग की प्रथम अवस्था में ज्वर का वेग प्रबल हो नाड़ी की गति प्रत्येक मिनट में १०८ से ११२ तक हो, श्वास-प्रश्वास की गति २१ से ३० तक हो, सम्पूर्ण शरीर में पीड़ा, सिर में भारीपन और कोष्ठकाठिन्यता हो तब प्रथम दशमूल के क्वाथ में आधी छटाँक शुद्ध अण्डी का तेल डालकर पान कराकर कोठे को

साफ करदे, पश्चात् वातगजांकुश रस, स्वल्प लक्ष्मीविलास रस और बैताल रस को अदरख के रस और सेंधे नमक के साथ, अथवा पान के रस और मधु के साथ यथाक्रम से मिलाकर तीन तीन घंटे के अन्तर से देना चाहिए। अत्यन्त दाह, अत्यन्त तृषा और पसीने के अधिक आने पर किञ्चित् प्रवालभस्म को बहुतसे गरम जलमें मिलाकर सेवन करावे इससे प्यास, दाह और पसीने का आना दूर होता है। प्रथम अवस्था में इस नियमसे चिकित्सा करनेपर और ज्वर बन्द होनेपर पश्चात् कुछ दिनोंतक नियमित रूप से एक रत्ती मकरध्वज, एक रत्ती स्वल्प लक्ष्मीविलास रस और एक रत्ती शुद्ध कपूर इन तीनों को एकत्र मिलाकर इसी एकमात्रा को प्रतिदिन सन्ध्यासमय अदरख के रस और मधु के साथ सेवनकरावे। एवं प्रातःकाल अदरख और मिश्री इन दोनोंको एकत्र पकाकर उसमें थोड़ा नीबूका रस डालकर चाय के समान गरमागरम पीने को देवे। इस से नव इन्फ्लूएञ्जा रोगके फिरसे होने की या अन्य किसी उपद्रव के होनेकी आशका नहीं रहती। इन्फ्लूएञ्जा की तीव्र खाँसी के होने पर सुहागे की खीलको मुखके भीतर रखने से या चन्द्रामृत को चूस कर खानेसे थोड़े ही समय में वह दूर होजाती है। शृङ्गराभ्रक को अदरख और पानके साथ चबाने से भी बहुत लाभ होता है। इन्फ्लूएञ्जा से मस्तिष्कके आक्रान्त होनेपर प्रथम प्रतिदिन या एकदिन के अन्तर से दशमूलके क्वाथ में कुछ अण्डीका तेल डालकर रोगीको पान कराकर कोठे को साफ करलेना चाहिए। फिर लक्ष्मीविलास रस को पान के रस एवं मधुके साथ,चतुर्मुख रस को ब्राह्मी के पत्तोंके रस और मधुके साथ या सारस्वत चूर्णको उष्णजल के साथ सेवन करावे। एवं बृहदशमूल तेल के द्वारा नस्य देवे और उसी को सिर पर मालिश करावे। इस प्रकार करनेसे रोगी शीघ्रही आरोग्य होता है। इन्फ्लूएञ्जा निमोनिया में कोठे की स्वच्छता पर और फुफ्फुस की क्रिया पर सबसे पहले दृष्टिपात करना चाहिए। कोष्ठकाठिन्यता होने पर पूर्वोक्तरीति से अण्डी के तेलके द्वारा कोष्ठको साफ कर लेना चाहिए। महालक्ष्मी विलास रस, बृहत्कस्तूरी भैरवरस और शृङ्गादिचूर्ण व कर्पूर चूर्णको अदरख के रस और मधुके साथ तीन तीन घंटे में सेवन करावे। यदि श्वासका अत्यन्त कष्ट हो, कफ बिलकुल न निकलता हो तो एक व आधे घंटे के बाद शृङ्गादिचूर्ण को भारङ्गी के उष्ण क्वाथ में मिलाकर दो रत्ती सुहागे की खील डालकर सेवन करावे। हृदय की गति

मन्द होने की सम्भावना होने,पर, मकरध्वज २ रत्ती, कस्तूरी २रत्ती, कपूर २ रत्ती और धतूरेके बीज१रत्ती इन सबको एकत्र मिलाकर रोग की विशेष अवस्था में दो तीन बार पान के रसके साथ वा तुलसी के रसके साथ सेवन करानेसे बहुत लाभ होता है। वक्षःस्थल की पीडा को दूर करने के लिए महादशमूल तेल या महानारायण तेल की मालिश करनेसे भी असाधारण फल होता है। इन्फ्लुएञ्जा निमोनिया में कपूर अत्यन्त फलप्रद औषधिहै,इसकारण अनेक एलोपैथिक डाकृर इस में कपूर का तेल Hypeodermic Tnjection दिया करते हैं। निमोनिया की अवस्थामें खाँसीके होनेपर वृहच्छृङ्गाराभ्रक को अदरख और पानके साथ चबाकर खाने से भी बहुत जल्द खाँसी शान्त होती है। इन्फ्लुएञ्जा निमोनिया में यहाँ जो औषधियाँ कही गई हैं इनको यदि रोग के प्रारम्भ से उत्तम पथ्य के साथ सावधानी से सेवन कराया जाय तब निश्चय अनेक इन्फ्लुएञ्जा निमोनिया के रोगी आरोग्य होसकते हैं। इन्फ्लुएञ्जा में वृहदन्त्र के आक्रान्त होनपर नागरमोथे के रसके अनुपान के साथ अमृतार्णव रस, सिद्धप्राणेश्वर रस और आनन्दभैरव रसको एवं भुनीहुई अजवायन के चूर्ण को मधु के साथ और अग्नितुण्ड चूर्ण को उष्णजल के साथ सेवन कराने से रोगी शीघ्र ही आरोग्य लाभ करसकता है।

पथ्य बहुत लोग इन्फ्लुएञ्जा,रोगमें दूधको अधिक परिमाणमें पथ्यरूप से देतेहैं, किन्तु हमारी समझमें दूध उतना लाभकारी नहीं मालूम होता। अत इसमें दूधका न देना ही अच्छा है। मूँग मसूर या परवल अथवा आलूका यूष देना अधिक हितकर है। बादामोंको जलमें पीसकर और वस्त्रमें छानकर गरम करके कुछ शहद मिलाकर देनाभी बहुत अच्छा है। यदि दूध ही देना हो तो उसमे सोंठ, अदरख के रस या पीपल के कल्क को डालकर पका कर देवे। इन्फ्लुएञ्जा मे पथ्यका निश्चय रूपसे निर्दिष्ट करना बडा कठिन है। अत एव वैद्य सदैव रोगी को अवस्थानुसार लघुपाकी और बलकारक पथ्य देवें। 'भिषग्राज

इन्फ्लुएञ्जा की अनुभूत चिकित्सा।

भारतवर्ष में इधर कुछ दिनों से एक बडा भयङ्कर रोग फैल रहा है। कोई इस को युद्धज्वर, कोई इन्फ्लुएञ्जा और कोई कोई मार वाड़ी आदि ज्वर कहते हैं। अनेक डाकृरों और वैज्ञानिकों के मत से इस प्राणघाती ज्वर के होने का मुख्य कारण वर्त्तमान काल का यूरोपीय महाभारत है। इस महायुद्ध में सहस्रों प्रकार की गैस

आदि वस्तुएं, अधिकतर काम में लाई गई हैं, जिनका अधिकांश सर्वथा ही विष से बना हुआ था। इस से वह वायु को सहज ही दूषित कर सकती थीं। हम भी इस उक्ति को न्यूनाधिकांश में मानते हैं। किन्तु हमारे आयुर्वेदाचार्यों के मत से इसके और भी अनेक कारण हैं जिनसे कि यह भयङ्कर रोग उत्पन्न होता है। जैसे-वर्षा और शरद् काल के हीनयोग, अन्धिगत दिन की उष्णता और रात्रि का शीत अथवा दिन रात का ऋतुगत काल क्रमानुसार होनेवाला शीतोष्णता का हीनयोग, मिथ्यायोग अतियोग है। जो हो, हमें यहाँ इस लेख के बढ़ाने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। अत एव इस दुष्ट रोग से बचने के कुछ अनुभवित और सरल उपाय पाठकों की सेवा में अर्पण करते हैं। विश्वास है कि उस से पाठकगण अवश्य ही लाभ उठा सकेंगे।

इस दुष्ट रोग से बचने के लिए सब से अधिक सफाई पर ध्यान देना आवश्यक है। घर के पास कूड़ा कचरा आदि घृणित वस्तुएं न रहने पावें। घर स्वच्छ रहना चाहिए। विशेष कर धूप और ठंड से भी बचाव होना चाहिए। हमेशा छाता, गुलूबन्द या पगड़ी आदि को काम में लाना चाहिए। छाती पर फलालेन या अन्य कोई गरम कपड़ा रहना चाहिए। कफनाशक और हलके पदार्थों का सेवन करना चाहिए। कफकारक स्निग्ध, अम्ल, मधुर आदि पदार्थ नहीं खाने चाहिएँ। बासी या ठण्डा भोजन भी नहीं करना चाहिए। जल हमेशा गरम कर या छान कर पीना चाहिए। शीतल या कच्चा जल कभी नहीं पीना चाहिए। भोजन हलका और थोड़ा होना चाहिए। कभी कभी कालीके साथ सोंठ दूध गुड़ डाल कर पीना चाहिए। अथवा तुलसी के पत्ते, हल्दी, सोंठ, दालचीनी और कालीमिरच इनको चाय की समान पका कर उसमें दूध और खाँड मिला कर पीना चाहिए। मतलब यह है-कि-हर प्रकार से शीत-निवारण का उपाय होना चाहिए, जिस से कि ज्वर होने का भय जाता रहे। ज्वर हो जाने पर लङ्घन करना अत्यावश्यक है।

ज्वर में प्रथम तीन चार दिन तक थोड़ा थोड़ा गरम जल देना चाहिए। ज्वर के आते ही एकदम कोई औषधि न देवे। क्योंकि इस ज्वर में सिरदर्द बातश्लेष्मादि और सन्निपात जैसे, भयानक रोग उत्पन्न होजाते हैं। इसलिए ५-७ दिन बाद जब ज्वर कुछ परिपक्व होजाय तब औषधि देना चाहिए। इस ज्वर में कफ की प्रधानता

देखी जाती है। अत एव ज्वर के आते ही अपक्व अवस्था मे घवडाकर औषधि देने से ज्वर विगड जाता है। ज्वर में अवश्य औषधि देनी चाहिए, किन्तु सावधानी के साथ और जब औषध देनेका समय आ जाय। जब ज्वर पचनेपर आजाय तब यह देखे कि खाँसी की प्रबलता तो नहीं है। ज्वरका वेग जब कम होजाय तब तुलसीवटी,या भृङ्गराज वटी को पके हुए कपूरी पानके ६माशे से लेकर१तोला तक रस में रोगी का बलावल विचारकर देवे। उक्त गोलियों में दो चार काली मिरचें अवश्य डाल लेनी चाहियें। इससे ज्वर कम हो जायगा शरीर में हलकापन और आरोग्यता प्राप्त होगी। भूख लगगी,खाँसी कम होजायगी। यदि खाँसी का वग विशेषता से हो और ज्वर न पचा हो, केवल घटे दो घटे कम होकर फिर बढ़ आता हो तो आगे लिखे हुए वासादिक्वाथ को देवे इससे खाँसी और ज्वर दोनों शान्त होते हैं। पश्चात् ऊपर लिखी वटिकाओं को देने से शीघ्र लाभ होने की सम्भावना है। यदि कफ अधिक बढ जाने के कारण छाती मे और गले में शब्द करने लगे एव श्वास वढजाय, पसलियों मे सुई चुभोने के समान पीडा मालूम होने लगे तो तारपीन के तेल या विष गर्म तेल को छाती पर मलकर हलकी आँच से धीरे धीरे सेंकना चाहिए। एव १ पाव अलसी और २ तोले हल्दी दोनों को आधसेरपान मे पकाकर गाढ़ा करले फिर इसकी पुलटिस बनाकर गरम गरम दिन रात मे तीन चार बार बाँधे। तथा अभ्रकभस्म, हरतालभस्म, कासीसभस्म,पञ्चवक्त्ररस हिंगुलेश्वर,आनन्दभैरव,इनमें से जो औषधि प्राप्त हो वही औषधि उचितमात्रा से,एक तोला पान के रस, कुछ काली मिरचों के चूर्ण और सोंठ के चूर्ण के साथ देवे। उक्त औषधियों के अभाव मे पूर्वोक्तवासादि कषाय ही दिया जासकता है। सितोपलादि चूर्ण भी इस अवस्था में विशेष गुणकारी है।

रोगी को प्यास अधिक होनेपर वायविडङ्ग ३ माशे,सोंठ१ माशा और मुलैठी १ माशा इनको १६ तोले जल में औटाकर आठ तोला शेष रहने पर ठडा करके देवे। रोगी को दस्त पतला या अधिक होता हो तो औषधि के अनुपान के साथ माजूफल या जायफल रत्ती डेढ रत्ती घिस कर देना चाहिए। इन उपायों से इस रोग के रोगी अवश्य आरोग्य लाभ कर सकते हैं। यह हमे पूर्ण विश्वास है।

कासीसभस्म, अभ्रकभस्म हरतालभस्म, पञ्चवक्त्ररस हिंगुलेश्वर और आनन्दभैरव रस ये सब औषधियाँ हम गरीबों को विना

मूल्य केवल)॥ आने का टिकट आने पर भेज सकते हैं। किंतु धन-वानों को विना मूल्य देना हमारी शक्ति के बाहर है। वे दाम देकर मँगा सकते हैं।

तुलसी-वटी।

सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, काला नमक और बड़ी हरड का छिलका इन सब को समानभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर कपडछन करलेवे। फिर काली तुलसी के रसमें २ पहर तक अच्छे प्रकार खरल कर चने की बराबर गोलियाँ बनालेवे।

भृंगराज-वटी।

सोंठ, मिरच, पीपल और छोटी हरड इन सब को समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर भाँगरे के रसमें यथाविधि घोट कर चने की बराबर गोलियाँ बनावे। इन दोनों को पूर्वोक्त अनुपान के साथ प्रयोग करे।

वासादि कषाय।

अडूसे के पत्ते ८, सोंठ २ माशे भारङ्गी २ माशे, बहेड़े का छिलका २ माशे हल्दी २ माशे, मुलैठी २ माशे और कटेरी की जड ४ माशे इन सबों को कुछ कूट कर ५ तोले पानी में औटावे। जब पकते २ पानी बिलकुल सूखजाय तब कपडे में निचोड लेवे। फिर उस गाढे रस को सुहाता २ दोनों वक्त सेवन करावे कि तु। इस में ३ माशे शहद मिला लेवे। यह एक मात्रा का प्रमाण है।

सितोपलादि चूर्ण—वंशलोचन ४ तोले, मिश्री ८ तोले छोटी पीपल २ तोले, दालचीनी १ तोला और छोटी इलायची के दाने ६ माशे, इन सबों को एकत्र कूट पीसकर कपडछन कर। इस में से छ माशे प्रमाण लेकर शहदमें मिलाकर दोनों समय सेवन करे।

पटोलादिक्वाथ—पटोलपत्र, हरड, बहेड़ा, आमला, कुटकी, कचूर, अडूसा और गिलोय इनको छ २ माशे लेकर अठगुने पानी में पकावे। जब पकने २ अष्टमांश जल शेष रहजाय तब उसमें ३ माशे शहद डाल कर पीने को देवे। इससे कफज्वर नष्ट होता है।

वैद्य प० रामगोपाल मिश्र,
आधिमोचन-औषधालय, गौरिहा।

—०—

विसूचिका ।

(Cholera हैजा)

(वैद्यराज प॰ नाथूराम शर्मा आयुर्वेदाचार्य अध्यक्ष और चिकित्सक "गणनाथ आरोग्य मन्दिर" ममरोधा यू॰ पी॰)

यह रोग बड़ा भयानक और शीघ्र प्रभावकारी है। किसी २ मौके पर तो इतनी जल्दी इसका असर हो जाता है कि, चिकित्सक के बुलाने और औषध व्यवस्था की नौबत भी नहीं पहुँचने पाती किन्तु यह अपना पूरा प्रभाव दिखा कर प्राण हर लेता है। इस लिये जब तक पहले से ही इसके विषय मे कुछ औषध आदि तयार न हों, तब तक इस से सर्पाघात के समान प्राणों की रक्षा के लिए सदा सर्वदा भयभीत ही रहना पड़ता है आज इसी विषय को लेकर (क्यों कि, यह इस के प्रकोप का समय है) पत्र के पाठकों के सामने कुछ अपना अनुभव रखता हूँ ।

हैज़े का पहचानना जितना सुगम है,उसकी चिकित्सा का करना उतना ही अनवरतज्ञानापेक्ष और दु साध्य है। इसके विषय मे अधिक अध्ययन और अनुभव किये बिना पूरी सफलता प्राप्त करना अति कठिन व्यापार है। किन्तु,यदि इस में प्रथम ही से विधिपूर्वक औषध प्रयोग कियाजाय तो,रोगीकी भयानक अवस्था शीघ्रही नहीं होसक्ती और चिकित्सकको कुछ आसानी होजाती है। इस लिए इसका थोड़ा बहुत—ज्ञान रोग के कारण लक्षण और चिकित्सा सम्बन्धी कुछ आरम्भिक बातें प्रत्येक मनुष्य को ज्ञात होनी चाहिए।

कारण-इसका प्रधान कारण अजीर्ण ही है। और दूषित अन्न,जल और वायु इसके निमित्त कारण हैं। हमारे मतमें,पाश्चात्यों का जीवाणु-कारणवाद भले ही वायुमण्डल में टकराया करे किन्तु जबतक अजीर्णादि दोष से रहित विदितात्म आत्मवान् पुरुष अपने यम नियमों पर स्थिर है, वे बिचारे स्वयं अकिञ्चन कीट उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। और यदि वह अविवेकी पशु की समान जिह्वा इन्द्रिय के वश में होकर खुद ही प्रतिदिन अपने लिये हलाहल विष की कणिकायें सञ्चित कर रहा है उसको अपने मरने के लिये कीटाणुओं का गौरव युक्त कारण दरकार ही नहीं।

लक्षण—अतिसार (पतला पानी सा सफेद दस्त) उल्टी, मूर्छा प्यास, शूल (उदर में) चक्कर पिण्डलियों का जकड़ना, जम्भाई,

दाह, चेहरे पर रुखाई और सफेदी का आजाना, कम्प, हृदय में पीड़ा होना, सिर का फटा सा जाना। इन में से २। ४ लक्षणों के मिलने से (विशेषकर दस्त या उल्टी का होना) भी विसूचिका का लक्षण जानना चाहिए।

उपद्रव-निद्रानाश, बचेनी, कम्प, मूत्र का न आना और संज्ञालपता या बेहोशी।

असाध्य लक्षण-दाँत, ओष्ठ और नखों पर सुर्खी का अभाव, संज्ञालपता, वमन की निरन्तर प्रवृत्ति, आँखों का गड़जाना, स्वर की मन्दता, शरीर के जोड़ों का अशक्त या अकर्मण्य हो जाना और नाड़ी का लोप इत्यादि।

यह पहले ही कह आए हैं कि, इसका प्रधान कारण अजीर्ण है। इसलिए प्रथम ही लंघन,पाचन और दीपन औषध की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि रोगी-गर्भिणी स्त्री,वृद्ध, बालक और अत्यन्त दुर्बल नहीं हो तो दस्त और उलटी का प्रकोप देख कर उसके रोकने के लिए एक दम अधीर होकर अट्टसट्ट धारक औषध का प्रयोग नहीं करना चाहिए, चिकित्सा के लिए धैर्य्य और विवेकशक्ति का अवलम्बन रखना आवश्यक है। घबड़ाने से भयानक विपत्ति का आटूटना बहुत सम्भव है।

वमन और अतिसार अथवा दोनों के होने पर रोगी को, नौसादर, हींग, कपूर और पीपल इन चारों औषधों को समान भाग लेकर २ रत्ती की गोली बनाकर रख छोड़े। १। १ गोली १५। १५ मिनट के बाद देता रहे। अथवा चिरचिटा या कुचा घास को चन्दन की तरह पत्थर पर घिसकर ३ माशे देवे। या कपूर, पिपरमेंट, और अजवायन का सत्त ये तीनों चीजें समान भाग लेकर एक जगह घोट कर पानी सा करले, फिर इस को ३। ४ बूंद के हिसाब से देता रहे। प्यास के लिए बरफ बड़ा उपयोगी है, यदि बर्फ कहीं न मिल सके तो लौंग का औटाया या खाली औटाया हुआ जल ठण्डा करके और उसमें चन्दन की तरह थोड़ा कपूर घिसकर मिलादे। फिर इसमें से थोड़ा २ बार २ देता रहे। जल की रोक बिलकुल नहीं करनी चाहिए। नहीं तो बहुत बड़ी खराबी होगी। किन्तु थोड़ा २ और बार बार ही देना चाहिए। यदि देखे कि रोगी की दशा कुछ ठीक है अर्थात् वमन, अतिसार और प्यास पहले से इस चिकित्सा के द्वारा —— है तब तो ठीक। नहीं तो फौरन ही किसी अच्छे वैद्य को बुला कर

रोगी को उस को सुपुर्द करदे। बढती हुई खराब दशा इस प्रकार नज़र आयेगी-वमन और अतिसार तथा प्यास का अधिक प्रकोप, उदर में असह्य पीड़ा, हाथ पांव में ऐंठन और खिचाव, वेहोशी, मुँह पर सफेदी और नाड़ी का क्रम से कमजोर पड़ते जाना और हाथ पैरों का ठंडे होना आदि। वैद्य को बुलाने और उस के आने तक आप (परिचारक या अभिभावक) इन लक्षणों पर ध्यान रखकर धीरज के साथ, उस का नीचे लिखे उपदेशानुसार उपाय करता रहे।

यह पहले ही कह चुके हैं, कि वमन और अतिसार को रोकने की अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ये दोनों लक्षण तथा प्यास, ऊपर लिखे उपाय निरन्तर किये जाने पर स्वयं ही बन्द होजायँगे, नहीं तो वैद्य ही उन की और रोगी की दशा के अनुसार उन्हें रोकने की व्यवस्था करें किन्तु अन्य उपद्रवों की तरफ लक्ष्य करके उन का उपाय करते ही रहना चाहिए।

उदर में पीड़ा-अच्छे तेज़ गरम जलमें, जिसमें कि औटते समय प्रतिसेर के हिसाब से १ छटाँक काला नमक या सेंधा नमक अथवा सज्जी डाली गई हो, एक फलालेन का या कम्बल का टुकड़ा भिगोकर और निचोड़ कर उस में थोड़ा तारपीन का तेल डाल कर पेट को बराबर सेकता रहे।

हाथ पाँव में ऐंठन-कूठ, सेंधा नमक और सरसों का तेल इन तीनों चीजों को एक जगह मिला कर मालिश करे। यदि कहीं बनाया हुआ 'कुष्ठादि तैल' मिलजाय तो मालिश के लिए सर्वोत्तम है।

वेहोशी—सोंठ, मिर्च, पीपल, हल्दी, कँजुए के बीज की गिरी, इन सब को समान भाग लेकर नीम्बू के रस में घोट कर लम्बी बत्ती सी बनालें। इसका हुलास और अञ्जन कराने से वेहोशी नहीं होगी।

हाथ पैरों का ठण्डा होना—फलालैन, कम्बल या पुराना रुअड़, इन तीनों में से किसी भी एक चीज़ के ८।१० टुकड़े करके अँगीठी पर सेंक कर हाथ-पाँव उस समय तक सेंके जाय, जब तक कि वे गरम न मालूम पड़ें।

नाड़ी का कमज़ोर पड़ना—कस्तूरी १ रत्ती के हिसाब से अदरख के रस में १०काली मिरचों के साथ घोटकर आध आध घंटे के बाद पिलावे। चन्द्रोदय या रससिन्दूर मिल सके तो वे क्रमसे १ और ४ रत्ती की मात्रा से अदरख या पानके रस में देवे। और

सम्भव हो तो इसी के साथ थोड़ी कस्तूरी और अभ्रक भस्म १रत्ती मिलादे। हृदय की दुर्बलता के लिए यह औषध अक्सीर है। क्रमशः प्रयोग करते रहने पर नाड़ी नहीं दब सकती है।

अन्तिम दशा—जब रोगी का शरीर बरफके समान ठण्डा, नाड़ी का लोप बंधा और स्वर की मन्दता होतीहै तो रोगी की दशा असाध्यके लगभग हो पड़ती है। ऐसी दशा में अपने अपयश या अल्पज्ञता के कारण बहुत से वैद्य, हकीम या डाक्टर रोगी को चिकित्सा में लेने से इन्कार कर देते हैं। किन्तु, हमारा यह नियम है कि, रोगी किसी भी दशा में हो, यदि उसके कण्ठ में प्राण हों—अर्थात् श्वास का आना जाना जब तक जारी हो तबतक हम बिना किसी यश-अपयश के विचार के, उसकी चिकित्सा करना अपना कर्त्तव्य-कर्म्म या धर्म्म समझते हैं। सफलता या असफलता ईश्वरके आधीन है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—"कर्मण्येवाधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन।" अच्छा या बुरा कोई भी काम हो मनुष्य का उस पर अधिकार है। यह उसकी इच्छा है कि, उसे करे या न करे। किन्तु, फल ईश्वर ही के अधिकार में है। क्योंकि हमारे लिए शतसहस्रकोटिसमुद्र-गम्भीर आयुर्वेद शास्त्रमें यह आर्डर है कि—"यावत्कण्ठगताः प्राणास्तावत्कार्य्या प्रतिक्रिया। कदाचिद् दैवयोगेन दृष्टरिष्टोऽपि जीवतीति"। इस प्रसंग में मैं ऐसे ही २४ विषूचिका के असाध्य रोगियोंकी दशा सुनाने के लिये उद्यत हुआ हूं। मैंने अपने ५।६ वर्ष के इस चिकित्सा काल में ऐसे ही ४रोगी चिकित्सा में लिये। जिनमें से एक रोगी तो मेरे पास प्रथम ही से था। यह परिचारकों के प्रमाद से शोचनीय अवस्था में पहुंच गया था, पर बड़े परिश्रम और साहस से पीछे से बच गया। यह रोगी—एक रामपुर की स्त्री, और जाति की सुनारी थी। यहाँ वह अपनी रिश्तेदारी के कारण एक विवाह में आई थी। तीन रोगी दूसरे वैद्य, हकीम और डाक्टरों की चिकित्सा से उनके द्वारा असाध्य कह कर छोड़ दिये गये थे। फिर वे मेरेपास आये और मैंने अत्यल्प आशा के साथ उन की चिकित्सा आरम्भ की। ईश्वरकी कृपा से मुझे उन तीन में से दो रोगियों को सफलता मात्रिका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनमें से एक अब हलवाई की दुकान करता है, और दूसरा यहीं की मुन्सिफी कोर्ट में नौकर है। मेरी राय में यदि ये कुछ घंटे आने में देर करते तो अकाल मृत्यु के ग्रास होगये होते। अतएव मैं अपने लिये कोरे विमल यश की पर्वाह न करके, आयुर्वेद

विज्ञान के सूक्ष्म व्यापार का चमत्कार देखने के लिए सर्वदा उत्कण्ठित रहता हूँ। अन्त में मैं अपने पाठकों से यह निवेदन करूँगा कि विसूचिका ही नहीं, वल्कि जितने भी 'सद्यः प्राणहारक' जटिल और दुर्विज्ञेय तथा दुश्चिकित्स्य रोग हैं,उन से आप कभी भयभीत न होइये, वल्कि धैर्य्य और गम्भीरता के साथ तथा भरोसे और विश्वास के साथ विधिपूर्वक आयुर्वेद के सर्वोच्चविज्ञान का अनुपमेय विज्ञानसम्मत आश्चर्यकारिणी चिकित्सा का अवलम्बन कीजिए और इसी की एकमात्र शरण लीजिए। आप देखेंगे कि, असम्भव समझी जाने वाली वातें भी हस्तामलक होंगी।

तम्वाकू।

वर्तमान समय में,सभ्यसमाज में तम्वाकू का वहुत प्रचार है। भारतवर्ष में भी इसका चलन कम नहीं है। इस समय तम्वाकू के विना अभ्यागत का सत्कार नहीं होसकता! जो लोग तम्वाकूसेवी नहीं हैं, उनको भी अतिथि-सत्कार के लिए इस निकृष्ट वस्तु का प्रवन्ध करना पड़ता है। उत्सवादि अवसरों पर तम्वाकू की खोज सव से पहले की जाती है। आज से चार सौ वर्ष पहले सभ्यसमाज में इस का व्यवहार नहीं होता था। उस समय अफ्रीका के कुछ असभ्य जातिओं के लोग ही इसका सेवन करते थे।

जव, सन् १४९२ ई० के नवम्वर महीने में कोलम्वस साहव ने किउवा नामक द्वीप खोजा था, तव उन्होंने दो नाविकों को द्वीपदर्शनार्थ आवादी की ओर भेजा था। उन लोगोंने लौटकर द्वीप सम्वन्धी विचित्र वातों के वर्णन के मध्य में. कोलम्वस से कहा था कि यहाँ के मनुष्य एक प्रकार के पत्तों पर आग रख कर, मुख द्वारा उस का धुआँ ग्रहण करते हैं। उक्त साहव ने समझा कि वे पत्ते अवश्य सुगन्धित होंगे। कहना नहीं होगा कि सभ्यसमाज ने सन् १४९२ ई० में तम्वाकू के दर्शन किये थे, अर्थात् कोलम्वस द्वारा ही तम्वाकू का प्रचार हुआ था।

सभ्य समाज में तम्वाकू का प्रचार रोकने के लिए वहुत प्रयत्न किये गये थे। रूस ने अपने यहाँ तम्वाकूनिषेधक कानून वनाया था। प्रथम दण्ड पर वेंतों की मार, द्वितीय वार के अपराध पर नाक काटना और तृतीय वार के अपराध पर प्राणदण्ड की व्यवस्था की थी। ईसाई मिशन के प्रधानगुरु रोम के वारहवें पोप इनोसेंट साहव

ने यह विज्ञप्ति निकाली थी कि जो मनुष्य गिर्जा के अन्दर या उसके निकट तम्बाकू-सेवन करेगा,वह जातिच्युत कर,दिया जायगा। किन्तु इस गुरुसम्प्रदाय में आगे चलकर पोप विनडेकू साहब स्वयं तम्बाकू-सेवी हुए! अतएव धार्मिकसमाज में इसका चलन होगया। कालक्रम से कई बादशाह लोग भी इसका सेवन करने लगे, भारतवर्ष के लोगों ने भी इससे पहले बहुत घृणा प्रदर्शित की थी परंतु अब समस्त भारतमें तम्बाकू का अधिकता से प्रचार है। स्त्री और बालक भी तम्बाकू का सेवन करते हैं। यद्यपि बड़े-बूढ़ों के सामने तम्बाकू ग्रहण करने में सुशील युवकलोग अब भी झिझकते हैं, तथापि इसका चलन बहुतायत से पाया जाता है। देशी तम्बाकू खाने का तम्बाकू, सिगरेट और बीडी के रूपमें तम्बाकू का व्यवहार होता है। नासिका द्वारा भी इसका व्यवहार होता है।

भारतवर्ष में सब से पहिले तम्बाकू कब और कैसे आया इस बात का सप्रमाण उल्लेख कहीं नहीं मिलता। महाभारत, रामायण आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं है। कोई पुराण भी तम्बाकू का पता नहीं देता। कोई २ इतिहासवेत्ता,जहाँगीर बादशाही के राजत्व काल में तम्बाकू का यहां आना बतलाते हैं। किन्तु जहाँगीर के समय से कुछ पहिले के वैद्यक ग्रन्थों में कई जगह ताम्रकूट शब्द आया है। इससे इसके आने का कोई ठीक निश्चय नहीं है।

तम्बाकू के पत्तों से एक प्रकार का तेल निकलता है,उसे अँगरेजी में निकोटिन कहते हैं। एक पौंड तम्बाकू के पत्तों द्वारा ३८० ग्रेन निकोटिन प्रस्तुत होता है। $\frac{1}{२०}$ ग्रेन निकोटिन से,तीन मिनट के अन्दर कुत्ते के प्राण नष्ट हो सकते हैं। इस विष के द्वारा आधे मिनट के भीतर कई मनुष्यों की मृत्यु होना सुनी गई है। इस के द्वारा कितनी ही नरहत्या और आत्महत्याएं की गई हैं। प्रेसिक एसिड के अतिरिक्त अन्य कोई विष, निकोटिन के बराबर शीघ्र हत्याकारी नहीं है। यदि किसी बालक के घाव में निकोटिन की एक बूंद डाल दी जाय तो उसकी अवश्य मृत्यु होजायगी।

होर्टिकल्चरल नामक सर्पजाति के विनाश के लिए निकोटिन व्यवहार किया जाता है। उद्यान-रक्षक लोग इसे आत्मरक्षा के लिए आवश्यक वस्तु समझते हैं। सिगरेट की अच्छी तम्बाकू को पेट पर बाँध दिया जाय तो तुरंत वमन हो जाती है।

डाक्टर रिचार्डसन् ने मनुष्यदेह के सम्बन्ध में तम्बाकू-जनित जो तत्वानुसन्धान किया है,उसके वर्णन में तम्बाकू-सेवक की प्रथमावस्था का इस प्रकार से चित्र खींचा गया है:-

"मस्तिष्क मलिन और रक्तहीन, आमाशय में गोलाकार ऊँचे २ लाल दाग,रक्त में अस्वाभाविकता और तरलता,दोनों फुफ्फुस मलीन, हृत्पिण्ड में रक्त का जमघट, और उसकी संकोचनी शक्ति का नष्ट होना इत्यादि।

किन्तु यह अवस्था सदैव नहीं रहती है। जिसप्रकार अन्यान्य अस्वाभाविक परिवर्तनों को, कालान्तर में, अभ्यास के कारण आत्मा सहन कर लेती है, उसी तरह तम्बाकू को भी सहलेती है। नीचे तम्बाकू का अपकारिताविषयक कुछ परिचय दिया जाता है।

रक्तके ऊपर तम्बाकू का असर—चाहे हुक्के द्वारा अथवा बीड़ी, सिगरेट, चुरट या नस्य द्वारा तम्बाकू का व्यवहार,कियाजाय प्रत्येक दशा में तम्बाकू का विष रक्त में मिश्रित हुआ करता है। तम्बाकू के कारण, रक्त, स्वाभाविक दशा की अपेक्षा अधिक तरल हो जाता है। कभी २ यह रक्तनारल्य समस्त शरीर में व्याप्त हो जाता है और चमड़े का रङ्ग पिलाई लिये हुए श्वेतवर्ण होजाता है। इस प्रकार रक्त के अस्वाभाविक रीति से तरल होनेसे वह नाक कान, मुँह और गुह्यस्थान द्वारा बाहर भी निकल सकता है। ऐसी अवस्थामें बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। रक्त में असंख्य रक्तकणिका हुआ करते हैं। उनकी आकृति गोलाकार,दोनों सिरे पतले और साफ होते हैं। तम्बाकू से उनकी गठन बदल जाती है। गोलाकार के स्थान पर उन की आकृति अण्डाकार और सिरे मलीन हो जाते हैं। इस के सिवा ये कण, पास पास न रहकर छिन्न भिन्न हो जाते हैं। यदि ये कण बाहर निकाले जाँय, तो देखते ही डाक्टरलोग कह देंगे कि ये दुर्बल रक्त के कण हैं। तम्बाकू से केवल रक्त के कण ही दुर्बल नहीं हो जाते हैं, बल्कि यह, स्नायु-क्षेत्र में रक्त का मार्ग भी रोकदेता है। इस के अतिरिक्त रक्त की संचालन क्रिया भी मन्द पड़जाती है।

शारीरिक उन्नति पर तम्बाकू का प्रभाव—जब रक्त की शुद्धि—अशुद्धि से बदल जायगी और उस के कण निर्बल पड़ जायँगे,तब शारीरिक उन्नति कैसे हो सकती है! प्रत्येक शरीरमें रोग-प्रतिरोधिनी शक्ति होती है। तम्बाकू के कारण वह शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

अतएव नवीन रोगों के आक्रमण की पूर्ण सम्भावना रहती है। बाल्यकाल में तम्बाकू का सेवन, शारीरिक उन्नतिकारी शक्ति को मन्द कर देता है और अकाल—वार्द्धक्य एवं दैहिक दौर्बल्य उत्पन्न कर देता है।

तम्बाकू द्वारा गलक्षत रोग—तम्बाकू पीने वालों के मुखगह्वर में और गलाभ्यन्तरस्थ श्लैष्मिकझिल्ली सूखती हुई सी दृष्टि पड़ा करती है। इस का कारण तम्बाकू का विषधर्मी, उत्तप्त धुँआ ही हो है। गलक्षत और पुराने गलक्षत का कारण भी यही उत्तेजक और शुष्क धुँआ है। तम्बाकू द्वारा जो गलक्षत उत्पन्न होता है उस का नाम भी प्रथम रख लिया गया है, उसे (Smokers sorethroat) वा धूम्रपायी गलक्षत कहते हैं। कोई२ मनुष्य गले की किसी बीमारी को दूर करने के बहाने तम्बाकू पीने लगते हैं। उनको जानना चाहिए कि तम्बाकू द्वारा गलरोग की पीड़ा कुछ कम अवश्य होजाया करती है, किन्तु रोग दूर नहीं होता है, स्थायी हो जाता है। अजीर्ण के सम्बन्ध में भी लोगों की यही धारणा है।

तम्बाकू और क्षयरोग—अशुद्ध पवन भी फुफ्फुस की बीमारियों का एक कारण है। अतएव, वायुमध्यस्थ विषधर्मी पदार्थ (तम्बाकू) फुफ्फुस के ऊपर अपना विषमय प्रभाव डालकर क्षय उत्पन्न करता है। यदि नासिका द्वारा बाहर की गई हवा पुनः श्वास द्वारा भीतर भेजी जाय तो यह शरीरके अन्यभागों की अपेक्षा फुफ्फुस पर अधिक बुरा प्रभाव डालेगी। अब स्वयं सिद्ध है कि निकोटिन मिश्रित वायु द्वारा फुफ्फुस की कैसी दुर्गति हो सकती है? लन्दन के मेट्रोपैलिटन फ्री अस्पताल के प्रधानचिकित्सक डाक्टर सी० आर० डार्सडेल ने "हैल्थ" नामक सामयिक पत्र में लिखा था कि बाल्यकाल में या पूर्ण अवस्था के पहलेसे तम्बाकू का सेवन क्षय का मुख्य कारण होता है।

तम्बाकू और हृद्रोग—हृत्पिण्ड की क्रिया नाड़ी द्वारा प्रकट होती है-अर्थात् नाड़ी द्वारा हृत्पिण्ड के ऊपर तम्बाकू द्वारा होनेवाले प्रभाव विदित किये जा सकते हैं। यदि किसी नवीन तम्बाकूसेवी की नाड़ी देखी जाय तो प्रगट होगा कि हृत्पिण्ड का वेग और उस की समता क्रमश: कम होती है। पुराने (तम्बाकू खोर) मनुष्यों में, हृत्कम्पन, छाती की धड़कन, स्नायु, शूल, एवं हृदय के रोग और

सविच्छेद नाड़ी आदि २ प्रत्यक्ष हृद्रोग देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त यान्त्रिक-अवनतियां भी हुआ करती हैं।

तम्बाकू और अजीर्ण—कुछ लोग तम्बाकूको अजीर्ण की महोषधि समझते हैं। किन्तु, हजारों बार परीक्षा द्वारा निर्णय किया गया है कि तम्बाकू से अजीर्ण में किञ्चिन्मात्र भी कमी उपस्थित नहीं होती। बल्कि कभी २ तम्बाकू से ही अजीर्ण उत्पन्न होजाता है। बात यह है कि तम्बाकू से पाकस्थली की कार्यकारिणी शक्ति क्रमशः निर्बल होजाती है। नस्य के कारण भी क्षुधा मन्द हो जाती है। जो लोग अधिकता के साथ तम्बाकू पीते, खाते या सूँघते हैं, उनको अवश्य ही अजीर्ण होजाता है। परिपाकशक्ति की कमी से शरीर में निर्बलता आती है और मांस कम होजाता है। खाया हुआ तम्बाकू शरीर को पीला और रक्त को पतला करता हुआ वीर्यसम्बन्धी बीमारियाँ उत्पन्न करता है। बिना तम्बाकू त्यागे, ऐसे रोगियों की चिकित्सा करना बड़ा दुस्तर कार्य है।

तम्बाकू और कैंसर (cancer)—तम्बाकू से ही कैंसर नामक रोग उत्पन्न होता है। प्रसिद्धिमान अस्त्र-चिकित्सक लोगों का मत है कि अधर और जिह्वा में कैंसर का होना, तम्बाकू का दुष्परिणाम है। इसे तम्बाकू का कैंसर या (Smoker's cancer) कहते हैं। लन्दन के कैंसर अस्पतालों की तालिकायें विदित करती हैं कि वहाँ पर स्त्री रोगियों की अपेक्षा पुरुष रोगियों से पाँच गुनी अधिक है। किन्तु,तम्बाकू जनित कैंसर पुरुषों में स्त्रियोंसे तिगुना अधिक है। इस का कारण यही है कि पुरुषों में तम्बाकू का व्यवहार अधिक होता है।

तम्बाकू से पक्षाघात—गत४०-४५वर्षों से पक्षाघात या अवशता रोग का प्रादुर्भाव हो रहा है। इस रोग से क्रमशः मांस की क्षमता ह्रास होती हुई क्षय होजाती है। तम्बाकू पीनेवालों के शरीर ही में यह रोग देखा जाता है, इसकारण डाक्टरों का मत है कि तम्बाकू से ही पक्षाघात उत्पन्न होता है। तम्बाकू से अक्षिस्नायु में क्रमिक अवस्था उत्पन्न होती है, उससे दृष्टि कमज़ोर हो जाती है और क्रमशः दृष्टिहीनता उपस्थित हो जाती है। चक्षुचिकित्सक लोग इसको तम्बाकूजनित अन्धत्व या टाम्बाकू एमोरसिस कहते हैं। तम्बाकू छोड़ने से ही यह रोग दूर होता है, बिना, तम्बाकू छोड़े इस रोग की चिकित्सा नहीं हो सकती है। आयर्लेण्ड में इस रोग के अधिक रोगी

पाये जाते हैं, इस का कारण यह है कि यहाँ के निवासी अत्यंत तीव्र तम्बाकू का व्यवहार करते हैं ।

वर्णान्धता नामक एक प्रकार का उपरोग होता है। जिस व्यक्ति पर इस रोग का आक्रमण होता है उसके कोई वस्तु या पदार्थ अपने असली रंग में दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। जर्मनी और वेलजियम में यह रोग उत्तरोत्तर उन्नति करता जा रहा है। इस रोग के अनुसन्धान के लिए बेलजियम गवर्नमेन्ट ने एक निरीक्षककमेटी बैठाली थी। उसकी रिपोर्ट से जाना गया है कि तम्बाकू का अधिक व्यवहार ही इस रोग का मुख्य कारण है।

तम्बाकू और स्नायुदौर्बल्य—तम्बाकू पीने और खाने वालों में स्नायु-सम्बन्धी थोड़ियाँ रोग दिखाई पड़ते हैं। कोई सहज ही में चमक उठते हैं। कोई अत्यंत उग्र प्रकृतिवाले होजाते हैं, कोई कड़ुभाषी और कोई कोपस्वभावी हो जाते हैं। किसी को रात में नींद नहीं आती। किसी के लिखते समय हाथ काँपने लगते हैं। और किसी २ में आलस्य छाया रहता है। तम्बाकू छोड़ते ही उपरोक्त बुराइयां दूर होजाती हैं। यही स्नायु दौर्बल्य आगे चलकर पुरुषत्व-हीनता को उत्पन्न करता है।

तम्बाकू का कुलक्रमागत परिणाम—जो २ रोग वंशानुक्रम से अपना प्रभाव स्थिर रखते हैं, तम्बाकू भी उन में से एक है। अर्थात् जो मनुष्य तम्बाकू पीता है उस की सन्तान साधारणतः तम्बाकू पीने लगती है और तम्बाकूजनित बीमारियां वास्तव में पाती है। यदि कोई बलवान् आदमी यह सोचता हो कि तम्बाकू द्वारा उस के शरीर में कमज़ोरी उत्पन्न नहीं हो सकती, तो उसे समझना चाहिए कि यह तम्बाकू तुम पर नहीं तो तुम्हारी सन्तान पर अपना प्रभाव अवश्य प्रकट करेगा।

तम्बाकू से मनोवृत्ति की दशा—तम्बाकू से मन की गम्भीरता या दृढ़ता नष्ट होती है और चंचलता उत्पन्न होती है। चञ्चल-मन में नित्यहीनता उपस्थित हो जाती है। जब विवेक और बुद्धि नष्ट होजायगी तब शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति कैसे होसकती है ! अतएव, तम्बाकू से नैतिक-उन्नति भी रुकती है।

तम्बाकू सेवन से दो एक लाभ भी होते हैं। तम्बाकू का उचित सेवन मलेरिया के कीड़ों का नाश करता है। इस से पहले कुछ

आलस्य भी दूर होता है। तम्बाकू से बात-चीत करते समय सम्मान रक्षा भी हुआ करती है।

किन्तु, इन लाभों से तम्बाकू का सेवन आवश्यक नहीं है। तम्बाकू से शारीरिक और नैतिक अवनति होती है और वंश में निर्बलता उत्पन्न होजाती है। +

शिवनारायण वर्म्मा।

स्वास्थ्यरक्षा के लिये क्या प्रसंग आवश्यक है।

मनुष्यों के लिये स्वास्थ्य, निद्रा और प्रसंग हो भोग हैं ? किन्तु इन तीनों भोगों के साथ हमारा शरीर कैसा व्यवहार कर रहा है, एक बार इस विषय पर मनोयोग द्वारा विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य भोजन करता रहता है। विना भोजन किये उसका शरीर—शरीर ही नहीं रहता! किन्तु खाद्य में भी यदि अभाव वर्तमान हो तो यही शरीर में असम्पूर्णता, अल्पता एवं अस्थिरता उत्पन्न करदेता है। खाद्य का भाव-अभाव ही शारीरिक और मानसिक, उन्नति अवनति का मुख्य-परिचालक है। शरीर को पोषन करने वाले द्रव्यों की कमी, क्षुधा उत्पन्न करती है, और क्षुधा के कारण आहार करने की आवश्यकता हुआ करती है। इसी क्षुधा का अभाव शारीरिक कष्ट एवं असम्पूर्णतादि दोषोंको उत्पन्न कर देता है। शारीरिक हानि से ही मानसिक हानि है अतएव जल त्याग कर मनुष्य एक ही दिन में प्राण त्याग देता है, केवल अन्न त्याग देने से प्राण दो एक सप्ताह तक बने रहते हैं। इसलिए क्षुधा को परितृप्त करना आवश्यक है। यहां पर एक बात बड़े मार्के की है। यदि क्षुधा को इच्छित और पुष्टिकर खाद्य पदार्थ न दिये जायँगे तो एक प्रकार का वैज्ञानिक पापाचार समझा जायगा

मनुष्य, मृत्यु पर्यन्त निद्रा से भी अटूट सम्बन्ध रखता है। निद्रि-

कर दिया जाय और उसका कार्य्य किसी असाधारण उपाय द्वारा परिचालित न किया जाय तो जीवन नहीं रह सकता । उसी प्रकार मूत्रयन्त्र, यकृत् प्रभृति यंत्र अन्तर्हित करने से किसी प्रकार से रक्षा नहीं हो सकती है । अतएव, ये समस्त यन्त्र हमारे शरीर के घनिष्ट सम्बन्धी हैं और इन की सहायता के बिना जीवन नहीं रह सकता है । यदि कोई मनुष्य पाकस्थली, मूत्रयन्त्र और यकृत्-हीन होकर जन्म ग्रहण करे तो वह किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकता है । किन्तु, यदि कोई जीव 'नपुंसक' हो तो वह जीवित रह सकता है । इसी प्रकार, यदि किसी रोग विशेष—द्वारा जननेन्द्रिय का धर्म नष्ट हो जावे तो भी मनुष्य स्वास्थ्यसहित जीवित रह सकता है । बहुधा बैलों के अंडकोष निकाल डाले जाते हैं और उन को 'बधिया' कर दिया जाता है, परन्तु वे कोई कमी या त्रुटि अनुभव नहीं करते हैं । पहले समय में, खासकर मुसलमानी राजत्व काल में, ज़नाने महल के पहरेदार लोग (ख्वाजा सराय) बधिया कर डाले जाते थे परन्तु, वे भी सुखपूर्वक जीवित रहते थे ! अर्थात्, यदि प्रसङ्गकर्ता के अंडकोष निकाल डाले जायँ तो जीवन में कोई व्याघात नहीं लगता है । इस लिए, इन वैज्ञानिक सिद्धान्तों के कारण यह कहा जा सकता है कि आहार-निद्रा के तुल्य इन्द्रिय-सेवन आवश्यक नहीं है और इन्द्रियसेवन का सम्पूर्ण त्याग, जीवन का कोई अनिष्ट नहीं करता है । इन्द्रियसेवन का सम्बन्ध केवल सन्तान के साथ है, मनुष्य के स्वास्थ्य और जीवन के साथ उसका कोई साक्षात् सम्बध नहीं है ।

इस स्थल पर यह बात भी विचारणीय है कि यदि जननेन्द्रिय से काम न लिया जाय तो उस में किसी प्रकार की विकृति उत्पन्न हो सकती है या नहीं । यह बात स्वाभाविक है कि जिस यंत्र से अधिक कार्य न लिया जायगा वही निकम्मा हो जायगा । पर यदि किसी यंत्र से थोड़ा ही काम लिया जा सकता हो तो उस से अधिक कार्य इस कारण लेना कि वह निकम्मा न हो जाय बुद्धिमानी नहीं है । प्राकृतिक नियमानुसार जो यंत्र जितना काम करता है, वही ठीक है । यहां पर इस बात को भी समझ लेना चाहिए कि जननेन्द्रिय से अधिक कार्य न लेने से जिस प्रकार इन्द्रियसम्बधी कोई हानि नहीं होती उसी प्रकार 'रुकावट' जनित वीर्य सम्बधी कोई हानि नहीं होती । पेशाब और पाखाने के साथ, परोक्ष रूप से वीर्य का आवागमन होता

रहता है। कभी २ स्वप्नदोषादि मार्गों से भी वीर्य्य अपना कार्य करता रहता है। अतएव, प्राकृतिक इन्द्रियसंयम से, इन्द्रियसम्बन्धी अथवा वीर्यसम्बन्धी कोई त्रुटि उपस्थित नहीं होती।

जहाँ धर्म्मानुकूल के लिए स्त्री ग्रहण की जाती है, जहां अनिच्छा पूर्वक सन्तान प्राप्त होती है और जहां कामुक जीवों की विचित्र बातें सर्वव्यापक हो रही हैं, वहाँ उपरोक्त बातें एक दम नवीन हैं। ऊपर मनुष्यजाति के सम्बन्ध में लिखा गया है। इसी प्रकार से स्त्री जाति की भी बात है। स्त्रियों को भी वेश्याव, पाखाना द्वारा वीर्य्य का कुछ अंश बाहर निकला करता है। मासिक धर्म में-स्तनों के दुग्ध में और सन्तान पालन में वीर्य का अधिकांश व्यय होता है। इसीकारण पुरुषों के सम्बन्ध से स्त्रियों को बहुत कम कामदेव सताया करता है।

बहुतेरे अविवाहित पुरुष स्वप्नदोष द्वारा अपना वीर्य बाहर किया करते हैं। कुछ लोग इसे बीमारी समझते हैं। कभी कभी स्वप्नदोष का होना रोग नहीं है। बारम्बार और अकारण ऐसा होना अवश्य बीमारी कही जा सकती है।

इस लेख का स्थूल मर्म यह है कि विषयक्रिया अत्यन्त आवश्यक नहीं है। प्रसङ्गरहित जीवन सर्वश्रेष्ठ जीवन है। प्रकृति माता ने प्रसङ्गक्रिया सन्तान की उत्पत्ति के लिये ही उत्पन्न की है।

यदि कामोद्दीपक चिन्ता न की जाय, बुरी सङ्गत न की जाय और विद्याव्यसन में चित्त लगा दिया जाय तो काम शत्रु के कटीले बाणों से प्राणों की रक्षा सहज ही हो सकती है। जहां तक हो सके, इस विषय से दूर ही रहना चाहिए। प्रसङ्ग करते समय अधिक समय तक क्रियारत रहना, भविष्य के लिए कण्टक बोना है। प्रसङ्ग का कर्म ठीक पशुओं की भाँति होना आवश्यक है अर्थात्, बलापहारी सुखरहित परिश्रम ही प्रसङ्ग समझना चाहिए। इस स्थल पर प्रसङ्ग के सम्बन्ध में अधिक नहीं लिखा जा सकता। आशा है कि पाठकों ने इन्द्रियसंयम की महत्ता, प्रसङ्गपूर्णता और तुच्छता अनुभव की होगी। ×

—०—

× [illegible]

परीक्षित-प्रयोग ।

हैजे की गोलियाँ ।

कपूर, केशर, लौंग, जायफल, और अफीम इनको छ २ माशे लेकर पान के रस में अच्छे प्रकार खरल करके दो दो रत्ती की गोलियां बनालेवे। इनमें से-हैजेवाले रोगीको जब तक कै और दस्त बन्द न हों तबतक-एक एक घण्टे के अन्तर से एक एक गोली गरम जल के साथ सेवन करावे और जब पियास लगे तब थोड़ा थोड़ा गरम जल पीने को देवे। आराम होने पर यदि खूब भूख लगे तो साबूदाना पका कर थोड़ा थोड़ा देना चाहिए। छोटी उमरवाले बालकों को आधी आधी गोली देनी चाहिए। यह प्रयोग हमारा कई बार का परीक्षित किया हुआ है, इससे हैजेवाले रोगी को शीघ्र लाभ होता है।

आक की गोलियाँ ।

आक की जड़ २ तोले और अदरख का रस २ तोले, दोनों को खूब बारीक घोटकर काली मिरच के समान गोलियाँ बना लेवे। हैजे वाले रोगी को तीन तीन घण्टे के अन्तर से एक एक गोली भक्षण कराने से हैजे का वेग नष्ट होता है। इन गोलियों को सेवन करने से मरते हुए आदमी भी कई बार बचगये हैं। ये गोलियाँ हमारे मित्र हरपाल जी की और हमारी बीसियों बार की अनुभव की हुई हैं।

अर्क कपूर ।

रैक्टी फाइडस्पिरटफोपैथिक नं० ६० की २४ औंस, कैम्फर (कपूर) २$\frac{1}{2}$ छटांक और आयल मिन्थल पिपरेटा २ औंस लेवे। पहले कपूर के छोटे छोटे टुकड़े करके स्पिरट की शीशी में डाल देवे। कपूर को स्पिरट की शीशी में डालने से पहले स्पिरट को दो शीशियों में भर लेवे, फिर दोनों शीशियों में आधा आधा कपूर डाल कर शीशियों के मुँह को कार्क से बन्द करके खूब हिलावे। जब कपूर गलकर एकम एक होजाय तब उसमें, आयल मिन्थल पिपरेटा मिला देवे और दोनों शीशियों की औषधि मिलाकर एक करलेवे। इस प्रकार असली अर्क कपूर तैयार होता है। यह अर्क कपूर बाजार के अर्क कपूरों से गुणों में विशेष उपयोगी है। युवा पुरुष को दस्त और कै के प्रारम्भ होते ही उक्त अर्क कपूर की दस २ बूँदें जल में मिला कर एक एक घण्टे के बाद पिलाने से हैजे वाले रोगी को तत्काल लाभ होता है। एक इस

इसके सेवन से गरमी के दस्त, वमन, दाँतों की पीड़ा और विषैले जीवों का विष बहुत शीघ्र दूर होता है और हैजे की तो यह राम-बाण औषधि है।

धरमचन्द जैन जाल्ना।

अग्नि दग्धपर—प्रथम आक के पत्तों को साफ कर अग्नि पर सेंक कर नरम कर ले, फिर कूट पीस कर उनके रस को निचोड लेवे। इस रस को अग्नि से जले हुए स्थान पर लगाने से छाले नहीं पड़ते। प्रतिदिन दो बार लगाने से दग्धस्थान शीघ्र आराम होता है।

हैजे पर—नींबू की ताजी नींद को निचोड कर रस निकाल लेवे, उस रस को आधी २ छटांक प्रमाण दिन में कई बार पान कराने से हैजे का प्रकोप शान्त होता है।

मकड़ी के फलने पर—मूसाकानी लता को पीस कर लेप करे। यदि उक्तता प्राप्त न हो सके तो अमचूर और हल्दी को पीस कर कई बार लेप करे, इस से मकड़ी के द्वारा फला हुआ स्थान साफ होता है।

कुत्ते के काटने पर—तेल, चूना और कत्था, इन तीनों को एकत्र मिलाकर लेप करे और आक की २१ कोमल कलियों को लाकर उन में गुड़ मिला कर २१ गोलियाँ बना लेवे। इन गोलियों को एक ही वक्त में एक एक करके सेवन करे। इससे कुत्ते के काटने का कुछ भय नहीं रहता। बालकों को उन की अवस्थानुसार गोलियों की संख्या घटा कर देवे।

बच्चों के सुखारोगपर-बच्चे के तालु पर गुड़ की टिकिया बना-कर रक्खे और उस टिकिया के ऊपर वनतुलसी, दौना या मरुआ के पत्तों को पीसकर इन की पहली टिकिया से कुछ बड़ी टिकिया बनाकर रक्खे। इस प्रकार रखने से पहली गुड़ की टिकिया को कुछ देर में कीड़े खा जायँगे। तत्पश्चात् उपर्युक्त विधि से फिर दूसरी बार टिकिया बाँधे, यदि उस को भी कीड़े खाजायँ तो फिर बाँधे। इस प्रकार बाँधते २ जब टिकिया बचने लगे तब रोग को दूर हुआ समझना चाहिए।

पु० अरविंद देव, आत्मसेवा-औषधालय विनौली, बेरर, मैनपुरी।

—०—

नेत्र दुखने पर—प्रथम इमलीके कोमल पत्तोंको एक सेर या दो सेर लेकर पत्थर या लोहेके खरल में कुचल कर महीन कपड़ेमें डालकर रस निकाल लेवे। यदि पत्तों में कोमलता कम होने के कारण थोड़ा रस निकले तो कुछ पानी की बूंदों की सहायता से रस निकालना चाहिए पर अधिक पानी नहीं डालना चाहिए। उक्त विधि से निकाला हुआ इमली का रस २ छटाँक एवं हर्ड़ का बक्कल ४ माशे, बहेड़े का बक्कल ४ माशे, लाल चन्दन ४ माशे, लोध ४ माशे, रसौत ४ माशे और फटकरी२ माशे—इन सब को एकत्र कर अच्छे प्रकार खरल करे। जब सब औषधियें खूब बारीक होकर रस में मिलजायँ तब एक शीशी में भर कर रख देवे। इस में से ४ ५ बूँदे दुखती आँखों में डाले और आँखों के ऊपर भी इस का दिनमें २-२बार लेप करे। इसके प्रयोग से नेत्र किसी कारण से भी दुखने क्यों न आये हों शीघ्र आराम हो जाते हैं। नेत्रों की पीड़ा, खड़क और लाली एक ही दिन में कम हो जाती है। हमने देखा है—जिन नेत्र रोगियों को अनेक प्रकार की विलायती और देशी दवाओं के व्यवहार से कुछ भी लाभ नहीं होता उन को इस योग से आशातीत लाभ हुआ है। यह प्रयोग हमारा सैंकड़ों बार परीक्षा किया हुआ है।

बालकों के नेत्रों के रोहों पर—अनेक कारणोंसे बालकों के नेत्रों में मांस के अंकुर की समान रोहे (दाने) होजाते हैं। रोहों के होने से बालक के नेत्रों मे अत्यन्त पीडा होती है। जिस से बालक दिन रात नेत्रों को बन्द करे रहता है और बहुत रोता है। ऐसी अवस्था में प्रथम जस्त का फूला २ तोले लेकर उस को साफ करके बारीक वस्त्र में छान लेवे। पश्चात् २ तोले चाक्षु (बनकुलथी के बीज) लेकर एक छटांक नीम के पत्तों के साथ मिट्टी के भोलुए में पकावे। जब चाक्षु के दाने फूलजायँ तब उन्हें निकाल कर उनके छिलके छील कर पूर्वोक्त जस्तके साथ किञ्चित् नीम के पत्तों का रस मिलाकर खूब बारीक खरल करे। फिर इस को अँगुली से सहज में बालक के नेत्रों में भरे तो बड़े से बड़े और अत्यन्त कठिन रोहे भी बहुत शीघ्र नष्ट होजाते हैं। एवं नेत्रों के समस्त विकार दूर होकर नेत्र स्वच्छ होजाते हैं। बालक ही नहीं, बड़े मनुष्यों के रोहों के लिए भी यह अञ्जन विशेष उपयोगी है।

जिन मनुष्यों के नेत्रों में सदैव रोहों की शिकायत रहती है और

कोष्ठबद्धता पर।

बादाम गिरी ४ तोले, गुलाब के फूल ४ तोले, मुनक्का ४ तोले सनाय ४ तोले, निसोत २ तोले और भुना हुआ कालादाना १ तोला इनसबों को एकत्र बारीक पीसकर २० तोले गुलकन्द में मिलालेवे। इस में से प्रतिदिन रात्रि के समय १ तोला अथवा अपनी जठराग्नि के बलानुसार मात्रा को गरम दूध के साथ खाने से सुबह को दस्त खुलकर होता है और चित्त प्रसन्न रहता है। यह औषधि अर्शादि रोगों में विशेष हितकारी है।

पं॰वेदरसिंह शर्मा वैद्य, मु॰पो॰–बारी, धौलपुर (स्टेट)

ताक़त की अपूर्व दवा।

सुवर्णभस्म २ माशे, वङ्गभस्म १ माशा, मोती की भस्म १ माशा, कान्तलोहभस्म १ माशा, चाँदी की भस्म १ माशा, काँस्यभस्म१माशा, रससिन्दूर १ माशा, मूँगे की भस्म १ माशा, जायफल १ माशा, जावित्री १ माशा, कस्तूरी १ माशा, भीमसेनी कपूर १ माशा, अभ्रक भस्म १ माशा और स्वर्णसिन्दूर ४ माशे इन सब औषधियों को एकत्र नागवल्ली के रस में अच्छे प्रकार खरल कर के दो दो रत्ती की गोलियां बनालेवे। प्रतिदिन सुबह और शाम को एक एक गोली पान में रखकर खानेसे अपूर्व बल का सञ्चार होता है एवं अत्यन्त क्षुधा की वृद्धि होती है। यह औषधि सर्वरोगनाशक और परम रसायन है। यह प्रयोग हमारा कितनी ही बार परीक्षा किया हुआ है।

पं॰भवानीदत्त जी वैद्य शास्त्री, मु॰ केकड़ी, अजमेर।

साँप के काटने पर।

(१) जब साँपने किसी को काटा हो और वह पागलसा होगया हो तब लाल चौलाई को कुचल कर उस के रस को निकाल कर सब शरीर में मले और चौलाई के शाक का भोजन करे। इसप्रकार ४० दिन तक बराबर मालिश करनी और शाक-आहार करना चाहिए। साँप के काटने के बाद भी मालिश करना उपयोगी है।

(२) सांप के काटतेही एक सेर घी गरम कर कोपिलादेवे और इस मनुष्य के बाल मुँडवा कर नङ्गे शरीर पर ख़ूब पानी डालें इस से सर्प-विष शीघ्र नष्ट होता है।

आत्मानन्द ब्रह्मचारी, (प्रताप)

—o—

सर्पविषकी रामबाण औषधि।

हिंगोट जिस को इङ्गुदी वा गोंदी भी कहते हैं उस के दो तोले पञ्चाङ्ग को लेकर उस को- जहाँ काटा हो वहाँ से—सर्वाङ्ग में धूनी देवे। इस प्रकार ३-४ बार धूनी देने से सर्पविष तत्क्षण दूर होता है इसमें सन्देह नहीं।

वैद्य कल्याणलाल शर्मा कोटा (राजपूताना)

बिच्छू के काटे पर।

(१) पिसे हुए नमक को कपड़े में रख कर पोटली बनालेवे। फिर पोटली को पानी में भिजो भिजोकर काटे हुए मनुष्य के नेत्रों में उस की बूँदें ५-६ बार टपकावे। यदि बिच्छू ने बायें अङ्ग में काटा हो तो दहिने नेत्र में और दहिने अङ्गमें काटा हो तो बायें नेत्र में बूँदें टपकावे। इस प्रकार करने से ५ मिनट में ही बिच्छू का विष उतर जाता है।

(२) उपर्युक्त विधि से तम्बाकू की बूँदें भी नेत्रमें डालने से बिच्छू का विष दूर होता है।

(३) इमली के बीज (चोइया) को पानी में घिसकर दंशस्थान पर चिपका देवें तो वह चिपककर ज़हरमोहरे के समान विष को खींच लेता है और फिर स्वयं गिरपड़ता है।

(४) कलई का चूना और नौसादर दोनोंको एकत्र मिलाकर शीशी में भर कर बार बार सूंघाने से बिच्छू का विष शीघ्र उतर जाता है।

(५) बिच्छू के काटे हुए स्थान पर दालचीनी का तेल लगाने से विशेष लाभ होता है।

(६) हल्दी की धूनी देने से बिच्छू का विष तत्काल नष्ट होता है।

(७) बिच्छू के काटने पर चिरचिटे 'ओंगा' के पत्ते खाने से बिच्छू का विष शीघ्र दूर होता है।

(८) बिच्छू के काटे स्थान पर चिरचिटे की जड़ को पीसकर लेप करने से तत्काल पीड़ा दूर होती है।

(९) जमालगोटे को जल में पीसकर लेपकरने से बिच्छू का घोरतर विष तत्क्षण शमन होता है। ये सब प्रयोग हमारे कितनी ही बार के अनुभव किये हुए हैं।

कविराज बाबू महानन्द रईस बरौदा, पवागढ़, अदन्पुर।

चक्षुरक्षा-सम्बन्धी कुछ सूचनायें।

डाक्टर जे लॉग (Dr J H Iellog) द्वारा प्रदर्शित ।

(१) जब नेत्रों में पीड़ा हो अथवा थक गये हों तब उनसे काम मत लो, न धीमी अथवा धुँधली रोशनी में पढ़ो, लिखो व काम करो।

(२) लैम्प या दीपक आदि की रोशनी कन्धे से होकर गिरनी चाहिए। सामने की रोशनी हानिकारक है।

(३) तुम्हारे रहने का कमरा ठण्डा होना चाहिए और गर्दन में कोई सख्त कालर आदि वस्तु न होना चाहिए।

(४) देखने की वस्तु ठीक आँखों के सामने कुछ फासले पर रखनी चाहिए। यदि बहुत नजदीक रक्खोगे तो दीर्घदर्शिता को खोबैठोगे। उसके लिए १५ इञ्च की दूरी ठीक है।

(५) जब गाड़ी में सफर कर रहे हो या लेटे हुए हो तब कभी मत पढ़ो। इससे भयङ्कर रोगोत्पत्ति की सम्भावना रहती है।

(६) रोग से मुक्ति पाते ही पढ़ना लिखना उचित नहीं।

(७) नेत्रों से नेत्र लड़ाना आदि नेत्रों का खेल नहीं खेलने चाहिएँ।

(८) यदि आँखें कमज़ोर हों तो चश्मा लगाना चाहिए। १५ इञ्च नजदीक से पढ़ने वाले की आँखें कमज़ोर समझना चाहिएँ।

(९) रङ्गीन चश्मा केवल आँख दुखने पर लगाना चाहिए।

(१०) जब आँखों से बराबर काम लेते हो तब थोड़ी देर उन्हें विश्राम भी दो।

कामताप्रसाद जैन, अलीगञ्ज (एटा)

—०—

कुइनाइन के गुण।

फुइना सिङ्कोना पुत्रातिक्तराजमहौषधम्।
पाश्चात्यभिषजां दर्पं जन्म यस्य रसातले॥
उष्णश्चाग्निकरो बल्यो नाड़ीपुष्टिबलप्रदः।
पर्यायध्नः स हि वरः प्लीहज्वरनिवारणः॥
कुरण्डश्लीपदपदे स्नायुवक्षःशिरोरुजि।
हिक्काश्वासे च कासे च पीनसज्वर एव च॥

शोथे क्षये सान्निपाते दातव्यं हि कुटेनिनम्।
कर्णनादे शिरोग्लानौ प्रमेहे च गुरूदरे ॥
वातज्वरे न दातव्यं पित्तश्लेष्मे महौषधम्।
अतीसारे चान्नस्य नाड्यादाहे न शस्यते ॥
(प्रेमपुष्प)

—०—

शुद्धजल का महत्व।

(लेखक—गंगाधर कृष्ण सेठ)

ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य के शरीर का जो वजन होता है उसमें प्रतिशत सत्तर भाग पानी होता है। देह गेह और प्राणों की स्वच्छता रखने के लिये पानी ही अद्भुत वस्तु है। यह सर्वव्यापी आवश्यक पदार्थ निसर्ग की अनेक वस्तुओं से अपना सम्बन्ध रखता हुआ अपने में सम्मिलित पदार्थ का सत्व खींच लेता है। उदाहरण के लिये हम यह बताते हैं कि कितनेएक कुओं का पानी भारी होता है, कितनेएक में लोह अथवा अन्य खनिज पदार्थों के मिश्रण का स्वाद होता है। इस तरह लोह या दूसरे जहरीले पदार्थ मिश्रित पानी के पान करने से क्या हानिकारक परिणाम न होंगे? होंगे तो अवश्य—क्योंकि इनका निर्मूलन करने के लिये सब लोग प्रयत्नवान् हो रहे हैं। इसी से भविष्यत् में अच्छे चिन्ह दिखाई पड़ते हैं।

यूरुप, अमेरिका आदि देशों के निवासियों ने अविश्रान्त परिश्रम करके अशुद्धपानीसम्बन्धी बीमारियों का ज्ञान जनता में करादिया है। अतएव उक्त देशों के राजकर्ताओं को जनसमूह के साहाय्य से अनेक रोगों का अशन उच्चाटन करने में बहुत सुगमता होगई है। सन् १८६२ में हैजे के सदृश भयकर रोग ने समस्त यूरुप देश को अतिम सलाम करदिया था। जब यह बात सिद्ध होगई कि अशुद्ध तथा अस्वच्छ जल को शुद्ध तथा स्वच्छ करनेसे कई बीमारियां नाममात्र शेष होसकती हैं, तो कई तरह के फिल्टर्स का उपयोग होना, आरम्भ करदिया गया। प्रथमारम्भ में फिल्टर्स से अमुक अमुक बीमारियां दूर होसकती हैं यह बात किसी को ज्ञान नहीं थी। कारण उस समय जंतुशास्त्र का विकास बिलकुल नहीं हुआ था। परन्तु थोड़े समय के बाद आविष्कर्ताओं ने जब अपने पैर आगे बढ़ाना आरम्भ करके, नये नये

आविष्कार कर दिखाये, तब लोगों की ज्ञानपिपासा बढ़ने लगी और यह स्वच्छ व शुद्ध पानी की योग्यता पर विचार करने लगे।

हमारे भारतवर्ष में अभी तक लोगों का ध्यान "पानी तथा उस से पैदा होनेवाली बीमारियोंसम्बन्धी खोज" की ओर बिलकुल आकृष्ट नहीं हुआ है। इसलिये अन्य राष्ट्रों के उदाहरण लेकर, स्वच्छ पानी की योग्यता बतलाने को हमें बाधित होना पड़ता है। पहले हम पाश्चात्य देशों के अङ्क लेकर विवेचन करना चाहते हैं जिनसे यह बात सिद्ध करने का हमारा हेतु है। अस्वच्छ तथा अशुद्ध पानी से निरर्थक प्राणहानि होती है, अथवा जिसके कारण व्यापारिक दृष्टि से देश की बहुत हानि होती है।

ऐसा कहते हुए सुना जाता है कि पूर्वकाल में भारतवर्ष में भी जल को छानकर पीने की रीति थी। परन्तु किस विशिष्ट रीति से यह पानी छाना जाता था यह साफ़ साफ़ नहीं मालूम होता। आज कल जो फिल्टर उपयोग में लाया जाता है उस का पहला नमूना इंग्लैण्ड में सन् १८२६ ई० के लगभग सिम्सन नामी अंग्रेज ने तैयार किया था। सन् १८५२ ई० में अंग्रेज पार्लियामेंट में यह ठहराव किया गया है कि—लन्दन शहर तथा उस के आसपास के सब ग्रामों को छना हुआ पानी मुहय्या किया जावे। थोड़े ही दिन पश्चात् जर्मनी में फ़िल्टर्स का उपयोग शुरू किया गया। इस नवीन रीति की पहुँच अमेरिका देश में ३० वर्ष बाद हुई और वहां सन् १८८० ई० में प्रथम फ़िल्टर स्थापन करने में आया। उसी साल के अन्दर तीस हज़ार लोगों को शुद्ध छना हुआ पानी मिला, जिससे बहुतसी बीमारियां दूर होगईं।

हमारे भारतवर्ष में कुछ गिने चुने शहरों को छोड़कर फ़िल्टर्स से छना हुआ पानी मिलने का प्रबन्ध बहुत कम है। और दूसरी अजब बात तो यह है कि यहाँ नदी, तालाब वग़ैरह का कई दिनों का रुका हुआ काँजी-मय पानी स्नान करने, कपड़े धोने तथा प्यास को बुझाने के काम में लाया जाता है, जिस से कठिन रोग अपने पैर ज़ोर जमाकर देश की मनुष्य संख्या घटा रहे हैं। यह बात सन्तोष-जनक कभी नहीं हो सकती। अतएव भारतवासियों को शुद्ध जल पाने की चेष्टा करना अत्यावश्यक है और अपने देशभाइयों को नदी वग़ैरह का पानी न पीने की शिक्षा देने का प्रत्येक जानकारी मनुष्य को प्रयत्न करना आवश्यक है।

सन् १८९३ ई० में रिंके नामी एक जर्मन डाक्टर तथा मिलस नाम के एक अमेरिकन इंजीनियर को पानी की आंत्र-शास्त्र का अभ्यास करते हुए यह बात ध्यानमें आई कि स्वच्छ पानी के उपयोग से केवल कालरा (हैज़ा) ही नहीं बल्कि अन्य दूसरे रोग भी कम हो सकते हैं। अमेरिका देश के ओहायो संस्थान के सिन्सिन्याटी शहर में प्रतिवर्ष पृथक् २ रोगों से प्रति लाख होनेवाली मृत्यु संख्या का कोष्टक हम निम्नांकित करते हैं, जिसपर दृष्टिपात करने से यह पता चलेगा कि पानी फिल्टर करने के पांच वर्ष पूर्व तथा पानी फिल्टर्ड करके उपयोग करने से पांच वर्ष बाद किस कदर मृत्यु-संख्या कम हुई है:—

नं० बीमारी के नाम	१९०१ से १९०५ तक बिना फिल्टर्ड पानी के उपयोग से मृत्यु	१९०८ से १९१३ तक फिल्टर्ड पानी के उपयोग से मृत्यु
१ विषम-ज्वर	५८.७	१०.२
२ दस्त ...	१२००	१०१५
३ पेचिश ..	८.५	२४
४ फुप्फुसदाह	१५६०	१०६४
५ क्षयरोग	२४२६	२३४६
६ सर्प (बीमारी)	१६८	१२६
७ खांसी ...	५२	७४
८ हारित रंजक बुखार ...	१०८	८.३
९ छोटी देवी (शीतला) ...	९८	१०२
टोटल ..	१८९९३	१६६७

पानी फिल्टर २०२ लोग प्रतिवर्ष अस्वच्छ पानी के उपयोग से किस्म मृत्युके गाल में पड़ते थे। मिलस रिंके व्यक्तियों के कथनानुसार हैजे. के अतिरिक्त विषमज्वर, दस्त, पेचिश, निमोनिया आदि रोग भी शुद्ध पानी के उपयोग से कम हो सकते हैं। खैर, कुछ भी हो हम यह कह सकते हैं कि शुद्ध पानी का निरन्तर उपयोग मृत्यु संख्या अवश्य कम कर सकता है।

जर्मनी के म्युनिक व हयांवर्ग शहरों में फिल्टर, आरम्भ होने के पूर्व प्रतिवर्ष प्रति लाख बस्ती की २५४ व ४७ मृत्युसंख्या विषम ज्वर की थी। जो फिल्टर आरम्भ होने पर अनुक्रम से २७ व ७ होगई यानी अस्वच्छ पानी के कारण उपर्युक्त दोनों शहरों में २२७ व ४० लोग विषमज्वर के बली हुए।

स्विट्ज़रलैंड देश के ज्यूरिच नामी शहर में "फिल्टर" के पूर्व विषम ज्वर की मृत्यु संख्या ७६ थी जो शुद्ध पानी के उपयोग से प्रति लाख १० तक आपहुंची।

अब हम अशुद्ध पानी के सेवन से जो हिन्दुस्थान में हैजे के कारण से मृत्यु-संख्या एक यात्रा के स्थान में हुई है वह बतलाते हैं। मेजर ग्रीक साहब ने "इण्डियन जनरल आफ मेडिकल रिसर्च" नामी त्रैमासिक में इस सम्बन्ध में नई नई बातें लिखी हैं।

सन् १९१२ ई० में पुरी (जगन्नाथ) के रथोत्सव के समय यात्रियों की संख्या करीब ३ लाख के थी। वहां हैजे से दो मास में ५७२ लोग बीमार हुए, जिन में से २७६ संसार-यात्रा को सम्पूर्ण कर निज धाम को सिधारे। ऐसा कहते हैं। वास्तव में यह संख्या अन्य यात्रा के स्थानों से बहुत कम है, परन्तु मेजर ग्रीक साहब कहते हैं कि हैजे से बचे हुए यह यात्री लोग Bacillus Carriers अपने अपने गांवों में पहुंचने पर हैजा एकदम आरम्भ कर देते हैं। कारण इन यात्रियों में हैजे के जन्तु Vibrio व की रहते हैं, इसलिये यह लोग अपने अपने गांवों के जलाशयों को दूषित भी करते हैं। प्रत्येक स्थान में यदि फिल्टर्ड पानी मिलने का प्रबंध भारत में हो जाय तो यूरुप, अमेरिका के समान हमारे यहां की भी मृत्युसंख्या बिलकुल कम हो सकती है—यह हम कह सकते हैं। इसी आशय के पुष्टिकरणार्थ हम मद्रास के टी० एच० विशप के उपर्युक्त त्रैमासिक में प्रकाशित किये हुए "हैजा निवारणार्थ उपाय" Cholera prevention Scheme शीर्षक लेख का एक कोष्टक देते हैं जिसमें आपने कहा है कि "मुख्यत गांवों के जलाशयों के पानी की ओर लक्ष्य दिया गया, जिससे मृत्यु-संख्या में कमी हुई"। मद्रास अहाते के आठ ग्रामों में ही इस बात का प्रयत्न किया गया था जिससे ३ वर्ष में यानी १९१० से १९१३ तक ८३४ मनुष्य मृत्यु से बचाये गये। इसी प्रकार यदि अन्य प्रांतों में उद्योग किया जाय तो बहुत से प्राणी बचाये जासकते हैं।

टी० एच विशप० का कोष्टकः—

वर्ष	प्रांन लोवर म्याजेस ब्रिज		C.P.S. तीर्थ स्थान				टोटल		प्रति शत
			पबना.		नदिया				
	बीमार हुए	मृतहुए	बीमार हुए	मृतहुए	बीमार हुए	मृतहुए	बीमार हुए	मृतहुए	
१९१०	२१०	६६	६५३	४९८	४८९	२७१	११५२	८३५	६४.६
१९११	१७३	८७	५०३	२५४	३३२	१६१	१००८	५६२	५५.०
१९१२	५५	१०	१७३	१२	१०३	३३	२५५	८०	२६.७
			७*	७*	३१*	१८*			
१९१३ (जनवरी से ३०जून तक)	१४	०	८	०	१६	०	३५	१	२.६
					१*	.१*			

नोट— * लोगों ने डाकृरों से दवाई लेना इन्कार किया।

हिमालय पहाड़ के तले के सोनावर नामी शहर में एक सैनिक स्वास्थ्यालय (Military asylum) है। वहां बहुत से बालकों को (Goitre) नाम के रोग ने ग्रस्त किया था, जिसकी जांच के लिये मेजर म्याकक्यारिसन साहब की नियुक्ति की गई थी। उक्त डाकृर साहब ने शोधन करने के पश्चात् जो रिपोर्ट (जनवरी १९१४,इंडियन जरनल आफ मेडिकल रिसर्च) में प्रकाशित करवाई है, उसका मुख्य भाग हम पाठकों के लिये देते हैं:—

(१) सोनावर में (Goitre) नाम रोग होने का बीज, लड़कों को दूषित व रोग-जंतुयुक्त पानी जो पिलाने में आता है, वह है।

(२) शुद्ध पानी मुहय्या किया जाने से यह रोग निर्मूल किया जासकता है।

(३) शुद्ध पानी की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि गॉयटर के वनिस्बत दूसरे रोगों को साथ अस्वच्छ व अशुद्ध पानी से होती है जिससे लड़कों को बहुत भय होता है।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि हमारे पूर्वजों को इस "फिल्टर"के नये शोध के पूर्व जो पानी मिलता था उससे उन्हें क्यों नहीं बाधा होती थी। यद्यपि वे कुओं का तथा अन्य तालाबों का पानी पीते थे तथापि वे हैज़े की सी भयङ्कर बीमारी से पीड़ित कम होते थे। इसका एकमात्र कारण यह है कि उनकी Vitapily जीवनीशक्ति

ठीक थी। हमारे में उस शक्ति का अस्तित्व है तो जरूर, परन्तु उस प्रमाण में नहीं, जैसा कि हमारे पूर्वजों में था। कारण हमको बलशाली व पुष्टिवर्धक अन्न वैसा नहीं मिलता, जैसा कि उन लोगों को मिलता था।

अब मैं इस लेख को विस्तार के भय से सम्पूर्ण करता हूँ पाठकगण पानी में रोगजंतु हों व न हों, छानकर पीने की आदत डालने का प्रयत्न करें, जिससे उन्हें बहुत कुछ लाभ होसकता है जैसे कि 'हुकर्स ट्रीटाइज आफ क्लोराइड आफ लाईम' इस पुस्तक के नीचे दिये हुए अंग्रेजी अवतरण से स्पष्ट है।

"From general principles it is to be inferred that the drinking of a polluted and insanitary water supply must surely tend to lower the Vital resistance. on the other hand, an improved water supply must mean a real improvement in the general health tone of a community, a real uplift and reinforcement, rather then an impairment of the Vital resistance of the consumer of such supplies"

—o—

हिन्दुस्थान में कोढ़ियों के लिये अस्पताल की व्यवस्था

वर्तमान आश्रम।

हिन्दुस्थान के कुष्ठाश्रम के दर्शकों ने यह अवश्यमेव देखा होगा कि वहां के बाशिन्दों की पूरी निगाह की जाती है। उन के वासस्थान और वस्त्रों की सुव्यवस्था होती है और उन्हें घावों के आराम होने के लिये औषधियां भी दी जाती हैं।

वस्तुतः प्रत्येक साध्य उपायों का अवलम्बन किया जाता है जिस से वे प्रसन्न हों और अपने दुःख को भूल जायें। जो सज्जन लोग इन संस्थाओं (Missions) को चलाते हैं उन्हीं की उदारता से इन्हें ये सब प्राप्त होते हैं। परन्तु इन सब बातों के अतिरिक्त यह प्रश्न है कि वास्तव में वे सुखी हैं या नहीं। अपने प्यारे भाइयों से पृथक् होने

और अपने कुटुम्ब में फिर सम्मिलित होने की किञ्चिन्मात्र आशा के कारण क्या वे सुखी हो सकते हैं ?

बात यह है कि उन कोढ़ियों को यह मालूम है कि यह एक ऐसी जगह में हैं जो अस्पताल से बिल्कुल भिन्न है।

अस्पताल में लोग इस ख्याल से जाते हैं कि आरोग्य होने पर तुरन्त लौट आवेंगे। कुष्ठाश्रम में चाहे कितना भी आराम क्यों न हो परन्तु अपने कुटुम्बियों के पास लौटने का विरला ही मौका मिलता है।

मिशनरियों के कुष्ठाश्रमों में समय २ पर गत वर्षों में तरह २ की चिकित्साप्रणालियों की परीक्षा की गई है। परन्तु उस का फल बहुत सन्तोषजनक नहीं हुआ है।

चावलमोगरा के तेल से जिसे इस देश में बहुत काल से कुछ एक कुष्ठ रोगों की दवा समझते हैं, हाल ही में परीक्षा की गई है।

कई कुष्ठ रोगों पर पेशियों में इसको इनजेक्ट (Inject) करने से लाभ भी हुआ है। इस ओर सर लिओनेडरोजस (SirLeonadRojus) ने चावलमोगरा के तेल के (Sodium Gynocardate) बनाकर बड़ी उन्नति की है। रगों के भीतर इसकी पिचकारी (इन्जेक्शन) करने से और इसकी बनाई हुई दवाइयों के भीतरी प्रयोग से कुछ अंशों में बहुत आशा बताई गई है। इस औषधि को इस रोग का निवारक कहना अभी अत्युक्ति है, कारण अभी इसने परीक्षा दशा अतिक्रान्त नहीं की है।

उचित राह की ओर प्रस्थान।

हमें यह ज्ञात हुआ है कि कुष्ठ चिकित्सा मंडली (Leper Missions) के सेक्रेटरी, इण्डियन गवर्नमेंट की सहायता से हाल में जिन लाभदायक औषधियों का आविष्कार हुआ है उन को १५।२० योग्य पुरुष और स्त्री डाक्टरों द्वारा विस्तृत रूप से परीक्षा कराने का प्रयोजन कर रहे हैं। इस प्रकार मिशन इस घातक रोग की अत्युत्तम चिकित्सा को ढूढ़ने के प्रश्न को हल करने की चेष्टा कर रही है।

लेडी चेम्सफोर्ड कृपापूर्वक इस ओर बहुत कुछ उद्योग कर रही हैं। यह आशा की जाती है कि जिन महानुभावों ने इस काम को अपने हाथ में उठाया है वे इस परीक्षा को खूब उत्साह से अग्रसर करेंगे।

महान् प्रश्न ।

यहां तक सब ठीक है। परन्तु क्या भारत जैसे विस्तृत देश के कोढ़ियों के प्रश्न का यह उत्तर है कि जिसमें विरले ही जिले इस दुर्भाग्य मनुष्यों से बचे हुए होंगे?

गत मर्दुमशुमारी में भारत में १०,६,००० के ऊपर कोढ़ियों की संख्या हुई है। परन्तु विचारशील मनुष्योंने १,५०,०००की संख्याकीहै।

वर्त्तमान में इतनी बड़ी संख्या के कुछ एक अंशों की यही चिकित्सा कुष्ठाश्रमों मे होती है। और "लेपर मिशन" (Mission to Lepers)" इन ६००० दुःखियों को अपने घर में रख कर इस ओर बहुत कुछ अग्रसर हो रही है। परन्तु कुष्ठाश्रमों की स्थिति क्रमशः जटिल होती जाती है। इन्हीं में से नौ तो एक 'दम,' भरे हुए हैं और ६ में यथोचित स्थान का अभाव है। बहुत सी अवस्थाओं में तो बहुत से कोढियों को प्रवेश की इच्छा होने पर भी लौट जाना पड़ता है। और १० कुष्ठाश्रमों में नई २ इमारतों की ज़रूरत है। वास्तव में अभी जितने कुष्ठाश्रम हैं उन से बढ़ कर इस देश के भिन्न २ प्रान्तों में और भी कुष्ठाश्रमों के बनने की जगह है।

मिश्नरियों, गवर्नमेंट और उदारहृदय वैद्यों को पूर्ण रूप से धन्यवाद देना चाहिए कि जो इस घातक बीमारी का शर्त्तिया इलाज ढूँढ़ रहे हैं, परंतु हम समझते हैं कि यह वृथा न होगा कि हम अपनी पुरानी चाल से इस प्रश्न के उत्तर के ढूंढ़ने की चेष्टा करें।

हमारी एक स्वतन्त्र चिकित्सा-प्रणाली है।

यद्यपि पाश्चात्य लोग इस बीमारी की जड़ निकालने में समर्थ नहीं हुए हैं और इसी कारण इस को चिकित्सा करने में सन्दिग्ध रहते हैं तो भी हम लोगों ने इस चिकित्सा की एक माकूल पद्धति निकाली है। हम लोगों की पुरानी, दवाइयों में से केवल एक चावल मोगरे के तेल ही की परीक्षा अस्वस्थ मनुष्यों पर की गई है और वह कुछ कुछ सफल हुई है। परन्तु यह किसी क़दर हिन्दू चिकित्साशास्त्र में लिखी औषधियों की सूची को ख़त्म नहीं करती है, जो अनुभव करने पर लाभकारी मालूम पड़ी हैं।

पुराने ढर्रे के अनुसार कार्य्य ।

हमारे शास्त्रानुसार १८ प्रकार के कुष्ठ हैं।

इन अठारहों प्रकार के कुष्ठों की चिकित्सा के लिये कोई एक प्रकार की ही प्रणाली नहीं है।

प्रत्येक प्रकार के कोढ़ों की अलग २ दवाइयां हैं।

किसी विशेष कुष्ठ की चिकित्सा का रूप, साधारण शारीरिक अवस्था और रोगी के मिज़ाज के अनुसार बदलता है। यह विषय आयुर्वेद ग्रन्थों में जैसे कि द्रव्य, गुण, पाचन, संग्रह, भावप्रकाश, आयुर्वेदसंहिता इत्यादि में लिखा गया है।

पुराने ऋषियों ने इस घृणित रोग का कारण ढूंढा और उस की दवाई बताई।

भीतर प्रयोग करने वाली दवाइयों में विरेचक, वमन, रक्तशोधक द्रव्यों का बहुत प्रयोग किया जाता है।

कुष्ठग्रसित स्थानों पर लगाने के लिये दवाइयों का तेल और घी दिये जाते हैं।

इस रोग में अनन्तमूल, गिलोय, नीम, खदिर, चिरायता, हरड़, आमला, बहेड़ा और अन्यान्य औषधियों का बहुतायत से उपयोग होता है।

ठीक औषध ढूंढ निकालने में और उसकी मात्रा और रूप निर्धारित करने में कम अनुभवकी आवश्यकता नहीं है। प्राचीन औषधियों के नाम और गुण को जानने से ही कुष्ठ की सफलतापूर्वक चिकित्सा नहीं हो सकती।

इस रोग को अध्ययन करना पड़ेगा और किसी वृद्ध मनुष्य के साथ कुछ हस्त-क्रिया की शिक्षा भी पानी होगी।

द्रव्य गुणों को जानना होगा और अनुभव से उन्हीं की सफलता की परीक्षा करनी होगी। उसे कोढ़ियों की चिकित्सा की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में गौर करके देखना होगा और इन के ज़ख्मों की मरहम पट्टी इत्यादि करनी पड़ेगी।

दक्षकुष्ठ-चिकित्सक।

सौभाग्यवश हमारे बीच में प्राचीन पद्धति के एक दक्ष कुष्ठ चिकित्सक हैं। वे गुप्त दवाइयों से इलाज नहीं करते। जिन दवाइयों का वे प्रयोग करते हैं वे सब शास्त्रीय हैं।

उन्होंने इस इलाज में अपनी अद्भुत शक्ति का हाल ही में प्रयत्न वर्णन दिया है। अलबर्ट विक्टर होस्पिटल बिलासपुर (Albert

Victor Hospital at Belgatchie, Calcutta कलकत्ता के अधिकारियों ने जिन कोढ़ियों को उन की निगाह में छोड़ा था उनकी चिकित्सा में वे सफल हुए हैं।

सर पारडी ल्यूकिस, डाकृर आर० जी० कर महामहोपाध्याय वैद्यराज गणनाथ सेन, बाबू शिशिरकुमार घोष (Sir Pardey Lukis, Dr. R. G. Kar, Mahamahopadhya Kaviraj Gananath Sen, Babu Shishir Kumar Ghose) इत्यादि विख्यात मनुष्यों की पूर्णदृष्टि में उन्हों ने (experiment) प्रत्यक्ष परीक्षा की है। उन्होंने अपने पिता से इस प्राचीन चिकित्सा-पद्धति की शिक्षा पाई है जिन्हों ने हैदराबाद (निजाम राज्य) तथा अन्यान्य देशों में बहुत से चमत्कारी काम किये हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश उन के कोई संतान या बन्धु नहीं है, जिसे कि वे अपनी प्राप्त की हुई विद्या को दें। परन्तु वह कुछ एक विद्यार्थियों के समूह को शिक्षा देने को उद्यत हुए हैं जो वास्तव में इस प्राचीन चिकित्सा पद्धति के सीखने की इच्छा करते हैं और जिस में उन्हों ने आश्चर्यजनक कौशल की वृद्धि की है।

उपाय।

इन सज्जन ने १६०८ में निजव्यय से सलकिया (हवड़ा) में एक कुष्ठाश्रम बनाया है। इस में दो रोगियों के लिये स्थायी स्थान है और दो के लिए जगह भी है। इस जगह बहुत से कोढ़ियों का इलाज किया गया और वे आरोग्य हुए। उनके सुकार्य्य के क्षुद्र बीजाणु की वृद्धि करना परमावश्यक है। इसलिए एक अस्पताल की आवश्यकता है जो किसी (१) मध्यस्थान में हो (२) कोढ़ियों के स्वास्थ्य के लिये अच्छा हो। जहां कि सदा सामान्य गर्मी सर्दी हो और (३) किसी हिंदूमंदिर या बड़े सदर के पास हो जहाँ कि जनता से भी सहायता मिल सके।

ये सज्जन इस अस्पताल में बिना वेतनके कार्य्य करने के इच्छुक हैं और साथ ही कुछ युवक मण्डलियों को शिक्षा भी देंगे जो यह प्रतिज्ञा करेंगे कि वे अपना जीवन कोढ़ियों की अवस्था के सुधारने में लगावेंगे और अपनी विद्या को उन उत्सुक युवा पुरुषों को देंगे जो उन की तरह इस सुकार्य्य के साधन की प्रतिज्ञा करेंगे।

यह सज्जन अपने जीवन की सन्ध्या में पहुँच गये हैं और उन्हों ने भजन पूजन कर अपने बचे दिनोंको काटना ठान लिया है। यह हमारा

कर्त्तव्य है कि उन की मृत्यु के सङ्ग ही बहुमूल्य विद्या जिसे उन्होंने सीखा है संसार से चली जाने न दें।

बात यह है कि एक दफे भी यदि विस्तृत रूप से यह लोगों को मालूम हो जाय कि भारत में कोढ़ियों का एक अस्पताल है जहां कि रोगी जेलखाने में घुटने को नहीं जाता। परन्तु अपने रोग के आराम कराने को जाता है, तब कोढ़ियों को फिर साहस हो जायगा और जिन २ मनुष्यों के श्रम से यह संस्था अपने प्रकृत रूपको धारण करेगी उन पर वे शुभाशीर्वादों की वर्षा करेंगे।

यथार्थ में यदि यह उपाय कार्य्य में परिणत हो तो संसार में रहने वाले इन अभागे दुःखियों को इस रोग से आरोग्यता प्राप्त करने पर फिर जीवन का सुख मिल जाय।

हिन्दुस्थान के लिये यह कौनसा शुभ दिन होगा कि पाश्चात्य देशों से भी कोढ़ी इलाज कराने को यहां आवेंगे।

दूसरी बात का भी विचार करना चाहिए।

एक बार भी यदि यह चिकित्सा-प्रणाली अस्पताल की पूञ्जी होजायगी और वैज्ञानिकों के हाथ में चली जायगी, जिन के ध्यान को आकर्षित करने की और कोई वस्तु नहीं है, तब निश्चय ही यह उन्नति मार्ग की ओर बढ़ती जायगी। वर्त्तमान पुरुषों से योग्यतर लोगों के हाथ में सांगता प्राप्त करेगी।

लागत में व्यय।

इस लिये पहले अस्पताल की आवश्यकता है। यदि छोटे रूप में भी यह खोला जाय तो मकान बनाने और इस की व्यवस्था के लिये कम से कम एक लाख रुपयों की ज़रूरत है।

किसी कदर काम होने के लिये इस अस्पताल में कम से कम १६ कोढ़ियों का स्थान होना चाहिये और भविष्य में वृद्धि के लिये भी इंतजाम होना चाहिये।

अस्पताल के लिये ज़मीन और मकान के लिए कुल २५,०००) रुपये चाहियें।

प्रत्येक रोगी के लिये अन्दाज़ १) रोज़ाना खर्च है। इसलिये यदि हम ८ रोगियों से काम आरम्भ करें तो एक मास में २४०) के लगभग खर्च है। फिर हाल में अन्यान्य खर्च के लिये ७२) एक मास में रखे जाते हैं।

एक मास में ३१२) रुपये का खर्च का पारतोषक ३१,०००) रुपये

आयुर्वेद-महाविद्यालय ।

शिक्षित समुदाय में इस बात के विशेष जतलाने की आवश्यकता नहीं कि आयुर्वेद क्या है ? परन्तु इतना बता देना उचित समझते हैं कि आयुर्वेद भारतीय लोगों की पूर्वज विद्या है-एक समय वह था कि इसके विश्वास के ऊपर जगत् भर का जीवन मरण था। देश के राजा महाराजों के यहां प्राणाचार्य वैद्य निवास करते थे। उन की आज्ञानुसार ही रोगों की दिनचर्या का पालन होता था, परन्तु समय के हेर फेर से इस विद्या की भी दशा गिरती गई। वर्त्तमान में जो दशा है वह भी सर्वसाधारण के दृष्टिगोचर है। आज अनेक चिकित्साओं ने अपना २ प्रभाव जमा रक्खा है और भारतीय जनता भी अन्य चिकित्सा के प्रभावों को देखकर मुग्ध है--परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी जब बुद्धिमान् विचार करते हैं, और निष्पक्षपात होकर कहते हैं कि यह सब चमत्कारिक चिकित्सा कहां से जन्मी है तो यही कहना पड़ता है कि यह सब आयुर्वेद के अंशमात्र का ही चमत्कार है। यह बात आयुर्वेदाभिमानी ही नहीं कहते किन्तु अन्य चिकित्सा के आविष्कारक लोग कहते हैं कि इसके सैंकड़ों प्रमाण उपस्थित हैं। वर्त्तमानावस्था में जब कि राजा और प्रजा में विदेशीय चिकित्सा ने अपना प्रभाव जमा रक्खा है शहर गांव, जंगल और पहाड़ सर्व साधारण में जहां देखिये वहां डाक्टर हा मौजूद हैं इस प्रचंड उन्नति में भी आयुर्वेद की चिकित्सा अपना कहां तक प्रभाव रखती है। इस बात को हम साभिमान कहते हैं कि इस गिरी दशा में ही आयुर्वेद की चिकित्सा का मुकाबिला अन्य कोई चिकित्सा नहीं कर सकती।। इस बात के सत्य असत्य का फैसला हम विदेशी चिकित्सा के विद्वानों के ऊपर ही छोड़ते हैं कि वह भारत की जनता से अनुसन्धान करलें कि हमारी चिकित्सा से कितना लाभ जनता में होता है और आयुर्वेद की देशी चिकित्सा से कितना लाभ पहुँचता है। साथ ही इस बात का भी अनुसन्धान करना आवश्यक है कि विदेशीय औषधियों में सरकार तथा प्रजा का कितना द्रव्य व्यय होता है। आयुर्वेद की पद्धति से जो चिकित्सा होती है उस में कितना द्रव्य व्यय होता है। इन दोनों बातों की परस्पर फिर तुलना करके बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि कौनसी चिकित्सा से प्रजा को ज्यादा लाभ पहुँ-

चता है और वास्तव में लोग किस पद्धति की प्रशंसा हार्दिक करते हैं। यह दूसरी बात है कि जो विषय आयुर्वेद के चिकित्सक माने में जानते ही नहीं उसमें यदि त्रुटि रहे या वह बिलकुल भिन्न रहें और दूसरे चिकित्सकों का मुकाबिला न कर सकें। जब वह उस विषय को अध्ययन ही नहीं करते तो उनका कैसे हो सकता है? हम अपनी कृपालु सरकार से सानुरोध कहना चाहते हैं कि इस विद्या के ऊपर कम से कम दृष्टिपात कर तो विचारे कि यह चिकित्सा जो हजारों वर्षों से प्रचलित है इस में भी कुछ सत्व है या नहीं। जो लोग अपने स्वार्थ के वश न्यायाधीश सरकार को यह कहकर बहका देते हैं कि यह विद्या अधूरी है, इस सिद्धान्त अधूरे हैं उन के लिये सरकार से हम इतना ही कहना हैं कि एक पुराने रोग का रोगी हम उन्हें देते हैं और पर वैद्य को देते हैं फिर देखा जाय कि कौन सफलता पाता है या जो ऐसे रोग हैं जो अवधि में ही जाया करते हैं उन को बहुत विदेशीय चिकित्सक कह दिया करते हैं कि हम बीच में भी उनको नष्ट कर सकते हैं उन अभिमानियों को ऐसे रोगियों की चिकित्सा सुपुर्द की जाय और देखाजाय कि उनके सिद्धान्त ठीक रहते हैं या आयुर्वेद के। इस विषय को यहीं छोड़ कर अब हम अपने देशके वैद्यों से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग इतने हैं कि अन्य चिकित्सकों से बहुतसी बातोंमें इस गिरी दशामें भी आप उनके मुकाबिलेमें सब तरह सम्पन्न हैं और यदि दोनों की आपस में संख्या की भी तुलना की जाय तो बहुत ज्यादे हो सकेगी। इतना सब कुछ होने पर भी खेद है कि आप लोग सब बातों में अन्य चिकित्सकों की अपेक्षा बहुत ही बुरी दशा में हो—इसका क्या कारण है? यदि सत्य कहा जाय तो परस्पर ऐकयता का अभाव और आलस्य तथा अपना स्वार्थ जो भावी सन्तान अभिवृद्धि को एकदम रोकनेके बराबर पूर्व से ही चला आरहा है। आज जो हमें और हमारी विद्याको जो अधूरी बताया जाता है उनमें भी हमारा ही प्रधान दोष है। यह कितनी लज्जा की बात है कि आपके अध्ययन के लिये भी अद्यावधि कोई स्थान नहीं। जहां कम से कम यह कह कर तो सन्तोष प्रकट किया जाय कि यहां आयुर्वेद का अध्ययन होता है या यह कि आयुर्वेद की संस्था है? आज कितने दिन से आयुर्वेद महामण्डल प्रयत्न कर रहा है कि एक आयुर्वेद विद्यालय स्थापित होना चाहिये किन्तु इस विषय पर न तो हमारी

कृपालु सरकार का ही ध्यान आकर्षित हुआ और न देश के वैद्य तथा आयुर्वेद से लाभ उठाने वाली जनता का ही इस प्रस्ताव के ऊपर लक्ष्य हुआ। यह देख कर भी आयुर्वेदाभिमानियों की नींद न खुले तो इससे ज्यादा स्वार्थी होने का प्रमाण क्या? यह देख कर हमें संतोष होता है कि आयुर्वेदमहामण्डल के आयुर्वेदविद्यालय के प्रस्ताव को प्रयागी वैद्यों ने अपने ऊपर उस के उद्घाटन कार्य का प्रबन्ध विषयक भार अपने ऊपर ले लिया है। परन्तु इस विषय में हम पूर्व में ही यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि प्रयाग के वैद्यों की कार्यकर्त्री समिति की जो नामावली प्रकाशित हुई है उसको देखकर यह संतोष नहीं होता कि यह समिति इतने भारतव्यापी कार्य की संस्था को बिना आस पास के वैद्यों को सम्मिलित किये प्रारम्भ में कुछ उद्योग कर सके। हां, हमारे सुविख्यात वैद्य पञ्चानन पं० जगन्नाथप्रसाद जी, शुक्ल जी एक ऐसे उत्साही हैं जो अपने कार्य का कुछ दिन लोभ न कर इस महत्व कार्य के लिये समय देवें तो हमें पूर्ण आशा है कि यह कार्य शीघ्र ही सफल हो सकता है। इस कार्य में जब तक दो चार व्यक्ति थोड़े काल के लिये अपना जीवन इस शुभ कार्य के लिये सुपुर्द न करेंगे तब तक यह कार्य होना बहुत कठिन है। देश के उत्साही वैद्यों को चाहिये यदि आप अपनी इस विद्या की उन्नति चाहते हों और अपना नाम इस संसार में अमर रखकर,भावी सन्तान का सुधार तथा प्रतिद्वन्द्वियों से ज्यादा अपनी प्रतिष्ठा बनाना चाहते हों तो इस कार्य के सम्पन्न करने में कटिबद्ध होकर कुछ दिन का ही जीवन इस कार्य के लिये देकर पुण्यभागी बनियेगा।

विनीत–
नारायण शर्मा, वैद्य

—०—

आयुर्वेद की उन्नति।

यद्यपि हमारी सरकार की कृपा दृष्टि आयुर्वेद पर नहीं है, परन्तु भारत के अनेक स्थानों में आयुर्वेद को उन्नति के उपाय दिखाई दे रहे हैं, यह अवश्य आनन्द का विषय है।

न्यू इण्डिया पत्र में आयुर्वेद की उन्नति के संबंध में कई पत्रों

प्रकाशित हुई हैं उनको हम पाठकों के लिये नीचे उद्धृत करते हैं।

ग्वालियर रियासत के वना नगर स्थान में आयुर्वेद का एक अस्पताल है जिसका प्रबन्ध मालवे के जैनियों के हाथ में है। यह अस्पताल केवल उसी स्थान मे नहीं वरन समूचे राज्यमें औषधियों की सहायता पहुंचाता है। रियासत में १२५० दवाखाने इसकी शाखा के तौर पर हैं। दरबार से प्रत्येक आयुर्वेदिक औषधालको ३०) मासिक सहायता मिलती है।

ट्रावंकोर मे एक रियासती आयुर्वेदिक कालेज है जिसके साथ अस्पताल और जड़ी बूटियों का बाग भी है। उसकी ७२ शाखायें समूची रियासत में हैं। मि० शंकर मेनन एम० ए० एल० टी० सुपरिण्टेण्डेंट हैं।

मैसूर के आयुर्वेदिक कालेज के साथ एक अस्पताल है। पीछे से रियासत ने ३२ आयुर्वेदिक औषधालय और छः यूनानी दवाखाने खोले हैं।

कविराज मित्र इङ्गलैण्ड में १४ वर्षसे आयुर्वेदिक औषधियों का प्रचार कर रहे हैं। उनकी चिकित्साका आदर बढ़ रहा है। स्नायविक दुर्बलता के इलाज में उनको विशेषता की बड़ी प्रशंसा हुई है। उनका मकरध्वज बहुत अच्छा साबित हुआ है।

मालापुर के आयुर्वेदिक औषधालय में गतवर्ष ६१९९४ रोगियों का इलाज हुआ।

कलकत्ता म्यूनिसिपैलिटी ने स्थानीय आयुर्वेदिक कालेजके साथ की अस्पताल रखने के लिये ढाई हजार रुपये साल देना स्वीकार किया है।

मद्रासके कालका वाल चनगन्चेट्टी दातव्यआयुर्वेदिकऔषधालय में गतवर्ष १,६६,५५८ रोगियों का इलाज हुआ। ८८३६॥) खर्च पड़ा अर्थात् फी बीमार तीन पैसे।

पूना म्यूनिसिपैलिटी ने तीन आयुर्वेदिक औषधालय खोले हैं। म्यूनिसिपैलिटी मरकी के दिनों में आयुर्वेदिक दवाओं की जरूरत समझने लगी है। खांसी ज्वर में आयुर्वेदिक दवा अकसीर साबित हुई है।

भारतवर्षीय वैद्यसमिति हरद्वार में धन्वन्तरि आश्रम खोलना चाहती है, इस अस्पतालमें आयुर्वेदकी रीति से बेदाम इलाज होगा।

सरकारी स्वीकृति से आयुर्वेदचिकित्सा।

जसोर-ज़िला-बोर्ड के सभापति राय बहादुर बा० यदुनाथ मजुमदार ने बंगाल सरकार की मन्जूरी से जसौर के एक गाँव में आयुर्वैदिक औषधालय खोला है। यद्यपि यह औषधालय ज़िला बोर्ड की ओर से खोला गया है, पर अभी अस्थायी है। यदि परीक्षा करने पर इस औषधालय से विशेष लाभ देखा जायगा, तो इसे स्थायी कर दिया जायगा। हमें आशा है, कि इस औषधालय से अवश्य लाभ होगा और प्रत्येक जिले में जिला बोर्डों और म्यूनिसिपैलिटी बोर्डों की ओर से ऐसा ही आयुर्वैदिक औषधालय खोला जायगा। स्थायी गुण और सस्तेपनके ख़्याल से आयुर्वैदिक चिकित्सा को, अवश्य आश्रय देना चाहिये।

—॥—

कुँवर जंगसेन वैद्य के प्रश्न का उत्तर।

"वैद्य की मई की संख्या मे, श्रीकुँवर जङ्गसिंह जी वैद्य ने हमारे "सब रोगों का आदि मूल अजीर्ण" नामक एक लेख पर दो प्रश्न छपाये हैं। नीचे, उनका उत्तर दिया जाता है।

(१) भोजन करते समय बिल्कुल पानी न पीना चाहिये। यद्यपि वैद्यक शास्त्रों के मतानुसार यह विषय विवादग्रस्त है, अर्थात् कोई २ ऋषि ऐसा करने की आज्ञा देते हैं और कोई मना करते हैं, तथापि, प्राकृतिक नियमानुसार पानी पीने की आवश्यकता नहीं है। सब लोग जानते हैं कि ग्रास को जितना ही चबाया जाय, उतना ही अच्छा है। खूब चबाया हुआ ग्रास सहज ही में उदरस्थ हो जाता है। खाद्य-पदार्थों में गरम मसाले मिर्चें आदि न डालना चाहिये। यही वस्तुएं भोजन करते समय पानी पीने की आवश्यकता बतलाती हैं। भोजन करते समय या तो ग्रास को निगलने के लिये पानी पिया जाता है अथवा प्यास लगानेवाली खुश्क, तेज और उत्तेजक वस्तुएँ पानी की आवश्यकता पैदा करती हैं। प्राकृतिक शिक्षानुसार ये दोनों बातें वर्जित हैं। जब सादा खाद्य, खूब चबा २ कर खाया जायगा, तब पानी की क्या आवश्यकता है? इस बात का सब से उत्तम प्रमाण यह है कि प्रकृति देवी के अनन्यभक्त पशु और पक्षीगण खाने के मध्य में पानी नहीं पीते। बीच २ में पानी पीने की आज्ञा देना, अच्छी तरह से चबाने में लापरवाही कराना है। पुतली वाला

और हरी तरकारियाँ भी फलों की तरह आवश्यक जल अपने साथ रखती हैं। यदि कहा जाय कि सूखा रोटी खाने पर क्या किया जाय,तो इसका यह उत्तर है कि सूखी रोटी सूखी तरकारी के साथ भुना हुआ खाद्य आदि अप्राकृतिक भोजन है। प्राकृतिक बातों के सिलसिले में सभी बातें प्राकृतिक होनी चाहियें। यद्यपि हम (मैं) संस्कृतज्ञ नहीं, वैद्य नहीं, तथापि यह कह सकते हैं, कि वैद्यक शास्त्रों में इस विषय पर विवाद है। मुझे शास्त्रों के प्रमाण की इस लिये आवश्यकता नहीं कि मेरा लेख प्रकृति (शास्त्र) के अनुसार है।

(२) दूध को भी चबा २ कर पीना चाहिये। किन्तु, ग्रास का चबाना और दूध का चबाना एक ही बात नहीं है। दूध को चबाने के लिये दाँतों की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार बच्चे दूध पीते हैं, उसी तरह से मनुष्यों को पीना चाहिये। यही दूध का 'चबाना' है। आप (वैद्य) लोग बड़े २ पानी या दूध पीना और शीघ्रता पूर्वक दूध पीना मना किया करते हैं। थोड़ा २ और दाँतों द्वारा चर्वण करते हुए पान करना ही चबाना है। जिन खाद्य पदार्थ में (चाहे वह रोटी हो या दूध) लार का समावेश नहीं किया जावेगा वह पदार्थ कठिनता से पचेगा अथवा उसको पचाने के लिये प्राकृत-शक्ति को आवश्यकता से अधिक श्रम करना पड़ेगा। हमारे लिखने का यही भाव है। शब्दों के सम्बन्ध में 'चबाना' अवश्य अत्युक्ति प्रकट करता है, इसके लिये हम क्षमा चाहते हैं।

"अवश्य ही 'डाक्टरों के मत हमारे लिये हमारे उन महर्षियों के मत से भी बढ़कर नहीं हो सकते जिन्होंने अपने अपूर्व योगबल से अमूल्य शास्त्र हमारे लिये रच दिये हैं'। किन्तु, इन उपरोक्त दोनों बातों से हमारे शास्त्रों का पक्ष खण्डित तो क्या निर्बल भी नहीं होता है। इस के सिवाय, आपसे यह प्रार्थना है, कि डाक्टरों से 'नफरत' न प्रकट कीजिएगा। आपके किसी ऋषि ने (हिंसा के भय से ही) किसी जीवित जीव को मार कर, उसके पेट के हाल, (हड्डी गणना तक) ठीक २ नहीं लिखे हैं। अर्वाचीन पद्धति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने से प्राचीन पद्धति उसी प्रकार की रह जायगी जिस तरह बिना नमक के दाल! नमक के साथ ही साथ सारी बातें न्यूनाधिक परिवर्तित हुआ करती हैं। क्षमा कीजिये, हम इस विषय में अधिक लिख कर एक भीषण आन्दोलन नहीं उठाना चाहते। किन्तु, हम इस

बात का विश्वास दिलाते हैं कि मेरे हृदय में अपने ग्रन्थों के प्रति उतनी ही श्रद्धा है कि जितनी आप के हृदय में । और इससे भी अधिक न्याय के लिये । प्रकृति सेवक ।

—o—

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेदिक प्रदर्शन .

१९७६

मध्यभारत.–इन्दौर ।

सदैव की भाँति इस वर्ष भी निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन के साथ आयुर्वेदिक प्रदर्शन होगा । जिस में सर्व प्रकारकी हरी व सूखी वनस्पतियां, खनिज और रासायनिक द्रव्य, शास्त्रोक्त औषधियाँ, पेटेण्ट दवाइयाँ, आयुर्वेदोपयोगी यन्त्र, शस्त्र तथा ग्रन्थादि का सग्रह होगा । आयुर्वेद की यथासाध्य सेवा करनेके लिये हम लोग कटिबद्ध हुए हैं । किन्तु मध्य भारत का 'आयुर्वेदिक' क्षेत्र इतना व्यापक नहीं जितना अन्य प्रान्तों का है । और यह काम केवल प्रान्तविशेष का ही नहीं किंतु सब प्रान्त के देशबन्धुओं का तथा विशेषकर वैद्यबन्धुओं का और आयुर्वेदप्रेमी सज्जनों का है । इस लिये सर्वसज्जनों की सेवा में विनीतभाव से प्रार्थना की जाती है कि उपरोक्त प्रदर्शन में कौन कौन सी नई बातें तथा उपयुक्त व्यवस्थाएँ होनी चाहियें–आदि के विषय में अपने अपने सुपरामर्श निम्नलिखित पतेपर भेजकर उपकृत करें । तथा समय समय पर अपने सुविचारों से सहायता देते रहें । सारांश यही है कि गतप्रदर्शनी में किन किन बातों में न्यूनता तथा अप्रबन्ध रहा और इस बार कौन कौन सी व्यवस्था तथा उपयुक्तता होनी चाहिये—इस ओर ध्यान देकर इस देश-सेवा के कार्य में अपने बहुमूल्य समय का कुछ, व्यय करेंगे तो समय २ पर हमारी लघु सेवा आप को प्रसन्न रखनेका कारण होसकेगी । देश के इस अमूल्य आयुर्वेदशास्त्र को पुनरुद्धार करने के लिये यथासाध्य सबको योग देना परम कर्तव्य है ।

प्रदर्शिनी में हरी वनस्पतियों आदि के गमले दूर दूरके प्रान्तों से आने में बड़ी असुविधाएँ तथा खर्च होता है । इस लिये जो सज्जन जिन जिन वनस्पतियोंके बीज कंद आदि भेज सकें वे उन बीज कन्दादिकों की सूची भेजने की कृपा करें । बीज कन्द वगैरह जिन जिन की

ओर से आवेंगे, वे उन्हीं के नाम से अङ्कित गमलों में लगाये जावेंगे तथा प्रदर्शिनी में भी उन्हीं के नाम से रक्खे जावेंगे।

प्रदर्शन के नियमादि तथा फार्म वगैरह छपरहे हैं। इस लिये प्रदर्शनोपयोगी साहित्य जिन जिन सज्जनों को भेजना हो वे लोग अपने पूरे पते सहित हमें सूचित करें जिस से छपने पर उन की सेवा में शीघ्र ही भेज दिये जावेंगे।

वैद्य लक्ष्मीनारायण त्रिवदी } राजवैद्य सूर्यनारायण वैद्य पञ्चानन।
मन्त्री प्रदर्शनविभाग } उपसभापति नि०भा०आ०प्रदर्शन

प्रदर्शन सम्बन्धी पत्रव्यवहार आदि निम्नपते पर करना चाहिये।

राजवैद्य प० सूर्यनारायण उपसभापति, निखिलभारतवर्षीय आयुर्वेदिकप्रदर्शनकार्यालय।

आडा बाजार, इन्दौर सिटी (मध्य भारत)

—०—

कामियाबी की कुञ्जी।

(१)

अगर है चाह दौलत की, बताऊँ तो खज़ाना-में।
मगर है शर्त ये तुझसे, कि पहिले तन्दुरस्ती कर॥

(२)

अगर तुम चाहते बनना जहाँ में आकिलो फाज़िल।
नसीहत अक्ल करती है कि पहिले तन्दुरस्ती कर॥

(३)

अगर है वस्ल की दिलमें, मिलादेंगे सनम से हम।
खड़े हो जाउ मिलने को अगर तुम तन्दुरस्ती कर॥

(४)

जिन्दगी और इज्ज़त में न बट्टा लग सकेगा तो।
ज़माने में रहो साहब हमेशा तन्दुरस्ती कर॥

नयन।

—०—

आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय।

१०) से अधिक की औषधियां पर साथ खरीदने से १०) सैकड़ा कमीशन दिया जाता है।

चन्द्रोदयमकरध्वज म०	फी तोला	२४)
रससिंदूर	,,	४)
स्वर्णमालतीवसंत	,,	२४)
लघुमालिनीवसंत	,,	४)

भस्में।

अभ्रकभस्म सहस्रपुटित	,,	२४)
अभ्रकभस्म शतपुटित	,,	।)
अभ्रकभस्म दशपुटित	,,	२)
रौप्यभस्म	,,	८)
कांत लोहभस्म	,,	१०)
लोह भस्म न० १	,,	४)
लोह भस्म न० २	,,	२)
मंडूर भस्म	,,	१)
हरिताल भस्म (तबकी)	,,	१०)
गोदन्ती हरितालभस्म	,,	॥)
ताम्रभस्म	,,	१)
सीसक भस्म (नागरस)	,,	१)
रङ्ग (वंग) भस्म	,,	१)
सुवर्ण माक्षिक भस्म	,,	५)
यशद भस्म	,,	॥)
खर्पर भस्म	,,	१)
प्रवाल (मूंगा) भस्म	,,	१)
मौक्तिक भस्म	,,	३०)
कपर्दिक भस्म	,,	।)
शंख भस्म	,,	।)
शुक्ति (मोती की सीप) भस्म		॥)

शोधित द्रव्य।

शोधित पारा	फी तोला	।)
सिंगरफ से निकला हुआ पारा		१)
शोधित मैनशिल	,,	।)
शोधित गंधक	,,	।)
शोधित शिलाजीत	,,	१)
शोधित हिंगुल	,,	॥)
शोधित हरिताल	,,	।)
पारे और गंधक की कजली		१)

वनौषधियें।

शिवलिंगी बीज	फी तोला	१)
ब्राह्मी पत्र	फी सेर	४)
शंखपुष्पी (पञ्चाङ्ग)	,,	४)
गुलनीम	,,	१)
धंवासा	,,	२)
करञ्ज बीज	,,	१)
गूमा	,,	॥)
सालपर्णी	,,	२॥)
पृष्टपर्णी	,,	२॥)
थूहर	,,	२)
रास्ना	,,	१)
पियांवांसा	,,	१)
कूडा	,,	१)
नागरमोथा	,,	१)
चौलाई	,,	॥)
काले धतूरे के बीज	फी० तो०	२)
अग्निमंथ (अरणी)	फी सेर	२)
कुम्मेर	,,	२)
पाँढर	,,	२)
कटेरी	,,	॥)
बड़ी कटेरी	,,	२)
श्योनाक (अरलू)	,,	२)
बिधारा	,,	२)
सतावर	,,	२)
असगंध	,,	२)
सेमल की मूसली	,,	१)
सफेद मूसली	,,	१२)
सालम मिश्री	फी तोला	।)
तालमखाना	फी सेर	२)
सकाकुल मिश्री	,,	६)
पुनर्नवा	,,	१)
निर्विषी (पञ्चाङ्ग)	,,	१)
निर्विषी कंद	फी तोला	॥)
दशमूल	फी सेर	२)
विदारीकंद	,,	४)
वाराहीकंद	,,	४)
खिरेंटी	,,	॥)
कंघी	,,	॥)
सहदेई	,,	१)
पोतालगरुडी	,,	४)
दन्ती	,,	४)

इन के सिवा आर्डर आनेपर और वनौषधियें भी भेजी जा सकती हैं।

आयुर्वेदोद्धारक औषधालय की—

❀ परीक्षित औषधियां ❀

सर्वप्रकार के रक्तविकारों पर

❀ अमृतसंजीवनी वटिका ❀

इस को सेवन करने से सब प्रकार की खुजली, दाद, चकत्ते, रुधिरविकार, वातरक्त, उपदंश (आतशक, गर्मी) अंगों का भंग होना शरीर में छिद्रों का होना, नाक का टेढ़ा पड़जाना, हाथ पावों का पसीजना, त्वचा के रोग। कोढ़, शरीर का फटना, पारे के विकार और सब प्रकार के दुष्टघाव आरोग्य होते हैं। नवीन रुधिर उत्पन्न होता है। मुख पर कांति और शरीर में फुर्ती उत्पन्न होती है। दस्त खुलासा होता है। मू १) डिब्बी। डा० म०।)

सर्वप्रकारके ज्वरों पर।

❀ अजया वटिका ❀

यह गोली सब प्रकार के नये पुराने ज्वरों को दूर करती हैं जिन लोगोंको कोनेन माफिक नहीं पड़ती उनके लिये यह बहुत अच्छी है। इस से मलेरिया, विषमज्वर एकतरा, तिजारी, चौथिया, सर्दीलगकरआनेवाला ज्वर, प्लीहा और यकृत् युक्तज्वर शीघ्र दूर होता है। मू०१) डबी०डा०म।)

❀ महालाक्षादि तैल ❀

जीर्ण ज्वर की प्रसिद्ध औषध है। इसको व्यवहार करने से बहुत दिनोंका पुराना, ज्वर, ज्वरकी दाह, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, हड्डी और संधियों की पीड़ा, शरीर का टूटना, खुजली, और असमर्थता दूर होती है तथा वायु और कफ के रोग, पसली का शूल, कमर व पीठ की पीड़ा, घुटनों का दर्द, शिर का दर्द, शरीर का कांपना, मृगी, मूर्छा, पागलपना, भ्रम और प्रसूतरोग में यह अत्यन्त हितकारी है। मूल्य २० तोले की शीशी २) रुपया डाक महसूल ॥-)

❀ क्षुधाप्रदीपनीवटी ❀

इसको सेवन करनेसे सब प्रकारकी मंदाग्नि और अजीर्ण तत्काल शांत हो जाता है। तथा जठराग्नि दीपन होकर क्षुधा बढ़ती है। किया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है। एवं रक्तपित्त खट्टी डकारोंका आना

भोजन का अच्छे प्रकार नहीं पचना, अफारा, पेटमें, गडगडशब्दकाहोना मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, सब प्रकारकी उदरकीपीडा नाभिशूल दस्त और कै का होना संग्रहणी, अतिसार, हैजा और प्लीहा आदि रोग नष्ट होते हैं। दस्त खुल कर आता है। मूल्य १) रुपया।डिब्बी म० ।)

❀ च्यवनप्राशावलेह ❀

यह राजयक्ष्मा और जीर्णज्वर की प्रसिद्ध औषधि है। इससे स्त्री पुरुषों के धातुदोष, क्षय, खाँसी श्वास ज्वर आदि रोग दूर होकर शरीर में अपूर्व बल और तरुणता उत्पन्न होती है। दो सप्ताह सेवन करने योग्य का दाम २) डा० म० =) आ।

चन्दनादि तैल

यह तैल जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, शरीर का सूखना बेहोशी, पागलपन, दिमाग की कमजोरी, घबराहट खुश्की, खुजली, दाह, चकत्ते, फुंसिये, सिरदर्द, सूजन और रक्तपित्तादि रोगों को दूर करके शरीरमें अपूर्व बल और फुर्ती उत्पन्न करती है। मू०२)रुपये शीशी ड० म०॥-)

योगराजगूगल।

योगराजगूगल आमवात रोगों की प्रसिद्ध औषधि है। इस को सेवन करने से सन्धिवात (शरीरकेसमस्त जोड़ों की पीड़ा) आमवात (गाँठ, कमर व पीठ की पीड़ा) पसली कधों का दर्द तथा सब प्रकार की वायु की पीडा दूर होती है। मू० १) रु०डि० डा० म० ।)

व्रणनाशकतैल।

इसको व्यवहार करने से आतशक और गर्मी के घाव, पारे के घाव, नासूर इत्यादि सब प्रकार के घाव शीघ्र आराम हो जाते हैं। मूल्य ॥) शीशी डा० म० ।)

सुजाक की दवा।

इसको सेवन करने से नया पुराना सब प्रकार का सुजाक, पीब का निकलना, कुडे का पडजाना, जलन का होना, खडिया की समान पेशाब का आना इत्यादि सब उपद्रव ७ दिन में दूर हो हो जाते हैं। मू० १) डा० म० ।)

कासघ्नी वटी।

इन गोलियों को सेवन करने से सब प्रकार की खांसी, कफ का गिरना, दमा और हिचकी आदि सब उपद्रव दूर होते हैं। मू० ॥) शीशी। डा० म० ।)

दादकी दवा।

इसको लगाने से नया पुराना सब प्रकारका दाद,खुजली इत्यादि बहुत जल्द आराम होजाते हैं। किसी प्रकार की जलन नहीं होती। मू० ।=) शीशी।

शोधित शिलाजीत।

यह रसायन और वाजीकरण कार्य्य मे सर्वोत्कृष्ट औषधि है। संसार में शिलाजीत की समान वीर्य्य को पुष्ट करने वाली अन्य औषधि नहीं है। अनुपान विशेष से शिलाजीत मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात खड़िया की समान पेशाब का आना, दाह का होना, प्रमेह, उपदंश, व्रण, चोट का लगना, हड्डी आदि का उतर आना, धातु दौर्बल्य, क्षय, खांसी, वात,कफ सम्बन्धी पीड़ा, और सब प्रकार की कृशता दूर होती है। मू० २ तोले की डिब्बी का २॥)

प्रमेह चिंतामणि।

इस को सेवन करने से नया पुराना,प्रमेह,पीव के साथ धातु का गिरना, रुधिर का निकलना, लाल पेशाब का आना,चिनक से पेशाब का उतरना, सोजाक, पथरी, स्वप्नदोष,मूत्रनाली में घाव का होना पेशाब में दागका लगना,पेशाबका फेन आना, पेशाब से पहिले या पीछे वीर्य्य का गिरना और खड़िया की समान पेशाब का होना इत्यादि समस्त विकार दूर होते हैं। १) रु० शीशी। डा० म० ।) आना।

बवासीर की दवा।

इस को सेवन करने से सब प्रकार की खूनी बादी बवासीर और उसके उपद्रव दर्द और रुधिर निकलना, कोष्ठबद्धता दुर्बलता और शारीरिक व मानसिक समस्त क्लेश दूर होते हैं। मू० ॥) आ० डिब्बी डा० म० ।)

उपदंशनाशकघृत।

इस दवाको सेवन करने से आतशक गर्मी और उसके विकार,

पारेके दोष और वातरक्त यह सब शीघ्र दूर होजाते हैं।इस से न कै होती है न दस्त आते हैं न मुँह आता है। मू० १) रु० शीशी डा० म० ।)

उपदंशनाशक मरहम-केवल ३—४ बार लगाने से ही आतशक के घाव, दाद, खुजली आदि उपद्रव छूट जाते हैं। मूल्य ॥) डिब्बी।

एलादिवटिका।

यह गोली प्रत्येक मनुष्यको अपने पास रखनी चाहिये इनके सेवन करने से हैजा, बदहज़मी पेट का दर्द, शूल, के दस्तों का होना तथा सब प्रकार का अजीर्ण दूर होता है। मू० १) रु० डिब्बी। डॉ० म० ।)

अबलाहितकारिणी वटी।

इन गोलियों के सेवन से कष्ट से मासिक धर्म का होना, ऋतु काल की भयानक पीड़ा, मासिकधर्म का न होना, घटने और, कमरकी पीड़ा बोझ सा मालूम होना, मस्तक का घूमना, कम या ज्यादे दिनों में रजोदर्शन होना, वस्त्र में दाग का लगना, शरीर की दुर्बलता नाभि के नीचे की पीड़ा, मनकी अप्रसन्नता आदि सब उपद्रव दूर होकर मासिकधर्म यथा समय सुखपूर्वक होता है। मू०१) रु० डिब्बी का० म० ।) आ०।

स्त्रीसञ्जीवनशङ्कर घृत।

इस परम कल्याणकर घृत का सेवन करने से स्त्रियों को श्वेतप्रदर (सफेद पानी का जाना) रक्तप्रदर (लाल पानी का जाना) अरुचि, शिर पीड़ा, मूर्छा, राध सहित धातु का गिरना, दुर्बलता कमरका दर्द और चित्तका न लगना यह सब विकार दूर होकर शरीर आरोग्य होता है। शरीर का वर्ण सुन्दर होता है। तथा गर्भ उत्पन्न होता है। जिन स्त्रियों को गर्भ नहीं रहता या रह कर गिर जाता है उनके यह सब दोषों को दूर करता है। मूल्य २) रु० शी० । डा० म० ।✓) आ०

बालसंजीवन वटिका।

इन गोलियों को सेवन करने से बालकों के समस्तरोग, सर्दी खांसी, जुकाम, ज्वर, पसली गुड़ा का आजाना दूध का नहीं पीना, मसान बाधा, बार बार दूध डालना निरन्तर रोना, सूखना, दस्तों का होना, दांत निकलते समय की पीड़ा आदि सब उपद्रव दूर होते हैं। मू० १) रु० शीशी डा० म० ।)

पता—वैद्य शंकरलाल हरिशंकर
आयुर्वेदोद्धारक औषधालय, मुरादाबाद।

* वैद्य के नियम *

(१) 'वैद्य' प्रति मास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १।)

(३) 'वैद्य' नमूने में केवल एक अंक भेजा जाता है। कोई सा अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य चाहिए जिस से उत्तर देने में विलम्ब न हो। लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिये।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँच कर भेजा जाता है, बहुत से ग्राहक किसी अङ्क के न पहुंचने यत किया करते हैं, इस का कारण रास्ते की असाव- धानी ही हो सकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क मिले वह दूसरे अङ्क के पहुंचते ही हमें सूचना अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्व प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर, 'वैद्य आफिस,मुरादाबाद", के पते से भेजने चाहियें।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ७ } मुरादाबाद, सितम्बर १९१९ { संख्या ९

पवन--गुण-गान ।

—o—

(१)

विश्व विधायक परम तत्त्व की परम-सृष्टि तू ।
प्रकृति मात की परम दयामय परमसृष्टि तू ॥
पावन, परम प्रसिद्ध पवन ! तू प्राणों प्यारा ।
रहे न कुछ भी शेष होय यदि तन से न्यारा ॥

(२)

ऊषा का सत्कार लिखूँ, सञ्चार प्रात का ? ।
वर्णन करूँ समीर, अथवा सौन्दर्य रात का ? ॥
कुसुमावलि के मध्य तुम्हारी स्तुति गाऊँ ? ।
हिमगिरि-शिखर-समीप जाय वा तुम्हें रिझाऊँ ?

(३)

प्राणों से स्पर्श करो—तो प्राण शुद्धि हो ।

लगो हृदय से आय अहा! तो शान्त-बुद्धि हो॥
नयन ज्योति है तुही-भुजाओं का बल तू है।
अष्टसिद्धि-नव निद्धि कल्पना केवल तू है॥

(४)

स्वास्थ्य-सुधारक भ्रमण तुम्हारा सिद्ध हस्त है।
पवन-उपासक जीव चित्त से सदा मस्त है॥
शारीरिक सब रोग, शोक, भय, मोह विनाशी।
परम तत्व से लाय जीव में भरो प्रभा सी॥

(५)

यदपि कालरा और प्लेग के प्रेरक भी हो।
तो भी इन को नष्ट-भ्रष्ट कारी-भारी हो॥
बीमारी के तन्तु उड़ाकर करो सफाई।
होते हो सन्तुष्ट तनिक ही पूजा पाई॥

(६)

कृपा तुम्हारी बिना नाक कब गन्ध गहेगी?।
मस्तक के बेमोल तत्व जो शुद्ध करेगी?॥
क्षय जैसे बेदीर-शत्रु पर विजय कराई।
हेता, निर्बल और निकम्मा, सुदृढ़ बनाई॥

(७)

जिन अङ्गों पर अधिक तुम्हारा बोझ रहेगा।
उन पर सबसे अधिक तेज का ओज रहेगा॥
मुँह के मस्से और मुहाँसे, झाइँ खोवें।
ऊसा में कर भ्रमण जीव ऊसा सम होवें॥

(८)

प्रातकीय कमनीय पवन कामिनी हितकारी।
करे गुलाबी रङ्ग बनावे कुञ्ज उजियारी॥
माथे वाली पीर, हृदय की जलन, मिटाता।
तृतीय-प्रहर का, सरल अजीर्ण-समूल हटाता॥

(९)

विद्या-सेवक सुजन तुम्हारे ऋणी रहेंगे।
करें न विद्या प्राप्त मनुज जो घृणा करेंगे॥
शोध स्वास्थ्य पुन देय तात! बल, विद्या देवी।
महामूढ़, पशु, दुष्ट, निशाचर पवन न सेवी॥

(१०)

देखो कितने शीघ्र बनें यों काम अधूरे ।
पवन-तनय से होंय हमारे पाठक पूरे ॥
सांसारिक—सङ्ग्राम-विजय करवाले, भाई ।
आते, सन्ध्या समय तात की बात सुनाई ॥

नयन ।

मलेरिया ज्वर

मलेरिया ज्वर की परिभाषा ।

हम जिसे विषमज्वर, सर्दी का ज्वर, इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि ज्वर कहते हैं, उसी को अँगरेजी में मलेरिया ज्वर कहते हैं। मलेरिया का मूल अर्थ गंदी वायु (Mala Aria-Babu)है। आधुनिक विद्वानों ने कठिन परिश्रम करके जो सिद्धान्त स्थिर किया है वह १७१२ वीं सदी के मनुष्यों को विदित नहीं था। इसी लिए उस समयके लोग इस ज्वरको उत्पत्ति दूषित भूमि और दूषित वनस्पति से मानते थे। इसी कारण उस समय से इस ज्वर का नाम मलेरिया पड़गया। किन्तु इस समय मनुष्यों में उक्त धारणा नाम मात्र को शेष रहगई है तो भी यह अभी तक मलेरिया नाम से ही प्रचलित है।

मलेरिया कहाँ होता है ।

यह रोग पृथ्वी के समशीतोष्ण और उष्ण देशोंमें बहुलता से होता है। एवं इटली, हालैण्ड और जर्मनी के उत्तरीय भाग, रूस के अधिक भाग, तथा अफ्रीका, ईरान, चीन और भारतवर्ष में बहुत समय से देखा जाता है।

भारतवर्ष में यह रोग बरसात के दिनों में प्रारम्भ होकर शरदृऋतु में अपना प्रबलरूप धारण करता है। शीतकाल में भी इसका जोर नहीं घटता बरन विशेष दुःखदायी होता है। गर्मी के प्रारम्भ होते ही इस ज्वर का जोर घटने लगता है पर तो भी यह कहीं न कहीं पूरे वर्ष तक न्यूनाधिक रूप में बना ही रहता है। पहले लोग समझते थे कि खीरा ककड़ी आदि फलोंको खाने से यह रोग होता है। किन्तु चिकित्सा शास्त्र में इस रोग का प्रसार मच्छरोंके द्वारा होना बताया गया है। अतएव इस लेख से प्राचीन लोगों की समझ धारणा भ्रम-

पूर्ण ज्ञात पड़ती है। भारतवर्ष के गुजरात, मारवाड़ आदि कम देशों में जो ज्वर होता है वह अन्य प्रान्तों के ज्वरों से बहुत हल्का होता है। इसका कारण यह है कि इस प्रान्त में रेतीली और रूखी भूमि अधिक है। गर्मी के दिनों में तेज धूप पड़ने से पानी के तालाब जल्द सूख जाते हैं। इससे मच्छड़ अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते। परन्तु गङ्गा नदी और हिमालय के समीपवर्ती प्रांत बिहार, बंगाल का पूर्वी भाग, तथा सिंधु, सतलज और ब्रह्मपुत्र आदि बड़ी २ नदियों के समीपवर्ती तथा नहरों की बाहुल्यतावाले प्रांतों में यह ज्वर अत्यन्त भयंकररूप धारण कर लेता है। इसीप्रकार गोदावरी और महानदी के मध्य का प्रदेश, मध्य भारत, नागपुर और बंबई प्रांत के काँगड़ा जिलों में भी यह ज्वर अत्यन्त प्रबल होता है। मद्रास प्रांत नीलगिरि पश्चिमी घाट और ब्रह्मदेव के ऊपरी भाग में यह ज्वर हानिकर है। आसाम और भोटान प्रांत भी इस ज्वर से मुक्त नहीं हैं। इस प्रकार समस्त ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में इस ज्वर का प्रायः दौर दौरा निरंतर बना रहता है।

भारतवर्ष में गत दस वर्षों की मृत्यु-संख्या का कारण खोजने से विदित हुआ है कि प्रति वर्ष ४० लाख से लेकर ६०लाख तक मनुष्य ज्वर ही से मरजाते हैं। इससे सिद्ध है कि जितनी मृत्यु ज्वरसे होती हैं उतनी किसी अन्य रोग से नहीं होती। एवं क्षय त्रिदोष आदि रोगों से जिन में कि ज्वर आता है उन की मृत्युसंख्या ठीक रूप से नहीं की जासकती। अनेक स्थानों में म्यूनिसिपैलिटियों की ओर से मृत्यु-संख्या की गणना करने का जो प्रबन्ध किया जाता है, उस से उक्त रोग में मरने वाले व्यक्तियों का ठीक ठीक पता नहीं चलता। इन से हमारे देश की उक्त बीमारी के होने का मूल कारण समझने में बड़ी कठिनाई होती है।

मलेरिया ज्वर से भारतवर्ष में साधारणतः प्रति वर्ष १० लाख मनुष्य मरते हैं और जिस वर्ष यह बीमारी भयंकर रूप धारण करती है उस वर्ष २० लाख मनुष्य इस सामान्य रोग से काल के कवल बनते हैं।

भयंकर कष्ट-पूर्वोक्त प्रमाण से विदित होता है कि हमारे देश में यह रोग कितना भयंकर कष्ट पहुँचा रहा है। यह जान कर हम को अत्यन्त खेद होता है। हमारा इतना बड़ा देश इस एक ही बीमारी

से नष्ट होता जारहा है। प्लेग नवीन रोग है। इस रोग से मनुष्य झटपट प्राण त्याग देते हैं, इस लिए यह अधिक भयंकर समझा जाता है। इसीप्रकार हैज़ा भी बहुत जल्द मनुष्योंके प्राण हरण करता है। इन रोगों के द्वारा इस देश के बहुसंख्यक नवयुवक अकाल ही में मृत्यु के मुख में पतित हो जाते हैं। इसी कारण उक्त बीमारियोंके लिए शीघ्र उपाय किये जाते हैं। हम सामान्य ज्वर की इतनी अधिक परवा नहींकरते। किन्तु हमें ध्यानरखना चाहिए कि वह पुराना शत्रु हम लोगों पर गुप्त रूप से किस प्रकार आक्रमण करता है।

भारतीय सेनाका एक पञ्चमांश प्रतिवर्ष इस ज्वरसे पीड़ित होताहै। सेनाके रहने के लिए छावनी की जगह बहुत स्वच्छ और उत्तम वायु वाली होती है। आरोग्य शास्त्र के कितने ही नियमों का वहाँ पालन किया जाता है। सेना का वेतन भी अच्छा होता है। नाना प्रकार की उत्तम औषधियों का संग्रह भी वहाँ रहता है। समस्त सिपाहियों और उन के कुटुम्बियों के लिये कुनैन मुफ्त दी जाती है। इन के सिवा सेना के रहने के स्थान के पास यदि दलदल या सीड़दार स्थान होते हैं तो वे दुरुस्त करा दिये जाते हैं और मच्छरों को दूर करने के लिए भी बहुत अच्छा प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार सेना के सिपाही तो इस सत्यानाशी ज्वरसे किसी प्रकार पिण्ड छुड़ा लेते हैं किन्तु बेचारे ग्रामीण भाइयोंकी क्या दशा होती है यह लिखने से बाहर है।

मलेरिया ज्वर से पीड़ित मनुष्यों की जो संख्या ऊपर दी गई है उस में प्रायः ९ भाग तो ग्रामीण लोगों का ही होता है। सरकार की ओर से ग्रामीणों के लिए डाकखानों के मार्फ़त कुनैन बेचने का प्रबन्ध किया जाता है और म्युनिसिपालटी की मार्फ़त गरीब लोगोंके लिए कुनैन मुफ्त भी दी जाती है।

ऊपर लिखी मृत्यु के सिवा यह बीमारी और कितनी कितनी खराबियाँ करती है उस की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

कभी कभी यह ज्वर जीर्ण होजाता है। तब रक्त पानी के समान होजाने के कारण शरीर फीका और बहुत कमज़ोर होजाता है, ताक़त कम होजाती है, पेट बढ़जाता है, चेहरा सूज जाता है, यकृत् और प्लीहा बढ़ जाती है, शिर में पीड़ा और अनेक बार शिर में गर्मी चढ़ जाती है, भूख मंद हो जाती है, कोष्ठबद्धता रहने लगती है, कुछ अधिक समय के बाद यह ज्वर शरीर में अपना घर कर लेता है। तब

गुर्दों में दर्द होता है, कमर और गुह्यद्वार में पीड़ा होती है। इस प्रकार सारा शरीर रोग से व्याप्त होजाता है। रोगी अधिक पीड़ित होता है। एक प्रसिद्ध गणितज्ञने हिसाब लगाकर सिद्ध किया है कि मलेरिया ज्वर के द्वारा एक मृत्यु होजाने के समीपवर्त्ती १३३ व्यक्तियों पर उसका न्यूनाधिक परिमाण में प्रभाव पड़ता है। यह गणितज्ञ का कहना है कि उक्त १३३ मनुष्योंमें से ५० मनुष्य बीमार होजाते हैं। इससे **सिद्ध होताहै कि प्रतिवर्ष १० लाख मनुष्य मरते हैं और पांच करोड़ मनुष्य बीमार होते हैं।**

सन् १६०८ ई० में यह संख्या दुगुनी होगई थी कि जिससे पाँच के बदले १० करोड़ मनुष्य बीमार हुए इस में कुछ भी सन्देह नहीं।

इस प्रकार के घोर कष्ट से देश की आर्थिक और जीवन सम्बंधी कितनी हानि होती है उस का विचार करने से हृदय धड़कने लगता है। शोक की बात है कि जो देश अन्य महान् देशों के समान होना चाहिए उसी देश में आज असंख्य व्यक्ति मर रहे हैं और इस प्रकार उन की संख्या दिन प्रतिदिन घट रही है। कुटुम्ब का भरण पोषण कर सकनेवाले अनेक व्यक्ति दरिद्रता और बीमारी के असह्य दुःख से दुखित रहते हैं, कमानेवाले व्यक्तियों पर निर्भर रहने वाले निर्दोष बालक निरपराध स्त्रियों और वृद्धपुरुषों की यथार्द्र दशा का अनुभव शहरों में रहने वाले तथा गाड़ी और घोड़ों पर चलने वाले मनुष्यों को किस प्रकार हो सकता है।

ज्वर के कारण हजारों मील जमीन बेकार पड़ी रहती है। मज़दूर लोगों में द्रव्य कमाने की शक्ति का भीषण ह्रास होरहा है। इन लोगों की कमाई का बहुत सा समय बीमारी में ही बरबाद होजाता है और शारीरिक सुख न होने के कारण सुस्ती और दुर्बलता से व्यथित होजाने से अनेक लोगोंका मन कामकी ओर प्रवर्तित नहीं होता। प्रिय पाठक वृन्द, अपने देश के प्रतिशत ८० व्यक्तियों का निर्वाह काश्तकारी अथवा मजदूरी से ही होता है, और इसी कारण इनके शरीर और मन सम्बंधी अनेक विचार उत्पन्न होकर हमारे सामने खड़े होजाते हैं। जिस देश में रोगी, दुर्बल और आधि व्याधिग्रसित व्यक्ति वास करते हैं, उस देश के लोगों के कष्ट दूर किये बिना उन्नति की आशा किस प्रकार की जा सकती है। हमारे देश पर कोई ईश्वरीय कोप नहीं है और न हमारी यह दुर्दशा कोई देवी देवता ही हटा सकते हैं। इस

विज्ञान और तर्क युग में इन बातों को कोई मान भी नहीं सकता।

हमारे रहने का दोष।

हमारे शारीरिक रोग हमारी असावधानी ही के परिणाम स्वरूप हैं। जनता में फैले हुए रोग भी हमारे रहन सहन के दोष ही से पैदा हुए हैं। आरोग्यशास्त्र और शारीरिकशास्त्र के नियम अन्य पवित्र कर्त्तव्यों के समान ही उपयोग में लाये जावें तो हमारे अनेक कष्ट और रोग दूर हो जावें। हमारे देशवासी घर और आँगनों के लाभों से भलीभाँति परिचित हैं। परंतु वे मुहल्लों और ग्रामों की स्वच्छता और स्वच्छवायु सेवन के लाभों को नहीं जानते। शहरों के तंग गली, कूँचे, कुएँ और नालियां प्रायः बारहों महीने गंदी रहती हैं। हमारे घर अंधकारमय तंग और मैले रहते हैं। हमारे घरों की बनावट इस प्रकार की होती है कि उन में सूर्य की धूप और प्रकाश भलीभाँति नहीं आ सकते। शोक की बात है कि हमारे अनेक देश भाई उक्त प्रकार के मैले घरों में अपना समस्त जीवन व्यतीत करने में कुछ भी संकोच नहीं करते। देश की ऐसी दशा देख कर हृदय में स्वभावतः ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं, कि जिस समय हमारे देश में शिक्षा सम्बन्धी इतने विचार चल रहे हैं उस समय सेनेटरी, साइन्स, हाईजीन आरोग्यता और स्वच्छता के विषय में भी विद्यार्थियों के लिए खास पुस्तकें सिखाना भी बहुत ज़रूरी है। क्यों कि शिक्षित समुदाय के आचार विचार अवश्यमेव ही सामान्य जनता में बिना फैले नहीं रह सकते। इस प्रकार की आशा की जा सकती है कि आरोग्य शास्त्र का ज्ञान रखने वाले मनुष्यों के रहन सहन के नियम वर्तमान काल को अपेक्षा अवश्य ही उत्तम होंगे। झूठ बोलना जैसे एक पाप समझा जाता है वैसे ही आरोग्यता सम्बंधी भूल करना भी एक पाप है। परंतु खेद की बात है कि अनेक शिक्षित पुरुष भी उसे ऐसा नहीं समझते।

पुरुषों के प्रयत्नों की आवश्यकता।

रोगों के कारण हमारी शारीरिक अवनति इतनी भयंकर हो उठी है, कि समस्त देश में फैलने वाली तथा यथानुक्रम चलने वाली दुर्घटना से प्रजा लगातार मरक हो रही है। किन्तु पुरुषों के निरन्तर उद्योगों से इस में अवश्य रुकावट हो सकती है। प्लेग कर मलेरिया ज्वर की रुकावट के लिये यदि सरकार और प्रजा मिल कर प्रयत्न करे तो इस में सन्देह नहीं कि कुछ काल में ही उक्त हुए रोग का

नामो निशान भी न रहे। उन देशों में जहाँ कि मलेरिया शुरु में अपने हाथ पैर फैलाये, उन देशवासियों के सुधार और उपायों से वे देश मलेरिया ज्वर से मुक्त होगये। में हिमालय प्रदेश के समान ही उक्त ज्वर तीव्र गति से होता किन्तु अब वहां पर बहुत थोड़े भाग में उक्त ज्वर रहगया पहले जैसा उस का भीषण रूप भी नहीं है।।

इस के विरुद्ध जिन देशों में यह ज्वर होता ही नहीं था; देशों में वहां के लोगों की अज्ञानता के कारण यह रोग पहुँच गया है। उदाहरण के लिए हमारे पार्वत्यप्रदेशों को ही ले लीजिये। उक्त प्र- देशों में वायु सेवन करनेवाले व्यक्तियों ने किसी समय भी इस ज्वर के दर्शन नहीं किये। किन्तु शोक है कि ऐसे स्थानों में भी इस ज्वर ने, अब अपना अड्डा जमा लिया है। मारीशसद्वीप में केवल ४५ वर्षों से मलेरिया का आविर्भाव हुआ है। इस स्थान में उक्त समय के पहले यह ज्वर नाम को भी न था।

इतिहास।

मनुष्य की उन्नति का मलेरिया प्रबल शत्रु है। मनुष्यों के संहार करने का कार्य वह संग्रामरूप में करता रहता है। शांति और अशांति के समय में यह अपना कार्य बेरोक टोक गति से चलाता रहता है।

मानव इतिहास के भिन्न भिन्न युगों में बड़े बड़े व्यापारी शिर पर आये हुए मलरिया के त्रास से बचने के लिये स्थान त्याग कर देते थे। इतिहास से विदित होता है कि जिस समय मानव-जाति बाल्या- वस्था में थी उस समय भी इस ज्वर का अस्तित्व था। मिसर देश की प्राचीन प्रजा को भी इस ज्वर का ज्ञान था। सन् ई० के १००० वर्ष पूर्व अरबी काव्य में इस का वर्णन आया है। सन् ई० के पूर्व ८ वीं शताब्दी में लिखी हुई "बोरस आफिपरी स्टोफेईन्स" में भी मले- रिया ज्वरसम्बन्धी उल्लेख है। सन् ईसवी के पूर्व पांचवीं शताब्दी में लेखक हीपोक्रेटस ने इस ज्वर का पूरी तौर से वर्णन किया है। सन् ईसवी की पहली शताब्दी में लेखक केलशश ने आधुनिक काल में मानेजाने वाले चिन्हों का वर्णन किया है। लिकागो, वेरो, ओवी और प्राचीन रोम के अन्य लेखकों ने मलेरिया ज्वर का पूरा वर्णन किया है।

हमारे देश के ग्रन्थों में चरक, सुश्रुत और हारीतसंहिता प्राचीन प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन में उक्त प्रकार का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

जिस प्रकार हरिणों का शिकार करने के लिए सिंह प्रबल है, उसी प्रकार अनेक रोगों में ज्वर बलवान् है। देव आदि समस्त शरीर धारण करने वाले प्राणियों में मनुष्य के सिवा अन्य किसी प्राणी में ज्वर सहन करने की शक्ति नहीं है। इस के बाद और भी अनेक श्लोक हैं जिन का नीचे अर्थ दिया जाता है।

मनुष्य अपने अच्छे कामों के फल से स्वर्ग में देवत्व प्राप्त करता है और वह अपने सत्कार्यों के फल भोगने के लिए स्वर्ग से पृथ्वी पर आता है, और मनुष्य में देवत्व रहने के कारण ही वह ज्वर सहन कर सकता है और पशुत्ववाले मनुष्य ज्वर के कारण नष्ट हो जाते हैं।

जिस प्रकार पशुओं में सिंह राजा है उसीप्रकार सब रोगों का राजा ज्वर है। जिस प्रकार दाहक पदार्थों में अग्नि श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अन्य रोगों में ज्वर श्रेष्ठ है। इस ज्वर की उत्पत्ति रुद्रदेव की क्रोधाग्नि से हुई है और इसी लिए यह सब प्राणियों को दुःख देने वाला है।

ज्वर देव के तीन पैर हैं। उस के पास भस्म रूपी आयुध है। उस के तीन मस्तक और बहुत बड़ा पेट है। रंग बादामी और उज्ज्वल है। आँखें पीली, जंघा सूखी हुई है, उसके दर्शन भयंकर हैं और यह अत्यन्त बलवान् है। लोगों का नाश करने के लिए यही पुरुष रूपी ज्वर है। जिसप्रकार अग्नि ईंधन के जलाने में समर्थ है, धातुओं का नाश करने के लिये विष समर्थ है, उसी प्रकार मानवदेह को नष्ट करने के लिए यह ज्वररूपी विष समर्थ है॥

ऋषियों में श्रेष्ठ आत्रेय ऋषि ने अपने पुत्र हारीत से, जो आयुर्वेद शास्त्र में अतिकुशल थे कहा:-हे पुत्र, मैं इस ज्वर की उत्पत्ति कहता हूँ सो सुन। यह महाघोर चार प्रकार का ज्वर किस प्रकार आठ प्रकार का हो गया यह भी सुन। जिस समय दक्ष प्रजापति के यज्ञ में शिव की पत्नी सती जल गईं उस से क्रोधित हो अतियोगी महादेव ने उक्त यज्ञ भंग करते समय एक लंबा श्वास छोड़ा उस श्वास से वातादि विकार वाले आठ प्रकार के ज्वर उत्पन्न हुए और इन अत्यन्त बलवान् ज्वरों ने पृथ्वी के प्राणियों में हाहाकार किया।

जिस प्रकार प्रसिद्ध वैज्ञानिक भी पृथ्वी की ठंड के और प्राणियों में शीत प्रवेश के विषय में केवल कल्पना ही करते उसी प्रकार कविगण ईश्वर की संहारकशक्ति को महादेव का मान कर ज्वर आदि उत्पन्न होने की रसिक और तात्विक करते हैं। जिसप्रकार उक्त कथनानुसार सृष्टि को अनादि उसी प्रकार मलेरिया उत्पन्न करने वाले जीवों की उत्पत्ति काल से माननी पड़ती है। इस बीमारी का भिन्न भिन्न प्रकार किस प्रकार आविष्कार किया गया उसे भी जान लेना आवश्यक है,

१५ वीं शताब्दी का अरबी हकीम 'राजीम' मलेरिया ज्वर के विषय में जानकारी रखता था। उस ने इस विषय में लेख द्वारा अपना मन्तव्य प्रगट किया है।

नवीन प्रकार की खोज।

मलेरिया ज्वर की नवीन रीति द्वारा जो खोज लगाई गई है उस का इतिहास १७ वीं शताब्दी से प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में तीन महत्व पूर्ण खोज हुई हैं।

(१) मलेरिया ज्वर की खास Specific औषध सिनकोना ही से मलेरिया ज्वर मिटता है इस बात की खोज १७ वीं शताब्दी में लगाई गई।

(२) सन् १८८० ई० में इस बात की खोज लगाई गई कि लिवर के रक्त में मलेरिया के जन्तु होते हैं।

(३) रेनाल्ड और रोसो-ने इस बात की खोज लगाई कि मच्छड़ों द्वारा ही यह बीमारी एक मनुष्य के पास से दूसरे मनुष्य के पास जाती है। प्रारम्भ में सिनकोना वृक्ष का मूल नाम नहीं था, परन्तु स्पेन का वाइसराय डेल सीनकोन पेरू में गया था। वहां इस की स्त्री मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो गई और उक्त वृक्ष की छाल से ही उक्त स्त्री को आराम हुआ तब उक्त वाइसराय अर्थात् डा० जान डेलवेग इस वृक्ष को स्पेन में ले गया और उसी समय से उक्त वृक्ष का नाम सिनकोना रक्खा गया। कुनैन इसी वृक्ष से तैयार की जाती है। सिनकोना की खोज सन् १५४० ई० में हुई।

इस खोज के बाद मलेरिया ज्वर और दूसरे प्रकार का ज्वर जो उस समय चल रहा था दूर हुआ। सिनकोना से दूर होने वाले और न

होने वाले ज्वर का स्पष्ट भेद होगया। इस रोग के सम्बन्ध में [illegible] ईस्वी में मोटल ने १७५३ ई० में होरटीए ने और १७२३ ईस्वी में सिडनहम ने जो खोज किया की लिए समस्त डाक्टरी विद्या [illegible] की कृतज्ञ है।

सन् १८२० ईस्वी में केऊनंटाऊ और पेलीटयर नामक दो रसायन शास्त्रियोंने सिनकोना की छाल में कुनैन की खोज की। यह खोज मलेरिया ज्वर के उपचार के लिए बहुत अधिक महत्व की है। सन् १८४५ ई०के लगभग भारतवर्ष में पहले पहल कुनैन का उपयोग किया गया।

१८वीं सदी में योरप निवासियोंने पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में कलोनियों को स्थापना की। इनके द्वारा पृथ्वी के जुदे जुदे भागों में मलेरिया ज्वर किस प्रकार फैलगया उस का वृत्तान्त इस प्रकार है। मलेरिया के साथ अन्य जाति के ज्वर का मिश्रण किस प्रकार किया जाता था और वह किस प्रकार दूर किया गया इस का वर्णन निम्नलिखित है। १६ वीं शताब्दी तक उक्त बात का निबटारा पूरी तौर से नहीं किया गया था। उस समय अनेक विद्वान् डाक्टर भी उष्ण देशोंके अनेक ज्वरों को भली भांति नहीं समझ सकते थे। सर पेट्रीक मेन्सन ने उष्ण देशके ज्वर का वर्गीकरण न करने के कारण ज्वर को "Unclassed fevers of the Tropics" कहा है।

जन्तु

इस बात का पता लगता है, कि प्राचीन काल के विद्वानों को भी मलेरिया ज्वर के जन्तुओं के विषय में शङ्का हुई थी। १० वीं सदी में थोड़ु वीएस, सन् ईस्वी से ५० वर्ष पहिले वेरो और कोल्मेला ने सन् ईस्वी को १० वीं सदी में जो कुछ लिखा है वह उक्त लेख से विदित होजाता है। इन जन्तुओं के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने के योग्य है। वह यह कि लगभग चालीस वर्षों में जन्तुविद्या में बहुत उन्नति हुई है और तेज़ सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता से बड़े बड़े रोगों के जन्तुओं की उत्पत्ति मालूम हो चुकी है। इस विद्या के प्रताप से इन सूक्ष्म जन्तुओं के भिन्न भिन्न प्रकार, इनकी जीवन कला एवं सर्वव्यापकता के विषय में बहुत से गुप्त विषय प्रकाशित होचुके हैं। ये सूक्ष्म जन्तु हमारे साथ मित्रता के रूप में अथवा शत्रुता के रूप में अद्भुत कार्य करते हैं। इस विषय का ज्ञान बहुत मनोरञ्जक

है। इस सम्बन्ध में हमारी पूज्य मातृभूमि में एक समय में कुछ खोज लग चुकी है। जिस समय सूक्ष्मदर्शक यंत्र नहीं था समय भी हमारे पूर्वज उक्त जन्तुओं के अस्तित्व के विषय में रखते थे। क्यों कि उस समय जैन धर्म संसार में अहिंसा की घोषणा कर रहा था। और उसने उस समय गरम जल को में लाने का नियम प्रचलित किया था।

सन् १७१७ ई० में लेन्सीसी कोहोवान नामक ज़मीन से निकलती थी। उस में कीलमें रहनेवाले जन्तु और इन जन्तुओं के रहने की बात मानी जाती थी। और ऐसा भी मानते थे, कि उक्त जन्तु मनुष्यों के शरीर में श्वास मार्ग से प्रवेश करते हैं। किन्तु वास्तव में मलेरिया जन्तुओं का सब से पहले खोज करनेवाला फ्रेंच फौज में रहनेवाला लेवरान डाक्टर था। सन् १८८०ई० के नवम्बर की ६वीं तारीख को अलजीरियर प्रान्त के कान्सटेन्टाई ग्राम में कि जहाँ मलेरिया जोरों पर था खोज किया गया।

सन् १८८५ ई० में गोलजीए लेवरान ने खोज करने का यथार्थ तरीक स्वीकार किया और मलेरिया ज्वर के विषय में बहुत सा साहित्य उपस्थित किया।

कुछ समय के बाद मारशीया फावी फेली और बीग्राम ने इटली में फैले हुए सब मलेरिया ज्वर की बड़ी बारीकी से खोज की। इस ने इकतरा, चौथिया और म्यादी ज्वरों को जुदे जुदे प्रकार से स्पष्टरूप से समझाया है।

गोरहाईट ने सन् १८८४ ई० में सिद्ध किया है कि मलेरिया ज्वर से पीडित व्यक्ति का रक्त यदि तन्दुरुस्त मनुष्य के शरीर में सूक्ष्म पिचकारी द्वारा पहुँचाया जावे तो वह तन्दुरुस्त मनुष्य मलेरिया ज्वर से पीडित होजायगा।

परन्तु आज से ३२ वर्ष पहले मलेरिया ज्वर का वास्तविक कारण नहीं जाना गया था और उस समय तक यह बात अंधकार ही में थी कि १५ वर्ष से अधिक उम्र वाले मनुष्यों में मलेरिया ज्वर किस प्रकार फैलता है।

सन् १८६४ई० में सर पेट्रिकमेनस ने सूचित किया कि मलेरिया ज्वर से पीडित व्यक्ति का ज्वर तन्दुरुस्त मनुष्य के शरीर में मच्छरों

[illegible] ही पहुँचता है। क्यों कि ज्वर के जन्तु अन्य किसी प्रकार [illegible] व्यक्ति के पास नहीं पहुँच सकते। इसी समय जर्मनी [illegible] जन्तुविद्याविशारद रोबर्ट कोक ने मलेरिया के साथ [illegible] के सम्बन्ध में अपनी विरुद्ध राय दी थी। परन्तु सर [illegible]किमेन्स की सूचना के विषय में रोनाल्ड और रोस्रो ने सन् १८९७ ई० में हमारे भारतवर्ष में ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और [illegible] उद्योग के बल से मच्छरों द्वारा ही मलेरिया ज्वर का फैलना [illegible] द्वारा सिद्ध कर दिया। रोनाल्ड रोसो के खोज का परिणाम [illegible] होते ही डा० कोक ने अपना कार्य्य जहाँका तहाँ ही रहने दिया।

मेजर रोस का खोज बहुत प्रभावशाली गिना जाता है। इस खोज ने प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में न केवल मान ही पाया है वरन समस्त संसार का इस खोज से बहुत उपकार हुआ है।

प्रिय पाठकगण, मलेरिया जैसे रूखे विषय पर इतनी लंबी चौड़ी हांकने के कारण यदि आपको उकताहट होगई हो तो क्षमा करना। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा मलेरिया ज्वर के विषय में किस किस प्रकार के खोज किये गये हैं और कितनी शताब्दियों में किन किन महापुरुषों ने अनेक प्रकार के प्रयोग किये हैं इन बातोंका वर्णन पहले किया जा चुका है।*

—०—

दशरथबल्वन्त यादव।

अल्पायु।

मानव जाति की अल्पायु के सम्बन्ध में विचार करने के पूर्व साधारण लोगों को एक विचित्र प्रश्न का उत्तर दे देना परमावश्यक है। लोगों का विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जन्म के साथ अपने जीवन की अवधि लेकर उत्पन्न होता है; अर्थात् उत्पन्न होनेके समय अन्यान्य रेखाओं के साथ, विधाता आयु रेखा की भी रचना करता है। जिस की जितनी आयु विधाता ने निश्चित करदी है, वह उसी का अधिकारी है। उस निश्चित आयु में किसी प्रकार की उन्नति, अवनति नहीं होसकती! मनुष्य, चाहे जितना अनियमपूर्वक अस्वास्थ्य-कर कार्य करे, किन्तु वह अपनी लिखी हुई आयु के पहले कदापि नहीं मर सकता! उसी प्रकार, स्वास्थ्य-रक्षा के नियम, सावधानी के साथ पालन करने से भी आयु में उन्नति नहीं हो सकती!

---

* श्रीमान् डा० हरिप्रसाद भगवान देसाई एल० पी० पी० एण्ड एम० बम्बई के गुजराती भाषण के आधार पर।

सुधार के लिए उपदेशक को स्वयं आचरण-पटु होना चाहिए अंग्रेजी शिक्षा के कारण जैसे वस्त्र और खाद्य-पदार्थों का प्रचार रहा है वैसे स्वास्थ्यनाशक साधन अन्यत्र हो ही नहीं सकते ।

(२)प्रज्ञापराध--प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि जो कहे उसे न करना प्रति अपराध करना है, इसीको प्रज्ञापराध कहते हैं। प्रज्ञापराध प्रकार का होता है। यह जान कर कि इस प्रकार का आहार स्वास्थ्य-विनाशक होताहै और उसीप्रकार का आचरण करना पहला प्रज्ञापराध है। ज्ञानद्वारा यथार्थ कर्तव्य को प्रकृतिद्वारा अथवा इन्द्रिय-प्रबलता द्वारा उलटा समझलेना द्वितीय प्रज्ञापराध है ।इसी अवस्था में पड़कर लोग इतने मन के वशीभूत होजाते हैं कि वे ज्ञान की बात सुननेमें एकदम असमर्थ होजाते हैं ।फिर विवेकशून्य होकर हिताहितज्ञान रहित आचरण करना प्रज्ञापराध का तीसरा लक्षण है। हम यह जानते हैं कि प्रातः उठना स्वास्थ्य के पक्षमें हितकर है, किन्तु आठ बजे से पूर्व शय्या नहीं त्यागते । हम यह जानते हैं कि रात्रि-जागरण हानि कारक है किन्तु थियेटर देखना नहीं छोड़ते । हम जानते हैं कि चा पीनेसे स्वास्थ्य बिगड़ता है, परन्तु लोगों की देखादेखी से उसे छोड़ नहीं सकते । हम जानते हैं विदेशीय खाद्य और औषध देश व काल के विपरीत होने से अहितकारक वस्तु हैं, परन्तु समय पड़ने पर मन को उलटा-सीधा समझा कर उनको व्यवहृत करने से नहीं चूकते।

(३) उपकरणाभाव-अर्थात् दरिद्रता । विशुद्ध पुष्टिजनक खाद्य, निर्मल पानी, ऋतु उपयोगी वस्त्रादि, सुखदायी वासस्थान, परिमित श्रम, सेवातत्पर भृत्य, रोगी अवस्था में चिकित्सक की प्राप्ति और पथ्य औषधि आदि यही उपकरण हैं। यहाँ पर धनाभाव शब्द इस कारण व्यवहृत नहीं किया गया कि बहुतेरे लोभी मनुष्य धनाढ्य होने पर भी शरीर-रक्षण, उपकरणादि का संग्रह नहीं कर सकते । उपरोक्त उपकरण ही स्वास्थ्यरक्षक हैं, धन की राशि नहीं। उपकरण-संग्रह के लिये अधिक श्रम करना भी ठीक नहीं। धन पाकर उसे स्वास्थ्यरक्षक कार्यों में व्यय करना और विलासी कार्यों से मुख मोड़ना सर्वसाधारण का काम नहीं एवं विद्याहीन धनाढ्य

मस्तिष्क में गर्मी और खुश्की उत्पन्न होजाने के कारण ही मोचक रोग उत्पन्न हो जाता है। मस्तिष्क में गर्मी उत्पन्न होने कई एक कारण हैं। उष्ण भोजनों की अधिकता से, धूप या सम्मुख अधिक काम करने से, विरहानल में भटपटाने से, पढ़ने से, पित्त के बिगाड़ से, पित्त की अधिकता से, कई रातों जागरण करने से, रक्त में (पागलपन की) उष्णता उत्पन्न होजाने से, और रक्त की खुश्की से मस्तक में गर्मी उत्पन्न होजाती है। कभी २ ये रोग पेट के बिगाड़ से भी पैदा हो जाता है। अधिक खा जाने से, अजीर्ण स और खाद्य पदार्थों की असह्य कडाई के कारण से भी अनिद्रा हो जाती है। अनिद्रा की पहचान यही है कि नींद नहीं आती अथवा आवश्यकता से कम आती है। अनिद्रा के कारण शरीर की यह अवस्था हो जाती है—नाक के दोनों नथुने सूख जाते हैं, प्यास अधिकता से लगती है, मस्तक के भीतर गर्मी मालूम होती है। मुखमण्डल पीला होजाता है। यदि पित्त की अधिकता हुई तो मुख का स्वाद कड़वा होजाता है, दिल में धड़कन उत्पन्न हो जाती है, चित्त में बेचैनी पैदा होजाती है और अजीर्ण हो जाता है। रक्त की बुराई अर्थात् खुश्की से घबराहट अधिक होती है, भय मालूम होता है, जब कभी घड़ा आध घड़ी के लिये नींद आ भी जाती है तो किसी खटके से अकस्मात् आंख खुल जाती है। ऐसी दशा में बुरे २ स्वप्न भी दिखाई देते हैं कि जिससे क्षणिक निद्रा टूट जाती है। इन अवस्थाओं में अचानक नींद खुल जाने से गर्मी अधिक बढ़ जाती है और रोगी में पागलपन के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

कई दिनों के लगातार जागरण के पश्चात् सूखी खांसी उत्पन्न होजाती है। ये खांसी कई रोगों को पैदा कर देती है। यदि खाँसी पैदा हो जावे तो अत्यन्त भयानक बात समझना चाहिये।

अनिद्रा के रोगी को ऐसे स्थान में रखना चाहिये कि जहाँ पर कोलाहल न होता हो। रोगी को धीरे २ मनोरञ्जक गल्पें सुनाना चाहिये और उसकी हथेलियों व पैरों को नर्म कपड़े से सहलाना चाहिये। रोगी को कभी अकेला न छोड़ना चाहिये। उसके कमरे में बिजली या गेस आदि की तेज रोशनी कदापि न करना चाहिये। तेज रोशनी गर्मी उत्पन्न करती है। साथ ही यह भी विचार रखना चाहिये कि रात्रि के समय में कभी अँधेरा भी न होने पावे। नीम

तेल का दीपक लाभदायक है । सरसों के तेलसे भी काम चल-ता है । रोगी के मस्तक पर बकरी के दूध से तर किया हुआ कपड़ा रखना चाहिये । रोगी को भोजन सदैव भूख से कम खाना चाहिये । इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि अजीर्ण न होने पाय और यदि अजीर्ण है तो कभी कभी उपवास करना और अत्यन्त हल्का भोजन करना उचित है ।

इस रोग में गणित करना, लेख लिखना, कविता करना अथवा पढ़ना अत्यन्त हानिकारक बातें हैं । स्त्री-प्रसङ्ग एकदम निषेध है । चा, काफी, गरम दूध, मसाले, मिरच, गर्म भोजन, लहसुन, प्याज, गुड़, तेल और नशा उत्पन्न करने वाले मादक द्रव्य कदापि सेवन न करने चाहियें । रोगी को आग, धूप क्रोध, शोक, विरह, विचार, या चिन्ता से पृथक् रहना चाहिये । इस रोग में तम्बाकू खाना अत्यन्त हानिकारक है ।

ठंडा दूध, मीठा दही, माखन, मलाई आदि स्निग्ध पदार्थ खूब खाने चाहियें तथा लौकी तोरई, पालक, गाजर, भिंडी, सीताफल, अँगूर अनार, सेब, सन्तरा, ईख, नासपाती, ककड़ी, खीरा भात तरबूज, खरबूजा, सरदा, आलूचा, लीची, नारंगी, गेहूँ की पतली रोटी मूंग व उड़द की दाल, और, खिचड़ी भात, आदि तर एवं पाचक द्रव्यों का सेवन हित-कर है । मिठाई कम खाना चाहिये । पेठे की मिठाई खाना चाहिए । अजीर्ण की अवस्था में मूंग की दाल का पानी अरहर की दाल, मूँग की खिचड़ी, गेहूं का दलिया आदि अत्यन्त हल्के पदार्थ खाना चाहिये ।

खीरे के बीज तीन माशे आलूबुखारा पाँच दाने, छिले हुए कद्दू के बीज तीन माशे और सूखी धनिया तीन माशे, इन सबको गाव जबाँ के बारह तोले अर्क में पीसकर और फिर छानकर उसमें नीलोफर का शरबत दो तोले मिलाओ, आधा २ सुबह और शाम को पीना चाहिये । तुलसी के हरे पत्ते सूंघना चाहिये । तुलसी के हरे पत्ते अथवा मोये के हरे पत्ते तकिये के पास सरहाने रखने चाहियें ।

हकीम

—o—

मासिक--धर्म ।

मासिक धर्म को ऋतु रजोदर्शन, फूल गिरना, महीनी होना, कपड़ों से होना पीरा, अलग बैठना, माहवारी, अशुद्धता, आदि २

नामों से पुकारते हैं। इसको उर्दू में—हैज़,फ़ारसी में कज़ा और अँगरेज़ी में, मन्थली कोर्स (Monthly Course) मिनज़ (Menses), और मिनस्टुरयाशन (Menstruation) कहते हैं।

रज,एक प्रकार का रक्त है जो गर्भाशय की रगों द्वारा,ख़ास स्थान में हो कर बाहर निकलता है। किन्तु, यह प्रकृत रक्त नहीं कहा जा सकता। यह एक, रक्त से उत्पन्न हुआ, तरल पदार्थ-विशेष है जिसका रँग लाली लिये हुए होता है।

घरों में बंद रहने वाली स्त्रियों को मासिक-धर्म का महत्वपूर्ण दान देकर प्रकृति माता ने उनके साथ बड़ा उपकार किया है। उस के द्वारा बहुत से लाभ होते हैं,जो नीचे लिखे जाते हैं। रजोदर्शन से गर्भाशय, निर्विकार हो जाता है, और उस में वीर्य्य ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। बवासीर,प्रदर,रक्तदोष और खुजली आदि रोग उत्पन्न नहीं होते। चित्त हल्का हो जाता है और पाचन-क्रिया नूतन शक्तिलाभ करती है। मासिक-धर्म में किसी तरह की खराबी पैदा होजाने से सन्तान पैदा नहीं होसकती। वीर्य का ग्रहण भी इसीके कारणहोता है एवं सन्तान की पालक और, पोषक सामग्री भी रज की सहायता से शरीर में प्रस्तुत होती है। रज-विकार, अन्यान्य रोगों का भी जन्मदाता है। स्त्रीजाति का जीवन—मरण इसी मासिक धर्म पर निर्भर है।

सब से प्रथम रजोदर्शन कब होता है? इस प्रश्न का निश्चयात्मक एक उत्तर नहीं दिया जा सकता। देश, काल, वेश-भूषा,खान-पान, और आचार विचार के अनुसार यह बात व्यक्तिगत है। भारतीय स्त्रियों के यूरोपीय स्त्रियों से दो तीन वर्ष पूर्व रजोदर्शन हो जाता है, इसका कारण-देश की शीतोष्णता है। यहां तक कि बँगाल की स्त्रियों के पञ्जाब की स्त्रियों से,कुछ समय पहले मासिक धर्म हो जाता है। कृषक और मज़दूर की पुत्री से, धनिक पुत्री गरम मसालेदार और चरपरे खाद्यों के खाने और नवीन वेश भूषा के कारण से शीघ्र ऋतु-मती होती है। दूषित प्रेम कथाओं के उपन्यास पढ़ने वाली लड़कियां और वेश्यापुत्रियां, प्रेमचर्चा के कारण और भी शीघ्र ऋतुमती होजाती हैं। वे दरिद्र लड़कियां भी जो लड़कों के साथ कारखानों में काम करती हैं, शीघ्र कपड़ों से हुआ करती हैं। हिन्दुओं में बारह वर्ष से चौदह वर्ष तक रजोदर्शन का समय

ठहराया गया है। किन्तु डा०रोबर्टस ने तो धर्म तक की कन्या का मासिक होना लिखा है।

रज कितना आता है? इस बात का भी सम्बन्ध शारीरिक दशा और देश-काल एवं खान-पान पर है। अनुमान से, प्रतिमास दस तोले से २५ तोले तक (४ औंस से १० औंस तक) रज का निकलना भी एक दशा में नहीं रहता। प्रथम दिवस न्यून मात्रा में, पुनः अधिक, और अंत में पुनः न्यून निकला करता है।

रजोदर्शन के तीन दिवस बतलाये गये हैं किन्तु इस समय प्रायः चार और पाँच दिन तक कहीं कहीं सात, आठ या दस दिन तक रज (थोड़ा २) आता रहता है। विकारके कारण भी ऐसा होजाता है। कोई २ स्त्रियाँ तीन दफने के बाद ही ऋतुमती होने लगती हैं। वास्तव में तीन ही दिन की अवधि ठीक और लाभदायक समझी जाती है।

जिस समय प्रथम रजोदर्शन होता है,उस समय से बाल्यावस्था का अन्त और युवावस्था का प्रारम्भ होता है। उस समय स्त्री के समस्त अंग पुष्ट होजाते हैं और लज्जा का विशेष रूप से,उस पर प्रभाव देखाजाता है। मस्तिष्क उन्नत होजाता है। एक या दो मास के पश्चात् चित्त में एक प्रकार की अशान्ति उत्पन्न होती है। स्तनों में थोड़ा २ दर्द और कुछ २ खिंचाव सा अनुभव होने लगता है। कमर में पीड़ा और शरीर में गर्मी उत्पन्न होजाती हैं। इस के बाद रजोदर्शन होता है। उस समय लड़कपन विदा होजाता है और स्वभाव में गम्भीरता आजाती है। शरीर का गठन नवीन रूप से आरम्भ होता है और यौवनकाल अपनी समस्त विशेषताओं के साथ प्रभाव डाल देता है। पहली बार मासिक धर्म होकर फिर बराबर नियमपूर्वक तब तक नहीं होता जब तक कि विवाह नहीं होजाता। विवाह के पश्चात् सिवा गर्भावस्था के फिर कभी बंद नहीं होता।'

सदैव जब रजोदर्शन का समय निकट आता है तो स्त्री के शरीर में शिथिलता, धड़ और जंघाओं से तनाव, मस्तक में भारीपन सा प्रतीत होने लगता है। निर्बलावस्था में,मस्तक-पीड़ा,साधारण ज्वर, जी—मचलना, कमर-दर्द और हृदय में गरमी प्रकट होजाती है। इन उपरोक्त चिन्हों द्वारा, स्त्री रजोदर्शन की निकटता समझ लेती है।

नहाने के बाद पन्द्रह दिन तक गर्भ की स्थापना हो सकती है। इन दिनों में प्रसंग करने से गर्भ का रहना अनिवार्य है, और यदि

न रहे, तो किसी न किसी (स्त्री या पुरुष) में अवश्य किसी प्रकारका दौर्बल्य या रोग है। पन्द्रह दिन के बाद गर्भाशय का मुख बंद हो जाता है और पुनः गर्भ नहीं ठहर सकता।

जब गर्भ रह जाता है, तब मासिक होना बंद हो जाता है। और यही रज, बच्चे के दुग्ध में सहायता पहुँचाता है। पुनः जब गर्भ का समय आता है तब फिर रजोदर्शन होता है। उस समय बच्चे को दुग्धपान कराना त्याग देना चाहिए। रजोदर्शनके दिनोंमें प्रसंग करना, स्त्री पुरुष दोनों को हानिकारक है और गर्भावस्था में प्रसङ्ग करने से स्त्री और विशेषकर बालक को अत्यन्त हानि पहुंचती है।

किसी २ को तीस वर्ष के बाद ही, परन्तु बहुधा चालीस और पचास वर्ष के बाद रजोदर्शन बंद हो जाता है। किन्तु शारीरिक शक्तिवाली, आनन्द में पली हुई और पुष्ट पदार्थ भक्षण करनेवाली स्त्रियाँ, साठ और सत्तर वर्ष पर्यंत भी ऋतुमती हुआ करती हैं।

रजोदर्शन के दिनों में, ठण्डे पानी से काम न लेना चाहिए। रुई का व्यवहार भी हानिकारक है। इस अवसर पर पेट को गर्म रखना चाहिए, बर्फ न खाना चाहिए। कठिन-परिश्रम, ठंडी-वायु और ठण्डे जल से स्नान आदि हानिकर चेष्टाएं हैं। वर्षा के जल से भीगना, ठण्डे पदार्थों का खाना, सीढ़ियों पर शीघ्रतापूर्वक चढ़ना, रोना, काजल-लगाना, नाखून-काटना, तेल लगाना आदि बातें त्याग देनी चाहिए। भोजन, शीघ्र पचने वाला ही खाना चाहिए।

शुद्ध रजोदर्शन, नियमित समय पर बिना कष्ट के, अत्यन्त लाल, चमकदार किन्तु कुछ फीके रंग का होता है। सफेद वस्त्र पर यदि दाग पड़ जाय और उसे धोने से चिन्ह मात्र भी शेष न रहे, तो समझना चाहिए, कि यह ठीक और निर्विकार है। यदि दाग शेष रहे, रंगत खराब हो और मासिक के समय पीड़ा हुआ करे तो विकार समझना चाहिए।

किसी निर्बलता के कारण चित्त पर शोक द्वारा लगे हुए आघात के कारण, क्रोध के आधिक्य के कारण, मासिक दिनों में ठण्ड लग जाने आदि के कारण, अधिक मस्तिष्क कार्य करने अथवा अधिक विषयसेवन के कारण, गर्भाशय की भीतरी नसों के संकुचित हो जाने के कारण, रगों के दब जाने और गर्भाशय पर वरम (सूजन) हो जाने के कारण से मासिक धर्म बंद हो जाता है।

अधिक क्षति होती है। समस्त-स्नायुमण्डल दाहयुक्त और उत्तेजित हो जाता है। इसके सेवन करने पर पहले कुछ उत्तेजना होकर बाद को शिथिलता होजाती है। इस शिथिलता को स्नायु-मण्डल का कोमल पक्षाघात कहा जा सकता है। काफी के सेवन से प्रथम एक प्रकार की कुछ स्फूर्त्ति अवश्य उत्पन्न होती है, किन्तु उससे स्नायुकोष और मस्तिष्क-कोष का अधिक क्षय होता है। काफी के सेवन करने वालों में अनिद्रा-रोगयुक्त मनुष्यों की कमी नहीं है। हिस्टेरिया Nwrasttaenia एवं इसी प्रकारके अनेक स्नायुसम्बन्धी रोग इसके व्यवहार करने से उत्पन्न होजाते हैं। अधिकतर काफी का सेवन करने से किसी किसी व्यक्ति में एक प्रकार की उन्मत्तता का भाव प्रकट होने लगता है।

टैनिन स्तम्भक औषधि है। यह लार और पाचक रसके परिपाक होने के कार्य में हानि करता है और अन्ननाली के भीतर उत्तेजना पैदा करता है। इस के पीते ही भोजन करने पर भोजन का परिपाक होना अत्यन्त कठिन हो जाता है। टैनिन पाकस्थली के समस्त तन्तुओं को दुर्बल बना देता है।

काफ़ी सेवन का दुष्परिणाम।

काफी का सेवन अजीर्ण रोग का एक प्रधान कारण है। विशेषकर दुःसाध्य-स्नायुमण्डल की अजीर्णता को भी पैदा कर देता है। काफी का सेवन एक बार करने पर भी इस रोगसे मुक्त होना नितान्त असम्भव है। वमन, शरीर में पीड़ा, सिर दर्द, मूर्च्छा पाकस्थली में पीड़ा का होना, उदरविकार, अजीर्णता इत्यादि रोग काफी सेवन करने से उत्पन्न होते हैं।

निरन्तर काफी सेवन करने का परिणाम हृदय-यन्त्र पर उत्तेजना पैदा करता है; एवं इस के दुष्परिणाम से छाती और सम्पूर्ण शरीर में हड़कल और इसी प्रकार के अन्यान्य लक्षण प्रकट होते हैं। बहुत से आदमी यह समझते हैं कि दो या एक प्याला काफी पीने से विशेष हानि नहीं होती अधिक सेवन करने से दोषों का प्रादुर्भाव होता है। किंतु ऐसा समझना भूल है। अल्प मात्रा से काफी के सेवन से भी अत्यंत हानि होती देखी जाती है। दुर्बल स्नायुओं वाले मनुष्य के ऊपर कॉफी का बहुत जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। तम्बाकू और मदिरा के समान, काफी मस्तिष्क को विषैला बनाकर बुद्धि शक्तिकी तीक्ष्णता का ह्रास करदेती है। काफी सेवन करने वाला पुरुष, उसके

अभाव में पूर्व की भाँति सरलतापूर्वक दिमाग से काम नहीं लेसकता। अब तक शरीर मे से इस का विष पूर्णरूप से दूर न होजाता, तब तक स्वाभाविक अवस्थानुसार कार्य्य करने की आशा नहीं की जासकती।

जिन्होंने अपने स्वास्थ्य और बल को ही लक्ष्य बना रक्खा है एवं जो मन और शरीर की शक्ति को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, उनको काफी अथवा इसीप्रकार के अन्य मादक द्रव्यों का सेवन करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। ×

—०—

परीक्षित प्रयोग।

ब्रह्मास्त्र रस—संखिया १ टंक, सफेद कत्था १ टंक और पूर्वी डोडा का बीज (?) १ टंक, इन तीनों औषधियों को कत्था-चूना लगे हुए पान के रस में १२ घण्टे तक उत्तम प्रकार खरल कर काली मिरच के समान गोलियाँ बनालेवे। इनमें से प्रतिदिन एक २ गोली बताशे में रखकर एकतरा, तिजारी और चौथिया ज्वरवाले रोगी को देवे। इस पर शक्कर के चूरमे का पथ्य करे। एवं शीताङ्गसन्निपात, प्रलाप, कफ और ऊर्ध्वश्वास वाले रोगी को दो दो गोली अदरख के रस अथवा नागवल्ली के रस के साथ सेवन करावे तो उक्त रोगशीघ्र नष्ट होते हैं। यह रस अत्यसन्ना वाले विसूचिका रोगी को देने से भी विशेष उपकार होता है।

उपदंश गजकेसरी—काले तिल १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, खुरासानी अजवायन १ तोला, शुद्ध भिलावे १ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, अकरकरा १तोला, रोडें१तोला, अजमोद १तोला, लौंग १ तोला अजवायन १ तोला और पुराना गुड़ ११ तोले, इन सब औषधियों को एकत्र कूट पीस कर और गुड़ के साथ मिलाकर बेर की गुठली के समान गोलियां बनालेवे। प्रतिदिन प्रात काल और सन्ध्याकाल मे चार २ गोली सेवन करे, किन्तु दाँतों से गोलियों का स्पर्श न होने पावे। इस प्रकार ७ अथवा १४ दिन तक नियमित रूपसे सेवन करने पर यह रस उपदंश रोग को अत्यल्पकाल में शमन करता है। इस के सेवन से मुँह नहीं आता। यदि किसी रोगी के मुँह आजाय तो कचनार की छाल, चमेली के पत्ते, बेर की जड़, और नीलाथोथा,

× स्वास्थ्य समाचार के १६ वर्ष के अंक १ से।

इनका पंचाथ बनाकर दो तीन दिन तक दिनमें कई बार कुल्ले करे तो मुखपाक शान्त होजाता है।

पारदविकार–चिकित्सा–भैंस के गोवरका रस १ पाव छान कर प्रतिदिन प्रातः समय सेवन करे। इस प्रकार २५ दिन तक सेवन करने से नया अथवा पुराना पारे के सेवन से उत्पन्न हुआ विकार तत्काल नष्ट होता है। इस औषधि को रोगी के सम्मुख नहीं बनाना चाहिये। एवं शुद्ध गन्धक को प्रतिदिन प्रातःकाल चार २ मासे प्रमाण लेकर सेवन करने से सब प्रकार का पारे का विकार शान्त होता है।

उरः क्षत रोग पर–उरो मत्वा क्षत लाक्षां पयसा मधुसंयुताम्।
सद्य एव पयो जीर्णे पयसाद्यात्सशर्करम्॥

शुद्ध लाख को बारीक पीसकर प्रतिदिन प्रातः, मध्यान्ह और सायकाल में चार २ मासे प्रमाण लेकर शहद में मिला कर चाटे और ऊपर से चीनी मिला हुआ दुग्ध पान करे तो इस से उरः क्षत,खाँसी, खूनकी वमन और पूयमिश्रित रक्ताष्ठीवन आदि विकार शीघ्र नष्ट होते हैं। अथवा खाँसी के लिए चन्द्रामृतवटी या शृङ्गाराभ्रक का सेवन करावे तो भी विशेष लाभ होता है। ये सब औषधियाँ हमारी कई बार परीक्षा की हुई हैं।

पं॰ भवानीदत्त वैद्यशास्त्री मु॰–केकड़ी, जि॰–अजमेर.

—o—

आंख के जाले व फूले पर।

समुद्रफेन १ तोला, नौसादर १ तोला, कलमीशोरा १ तोला, फटकरी १ तोला, लाहौरी नमक १ तोला और कच्चा नीलाथोथा १ माशा, इन सब औषधियों को एकत्र बारीक पीसकर कपड़छन कर लेवे। फिर इसको प्रति दिन दोनों वक्त सलाई द्वारा आँजे तो इस से आँख का जाला, फूला, आंख से पानी का बहना एवं अन्यान्य नेत्र-सम्बन्धी समस्त विकार तत्काल नाश होते हैं। यह योग हमारा कितनी ही बार का अनुभव किया हुआ है।

रघुनाथ डाक्टर बद्रीराम जी आप सेलाना, जिला नारसिंहगढ़।

—o—

पाचक चटनी।

अमलतास की १ पाव फलियाँ को कूटकर नीबू के आधसेर में दो दिनतक भावना देवे, फिर धूप में सुखालेवे। तत्पश्चात्

दारचीनी, सोंठ, काली मिरच, छोटी इलायची, पीपल और हींग, ये प्रत्येक दो २ तोले, सेंधा नमक, काला नमक, कालादाना और जीरा, प्रत्येक पाँच २ तोले लेवे। प्रथम हींग और जीरे को घी में पच काले होने को बालू में डालकर मन्द मन्द अग्नि द्वारा भूनलेवे। फिर सबको एकत्र कूट पीसकर कपड़छन करके उक्त रसमें मिलादेवे।इसप्रकार यह पाकश्चावलेह सिद्ध होता है। इस की ३ मासे से लेकर १ तोलातक मात्रा को बढ़ाता हुआ प्रतिदिन नियम से सेवन करे तो इससे मन्दाग्नि आलस्य, अरुचि, अजीर्ण और विरसता प्रभृति रोग बहुत जल्द दूर होते हैं और खूब भूख लगती है। रात्रि को सेवन करने से सुबह को दस्त खुलासा होता है, चित्त सदा प्रसन्न रहता है और भोजन में रुचि उत्पन्न होती है। यह स्वर्गीय रसायनशास्त्री जी का अनुभूत योग है और हमने भी इस की कई बार परीक्षा की है।

पित्ताधिक्य पर ज्वरनिवारक-चूर्ण।

त्रिरायता, नागरमोथा और पित्तपापड़ा, इन तीनों को एक एक तोला लेकर चूर्ण करलेवे। फिर छः माशे से एक तोले तक चूर्ण को २० तोले जल में पकावे। जब पकते २ पाँच तोले जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर शीतल होनेपर सेवन करे। इसप्रकार दोनों वक्त, इस औषधि को सेवन करने से सात अथवा ग्यारह दिन में पित्ताधिक्य ज्वर निश्चय नष्ट होजाता है।

जीर्णज्वर पर गुडूचीसत्त्व।

गिलोय का सत्त्व ८ रत्ती, दूध ५ तोले और मिश्री ६ माशे, सबको एकत्र मिलाकर प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्या समय सेवन करने से जीर्णज्वर, धातुक्षीणता और उष्णतादि विकार २१ अथवा ११ दिन में अवश्य नष्ट होते हैं। यह उत्तम योग उष्णप्रकृति वाले मनुष्यों के लिए अमृत के समान हितकारी है।

धातुजीर्णकावलेह—दारचीनी, इलायची, तमालपत्र और नागकेशर, ये प्रत्येक औषधि दो २ तोले लेकर १२० तोले जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे। फिर उस क्वाथ में २० तोले मिश्री मिलाकर अवलेह सिद्ध करे। इस में से नित्य ३ मासे से लेकर ६ मासे तक सेवन करे तो मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, संग्रहणी, मलाश्रित वायु, श्वास, खांसी और कफ पित्तसम्बन्धी रोग तत्काल नाश होते हैं। एवं अग्निदीपन क्षुधा और मान-

सिक व शारीरिक शक्ति की वृद्धि होती है। यह योग हमारे मित्र रामनारायण जी शर्मा द्वारा अनुभव किया हुआ है। अग्निमान्द्यादि रोगों में तो यह प्रयोग विशेषकर उपयोगी है।

सूरजमल जैन, फूलबाजार मु॰—जालना, निजाम (स्टेट)

उपदंश रोगपर—अमलतास के वृक्ष की जड़ को पीस कर लेप करने से और अमलतास के गूदे को तीन माशे प्रमाण प्रतिदिन नियम से एक सप्ताह पर्यन्त सेवन करने से गलित उपदंश शीघ्र दूर होता है। उपदंश के साथ २ या पश्चात् जो बद या गाँठ उत्पन्न हो जाती है; उस पर तिनपतिया की जड़ की पुलटिस बांधने से ४ प्रहर में उक्त गाँठ नष्ट होजाती है।

शङ्करप्रसाद शर्मा आयुर्वेदीय नि॰था॰ बेचडी, बेमेतरा, जि॰—दुर्ग।

वातपित्तज्वर पर—नागरमोथा ३ माशे, बड़ी हरड़ की छाल २ माशे, गिलोय ३ माशे, सोंठ ३ माशे, दोनों प्रकार की कटेरी ६ माशे, पित्त पापड़ा २ माशे और धनियाँ ३ माशे, इन सब औषधियों को एकत्र कूट कर चौगुने जल में पकावे। जब पकते २ चतुर्थांश जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर शीतल होजाने पर मिश्री डालकर यह क्वाथ रोगी को दोनों वक्त सेवन करावे तो वातपित्तजन्य ज्वर बहुत शीघ्र आराम होता है। यह योग हमारा कितनी ही बार अनुभव किया हुआ है।

वैद्यभूषण पण्डित रामेश्वरदत्त शर्मा सिहोर, पोष्ट-डाबला (जयपुर)

—:०:—

प्राप्ति-स्वीकार।

शास्त्रीजी की पुस्तकें—'चिकित्सक' मासिक पत्र के सम्पादक वैद्यराज पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री ने कृपा करके हमारे पास निम्नलिखित दो पुस्तकें समालोचनार्थ भेजी हैं।

(१) सरल चिकित्सा और (२) गृहवस्तु-चिकित्सा। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ॥) आने है। दोनों ही पुस्तकें बड़ी उपयोगी हैं और परिश्रम के साथ लिखीगई हैं। शास्त्रीजी ने इन को लिखकर सर्वसाधारण का विशेष उपकार किया है।

सरलचिकित्सा में ज्वर अतीसार, अजीर्ण, मन्दाग्नि, अर्श, खांसी, श्वास आदि अनेक रोगों के प्रायः सुलभ और अनुभूत योगों

के द्वारा चिकित्सा लिखी गई है। प्रत्येक योग के साथ उस के बनाने की विधि, मात्रा, अनुपान, व्यवहार विधि आदि बातें बड़ी सरल रीति से वर्णित हैं। पुस्तक के अन्त में जो परिशिष्ट लगाया गया है उस से कितनी ही औषधियों का परिमापासम्बन्धी ज्ञान सहज ही होसकता है। वैद्यक का व्यवसाय आरम्भ करने वाले परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियोंके लिए तो यह बड़े काम की चीज़ है ही; किन्तु साधारण हिन्दी पढ़े लिखे मनुष्य भी इस के द्वारा विशेष लाभ उठा सकते हैं।

गृहवस्तु चिकित्सा—इस में नित्यप्रति घरके काम में आने वाली अनेक घरेलू चीज़ों के प्रयोगों द्वारा चिकित्सा लिखी गई है। जैसे गेहूँ, जौ, चना, बाजरा, मूँग, उड़द, चावल आदि अन्न दूध, दही, मट्ठा घी, माखन, गोमूत्र गुड़, राब, खांड़, मिश्री, नमक, मिरच, धनियां, जीरा, हल्दी, मेथी, हींग, इलायची आदि मसाले, घर का धुआंसा, मकड़ी का जाला, मूषे की मेंगन, तमाखू, सन, रुई, कोयला, मोम, मिट्टी, चूना, पान, सुपारी, सिरका, खल आदि अनेक पदार्थों के प्रयोगों का उल्लेख है। भाषा इतनी सीधी सादी है कि जिस को सामान्य पढ़ी लिखीं स्त्रियां और बालिकायें तक भी पढ़ कर अपने कुटुम्ब का बहुत कुछ उपकार करसकती हैं। हमारी राय में ये दोनों पुस्तकें गृहस्थमात्र को अपने घर मँगाकर रखनी चाहिएँ।
प्राप्तिस्थान जगन्नाथप्रसाद-औषधालय, कानपुर।

आत्म धर्म—लेखक, जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। प्रकाशक-मूलचन्द किशनदास कापड़िया, चन्दावाड़ी सूरत। मूल्य ।॥)

इस पुस्तक में शान्ति-सुख (आत्म-सुख) प्राप्त करने का उपाय बताया गया है। सूरत में आत्मधर्म सम्मेलन नाम की एक संस्था है। उस संस्था का मुख्य सिद्धान्त प्राणिमात्र में समभाव उत्पन्न करना है। उक्त संस्था के ११ नियम हैं। जो प्रत्येक मनुष्य के मनन करने योग्य हैं। उन्हीं नियमों के आधार पर इस पुस्तक की रचना कीगई है। अध्यात्मप्रेमी और शान्तिसुखकी इच्छा करने वाले सज्जनों को यह पुस्तक मँगाकर अवश्य पढ़नी चाहिए।

सुखसागर भजनावली—इस पुस्तक के रचयिता भी उक्त ब्रह्मचारी महोदय हैं और प्रकाशक भी वही कापड़ियाजी हैं। मूल्य ॥)
यह पुस्तक जैनमित्र के २० वें वर्ष के उपहार में पाठकों को भेंट

की गई है। समालोचनार्थ एक कापी हमारे पास भी आई है। इस में अध्यात्म विषय के अनेक पद, लावनी, गज़ल, ठुमरी आदि लिखे हैं। जिन की रचना साधारणतः अच्छी है। पुस्तक में अशुद्धियाँ बहुत रह गई हैं कि जिन के लिए कई पृष्ठ का शुद्धिपत्र लगाना पड़ा है। कितने ही पदों में छन्दोभङ्ग दोष बहुत ही खटकता है। तथापि पुस्तक पढ़ने और मनन करने योग्य है। इसको पढ़ने से मनमें अपूर्व शान्ति—सुख का अनुभव प्राप्त होता है। अध्यात्मप्रेमियों के सिवा अन्य लोग भी इसके द्वारा कुछ न कुछ अवश्य आनन्द लाभ कर सकते हैं।

प्राच्य और पाश्चात्य—पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्दजी की बंगला पुस्तक का यह अनुवाद है। अनुवादक—पं० नरोत्तम व्यास और प्रकाशक-साहित्यरत्नकार्यालय, आगरा। मूल्य ।≈)

इस पुस्तक में भारत और योरप की चालरीति, नीति और मौलिक सभ्यता की निष्पक्ष रूप से आलोचना कीगई है। पुस्तक बड़ी ही अच्छी है। जो लोग भारत की प्राचीन रास्तरीति-नीति और सभ्यता को व्यर्थ एवं नाशकारी समझते हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य मँगाकर पढ़नी चाहिये।

अनुवाद सरल और भावपूर्ण हुआ है। ऐसी अच्छी पुस्तक का अनुवाद करने के लिए व्यास जी अवश्य धन्यवाद के पात्र हैं।

गढ़वाली—(पाक्षिक पत्र)का विशेषाङ्क। सम्पादक-विश्वम्भरदत्त चन्दोला। प्रकाशक-गढ़वाली प्रेस, देहरादून।

यह गढ़वाल प्रान्त के सुप्रसिद्ध पाक्षिक पत्र 'गढ़वाली' का विशेषाङ्क टिहरीनरेश के शासनाधिकारप्राप्ति की प्रसन्नता में निकाला गया है। गढ़वाली प्रायः पन्द्रह वर्ष से गढ़वाल प्रान्त की निर्भीक चित्त से सेवा कररहा है। उस में सदासे अच्छे २ लेख निकलते रहे हैं। प्रस्तुत अङ्कमें लेख, कविता और सम्पादकीय टिप्पणियाँ सब मिलकर १६ विषय हैं। प्रायः सभी लेख गढ़वाल प्रान्त और टिहरीराज्य से सम्बन्ध रखने वाले हैं, तथापि सनेही जी की "राजधर्म्म शीर्षक कविता" लीलाधर शास्त्री का "राजा और प्रजा" एवं—शक्तिसम्पादक का"राजा या प्रजा का धर्म"आदि लेख अत्यन्त महत्त्वशील हुए हैं। जो गढ़वाल के प्रेमी तथा उस के हितचिन्तक

हैं, वे इस अङ्क को खरीदें और गढ़वाली की इस प्रसन्नता में शरीक हों।

जैनपथ-प्रदर्शक—का विशेषाङ्क (श्वेताम्बर जैनसमाज का मासिक मुखपत्र) प्रकाशक-पद्मसिंह जैन। वार्षिक मूल्य २।)

प्रदर्शक ने अपना यह विशेषाङ्क विगत पर्युषण पर्व पर निकाला है। इस में कविता और लेखों की संख्या २० है। लेखों की उत्कृष्टता के विषय में केवल इतना ही कहदेना काफी है कि जिन लेखों के लेखक कविवर त्रिशूल सत्यभक्त बाबू श्यामल एम० ए०, सुकवि और सरस्वतीभक्त मोतीलाल एम०ए० हैं उनका आदरणीय होना स्वाभाविक है। प्रदर्शकने ऐसे लेखकों को अनायास ही अपनालिया है इस के लिए हम उसे बधाई देते हैं। इनके पर भी जैनधर्म के आदि धर्मप्रचारक जैनसमाज पर एक दृष्टि, जैन धर्म का अन्य धर्मों के साथ मुकाबिला और जूते का युद्ध-शीर्षक कई लेख मार्के के और ऐतिहासिक गवेषणायुक्त हैं। पत्र में जैनधर्म सम्बन्धी ४० चित्र भी हैं। पत्र सर्वप्रकार से आश्रय देने योग्य है। पर सम्पादन की त्रुटियाँ कुछ अवश्य खटकती हैं।

महिला—स्त्रीशिक्षासम्बन्धी लेखमाला। महिला का यह प्रथम अङ्क हमें ग्वालियरराज्यके सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'जयाजी प्रताप' द्वारा प्राप्त हुआ है। स्त्रियों का प्रोत्साहन और स्त्री समाजका हितसाधन करने के लिए इस लेखमाला को जन्म दिया गया है। महिला के प्रस्तुत अङ्क में निर्मला बाला सोम एम० ए० का एक फोटो तथा कविता और लेख सब १५ हैं। जिनकी लेखिका सब स्त्रियाँ ही हैं। लेख ऊँची दृष्टि के साथ लिखे जाने के साथ सब के समझने लायक हैं। जयाजी प्रताप के इस शुभ उद्योग का सराहने के लिये हम स्त्रीशिक्षा के प्रेमियों की दृष्टि भी इस ओर आकर्षित होना चाहते हैं। क्योंकि—लेखमाला से स्त्रीशिक्षा के पवित्र उद्देश्य में बहुत कुछ सहायता मिलने की सम्भावना है।

—०—

आयुर्वेद विद्यापीठके केन्द्र और उनके व्यवस्थापकोंकी नामावली।

१-नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षायें ता० १२ मार्च से शुरू होकर ता० १६ तक होंगी।

२-आवेदन पत्रादि नियुक्त केन्द्रों के व्यवस्थापकों द्वारा यथासम्भव आगामी जनवरी ३० ता० के पहले ही भेजें।

३-आचार्यपरीक्षा में व्यवहारायुर्वेद के स्थान में स्वस्थवृत्त विनिश्चित किया है।

प्रयागः-आयुर्वेद पंचानन जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल जी दारागंज प्रयाग।
दिल्ली—कविराज किरणचन्द्र कण्ठाभरण जी, ईगर्टन् रोड, देहली
कानपुर—पण्डित रघुवरदयालु जी शर्मा वैद्य, जयपड़, कानपुर
हरद्वार „ „ नारायणदत्त शर्मा वैद्य ऋषिकुल, हरद्वार
लखनऊ „ „ विन्ध्येश्वरनाथ वैद्यजी, श्रीवैद्यसभा लखनऊ
लाहौर „ „ हेमराज शर्मा वैद्य विशारद महामंडल प्रान्तगंज
पटियाला „ , बाबू देवशर्मा शास्त्री राजवैद्य पटियाला
अजमेर „ „ रामदयाल शर्मा, राजवैद्य, अजमेर
बम्बई „ „ हरिप्रपन्न जी शर्मा वैद्य श्रीभास्कर औषधालय,
अमरावती „ „ पण्डरीनाथ दामोदरदास गुन्डे वैद्य, वहीलाद,
बांकीपुर „ „ व्रजविहारी चतुर्वेदी वैद्य, जयटोल, बांकीपुर
कलकत्ता कविराज ज्ञानेन्द्रनाथ राय बी० ए० काशी घोषलेन
पूना पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री कवडे बी० ए० बुधवार पैट, पूना
जबलपुर „ दामोदर राव देशाई वैद्य जबलपुर
अहमदाबाद „ जटाशङ्कर लीलाधर त्रिवेदी वैद्य अहमदाबाद
ऋषिकेश „ स्वामी मगल नाथ जी, आयुर्वेदविद्यालय
अलीगढ़ „ प्यारीमोहन वैद्य, मामूभानजा अलीगढ़
लुधियाना „ गोकुलचन्द्र वैद्य, हेड मास्टर, आयुर्वेद विद्यालय
मुरादाबाद „ घनानन्द पन्त आयुर्वेदाचार्य मुरादाबाद
मुजफ्फरपुर „ शिवचन्द्र मिश्र वैद्य शारदा औषधालय
मद्रास आयुर्वेदमहामण्डल प्रधान मन्त्री, कैथियिडूल पोष्ट मद्रास
बी० गोपालाचार्लु म श्री निखिलभा० आ० विद्यापीठ कार्यालय, मद्रास।

—०—

परीक्षार्थी ध्यान दें।

इस वर्ष आयुर्वेद विद्या पीठ ने यह नियम किया है कि जो लोग आयुर्वेदविद्या पीठ की वैद्य, आयुर्वेदविशारद अथवा आयुर्वेदाचार्य परीक्षा देना चाहें वे अपने केन्द्र के व्यवस्थापक द्वारा अपने आवेदन पत्र भेजें। प्रयाग केन्द्र का व्यवस्थापक मैं बनाया गया हूँ।

इसलिये जो परीक्षार्थी प्रयागकेन्द्र से आयुर्वेद की परीक्षा देना चाहते हों, वे मेरे पास अपने आवेदनपत्र शुल्कसहित भेजें। जिन के आवेदन पत्र शुल्क के सहित माघ की पौर्णिमा तक मेरे पास आजावेंगे, वे ही विद्यार्थी परीक्षास्थान में बैठ सकेंगे ॥

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, वैद्य, दारागंज, प्रयाग।

—•—

आवश्यक सूचना।

१–इस वार वैद्यसम्मेलन की प्रदर्शिनी में सब वस्तु भेजदी गई हैं।

२–नि॰ भा॰ आयु॰ म॰ के द्वारा औषधों के निर्णयार्थ चार सभा स्थापित हैं उन के प्रधान मंत्रित्व का भार मुझे दिया गया है, इस से समस्त वैद्य मात्र तथा चारों समितियों के सभ्यों को सूचित करता हूं एकादश सम्मेलन शीघ्र होने वाला है परन्तु अभी तक किसी औषध का निर्णय कर आप लोगों ने नहीं भेजा। मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप, रासना, खैरसार, काकोरनी क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकनासा, मूर्वा, चव्य, प्रियंगु, बला, नागबला, महाबला का निर्णय कर नमूना सहित लिखकर भेजने की कृपा कीजिये।

आपका

भागीरथ स्वामी वैद्य

मंत्री, दशमवैद्य सम्मेलन, कटरा गुलाबराय- देहली।

—०—

विविध-विषय

इन्फ्लुएन्ज़ा का भय–इन्फ्लुएन्ज़ा के सम्बन्ध में डाक्टरों और म्युनिसिपैलिटियों की पहले से प्रकाशित हुई सूचनाओं को पढ़कर भय हुआ था कि कहीं अब की बार भी गतवर्ष का सा प्रलयकाल उपस्थित न होजाय। पर हर्ष का विषय है कि अब की बार वैसी कोई भय की बात दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि इस बार जो इन्फ्लुएन्ज़ा का आक्रमण हुआ वह बहुत ही साधारण है। न उस में वैसी भयङ्करता और न वैसी संक्रामकता ही देखी जाती है। निमोनिया के लक्षण तो इस बार के इन्फ्लुएन्ज़ा में शायद ही कहीं देखे गये हों। तथापि इस के लिए बड़े बड़े आयोजन किये जारहे हैं। यह देखकर अवश्य आश्चर्य होता है।

इन्फ्लूएञ्जा और मलेरिया—इस बार का इन्फ्लूएञ्जा भारत-व्यापी नहीं है। कहीं कहीं इस का प्रकोप देखा जाता है। कितने ही नगरों में तो अबकी बार इसका चिन्ह तक भी देखने में नहीं आता तो भी बहुत जगह इन्फ्लूएञ्जा की आशङ्का की जाती है। इस समय मलेरिया की देश में प्रबलरूप से उन्नति होरही है। विशेषकर गतवर्ष जिन जिन स्थानों में इन्फ्लूएञ्जा का प्रकोप अधिकता से हुआ था, उन २ स्थानों में अबकी बार मलेरियाका प्रकोप भी अधिकतासे देखनेमें आताहै। कहीं कहीं मलेरिया और इन्फ्लूएञ्जा दोनों ही प्रकारके ज्वर विशेषरूपसे चल रहे हैं। बहुत लोग मलेरिया को इन्फ्लूएञ्जा समझ कर उसीके अनुसार नियमादि का पालन करते हैं, परन्तु यह उन की नितान्त भूल है। मलेरिया और इन्फ्लूएञ्जा दोनों भिन्न भिन्न रोग हैं।

युक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन—अब की बार युक्तप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की तैयारियां हरदोई में बड़ी धूम धाम के साथ हो रही हैं। डाक्टर सन्याल (सिविलसर्जन) हरदोई की अध्यक्षता में उस की स्वागतकारिणी समिति का सङ्गठन होगया है। मन्त्री वैद्यराज पण्डित मूलचन्द्रजी शर्मा निर्वाचित हुए हैं। हम आशा करते हैं कि हरदोई केवैद्यगण इसमें पूर्णरूप से प्रयत्न कर उत्तम सफलता प्राप्त करेंगे।

सहायता बंद—मद्रास के वैद्यरत्न प० डी० गोपालाचार्लुजी के पत्रसे मालूम हुआ है कि—मद्रास के आयुर्वेदकालेज, धर्मार्थ-औषधालय तथा अन्य आयुर्वेदिक संस्थाओं को सरकार और म्युनिसि-पिलिटीकी ओर से जो सहायता मिला करती थी उसे अब सरकारने बन्द कर दिया है। मद्रासी भाई प्रार्थनापत्र, डेपुटेशन और सभाओं द्वारा इसके लिये आन्दोलन कर रहे हैं। अन्य प्रान्तोंके वैद्यों को भी उक्त आन्दोलन में विशेषरूपसे भाग लेना चाहिए।

वैद्योंका स्वर्गवास—पिछले दिनों भारतके दो नामी वैद्यों का स्वर्गवास होगया। एक कलकत्ते के कविराज नगेन्द्रनाथसेन और दूसरे फर्रुखनगरनिवासी वैद्यराज पण्डित मुरलीधर जी शर्मा। कविराज नगेन्द्रनाथ सेन एक विद्वान् और सुयोग्य चिकित्सक थे। स्वास्थ्य-शिक्षा आदि उन्होंने कई उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखी हैं। विज्ञापनी संसारमें भी उनका खूब नाम है। वैद्यराज पण्डित मुरली-धरजी शर्मा आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता और प्रसिद्ध चिकित्सक थे।

इनका सुश्रुत का भाष्य जो—श्रीवेंकटेश्वर प्रेस-बम्बई में मुद्रित हुआ है बहुत अच्छा है। इसके सिवा उन्होंने और भी कई पुस्तकें लिखी हैं। आपने आरोग्यसुधाकर नामक एक मासिक-पत्र भी कुछ दिनों तक निकाला था। आप बड़े उद्योगशील पुरुष थे। हम भी उक्त वैद्यराजों के लिए दुःख प्रकट करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह उनके आत्मीयजनों को धैर्य प्रदान करें।

संक्रामकरोग और सेवासमितियाँ—इस समय प्लेग हालरा, इन्फ्लूएन्ज़ा आदि संक्रामक रोगों के प्रकोप के समय साधारण और असमर्थ रोगियों का सेवासमितियों द्वारा जो उपकार हो रहा है, उस को देख कर बड़ा आनन्द होता है। मुरादाबाद में कई सेवासमितियों के नाम सुने जाते हैं। पर संक्रामक रोगों के प्रकोप के समय प० शुकदेव की सेवासमिति का ही कार्य अधिकता से देखने मे आया है। सुनते है—स्थानीय परोपकारिणी सभा की सेवा समिति भी असमर्थ रोगियों की सहायता करती है, पर आज तक उसकी कोई रिपोर्ट हमारे देखने में नहीं आई। अब एक और सेवा-समिति का नाम सुना गया है। उसके अध्यक्ष हुए हैं—वैद्यराज पण्डित घनानन्द जी पन्त। हम आशा करते है कि आपकी अध्यक्षता में उक्त सेवासमिति अच्छा कार्य कर दिखायेगी। विशेष कर असमर्थ और दीन रोगियों को उक्त सेवासमिति के द्वारा अधिक लाभ पहुँचने की आशा की जाती है।

—०—

च्यवनप्रासावलेह ।

यह राजयक्ष्मा और जीर्णज्वर की प्रसिद्ध औषधि है। इससे स्त्री, पुरुषों के धातुदोष क्षय, खांसी श्वांस ज्वर आदि रोग दूर होकर शरीर में अपूर्व बल, और तरुणता उत्पन्न होती है। दो सप्ताह सेवन करने योग्य का दाम २) डा° म०।-)

योगराज गूगल ।

योगराजगूगल आमवात रोग की प्रसिद्ध औषधि है। इसको सेवन करने से सन्धिवात (शरीर के समस्त जोड़ों की पीडा) आम वात (गांठ व पीठ का पीडा) पसली और कधों का दर्द तथा सब प्रकार की वायु की पीड़ा दूर होती है। मू०१) डिब्बी डा० ।)

प्रमेहचिंतामणि ।

इसको सेवन करने से नया पुराना प्रमेह, पीव के साथ धातु का गिरना, रुधिर का निकलना, लाल पेशाब का आना, चिनक से पेशाब का उतरना, सोजाक,पथरी, स्वप्नदोष, मूत्रनाली में घाव होना, वस्त्रमें दाग का लगना, पेशाब का कम आना पेशाब से पहिले या पीछे वीर्य का गिरना और खडिया की समान पेशाब का होना इत्यादि समस्त विकार दूर होते हैं। मूल्य १) रु० शीशी। डा० ।) आना।

बवासीर की दवा ।

इसको सेवन करने से सब प्रकार की खूनी बादी बवासीर और उसके उपद्रव दाद और रुधिर का निकलना कोष्ठबद्धता दुर्बलता और शारीरिक एव मानसिक समस्त क्लेश दूर होते हैं। मू० ॥)आना डि० डा° म° ।)

उपदंश नाशक घृत ।

इस दवा को सेवन करने से आतशक गर्मी पारे के दोष और वातरक्त यह सब शीघ्र, दूर होजाते हैं। इससे न कै होती है, न दस्त होते हैं और न मुँह आता है। मू° १) शीशी डा°म° ।)

उपदंशनाशक मरहम मू० ॥) डिब्बी

नयन चंद्रोदय अंजन ।

यह अंजन धुन्ध, जाला, फूला, मोतियाबिंद, खुजली रतोंधा, आँखों का फटना, लाली,नजला इत्यादि नेत्रों के समस्त रोग दूर करके रोशनी को बढाता है। मू°२) तोला। डा°म° ।)

Regd. No. A. 587

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिकपत्र

सम्पादक—शंकरलाल वैद्य

वर्ष ७	मुरादाबाद, अक्टूबर १९१६	संख्या १०

विषय-सूची।

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक-मूल्य १।)

Printed by Kailasachandra
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD.

वैद्य के नियम

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल१।) रु० है

(३) 'वैद्य' नमूने में केवल एक अङ्क भेजा जाता है। नमूने में कोई सा अङ्क भेजदिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह, पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेखको घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए जिस से उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) वैद्य' सब ग्राहकों क पास जांच कर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं, इसका कारण रास्ते की असावधानी ही हो सकती है। जिन महाशयों को जो अक न मिले वह दूसरे अक के पहुँचते 'ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे

(७) सर्वप्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि " वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर, 'वैद्य आफिस, मुरादाबाद' के पतेसे भेजने चाहिएँ।

हमारे शरीर की रचना भाग १ दूसरी आवृत्ति १६१६।

पृष्ठ ३२२, चित्र १०२, सुनहरी जिल्द, मूल्य २॥', इस में अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा शरीर की रचना, शरीर के तन्तु, अस्थियों, और संधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन, मांससंस्थान, रक्त, रक्तवाहक संस्थान, फुफ्फुस, मूत्रवाहकसंस्थान, श्लैष्मिक कला [illegible] ग्रन्थियां आदि विषय हैं।

हमारे शरीर की रचना भाग २

पृष्ठ ४५६ चित्र १३३ मूल्य ३।) इस भाग में पोषण संस्थान, रक्त के कार्य, नाड़ी मण्डल, चक्षु नासिका, जिह्वा, कर्ण स्वरयन्त्र, नर जननेन्द्रियां, नारी जननेन्द्रियां, गर्भाधान, गर्भाधिष्ठान, नवजात शिशु आदि विषय हैं। दोनों भागों का एक साथ मूल्य ५॥) डाक व्यय ।=)

पता—डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा,
४ मेनमार्केट लखनऊ (यू० पी०)

श्रीधन्वन्तरये नमः।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

वर्ष ७ } मुरादाबाद, अक्तूबर १९१९ { संख्या १०

शुभ-सलाह।

(१)

होता है उपकार लोक का जिस से भारी।
हैं जिस के सिद्धान्त सुनिश्चित मङ्गलकारी॥
जिस के सकल प्रयोग शीघ्र ही फल देते हैं।
दुख दायक बीभत्स रुजों को हर लेते हैं॥
वैद्यों के अपमाद से उसी सुआयुर्वेद का।
ह्रास होगया मित्र! यह विषय महत्तम खेद का॥

(२)

प्रचलित थी जब वैद्य-वेद की सुगम प्रणाली।
तब भारत था सुखी और शुभ सम्पदशाली॥
पर जिस दिनसे इन सब की हानि हुई निराली।
आयुःशास्त्र का ह्रास हुआ, भारत दुख शाली॥

हटते जाते जो चलन भारत से आश्रय विना।
आयुर्वेद का चलन भी उन में जाता है गिना॥

(३)

सुभग पुरातन चलन आज जो नहीं दीखते।
कारण है क्या लोग उन्हें जो नहीं सीखते?
सच तो है यह मित्र! देश आलसी होगया।
इसी सबब से अस्त सुखों का सूर्य हो गया॥
अब जब हम सब एक मन होकर हित चिन्ता करें।
तभी देशमें सुभग गुण पुनः समावर्त्तन करें॥

(४)

पर उन के लाभार्थ चाहिये स्वास्थ्य शतायू।
"धर्म अर्थ का लाभ नहीं हो विन परमायू॥
ये उत्तम उपदेश सुआयुर्वेद शास्त्र का।
स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये करो आराधन उसका॥
सद्वैद्योंकी वक्तृता "वैद्य" पत्र की लगती।
हो सकती है इन्हीं से हम लोगों की उपकृती॥

(५)

नहीं चाहते मान प्रतिष्ठा कभी आप से।
हो निरीह नित सदा बचाते रोग तापसे॥
दे सुन्दर उपदेश करें उपकार तुम्हारा।
इन से बढ़िया मित्र मिलेगा कहां, हमारा!
यदि सचमुच है आपको स्वास्थ्यप्राप्ति की कामना।
करो सुआयुर्वेद की पूजा और आराधना॥

नरोत्तम व्यास।

ग्रन्थिक सन्निपात अर्थात् प्लेगका निदान ।

(महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन एम०ए०,एल०एम०एस०के सिद्धान्त निदान से)

१ कक्षा (बगल) वंक्षण (जंघासा) और कण्ठ आदि स्थानों में चौंटली या निबौली के समान आकारवाली जो स्वभावजन्य ग्रन्थियें होती हैं, उन में जब सूजन, पीडा एवं घोर ज्वर होता है तब उस को ग्रन्थिकाख्य सन्निपात ज्वर कहते हैं और प्रचलित हिन्दी भाषा में महामारी,मरी,प्लेग एवं फारसी में ताऊन् कहते हैं। यह ज्वर अत्यन्त भयङ्कर और दारुण होता है और तत्काल मनुष्य के प्राणों को हरण करता है। आदि शब्द से यह प्रतीत होता है कि किसी किसी रोगी की कोहनी और जानुओं की सन्धियों में भी ग्रन्थि व सूजन आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इस ज्वर के उत्पन्न होने का ग्रन्थी ही प्रधान लक्षण है। यह ग्रन्थिकाख्य सन्निपात ज्वर अथवा महामारी प्राय: वसन्त अथवा ग्रीष्म ऋतु में नङ्गे पैरों विचरने वाले प्राणियों में फैलता है। इस रोग के बहुत सूक्ष्म जीवाणु होते हैं, यह बात पाश्चात्य विद्वानों के खोज करने से मालूम हुई है। वे जीवाणु प्रथम चूहे आदि जीवों के शरीर में प्रायः उत्पन्न होते हैं। फिर क्रम से फैलकर वे जीवाणु प्रायः मनुष्य के पैरों के व्रणादि मार्ग से शरीर में प्रवेश कर दावाग्नि की समान सर्वतः फैल जाते

---

(१) कक्षा वंक्षण कण्ठादि ग्रन्थिशोथरुजाकरः ।
ग्रन्थिकाख्यो जनपदोध्वंसी घोरतरो ज्वरः ॥
सद्यः प्राणहरः सोऽयं सन्निपातः सुदारुणः ।
श्वसनस्पर्शनादिभ्यः संक्रामति नरान्नरम् ॥
आदावेव ज्वरस्तीव्रः क्वचिन्मन्दोऽथवा पुनः ।
भृशं मस्तरुजा तृष्णा प्रलापो मूर्च्छनं भ्रमः ॥
निद्रानाशोऽरतिर्दाहो मलबन्धोऽपि वाऽन्यथा ।
रोगी विमूढो वाऽन्यो यथाभिन्यासपीडितः ॥
दंष्ट्रास्य दन्ता जिह्वा याती पिपीलिकाभताम् ।
मृत्यौ रोगः क्वचित्पूर्वं क्वचिन्मध्ये क्वचिच्चिरात् ॥
नेदः स्वल्पोऽपरस्यास्य शान्ती च इन्द्रियाश्रयी ।
द्विनैर्वा पञ्चभिर्वापि दशभिर्वा दिनैः क्वचित् ॥
एको वा म्रियते रोगी विरलोऽपि म्रियते ॥

हैं। तब उक्त लक्षण शीघ्र उत्पन्न होते हैं। फिर यह ज्वर श्वास प्रश्वास और स्पर्श के द्वारा एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को आक्रमण करता है। कोई कोई आचार्य्य कहते हैं कि जब जीवाणुओं का होना ही इस ज्वर का प्रधान कारण है तो इस को सन्निपात ज्वर क्यों कहागया ? उन का यह कथन यद्यपि युक्तिसंगत है तथापि ऋतु, काल और जनपदों की विशेषता होने से उसी उसी प्रकार के जीवाणुओं का प्रादुर्भाव होने से एवं सर्वथा क्षेत्र की प्रधानता होने से तीनों दोषों के लक्षण स्पष्ट और सर्वत्र दृष्टिगत होते हैं अतः इस ज्वर को सर्व सम्मति से सन्निपात का ही भेद कहा जासकता है। किन्तु संक्रामकता जीवाणुओं के उत्पन्न होने से ही होती है। इस में कोई विरोध नहीं आता।

प्राचीनायुर्वेदाचार्यों ने इस ज्वर को अग्निरोहिणी नाम से वर्णन किया है, जोकि साम्प्रतिक आचार्यों के कल्पित ग्रन्थिकाख्य सन्निपात ज्वर से ही सादृश्यता रखता है। इस नवीन कल्पना से क्या सिद्धान्त स्थिर हुआ तो ये सप्रमाण वाक्य कहते हैं कि:—"कक्षा भागेषु येस्फोटा जायन्ते मांस दारुणाः। अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावक-सन्निभाः॥ सप्ताहाद्वादशाहाद्वा पक्षाद्वाघ्नन्ति मानवम्। तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सर्व दोषजाम्॥" इस अग्निरोहिण्याख्य क्षुद्ररोग में कक्षादि स्थानों में मांस को विदीर्ण करने वाले फोड़े उत्पन्न होते हैं। वे प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिमान और शरीर में दाह तथा ज्वर को उत्पन्न करते हैं। इस ज्वर से सात, दस अथवा पन्द्रह दिन में मनुष्य की मृत्यु होजाती है। यह समस्त दोषजन्य अग्निरोहिण्याख्य ज्वर सर्वथा असाध्य होता है। इस में ग्रंथियों के निकलते ही और उन के पक्व होने पर ही संनिपात ज्वर वाले रोगी के समान इस ज्वर से पीड़ित व्यक्तिकी प्रायः तत्काल मृत्यु होजाती है। परंतु ग्रंथि के पक जाने पर रोगी कभी कभी आरोग्य होजाता है। इस रोग में पूर्वोक्त ग्रंथिकाख्य संनिपात ज्वर से केवल इतना ही भेद है। यथार्थ में यही अग्निरोहिण्याख्य ज्वर कुछ दिनों में ग्रन्थिकाख्य ज्वर के रूप में परिणत हो जाता है।

इस ज्वर में विशेष रूप से होने वाले पूर्वरूप का वर्णन न कर अब ग्रंथिकाख्य संनिपात ज्वर के रूप को कहते हैं—उसकी आरम्भिक अवस्था में प्रायः सबसे पहले तीव्र ज्वर, किसी के मंद ज्वर और किसी के सदैव रहने वाला ज्वर होता है अथवा किसी के नहीं भी

होता । क्योंकि किसी किसी के शरीर में पहले कम्प ही होता है। एवं अङ्गों में शिथिलता तृषा, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम निद्रा का नाश, अरति और मोह आदि लक्षण होते है। कोई २ रोगी पागल के समान जोर से चिल्लाता है या शय्या से उठ उठ कर दौड़ता है। कोई इस प्रकार बेहोश होकर सोता है, जिस प्रकार अभिन्यास सन्निपात से पीड़ित मनुष्य संज्ञा रहित होता है। जिह्वा जली हुई की समान और खुरखुरी होती है। नाड़ी शिथिल, कोमल चञ्चल और शीघ्र गामिनी होती है। ग्रंथि में किसी के पहले दिन, किसी के रोग के मध्य में और किसी के कितने ही दिन पीछे उत्पन्न होती है और उसमें तोड़ने, सुई के चुभोने के समान पीड़ा होती है तथा उसका असह्य स्पर्श अर्थात् स्पर्श करते ही अत्यन्त वेदना होती है। ग्रंथि बहुत देर में पकती है। जब वह पक जाती है तब प्राय रोगी बच जाता है। फिर भी दो तीन,पाँच,छै अथवा दस दिन तक प्राण की अवधि रहती है। दस दिन के बाद जीवन की आशा की जाती है। उस में भी कोई रोगी तो शीघ्र ही मर जाता है और कोई कृच्छ्रता से बहुत दिनों में जाकर सीधा होता है। फिर उन के कितने ही उपद्रव उत्पन्न होते हैं जैसे —

(१)उपद्रव—मूत्रावरोध अर्थात मूत्र का रुकना,फुफ्फुस के आक्रमित होने से खाँसी आँतों के आक्रमित होने से भयङ्कर अतीसार, वमन और रक्तपित्त आदि उपद्रव एक साथ उत्पन्न होते हैं। जो कि सर्वथा रोगकी असाध्यता को सूचित करते हैं।

साध्यलक्षण—किसी के एक किसी के दो अथवा किसी के बहुत सी ग्रंथियाँ जब शीघ्र पक जाती हैं तब रोगी प्राय सुखपूर्वक बच

(१) मूत्रावरोधः श्वासश्च तथातीसार एव च ॥
छर्दिश्च रक्तपित्तञ्च पिड़िकोपद्रवाः [illegible] ॥
[illegible] बहुधा वा [illegible]
[illegible] रोगी [illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥

जाता है और जो रोगी बूढ़ा या बालक हो-युवान हो तो वह भी प्रायः साध्य होता है।

अरिष्ट लक्षण—इंद्रियों की शक्ति का और ज्ञान का तत्काल अर्थात् पहले ही दिन या दूसरे दिन नाश होता है। इन में से किसी एक लक्षण के उत्पन्न होते ही रोगी असाध्य समझा जाता है। अतीसार से आक्रान्त ग्रंथी वाला रोगी कभी नहीं जीता। वह रोगी सिंदूर के समान लाल रंग वाले रक्तमिश्रित कफ को थूकता है, श्वास से पीड़ित और फुफ्फुस से आक्रांत होता है, अत एव सर्वथा असाध्य कहा जाता है। एवं ग्रंथि का बाहर न निकलना या ग्रंथि में सूजन का न होना आदि लक्षण भी असाध्यता को प्रगट करते हैं। ग्रंथिक संनिपात में बाहर की गाँठ में सूजन के न होने पर भी रोगी नहीं जीता है। क्योंकि भीतर की ग्रंथियें सभी सूजी हुई होती हैं। यह बात मृतक की परीक्षा कर देखने से स्पष्ट मालूम होती है।

—o—

मलेरिआ।

(गत संख्या से आगे)

उपर्युक्त कथन से प्रतीत होता है कि प्रकृति देवी के एक सत्य खोजने के लिए मनुष्य की कितनी पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं।

मेजर रोनाल्ड रोस के खोज का सार क्या है और मलेरिया के जन्तु मच्छरों में और मनुष्य के रक्त में कितना फेर फार कर देते हैं उस का वर्णन नीचे किया जाता है।

मनुष्य का रक्त—पहले मनुष्य के रक्त के विषय में कुछ बातें समझा देनी उचित हैं। मनुष्य का रक्त हृदय और लाल रक्त पहुँचाने वाली नाड़ियों एवं काले रक्त को पीछे हृदय में पहुँचाने वाली नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में प्रवाहित होता रहता है। यह शरीर के प्रत्येक भाग को पोषक तत्वों से पूर्ण करता रहता है। इसकी रचना देखने से इस का आकार पानी के समान सारे रस में लालरंग और श्वेत रंग के जावालु तैरते हुए दिखाई देते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र से ये लाल और श्वेत जीवाणु Corpuscles रूप रूप से दिखाई देते हैं। यदि एक चौरस हिस्से में ये जलु रख दिये जायें तो इन की संख्या करीब करीब १ करोड़ होगी। हमारे हाथ के एक पंजे में सारे भारत वर्ष की ३३॥ करोड़ बस्ती है, इससे मालूम हुआ कि इन अणुओं

की संख्या बहुत ज़्यादह है। लाल अणु दूसरी बाज़ू के मध्य में अन्तर्गोल Bi-Concave के समान दिखाई देती है। इन में स्थिति स्थापकता का गुण होने के कारण ये पतली से पतली नलीमें प्रवाहित होते समय संकुचित हो सकते हैं। परन्तु रक्त में इन का प्रमाण बहुत कम है। जितने भाग में ६५० श्वेत अणु रह सके हैं उतने स्थान में लालरंग का केवल १ अणु रह सकता है। जिस समय रक्त शरीर के बाहर निकलने लगता है उससमय ये लाल अणु एकत्रित होकर जम जाते हैं। इस का कारण इन में रहनेवाला हीमोग्लोबीन नामक पदार्थ है, जिस का रासायनिकपृथक्करण होते समय दूसरे नाइट्रोजन मिश्र तत्व को साथ ले कर निकलता है। वनस्पति के भाग ओं में क्लोरोफाईल नामक जो पदार्थ देखाजाता है उस का मुकाबिला इस से हो सक्ता है।

लाल अणुओं के रक्त का पदार्थ (हीमोग्लोबीन) बहुत महत्व का भाग है। क्योंकि यह शरीर में आक्सिजन लेजाने वाले रक्त के मुख्य पदार्थ के साथ बहुत शिथिल रूप में मिला हुआ रहता है। वहां शरीर के अन्यान्य रसों तथा अन्य अणुओंके पास रक्त के फिरने से ही आक्सिजन दूर होकर रसों और अन्य अणुओं में खिंचजाता है। जब रक्त फेफड़े में से छनकर आता है, उस समय श्वास के द्वारा जो बाहर की वायु (आक्सिजन) फेफड़े में जाकर लाल अणुओं में मिलजाता है और इस प्रकार शरीर के प्रत्येक अणु में व्याप्त होजाती है। तब शरीरके अणु अपनी अपनी क्रियाओं के करने में आक्सिजन का बहुत व्यय करते हैं। शुद्ध रक्त लेजाने वाली नलियों में रक्त का रंग खालिस लाल होता है। इस का कारण यह है कि इस में वायु की गति के अनुसार आक्सिजन भरपूर मिला हुआ रहता है। अशुद्ध रक्त प्रवाहित करने वाली नलियों के रक्त का रंग काला होता है। क्योंकि इस रक्त में आक्सिजन का बहुत कम भाग रहता है। जब लालरक्त फिरते फिरते शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है तब उसी समय आक्सिजन का यथार्थ हिस्सा शरीर के तन्तु और अन्य अणु ले लेते हैं। काला रक्त प्रवाहित करने वाली नलिकाओं का वर्ण गहरा और बैंगन के रंग के समान होता है। इस लिए यह शरीर-रक्षण के लिए व्यर्थ है।

श्वेत अणु लाल रंग के अणुओं से कुछ मोटे होते हैं। सजीव पदार्थ के छोटे से छोटे स्वरूप वाले सूक्ष्म अणु जो अमीबा

कहाते हैं बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। ये प्रत्येक क्षण में अपना आकार बदलते रहते हैं। घड़ी घड़ी में मालेके आकार के समान और एकएक सेकिण्ड में भिन्न भिन्न प्रकार के रूप धारण करते हैं।

शरीररक्षक पाडी गार्ड्स—इन श्वेत अणुओं का प्रत्येक काम पूर्णरूप से नहीं जान पड़ता। परन्तु एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य्य बराबर समझ में आता है वह यह कि जब बाहर का कोई पदार्थ रक्त में प्रवेश करने लगता है तो उस पदार्थ के प्रवेश होते ही रक्त में अटकाव होता है। जब किसी रोग के जन्तु रक्त में प्रवेश होने लगते हैं, तब ये श्वेत अणु हानिकारक जन्तुओं को रोकते हैं तो उस समय उन दोनों में घोर युद्ध होने लगता है।

युद्ध में यदि शत्रुओं की संख्या अधिक हो तो ये श्वेत अणु उनका सामना करने के लिए बहुतसी संख्या में तत्क्षण तैय्यार होजाते हैं। जैसे एक एक के लिए दो, दो के लिए चार, चार के लिए सोलह और सोलह के लिए और भी अधिक अणु—यहाँ तक कि करोड़ों और अरबों की संख्या में बाहरी जन्तुओं के साथ युद्ध करने के लिए बहुत जल्द सेना तैय्यार कर लेते हैं फिर इन में से बहुत से अणु लड़ते लड़ते मरजाते हैं। और शत्रुओं का ज़ोर अधिक न हो—अर्थात् रोग-जन्तु बहुत अधिक संख्या में शरीर में प्रवेश न करें-तो ये श्वेत अणु शरीर को इस रोग के पञ्जे से बचालेते हैं और और रोग के जन्तुओं को खाजाते हैं। इस के विरुद्ध यदि शत्रुओं की संख्या अधिक होती है तो ये श्वेत अणु लड़ लड़ कर थक जाते हैं और परास्त होते ही इन को शत्रुओं के रोग जन्तु खाजाते हैं। इस प्रकार इन के हार जाने से रोग शरीर में प्रविष्ट होकर नाना प्रकार के उपद्रवों को उत्पन्न करता है। इस प्रकार ये श्वेत अणु (Erhite Corpuscles) हमारे देहरूपी राज्य के सिपाही हैं। ये अपने स्वीकृत कार्य्य को बड़ी नमकहलाली से पूरा करते हैं। शरीर की रक्षा करने के लिए ये चौबीसों घंटे भी कृष्ण के सुदर्शन चक्र के समान चारों ओर पहरा देते रहते हैं। किसी प्रकार के भयके उपस्थित होते ही जाग्रत हो उठते हैं। शत्रु का आक्रमण होते ही ये श्वेत अणु उस का अपनी शक्ति भर रोकने का प्रयत्न करते हैं। लड़ते हैं और हारने की दशा में जीवन त्याग कर देते हैं किन्तु नमकहरामी कदापि नहीं करते।

मलेरिया ज्वर के जन्तुओं का रक्त में प्रवेश ।

अब यह बात देखना है कि जिन्हें मलेरिया ज्वर आता है उन के रक्त में क्या क्या होता है । जो मच्छर ज्वर पीड़ित व्यक्ति को काटता है वही मच्छर तंदुरुस्त को भी काटता है । यह मच्छर रक्त चूसनेवाले जन्तुओं के वर्ग का होता है । मलेरिया ज्वर वाले व्यक्ति का जन्तुमय रक्त मच्छर के पेट में जाता है । इस के पेट में ज्वर के जन्तुओं का कितना फेरफार होता है, इन की वंशवृद्धि किस प्रकार होती है, उस का वर्णन आगे किया जायेगा । परन्तु इन बढ़े हुए ज्वर के जंतुओं की संतति मच्छर के स्वस्थ मनुष्य को काटने पर उसके रक्त में प्रविष्ट होजाते हैं ।

जन्तुओं और अणुओं का युद्ध और जन्तुओं की विजय ।

जब इस नये शत्रु का समूह स्वस्थ मनुष्य के रक्तमें प्रवेश करता है तब रक्त के श्वेत अणु उक्त विधि के अनुसार इनके साथ तुमुल युद्ध करते हैं । परन्तु ज्वरके जन्तुओं की संख्या विशेष होनेसे रक्त के श्वेत अणु इनके साथ युद्ध में शीघ्र हार जाते हैं और ज्वर-जन्तु श्वेत जन्तुओं को हटा कर रक्त के भीतरी भागमें प्रविष्ट होजाते हैं । वहां पहुंचते ही वे लाल रङ्ग के अणुओं से चिपट जाते हैं । पश्चात् शरीर में धीरे धीरे पैठते हैं और कुछ समय बाद लाल अणुओं को खाने लगते हैं । इसप्रकार वे लाल अणुओं को खाकर अपने शरीर की वृद्धि करते हैं ।

जब ये जन्तु लाल अणुओं में प्रवेश कर जाते हैं तब इनके शरीर का पोषण होने से जो शनैःशनैः वृद्धि होती है उससे इनकी शारीरिक रचना में नाना प्रकार का फेरफार होता है । ज्वरके जन्तुओं का शरीर पहले सूक्ष्मतम अर्थात् बारीक से बारीक एक ही अणु का बना हुआ होता है । यह रक्त के लाल अणुओं में पैठते ही कुछ कुछ मोटा होता है । थोड़ी देरमें इसके शरीर पर कुछ छोटे छोटे दाने दिखाई देते हैं । पश्चात् इसका शरीर फूलता है । कुछ देर बाद एक एक शरीर आजू बाजू से जुदे जुदे विभाग की तैयारी करने में लगजाता है । इस समय इसका रङ्ग गुलाबी होजाता है ।

मनुष्य के रक्त में अनेक जन्तुओं का प्रवेश ।

पश्चात् यह गुलाबी जन्तु भाग जाता है और इस से अगणित

छोटे छोटे अणु-परमाणु चारों ओर फैल जाते हैं एक एक शरीर खण्ड से अगणित शरीर बनते रहते हैं।

इस जाति के अन्य जन्तुओं की प्रजा भी इसी प्रकार बढ़ती है। ये छोटे छोटे फैले हुए बारीक जन्तु पहिले ज्वर-जन्तु के समान बन जाते हैं। पश्चात् रक्त के श्वेत अणुओं के साथ लड़ते हैं। श्वेत अणु अनेकों को खा जाते हैं, परन्तु अन्त में श्वेत अणुओं को हरा कर ये जन्तु विजय प्राप्त करते हैं और इन्हें हरा देने के बाद लाल अणुओं से पहले के समान लग जाते हैं। लाल अणुओं का शरीर पोला कर डालते हैं पश्चात् एक के स्थान में अनेकानेक जन्तुओं का टीड़ी दल के समान दल बढ़ने लगता है।

ज्वर की उत्पत्ति—मलेरिया के पृथक् पृथक् भेदानुसार इकतरा, तिजारी, चौथिया और सान्निपातिक ज्वर में इन जन्तुओं के बच्चों की संख्या और आकार में अनेक फेरफार होते हैं। जिस समय ये बच्चे स्वतन्त्र होते हैं, उसी समय ज्वर की ठण्ड का प्रारम्भ होता है। इकतरा ज्वर में इन जन्तुओं के अणु ४८ घण्टे तक बेकार पड़े रहते हैं, इस से यह ज्वर दूसरे दिन आता है और चौथिया ज्वर में ये अणु ७२ घंटे बेकार पड़े रहते हैं, इस लिए यह ज्वर तीसरे दिन आता है। एवं प्रतिदिन के ज्वर में ये अणु २४ घण्टे बेकार पड़े रहते हैं।

जन्तु और अणुओं की संख्या—आपने देख लिया कि मलेरिया ज्वर में इस के जन्तु मनुष्य के रक्त में रहते हैं और रक्त के लाल अणुओं की बहुत बड़ी संख्या को नाश करते हैं। १५२ सेर अर्थात् ३ मन २ सेर वजन के मनुष्य शरीर में मलेरिया ज्वर से पीड़ित होने पर॥ मेजर रोनाल्ड रोस के कथनानुसार उस समय उस शरीर में १५०,०००,०००,००० डेढ़ सौ अरब ज्वरजन्तु होते हैं। सामान्यतः लाल अणुओं की संख्या सारे शरीर में डेढ़ सौ अरब से सौगुनी है। इन १५ हज़ार अरब अर्थात् सफेद अणुओं की संख्या लाल अणुओं से ६५० गुनी है अर्थात् ५७ लाख पचास हज़ार अरब सफ़ेद अणुओं की संख्या है। पाठकवृन्द, विषयान्तर होने पर भी मुझ से कहे बिना नहीं रहा जाता कि इन १५ हज़ार अरब और ५७ लाख ५० हज़ार अरब की संख्या यह सारे शरीर के अनेक पदार्थों में से केवल रक्त के जीवित अणुओं की संख्या है। इन के सिवा चमड़े के अणु, मांस के अणु, नसों

और तार के अणु, लीवर, हरलीन के अणु अँतड़ियों और पेट के अणु इस प्रकार शरीर के प्रत्येक भाग के पृथक् पृथक् अणु हैं। ये जीवित अवस्था में रहते हैं और यह चैतन्य मानव-देह इन करोड़ों और अरबों की संख्या वाले छोटे २ जीवित अणुओं से ही बना है। शरीर में एक जीव का अस्तित्व बतलाया जाता है,उसे शरीर रचना शास्त्र के विद्वान् नहीं देख सकते। परंतु सारा शरीर इस प्रकार के चैतन्यमय अणु और परमाणुओं से व्याप्त हो रहा है, इसे वे सूक्ष्म-शक्ति जैसे चमत्कारक दिव्य यंत्र द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाते हैं।

जन्तुओं का वंश विस्तार—मलेरिया के जन्तु परावलम्बी अर्थात् दूसरों के सहारे जीवन धारण करने वाले होने से अन्य जाति के जन्तुओं के समान ये कभी नाम शेष नहीं रहते। इस प्रकार इन का जीवनचक्र बराबर चलता ही रहता है। ऊपर के विवेचन से आपने समझ लिया होगा कि मनुष्य के शरीर में ये एक बार प्रवेश करके वहां अपना वंश किस प्रकार बढ़ाते रहते हैं। परन्तु केवल कुनैन से ही इन असंख्य जीवों का सहज में नाश होजाता है। यदि ये एकही स्थान में एक ही मालिक को घेर कर रहें तो इन की जाति का थोड़े ही समय में नाश होजाता है। परन्तु प्रकृति के नियमानुसार किसी भी वर्ग अथवा जाति की वंश-वृद्धि में एकदम रुकावट नहीं होसकती। मलेरिया के जन्तुओं में स्वतंत्रतापूर्वक निर्वाह करके अपने ही बल पर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हुए वंशवृद्धि करने की शक्ति नहीं है। इसीलिए इनका निवास जो स्वामियों के पास रहता है उन में से मनुष्य इन का स्वागत शौक से नहीं करता। यह बहुत समय तक कड़वे पदार्थों से ही इन का स्वागत किया करता है। जिस समय से मनुष्य के हाथ में कुनैन रूपी प्रसाद आगया है उस समय से उक्त जन्तु महाराज की भली भांति दाल नहीं गलने पाती।

मच्छरों के पेट में—यदि मलेरिया के जन्तु केवल मनुष्य ही के सहारे रहते तो इन की प्रजा का सत्यानाश कभी का होगया होता। पर मच्छर मनुष्य को काटता है और वह डङ्क मारने के साथ ही रक्त भी पीता है उस समय रक्त में रहने वाले कुछ एक ज्वरजन्तु मच्छरों के पेट में चले जाते हैं। फिर भी मनुष्य के रक्त में रह कर इनका वंश बढ़ता ही रहता है और उसी प्रकार मच्छरों के आमाशय में इनकी

प्रजा बढ़ती रहती है। परन्तु मनुष्य के रक्त में और मच्छरों के पेट में जो वंश विस्तृत होता रहता है,उन की रीति अलग अलग है। मनुष्य का शरीर बड़ा होने से जुदे जुदे विभागों में बट जाता है इस लिए वे बड़ी शीघ्रता से अपने वंश की वृद्धि करते हैं। परन्तु मच्छरों के पेट में एक से अनेक होने के बदले ये जन्तु नर और मादा के रूप में परिणत हो जाते हैं तब इन के संयोग से प्रजावृद्धि का कार्य्य सर्वदा चलता रहता है। इस का क्रम नीचे लिखा जाता है।

अर्द्धचंद्राकार स्वरूप—मनुष्य के शरीर में जितने जितने नवीन प्रकार के ज्वर-जन्तु प्रवेश होते जाते हैं तब वे उतने ही उतने लाल कणों को खाकर तन्दुरुस्त होते हैं। इस प्रकार अनेक ज्वरजन्तु नवीन रक्त के लाल कणों में मिल जाते हैं। आठ दस दिनों तक इस प्रकार कार्य्य क्रम चलते रहने के बाद अनेक मोटे ज्वरजन्तु लाल कणों को भेदन कर बाहर नहीं निकलते। किन्तु रक्त के प्रवाह में फिरते रहते हैं। ये कुनैन से नहीं मरते। इनका अर्द्धचन्द्र के समान आकार होता है। प्रारम्भ में इनकी संख्या बहुत कम होती है। सूक्ष्म-दर्शक यंत्र द्वारा ज्वर-युक्त व्यक्ति के रक्त की बार बार खोज करने से ये जन्तु फिसलते दिखाई देते हैं। परन्तु धीरे धीरे इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। फिर ज्वर की उग्रता कम होजाने पर भी ये एक सप्ताह तक रक्त में मालूम होते हैं और कभी कभी तो ये डेढ़ डेढ़ मास तक रक्त में रहते हैं। ये बाल्यावस्था में ही सन्तानोत्पन्न कर सकते हैं। ये जन्तु जवान, नपुंसक और वृद्ध आदि सभी प्रकार के होते हैं। पर इनमें अधिक संख्या जवानों की रहती है। इनमें से बहुतों का बीज पदार्थ (Protaplasum) अथवा शरीर काच के समान (Hyaline) होता है नरजाति का उसीप्रकार अन्य नर जाति का होता है और जो दानेदार शरीर वाला पदार्थ होता है वह नारीजाति का होता है। इसीप्रकार बालक स्वरूपवाला (Immsetureforms) पदार्थ ज्वर से चौथे दिन हड्डियों के गर्भ में दिखाई देता है। परंतु शरीर के बाहर रक्त में जब यह ज्वर आता है, तब वह आठ दिन के बाद पक्व अवस्था होने के अनन्तर खिले हुए अर्द्धचन्द्राकार स्वरूप में दिखाई देता है।

जन्तुओं के विवाह—इन अर्द्धचंद्राकार जन्तुओं के रक्त में

जिस समय मच्छर काटता है, उस समय यह उस के पेटमें चला जाता है। फिर वह नर जाति वाले जंतुओं को धीरे धीरे वृद्धि करके अपने शरीरमें से पतला तन्तु बाहर निकलता है। इन तन्तुओं की संख्या प्रत्येक शरीरमें से दो, चार छः और कभी कभी सात तक होती है। यह तन्तु मूलजन्तु से दूर रहकर दानेदार शरीर वाले स्त्री जंतु के शरीर में बैठकर बलपूर्वक बड़े वेगसे घुमता है। इस समय स्त्री जन्तु अपने शरीरके एक भागको लांघनेवाले व्यक्ति के समान चेष्टा करता है। जब जंतु-कुमारी अपनी ओर आते हुए जंतु-कुमार से मिलने के लिए आतुर हो उठती है, तब भी स्त्री जन्तु उससे लिपट जाता है। स्त्री जन्तु के उत्थित भाग द्वारा पहला तंतु उस के शरीर में पैठने का यत्न करता है और भीतर जाकर क्षण भर के लिए अत्यन्त कुपित होता है। कुछ देर बाद जब उसका बढ़ा हुआ क्रोध शांत होजाता है तब वह जंतु कुमार की खोज नहीं करता है। युवक और युवती का मन एक होजाता है और जंतु कुमार अपनी प्रिया में लीन होजाता है। सार यह है कि नरतंतु दानेदार स्त्री जन्तु में अदृश्य होजाता है।

यह बनाव बन जाने के बाद यदि इस स्त्रीजंतु में दूसरा कोई नरतन्तु प्रवेश करना चाहे तो वह भीतर नहीं आसकता। एक स्त्री जंतु एक जीवन में एक ही पुरुष तंतु से संयोग करता है। इन जन्तुओं के अलहिदा अलहिदा दो शरीरों के साथ विवाह होजाने के बाद वे एक रूप और एकरस होजाते हैं।

गर्भाधान--उक्त सम्मेलन अथवा गर्भाधान की क्रिया होनेके बाद कुछ समय तक दानेदार स्त्री-जंतु को देखने से उस में कोई फेरफार नहीं दिखाई देता। परन्तु कुछ देर के बाद धीरे धीरे इस का आकार बदलने लगता है। ये अण्डे की आकृति के समान रूप धारण कर लम्बा होता है, फिर भाले का सा आकार धारण कर अन्त में कीड़ों के समान पतला होजाता है। इसका पिछला हिस्सा रङ्गीन और अगला हिस्सा धारीदार एवं काँचके समान बनजाता है। इस फेरफार के होजानेके बाद यह सूक्ष्म शरीर जहाँ तहाँ उड़ता फिरता है।

मच्छर के आमाशय में वास—यह जन्तु नोकदार भाग को आगे कर के पहले धीरे २ पश्चात् जोर से उड़ता है। यात्रा करते

समय यह सूक्ष्म जन्तु रक्त के सफेद अथवा लाल अणुओं को साथमें लेलेता है तब यह भी इस के साथ चल निकलता है। चलने फिरने की इस नवीन शक्ति को पाकर और किसी स्थान को भेदन कर पैठने की गति से यह जन्तु मच्छर के पेट में जाकर उस के भीतर पैठ जाता है। मच्छर के आमाशय के स्नायुओं के लंबे और बड़े जन्तु जब द्वार जाते हैं तब ये उन स्नायुओं के सूक्ष्म रंध्रों में स्थिति करलेते हैं।

ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को काटकर आयाहुआ मच्छर जब इस को काटता है तब काटने के ३६ घंटे के बाद सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा खोज की जाय तो मच्छर के आमाशय के स्नायुओं के छिद्रों में यह जन्तु पकड़ा जा सकता है।

यह स्नायुओं के तन्तुओं में पड़ा रहता है और इस का शरीर जैसे जैसे मोटा होता जाता है वैसे ही वैसे यह भली भांति रहने के लिए आस पास के तन्तुओं को तोड़ता जाता है।

शरीर की वृद्धि--कुछ दिन के बाद यह जन्तु शीघ्रता से वृद्धि करता है। इस के शरीर पर एक तह अथवा कोश होता है। और जब तक मच्छर के आमाशय के स्नायुओं में नहीं समाता तब तक यह जन्तु मच्छर के आमाशय के भीतर बढ़ कर अपना शरीर ऊंचा कर लेता है। बस उसी समय इन जन्तुओं को अपना शरीर लम्बा मच्छर के आमाशय के भीतर अनेक स्थानों में करना पड़ता है, और देखने से खिला हुआ दिखाई देता है।

जन्तु के भीतर इसी बीच में महत्त्व का फेरफार हो जाता है। और बीज शरीर एवं बीज शरीर में रहने वाला मध्य पदार्थ सूक्ष्म सूक्ष्म भागों में बट कर अपने शरीर की वृद्धि करता है।

कुटुम्ब-विस्तार--लग भग एक सप्ताह में इनकी तह टूट जाती है और मच्छर के पेट की पोल में इन के असंख्य बच्चे चारों ओर स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करते हैं। ये मच्छर के रक्त के प्रवाह में तैरते २ मच्छर के गले के आस पास थूक उत्पन्न करने वाली नलियों में जाते हैं, इन में स्वयं चलने की शक्ति न होने से वे रक्त के प्रवाह में तैरते २ खिंच जाते हैं।

मच्छर के थूक उत्पन्न करनेवाली नली मच्छर की सूँड़ के साथ बड़ी नली से जुड़ी हुई होती है। इस नली के मार्ग से, थूक के साथ छोटे जन्तु जिस समय मनुष्य का काटते हैं उसी समय उसके शरीर में प्रवेश करते हैं। इन का आकार सूई के समान होता है।

मच्छरों में से उक्त जन्तु मनुष्य के रक्त में पहुँचते ही हैं। वहां पहुँचते ही वे रक्त के सफेद जन्तु के साथ चढ़ कर लाल कणों को पकड़ लेते हैं। पश्चात् पूर्वोक्त कथनानुसार अपनी वंशवृद्धि करते हैं। मनुष्य के शरीर में इन जन्तुओं का वंश जैसे २ उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, वैसे ही वैसे इनकी संख्या इतनी बढ़ जाती है कि मनुष्य को ठण्ड लग कर ज्वर आना प्रारम्भ हो जाता है।

एक ही मच्छर के पेट में इन जन्तुओं की संख्या पचास लाख तक होती है। मच्छरों की परीक्षा से मालूम हुआ है कि पेट में नर नारी जाति के जन्तु पूर्ण अवस्था को प्राप्त होते हैं, पश्चात् इन की सन्तान उत्पन्न होने में केवल ६ से १० तक दिन लगते हैं।

मच्छर—८०० जाति के मच्छर होते हैं। किन्तु सौभाग्य से रोग फैलाने वाले बहुत थोड़े हैं।

मलेरिया ज्वर फैलाने का काम करने वाले मच्छर एनोफीला Anophelinae वर्ग के होते हैं।

घरों में जो मच्छर दिखाई देते हैं वे दो जाति के होते हैं। क्यु लेक्स (culex) और ऐनोफीलाईन्स। इन में दूसरी जाति का मच्छर मलेरिया ज्वर फैलाता है।

नर मच्छर और नारी मच्छर का स्वभाव—दूसरी जाति के मच्छरों में नर वनस्पतिहारी होता है। यह शाक, भाजी अथवा फल, फूल आदि का रस चूसता है। इसे केला बहुत अच्छा लगता है। इन में पुरुष निर्दोष हैं। रक्त पीने वाले मच्छर स्त्री जाति वाली है। इस में पुरुष तो वनस्पति भोजी है। किन्तु स्त्रीजाति का जन्तु मांसाहारी है। यह मनुष्यों का रक्त पीकर एक ज्वर वाले मनुष्य के पास से दूसरे के और दूसरे से तीसरे के पास जाकर ज्वर फैलाने का कार्य करता है। यदि इसे मनुष्य न मिले तो फिर यह दूध वाले प्राणी, पक्षी मछली, पेट के बल चलने वाले प्राणी तथा अन्य प्रकार के जीवों का रक्त पीता है और यदि इन में से कोई भी न मिले तो यह अपने ही बच्चों को खा जाता है।

मच्छरों के दो पंखदार पर हैं पैर, छाती, पेट और जननेंद्रिय होती है। रक्त चूसने के लिए सूँड़ होती है। यह सूँड़ सारे शरीर के बराबर लम्बी होती है और उसके सारे शरीर में बाल होते हैं। अभी तक इस एनोफीलाईन वर्ग के जन्तु १२० प्रकार के देखे गये हैं।

इनमें से २८-२९ प्रकार के तो भारतवर्षमें ही हैं। यह प्रकाश में नहीं उड़ते हैं,किंतु अन्धकार में उड़ते हैं। दिनमें पर्दों में अथवा खिड़कियों के पीछे भरे रहते हैं और दिन की अपेक्षा रात्रिकाल में यह बहुत काटते हैं। इनकी वशवृद्धि बहुत शीघ्र होती है।

मच्छरों के जीवन से प्रजा विस्तार—एक नर और मादा मच्छर का वंश २० करोड़ तक होता है। मच्छरों की जिंदगी ४,५ महीनों की होती है। अतएव सोचने की बात है, कि समस्त भूतल पर ये कितनी बड़ी तादाद में फैले हुए होते हैं।

केवल ४ नर और मादा मिलकर ३,४ महीनोंके भीतर ही समस्त भूमण्डल की जनसंख्या के बराबर मच्छर पैदा करते है।

मच्छरों मे गर्भाधान—जिस स्वरूप में हम मच्छरों को देखते हैं उस समय वे पूर्णवयस्क हो जाते हैं। किशोरावस्था और बाल्यावस्था में ये पोरे के आकार के होते हैं। पंखों के आते ही ये उड़ने लगते हैं और संसार में अपना कार्य्य करते हैं। यदि मच्छर को पकड़ कर देखा जावे तो वह गर्भवती दिखाई देगी। इन का सयोग धूप में होता है और काँच कीनली में से देखने से खूब भरे हुए अण्डे दिखाई देतेहैं। इन अण्डों में से उत्पन्न होतेही मच्छर मच्छरियां पंखों वाले स्वरूप में आते ही तुरन्त ही काँच की नलो में केद्रो की दशा में सयोग करते हुए दिखाई देते हैं। मच्छरनी एक बार ५० से लेकर १००.तक अंडे देती है। अंडे से मच्छरनी के रूप में परिवर्तन होने के लिए कम से कम एक सप्ताह और अधिक से अधिक तीन सप्ताह लगते हैं।

—०—

विश्राम।

बहुत लोग विश्राम और निद्रा को एक समझते हैं, पर वास्तव में निद्रा और विश्राम में बड़ा अंतर है। निद्रा दो प्रकार की होती है।गाढ़ और सुपुप्त। सुपुप्तावस्था से और विश्राम से कुछ सम्बन्ध अवश्य हो सकता है। दिन भर काम करने से शरीर के अवयव क्षय होते रहते हैं। निद्रा में इस हानि की स्वाभाविक पूर्ति हुआ करती है। किन्तु इस से यह न समझना चाहिए कि निद्रा मनुष्य के लिए स्वभाविक विषय है। प्राकृतिक विज्ञान बतलाता है कि समस्त प्राणियों की क्षयपूर्ति के लिए विश्राम स्वाभाविक विषय है, निद्रा नहीं।

यहाँ पर सब से प्रथम यह जानना आवश्यक है कि परिश्रम द्वारा शरीर के कौन कौन अङ्ग प्रत्यङ्ग एवं ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी अवयव क्षय हुआ करते हैं। इससे यह बात सिद्ध हो सकेगी कि किन अङ्ग का कैसा स्वभाव है, अर्थात्—कौन अङ्ग किस प्रकार से अपनी क्षति दूर करने की कोशिश करता है। परिश्रम करने से नेत्रों की दो प्रकार की हानि होती है। प्रथम, ज्योतिसम्बन्धी और दूसरी मिट्टी-धूल संबंधी। देखने से ज्योति में कमी उपस्थित हुआ करती है और साफ हवा द्वारा भी कण आदि नेत्रों में घुसा करते हैं। धक्की की भांति ज़रा सी धूल-मिट्टी नेत्रों के लिए अहितकर है। निद्रा से नेत्रों की ज्योति की कमी न तो पूरी होती है और न कुछ सहायता ही मिलती है। यदि ज्योतिवर्द्धक खाद्य द्रव्यों का यथेष्ट व्यवहार किया जाय तो ज्योति में क्षय उपस्थित नहीं होता। अर्थात् नेत्रों की ज्योति के लिए ज्योतिवर्द्धक द्रव्यों की आवश्यकता है। यह कहा जा सकता है कि निद्रावस्था में ज्योति का व्यय न हो सकेगा इस लिए निद्रा नेत्र की ज्योति को सहायता पहुँचा सकती है। इस सिद्धान्त को एक दृष्टान्त द्वारा अच्छी तरह समझाया जासकता है। सूर्य और चन्द्र दिन रात अपनी ज्योति का क्षय किया करते हैं (जब यहाँ रात्रि होती है तब दूसरे गोलार्द्ध में दिन होता है)। किन्तु वे कभी ज्योतिहीन नहीं होते। इस का कारण यह है कि अग्नि—अग्नि को बढ़ाती है। अर्थात् ज्योति द्वारा ज्योति की पुष्टि होती है। सूर्य को ज्योतिवर्द्धक पदार्थ प्राप्त हैं, इस कारण बिना निद्रा के वह अपना कार्य्य किया करते हैं। यदि नेत्रज्योति-वर्द्धक द्रव्यों की पहुँच ठीक २ मिलते तो नेत्रों को ज्योतिसम्बन्धी कोई हानि नहीं हो सकती। धूल—मिट्टी के लिए निद्रा आवश्यक है। सोने से कीचड़ के रूप में सारी मिट्टी बाहर हो जाती है। अतएव यदि किसी कृत्रिम उपाय द्वारा नेत्रों की मिट्टी बाहर की जासके तो नेत्रों को निद्रा की बिलकुल आवश्यकता न रहे।

निद्रा से कानों को कोई लाभ नहीं। यदि कोई जन्तु आदि भीतर घुस जावे तो हानि होने की सम्भावना है।

नाक को भी नींद से कुछ फायदा नहीं। यदि किसी प्रकार निकट की वायु खराब हो जाय तो निद्रा के कारण सांस द्वारा अनिष्ट ही हो सकता है।

गुह्य इन्द्रिय व जनेन्द्रिय भी निद्रा से कोई लाभ नहीं उठा सकते। यदि किसी प्रकार जनेन्द्रिय या अण्डकोष क्षयजावें तो निद्रा के कारण हानि ही हो सकती है।

परिश्रम द्वारा हाथ-पैर थक जाते हैं। यदि उचित परिश्रम किया जाय तो बिना निद्रा के हाथ-पैरों का क्षय पूर्ण हो जाता है। सुस्ताने से थकावट दूर हो जाती है, स्नान, शीतल जलपान और बल-युक्त खाद्य पदार्थ थकावट दूर कर देते हैं। हाथ और पैरों के सम्बन्ध में भी निद्रा की आवश्यकता दृष्टि नहीं पड़ती।

अब ज्ञानेन्द्रियों के विषय में विचार कीजिये। विचारों के कारण मस्तिष्क शक्ति बराबर घटा करती है। मनुष्य प्रतिक्षण विचार किया करता है। शरीर का क्षय जितना विचारों द्वारा होता है उतना और किसी अन्य कारण से नहीं होता। अधिक विचार से या विचार-विभ्राट् मनुष्य बेहोश तक हो जाता है-हमेशा के लिए भी सो सकता है। मनुष्यशरीर में वीर्य प्रधान द्रव्य है। विचार द्वारा वीर्य्य-व्यय होता है। हम लोगों की विचार-प्रणाली अत्यन्त दूषित है। यदि विचारों का क्षय विचारों ही से पूर्ण न हुआ करे तो विचारों का क्षय किसी प्रकार पूर्ण नहीं हो सकता है। अर्थात् विचारक्षय में विचारों द्वारा बहुत कुछ क्षति-पूर्ति की सहायता मिलती है। इसी प्रकार विचारों द्वारा विचारोत्पादनी शक्ति का अनिष्ट भी विशेष रूप से हो सकता है। इन बातों पर विचार करने से विचारशक्ति विकसित होगी। विचार-विभ्राट् से मस्तक विकल हो जाता है और एक प्रकार की बेहोशी उपस्थित हो जाती है कि जिसे निद्रा कहते हैं। निद्रा एक छोटी सी मौत है। मनुष्य अपनी करतूत से नित्य मरा करता है। यदि विचार से काम लिया जाय तो हम निद्रा से अपना पिण्ड छुड़ा सकते हैं। हमारा कहना है कि प्राणियों के लिए विश्राम स्वाभाविक विषय है, निद्रा नहीं।

अब ज्ञानेन्द्रियों के सम्बन्ध में यह बात स्पष्ट है कि मस्तिष्क-स्नायु मूर्छित होकर गिर जाते हैं। निद्रावस्था में पाचनक्रिया आदि अन्यान्य अवयव अपना कार्य किया ही करते हैं। पाचनक्रिया की छुट्टी उपवास की अवस्था में होती है, नींद की अवस्था में नहीं।

हृत्पिण्ड या हृदय विचारों की टक्करों का भेला करता है। अर्थात् विचारों का प्रभाव हृदय पर विशेषरूप से पड़ता है। विचारों

द्वारा हृत्पिण्ड की उन्नति और अवनति हुआ करती है। हृत्पिण्ड की यह क्षति निद्रावस्था में पूर्ण नहीं होती। हृदय की भलाई विश्राम में है—निद्रा में नहीं। ऐसे मनुष्य से कुछ नहीं कहा जा सकता है कि जो यह कहे कि विश्राम की अवस्था में विचार एवं हृदय अपना २ कार्य्य कैसे त्याग सकते हैं। जो महोदय जब चाहें तब अपनी विचारशील क्रिया को रोक सकें वेही इस प्रबन्ध से आध्यात्मिक लाभ उठा सकते हैं।

साधारण ढङ्ग से निद्रा की अनावश्यकता बतलाई जा चुकी है। अब विश्राम की उपकारिता और व्यवहार-प्रणाली पर विचार किया जाता है।

निद्रा एक प्रकार की बेहोशी अथवा छोटी सी मृत्यु है। इस के सबूत में यह भी कहा जासकता है कि जो लोग अनुचित परिश्रम करते हैं उनको ही गाढ़ निद्रा आया करती है। मज़दूरी पेशे वाले लोग बिना चाहने पर विश्राम नहीं कर सकते हैं, उन को लगातार काम करना पड़ता है, इस कारण वे रात में घोर निद्राके वशीभूत होजाते हैं। हरिकर्म करने वाले लोग और दरिद्रता के कारण स्वतंत्र होनेपर भी, आवश्यक स्थलों पर विश्राम नहीं करते; इस कारण उन को भी गहरी नींद आया करती है। सम्पादक लोग और खासकर दैनिक पत्रों के सम्पादक लोग खूब सोया करते हैं। कवि, उपदेशक, वकील, चौकीदार, पुलिसकर्मचारी, कचहरियों के मुहर्रिर लोग और नेता लोगों को गाढ़ निद्रा सताया करती है। जो निर्बल मनुष्य परिश्रम करते हैं वे भी अधिक सोया करते हैं शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेवाले, परतंत्र मनुष्य—अधिक सोया करते हैं। जिन को जी चाहने पर विश्राम करना प्राप्त नहीं होता वे गाढ़ निद्रा भोग करते हैं। अतएव, गाढ़ निद्रा निर्बलता और अत्यधिक शारीरिक क्षय की प्रदर्शक है। यदि कोई मनुष्य एक दिन थोड़ा परिश्रम करे तो रात्रि में वह सुषुप्त अवस्था में रहेगा, और यदि वही मनुष्य दूसरे दिन कठिन परिश्रम करे तो गाढ़ निद्रा के वशीभूत हो जायगा। यदि कोई किसी कारणवश रात भर जागता रहे तो किसी समय गाढ़ निद्रा में मग्न हो जायगा। फलतः जितना ही अधिक क्षय किया जायगा उतनी ही ज़ोरसे निद्रा आवेगी और इस निद्रा में उस की समस्त हानि पूर्ण होजाती है। [म

बात का कोई मान्य सबूत नहीं है। जो लोग रात भर सोने पर भी प्रातः निर्बल शरीर से, निरोत्साह चित्त से और मानसिक त्रुटियों को अनुभव करते हुए शय्या त्यागते हैं, वे इस बात को भलीभाँति जानते हैं कि यदि प्राकृतिक विश्राम के साथ परिश्रम न किया जाय तो रात की गाढ़ से गाढ़ निद्रा भी क्षति पूर्ण करने में असमर्थ है। यह बात दीर्घजीवन के लिए हानिप्रद है। इस के सिवा गाढ़ निद्रा के कारण कई एक नुकसान भी हो सकते हैं। गाढ निद्रा के कारण शत्रु अपना बदला सहज ही में चुका सकता है। हिंसक जन्तु, संक्रामक दूषित वायु और गरमी, सरदी व वर्षा आदि का हानिकारक प्रभाव, सरलता पूर्वक पड़ सकता है। एक शब्द में प्राकृतिक विज्ञान-वेत्ता लोग गाढ़ निद्रा को अच्छा नहीं समझतेहैं। वास्तव में विश्राम ही स्वाभाविक विषय है, निद्रा—विश्राम की बिगड़ी हुई अवस्था का नाम है।

यदि कोई सम्पादक महाशय कोई लेख लिख रहे हों और किसी स्थल पर विचारों की सरगरमी के कारण मस्तक व्याकुल हो उठे तो उन को चाहिए कि तुरन्त लेखनी रख दें, यही स्वाभाविक विश्राम है। यदि उस समय विचारों का लोभ या पत्र छपने का समय पत्र अथवा कर्तव्यपालन का (दूषित) ज्ञान, लेखनी न रखने देगा तो प्रत्यक्ष लाभों से इतनी अधिक परोक्ष हानि होगी कि जिस की पूर्ति न तो गाढ़ निद्रा ही कर सकती है और न अँगूरों के गुच्छे। उस समय विश्राम ही प्राकृतिक विधान है। यदि शीघ्र ही मस्तक अपनी पूर्व चाल पर नहीं आवे तो कई दिन तक चुपचाप बैठना चाहिए।

विश्राम का बड़ा महत्त्व है। यदि इस विषय पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचारा जाय तो *विश्राम द्वारा सर्वसिद्धि प्राप्त हो सकती है*। साधारणतः विचार करने से अनन्त जीवन की प्राप्ति हो सकती है।

जब काम करते २ चित्त थक जावे उस समय यदि इच्छाशक्ति कुछ देर के लिए विश्राम करने का आदेश दे तो उस समय तक विश्राम करना चाहिए कि जब तक इच्छाशक्ति पुनः उसी काम के करने की आज्ञा न दे। यदि लेख लिखने को जी न चाहे तो कविता करने की तैयारी की जा सकती है। किन्तु, यदि कविता भी न बन

थके तो चित्त के ऊपर असन्तोष प्रकट न करना चाहिए। एक घण्टे के परिश्रम से थकावट उत्पन्न होजाय तो यह विचार कर कि अभी तो बहुत थोड़ा कार्य हुआ है, उस काम में लिप्त न बना रहना चाहिए आप की शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं है, इसी कारण एक ही घण्टे में थकावट आ गई है। यदि उस समय प्राकृतिक विधान की अवहेलना की जायगी तो वह क्षण दूर नहीं है कि जब आप को कुछ दिनों तक चुपचाप लेटे रहने के लिए चारपाई पर जाना पड़े। इस क्षण के विश्राम को आलस्य न कहना चाहिए। स्वाभाविक आलस्य ही विश्राम है। बलवान् शरीर को शोचनीय आलस्य नहीं सता सकता है। ऐसी अवस्था में शरीर को निःशंक समझ-विश्राम द्वारा सबल बनाना ही कर्त्तव्य है।

रात्रि का समय ही विश्राम के लिए उपयुक्त समय है। रात के विश्राम के लिए चारपाई, बिस्तर आदि आयोजनों की ज़रा भी आवश्यकता नहीं है। पृथ्वी पर बैठे २ भी विश्राम किया जा सकता है। उस समय, किसी एक विषय में या इष्टदेव के ध्यान में अथवा किसी ऐसी बात में कि जिस में विचार न करना पड़े, हाथ-पैर न मलाने पड़ें और नेत्र न खुले रहें-मग्न होजाना चाहिए। नेत्र बंद करने पर एक प्रकार की झिलमिलाहट दृष्टि पड़ती है। उस को ही देखना चाहिए। उस समय किसी प्रकार की कल्पना या विचार न करना चाहिए। घण्टे दो घण्टे ऐसी अवस्था में व्यतीत करना उपयुक्त विश्राम कहलाता है। इस बीसवीं शताब्दी में ऐसा करना अवश्य कठिन है। किन्तु जो दीर्घ और दिव्य जीवन के इच्छुक हैं और जिन को सौभाग्य से समस्त सुविधाएं प्राप्त हैं, उनको चाहिए कि वे गाढ़ निद्रा से बढ़कर सुषुप्त निद्रा या प्राकृतिक विश्राम के अभ्यासी बनें। यह बातें योग की बातें नहीं हैं। वैसे तो मनुष्य का समस्त जीवन और छोटी से छोटी घटनाएं भी साधनामय, योगमय और आध्यात्मिक विचारमय हैं।

हृदयविश्राम—बातों द्वारा, विचारों द्वारा और घटनाओं द्वारा हृदय पर आघात एवं प्रत्याघात पड़ा करते हैं। भय, स्नेह और आतङ्क के कारण भी हृदय पर प्रभाव पड़ा करते हैं। इन प्रभावों के कारण जो अच्छे या बुरे प्रभाव पड़ते हैं उनको विश्राम द्वारा शान्त कर देना चाहिए। गाढ़ निद्रा को उत्पन्न करने वाले तत्वों में हार्दिक परिवर्तन भी सहायता देते हैं। हृदय में इतनी गम्भीरता अवश्य

होनी चाहिए कि जिस से ऐसी वैसी घटनाएं अपना प्रभाव न जमा सकें। निर्बल और मोह वाले हृदय, प्राकृतिक विश्राम के उपयुक्त पात्र नहीं हैं।

नेत्रविश्राम—सांसारिक कार्यों में नेत्रों को धूल-मिट्टी से सावधानतापूर्वक बचाना चाहिए। प्राकृतिक-विश्राम द्वारा नेत्रों की सफाई हो जाया करती है। ज्योतिवर्द्धक पदार्थों के कारण ज्योति स्वयं ठीक रहेगी।

हस्तविश्राम—यदि हाथों में थकावट आजाय तो कार्य बंद कर देना चाहिए। रक्त की अप्राकृतिक क्रिया के कारण ही थकावट उत्पन्न होती है। काम करते समय इस विषय पर ध्यान रखना चाहिए कि हाथों का रक्त उष्णता प्राप्त न करने पावे।

परिश्रम की विशेषता—कभी ऐसा या इस प्रकार का परिश्रम न करना चाहिए कि जिससे रक्त उष्ण हो जाया करे और वीर्य पतला हो जाय। पतला वीर्य-चित्त, हृदय एवं प्राण को चञ्चल बनाता है। ऐसा होने से गाढ़ निद्रा आ जावेगी।

खान-पान—जो लोग गाढ़ निद्रा से बचना चाहें उन को खान-पान और आहार-विहार का भी विचार करना चाहिए। गरम, मसालेदार, मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ, सोडावाटर आदि बुरे पानीय पदार्थ, चाय, काफी आदि दुर्व्यसन, तम्बाकू आदि मादक द्रव्य, स्नायुओं को क्षीण करने वाले हैं। प्राकृतिक विश्राम में ये बातें अत्यन्त हानिकारक हैं। स्त्रीप्रसङ्ग से या किसी अन्य कारण से वीर्यपात होने पर निर्बलता के कारण गाढ़निद्रा का प्रादुर्भाव होता है। इस कारण स्त्री-प्रसङ्ग का विषय केवल सन्तान की उत्पत्ति के लिए समझना चाहिए। यह भी स्मरण रहे कि स्त्री-प्रसङ्ग के बाद या किसी परोक्ष कारणवश स्वयं ही गाढ़ निद्रा का प्रभाव अनुभव हो तो उसे कदापि न रोकना चाहिए। धीरे २ उचित विश्राम की गति प्राप्त हो जायगी। जिस समय ध्यान-निद्रा की दशा प्राप्त हो जावे उस समय यह जानना चाहिए कि सुषुप्त निद्रा या प्राकृतिक विश्राम की प्राप्ति हो गई है।

एक शब्द में प्राकृतिक विश्राम द्वारा ही समाधि की प्राप्ति होती है। समाधि जानने वाला मनुष्य अनन्त जीवन प्राप्त कर सकता है।

सादा भोजन, ताजा पानी, शुद्ध वायु, सुन्दर और उदार

त्रिदोष परीत्यागवृत्ति, नियमित वीर्यपात, ईशभक्ति, योगप्रेम, और उचित परिश्रम द्वारा विश्राम की प्राप्ति हो सकती है। इस लेख द्वारा गाढ़ निद्रा का इस लिए भी विरोध किया जाता है कि गाढ़ निद्रा स्वयं ही दीर्घ जीवन को काटने वाली है और सुषुप्त निद्रा या प्राकृतिक विश्राम दीर्घजीवन व दिव्यजीवन को देने वाली और आत्मप्रकाश करने वाली है। ×

एक प्रकृति लेखक

दुर्भिक्ष और आहार रक्षा ।

इस समय भारतवर्ष में अत्यन्त प्रबल दुर्भिक्ष उपस्थित होरहा है। जिसके कारण खाद्य पदार्थों का अत्यन्त अभाव हो गया है। निर्धन मनुष्यों के लिए तो केवल कष्ट का भोगना ही शेष रह गया है। सभी मनुष्य प्रतिदिन दोनों समय पेट भर कर भोजन नहीं कर सकते और बहुत से मनुष्यों को तो एक वक्त भी भोजन नहीं जुट सकता। अनेक निर्धन एवं कङ्गाल मनुष्यों के घर में निराहार व्रत और उपवास हुआ करते हैं। आज कल प्रायः सभी समाचार पत्रों में प्रतिदिन देशव्यापी हाहाकार की ध्वनि सुनाई देती है इस कारण सरकार को भी चिन्तित होना पड़ा है। अतएव वह खाद्य पदार्थों की आमदनी और रफ्तनी को नियमित करने एवं उनके मूल्य को स्थिर करने के लिए बराबर विचार और उद्योग कर रही है।

दुर्भिक्ष से संबन्ध रखने वाले कितने ही विषय हैं। उन में एक महामारी भी है। देश में इस अत्यन्त भयङ्कर दुर्भिक्ष के उपस्थित होने से बहुत से मनुष्य खाद्य पदार्थों को नहीं पासकते और जो अनेक प्रकार के भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों को खाकर किसी प्रकार क्षुधा की निवृत्ति करलेते हैं वे नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होजाते हैं। दुर्भिक्ष के कारण ही कालरा आदि जैसे प्राणसंहारक रोगों से बहुत से मनुष्य मृत्यु के मुख में पतित होते हैं और गाँव के गाँव उजाड़ होते जाते हैं। इतिहास में इस प्रकार की घटनाओं के बहुतेरे दृष्टान्त देखे जाते हैं। दुर्भिक्षजन्य महा-

× लेखक महाशय ने इस लेख में केवल योगमत के आधार पर अपने स्वतन्त्र विचारों को प्रकट किया है। आशा है विद्वान् लोग इस पर विचार करेंगे। सम्पादक

मारी के प्रकोप के समय भारतसरकार, साधारण, जनसमुदाय और चिकित्सकगणों का एक एक विशेष कर्त्तव्य है। यह विषय अत्यन्त गुरुतर है, इस लिए इस को एक स्वतन्त्र प्रबन्ध में आलोचना होना आवश्यक है। हम उस को विवेचना करने का पीछे यत्न करेंगे। प्रथम दुर्भिक्ष के साथ परोक्ष रूप से मिलेहुए अन्य एक विषय की यहाँ आलोचना करना आवश्यक जान पड़ता है।

दुर्भिक्ष का अर्थ खाद्य पदार्थों की कमी है। इस समय साधारण मनुष्य अपने जीवन को स्थिर रखने के लिए उपयुक्त खाद्य द्रव्यों को यथेष्ट परिमाण में संग्रह नहीं कर सकते। ऐसे समय जो खाद्य पदार्थ थोड़े बहुत मिलसकते हैं, उन की जिस से किसी प्रकार हानि न हो इस के लिए सभी को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। हानि का होना अवश्य ही बुराई की बात है। साधारणतः हमारा दाल, भात, रोटी, शाक आदि ही प्रधान भोज्य है और पूरी, कचौरी, पकवान, मिष्टान्न, आदि सम्पन्न और शौकीन लोगों का भोज्य है। यह सर्व साधारण का खाद्य नहीं है। इस दाल, रोटी का प्रतिदिन कितना अभाव होता जारहा है, उस को हम दिखाना चाहते हैं। अन्ततः दुर्भिक्ष के होने पर भी इस अभाव को निवारण करना सब को उचित है या नहीं, इस को पाठक स्वयं विचार कर देखें।

खाद्य पदार्थों से केवल उदरपूर्ण करके क्षुधा की निवृत्ति करना ही खाने का प्रधान उद्देश्य नहीं है, बल्कि खाने का प्रधान उद्देश्य शरीर को पुष्ट, बलवान् और कार्य्य करने के योग्य बनाना है। दुर्बल शरीर में जिससे रोग का प्रभाव न फैलने पावे, इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिए। सुतरां, जिस खाद्य से हमारे शरीर की पुष्टि होती है बस वही हमारा मुख्य खाद्य है। हम जिस खाद्य को खाते हैं उसका जितना अंश हमारे शरीरका पोषण करता है, वास्तवमें हमको उतना ही आहार करना चाहिए। खाद्यका जितना अंश शरीर में शोषित होकर उसकी पुष्टि नहीं करता, वह यथासमय शरीर से अलग होकर बाहर निकल जाता है। उस को हम खाद्य नहीं कह सकते। हम प्रति दिन जो दाल, भात, शाक, रोटी आदि खाते हैं, उनका कितना अंश हमारे शरीर की पुष्टि करता है। और यथार्थ में उसका कितना अंश शरीर को प्राप्त होता है, उसको नीचे दिखाते हैं:—

खाद्य पदार्थों के शरीर में शोषित होने पर, परिपाक यन्त्र में स्थित पाचक रस की सहायता से उनका परिपाक होना आवश्यक है

परिपाक के होने पर उसका परिपाक की उपयोगी अवस्था में पाक-यन्त्रमें आकर पहुँचना आवश्यक है। भक्षित द्रव्यों का जितना अंश दाँतों से उत्तम प्रकार चर्वण होता है पाकयन्त्रका पाचकरस उतने ही अंश का परिपाक अच्छे प्रकार करता है। फिर वही अंश शरीरमें शोषित होकर शरीर की पुष्टि साधन करता है। किन्तु हमारी भोजन करने की विधि के दोषसे भोजन का असली उद्देश्य बहुत अंशों में व्यर्थ होजाता है। जो मनुष्य पूरी, पकवान, मिष्टान्न आदि अत्यन्त कठिन द्रव्यों का भोजन करते हैं, उनको बाध्य होकर ये समस्त खाद्य पदार्थ कुछ देर तक अवश्य चर्वण करने पड़ते हैं। क्योंकि चर्वण न करने से वे खाद्य द्रव्य गले से नीचे नहीं उतारे जासकते। किन्तु हम पहले ही कहचुके हैं कि इसप्रकार का खाद्य हमारे देशके सर्वसाधारण मनुष्यों का खाद्य नहीं है। इस देशके सामान्य जनों का खाद्य तो केवल दाल रोटी ही है। अब उनका कितना अंश हमारे शरीर के पुष्ट होने में सहायता करता है, इस समय इस की विवेचना करना हमारा मुख्य उद्देश्य है।

ऊपर खाद्य पदार्थों के खाने के सम्बन्धमें जो बातें कही गई हैं, भोजन करते समय इन बातों को विचार कर हम भोजन नहीं करते। क्षुधा की निवृत्ति के लिए ही हम मुख्यतः भोजन करते हैं। क्षुधा-निवृत्ति के ही कारण बार बार खाद्य पदार्थ उदरस्थ किये जाते हैं। बहुत लोग भोजन करके निर्दिष्ट समय नियमित रूप से किसी कामको करते हैं—जैसे आफिस के बाबू लोग, स्कूल और कालेज के विद्यार्थी, शिक्षक आदि तथा इसीप्रकार के अन्यान्य श्रेणियों के लोगों को और भी जल्दी जल्दी भोजन करना पड़ता है। इनके सिवा अभ्यास से अथवा आलस्य से इस देशके साधारण मनुष्य भोजन के लिए जितना समय व्यय होना चाहिए उतना नहीं करते। वे खाद्य पदार्थों को उक्त प्रकार चर्वण न कर वैसे ही निगल जाते हैं जिससे कि भोजन का उत्तम प्रकार परिपाक न होनेके कारण शरीर का ठीक २ पोषण नहीं होता और भोजन की व्यर्थ हानि होती है। इस लिए विशेषकर के ध्यान रखकर भोजन करना चाहिए। खाद्य पदार्थ को उक्त अवस्था में लाने के—अर्थात् सहज में निगलने के योग्य बनाने के लिए जितने चर्वण की आवश्यकता है प्रायः उतना ही चर्वण करना चाहिए, उस से अधिक करने की आवश्यकता नहीं है।

साधारणतः दाल, भात, रोटी आदि ही हमारा प्रधान खाद्य है।

ये चीज़ें बहुत हल्की और नरम होती हैं। केवल दाल, भात को निगलने के लिए तो प्रायः चर्वण भी नहीं करना पड़ता। ये द्रव्य विना चर्वण के ही उदरस्थ हो जाते हैं। कारण कि, यदि कोई आदमी भोजन करने के पश्चात् तत्काल किसी कारण से वमन करदेवे तो प्रायः देखा जाता है कि उस में साबत के साबत दाल, भात के कण बाहर निकलते हैं। यह बात हम पहले ही कह चुके हैं। समस्त चिकित्सकों की भी इस विषय में यही सम्मति है कि उत्तम प्रकार से चर्वण न करने पर पाकस्थली में स्थित पाचक रस खाद्य को भले प्रकार नहीं पचा सकता। अतएव यह पदार्थ शरीरमें शोषित होकर शरीर की पुष्टि नहीं कर सकता। ईश्वर ने मोतियों की पंक्ति की समान जो हम को सुन्दर दो दाँतों की पंक्तियाँ दी हैं वे केवल मुख की शोभा बढ़ाने के लिए अथवा खाद्य पदार्थों को कुछ चबाकर निगलने के लिए नहीं हैं, वल्कि खाद्य द्रव्यों को अच्छे प्रकार चर्वण कर सुखपूर्वक निगलने के योग्य बनाने को दी हैं। भोजन करते समय हम उसी प्रधान विषय को भूल जाते हैं, उस के लिए प्रारम्भ में कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। खाद्य पदार्थ उत्तम प्रकार से चर्वण करने पर पाचक रस के द्वारा बहुत जल्द जीर्ण होजाते हैं। उस के ऊपर चर्वण करते समय जो लार गिरती है वह भी खाद्य को पचाने में अनेक प्रकार से सहायता करती है। जो विना चवाया या थोड़ा चबाया हुआ खाद्य उदरस्थ होजाता है वह प्रायः अच्छे प्रकार जीर्ण नहीं होता। क्योंकि परिपाक यन्त्र में दाँत तो हैं ही नहीं जो वह दाँतों का काम करसके। साधारण मनुष्य जो प्राय अजीर्ण रोग से ग्रसित रहते हैं, उस का कारण उत्तम प्रकार से खाद्य पदार्थों का चर्वण न करना ही है।

इन सब बातों को विशेष रूप से विचार कर आलोचना करनेसे सभी समझ सकेंगे कि हम प्रतिदिन जो भोजन करते हैं उस का कितना अंश वास्तव में हमारे काम आता है और कितना अंश व्यर्थ जाता है। इस दुर्भिक्ष के समय खाद्य पदार्थों का जितना अभाव होता जाता है हम उतना ही उक्त खाद्य द्रव्यों का कम संग्रह कर सकते हैं। इसलिये भोजन की जिस से विशेष हानि न हो इस पर ध्यान देना मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है।× गोवर्द्धनप्रसादशर्मा

× स्वास्थ्य-समाचार के एक लेख के आधार पर।

परीक्षित-प्रयोग

महापौष्टिक मोदक।

बादाममिरी २०तोले, सफेद मुसली ८ तोले, सालवमिश्री ८तोले, कौंच के बीज ८ तोले, सतावर ८ तोले, बिदारीकन्द ६ तोले, असगन्ध ६ तोले, गोखुरू ६ तोले, सेमर की मुसली ६ तोले, शकाकुल मिश्री ६तोले, तालमखाना ४ तोले, बीजबन्द ४तोले, सिंघाड़े की मींग ४ तोले, कसेरू ४ तोले, कीकर का गोंद ४ तोले और मस्तगी २ तोले एवं जायफल, जावित्री लौंग, अकरकरा, दालचीनी, वंशलोचन, छोटी इलायची और धनियाँ प्रत्येक औषधि एक एक तोला, उत्तम केशर ३ माशे और कस्तूरी १ माशा, मकरध्वज ३ माशे, वंगभस्म ६ माशे, लोहभस्म ६ माशे और उत्तम शिलाजीत १ तोला लेवे। प्रथम बादामों की मींगों को थोड़ी देर तक जल में भिगो कर उन के लाल छिलके जुदा कर पाटा करिके पीस लेवे। पश्चात् मुसली से लेकर कीकर के गोंद पर्यंत समस्त औषधियों को अच्छे प्रकार कूट पीस कर वस्त्र में छान लेवे। फिर उक्त औषधियों के चूर्ण में समान भाग घी और समान भाग गौ के दूध का बना हुआ ताजा मावा मिला कर कड़ाई में डाल कर मन्द मन्द अग्नि द्वारा उत्तम प्रकार भूने। फिर इस से चौगुनी सफेद खांड वा मिश्री लेकर उस की चाशनी बना कर उक्त घृतमर्दित औषधियों को उस में डाल देवे। जब चाशनी तयार हो जावे तब नीचे उतार कर उस में शेष सब औषधियों के चूर्ण को मिला देवे। जब पाक तयार हो जाय तब एक एक तोले के लड्डू बना लेवे। इन में से प्रतिदिन एक एक मोदक दूध के साथ प्रातः और सायङ्काल पूर्ण वयस्क मनुष्य को सेवन करना चाहिए। इस पर अत्यन्त गरम, खट्टे और खारे पदार्थ नहीं खाने चाहिएँ। यह अत्यन्त पौष्टिक, अतिशय कामोद्दीपक बल, वीर्य वर्द्धक और स्तम्भक है। कफ, खाँसी, श्वास, शरीर की दुर्बलता, धातुक्षीणता, प्रमेह और बवासीरों में अत्यन्त हितकारी है।

पौष्टिक अवलेह।

उत्तम कस्तूरी ३ माशे, अम्बर ३माशे, सोने के वर्क ३माशे, मोती की भस्म ३माशे, प्रवालभस्म ३माशे, लोहभस्म ३माशे, मकरध्वज ३ माशे, केशर १माशे, सफेद मुसली का चूर्ण१तोला, वंशलोचन१तोला,

छोटी इलायची १ तोला, जहरमोरा १ तोला, घी में भुनी हुई भाँग का चूर्ण ६ माशे, जायफल ६ माशे, जावित्री ६ माशे, अकरकरा ६ माशे, लौंग, दारचीनी, चाँदी के वर्क और खुरासानी अजवायन: प्रत्येक ६-६ माशे इन सब को उत्तम प्रकार बारीक पीसकर कपड़छन कर लेवे। फिर सब औषधियों से चौगुनी मिश्री की चाशनी बनाय जब पक कर अवलेह की समान होजाय तब नीचे उतार लेवे। शीतल होने पर उस में मिश्री की बराबर शहद डाल कर सब को मिलाकर रख देवे। इस में से प्रतिदिन दो २ माशे प्रमाण लेकर प्रात: और सन्ध्या समय गरम दूध के साथ सेवन करे। यह अवलेह अत्यंत कामोद्दीपक, वीर्य्यवर्द्धक, स्तम्भक और कफ तथा वात सम्बन्धी समस्त रोगों को दूर करता है तथा हृदयमें तत्काल बल उत्पन्न करता है।

रतिवल्लभ रसायन।

बादामगिरी १ पाव, सालब मिश्री ८ तोले, सफ़ेद मुसली ४ तोले, काली मुसली ४ तोले, तालमखाना ४ तोले, खिरैंटी के बीज ४ तोले, कौंच के बीज ४ तोले, सोंठ २ तोले, अकरकरा १ तोला, तज १ तोला, जावित्री १ तोला, तुलसी के बीज ६ माशे और मस्तगी ६ माशे। सब औषधियों को यथाविधि कूट पीस कर खाँड़ और घृत के योग से उत्तम प्रकार पाक सिद्ध करे। इस रसायन को प्रतिदिन प्रात: और सायङ्काल डेढ़ डेढ़ तोले लेकर दूध के साथ सेवन करे। यह अतीव वीर्य्यवर्द्धक, धातुपुष्टिकारक और स्तम्भक है। ये तीनों योग कितनी ही बार परीक्षा किये जाचुके हैं।

क्लीवत्वनाशक घृत।

सफ़ेद कनेर की छाल ३ तोले, काले धतूरे के बीज ३ तोले, आक की जड़ की छाल ३ तोले, सफ़ेद चौंटली ३ तोले, अकरकरा ३ तोले, पौंछ की जड़ ३ तो०, कूठ ३ तो० और असगन्ध ३ तोले; सब को जल के साथ यथाविधि पीस कर कल्क बनालेवे। फिर उस कल्क को एक सेर चमेली के रस या काढ़े में डाल कर आधपाव भैंस के घृत को सिद्ध करे। जब पकते २ घृत मात्र शेष रह जाय तब उसको नीचे उतार छान कर रख देवे। इस घृत का इन्द्रिय पर लेप करने से नपुंसकता दूर [illegible] बृद्धि होती है। अथवा पारे गन्धक की कज्जली, [illegible] विष्ठा, सुहागा और शहद; इन सब को एकत्र खरल कर इन्द्रिय पर लेप करने से भी नपुंसकता दूर होकर कामेच्छा जागृत होती है। वैद्यराज।

पुरानी खांसी पर—मलेठी का सत्व, बीकन का गोंद, अकरकरा कत्था, काकड़ासिंगी और अनीस, इन सब औषधियों को समानभाग लेकर कोकड़ की छाल के काढ़े में खूब मरल करके दो दो रत्ती की गोलियाँ बनालेवे। फिर प्रतिदिन सुबह और शाम विशेष कर जब खाँसी का वेग हो तब एक दो गोली मुख में डाल लेनी चाहिए। इस से खाँसी का वेग तत्काल कम होजाता है। एवं नई, पुरानी सूखी और तर सब प्रकार की खाँसी शीघ्र दूर होती है।

कफकी खासी पर—प्रथम सेंधे नमक को आक के दूध में खरल कर, एक सेंड के डंडे को भीतर से चाकू या छुरी से खाली कर के उस के भीतर भरदेवे। फिर ऊपर से कपरमिट्टी कर अग्नि में पुटपाक विधि से पकावे। जब वह पककर स्वयं शीतल होजाय तब उस में से नमक को निकाल कर बारीक पीस शीशी में भरकर रखदेवे। इस में से २—३ रत्ती भर पान या शहद अथवा गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए। इस से कफ की खाँसी, छाती की पीड़ा और सर्दी का विकार तत्काल दूर होता है।

श्वासरोगकी रसायन औषधि।

लाल फिटकरी १ पाव, नौसादर १ पाव, दोनों को कूट-छान कर हांडी में डाल दें, और डमरू यन्त्र की विधि से सत्व उड़ालें, इसकी मात्रा४ चावल पान में रख श्वास के वास्ते दें। पहली मात्रा से ही आराम मालूम होने लगता है, ७ दिन में पूर्ण लाभ होता है।

यकृत वृद्धि पर— अडूसा, चीते की छाल, सिरचिटे की छाल, सहिजने की छाल, सोंठ और सरफोंका, इन सब की भस्म करके उसमें त्रिफला यथाचार मिलाकर ४-४रत्ती की मात्रा से गरम जल के साथ सेवन करने से यकृतशोथ, यकृत का बढ़ना और यकृत्सम्बन्धी सर्वप्रकार के विकार दूर होते हैं।

केशकल्प—(खिजाब) फटकरी, नीलाथोथा और हीराकसीस ये तीनों समानभाग, हरड़ २ भाग, आंवला २ भाग माजूफल २ भाग और नील के पत्ते ८ भाग लेवे। सब को एकत्र खूब बारीक पीसकर जल के साथ मिलाकर सफेद बालों के ऊपर लगावे तो सब बाल काले होजाते हैं। इस खिजाब को सफेद कोढ़ के ऊपर लगाने से भी बहुत लाभ होता है। वैद्य भाग्याराम, आनन्दराम।

खुजली पर अत्युत्तम योग—हल्दी, दारुहल्दी, जीरा, काला जीरा, काली मिरच, सिन्दूर, मैनसिल, पारा और गन्धक, ये सब

औषधियां समान भाग लेवे। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें, फिर सब औषधों को एकत्र बारीक कूट पीस कर कपड़ छन करलेवे। पश्चात् एकसौ एक बार धोये हुए घी में सब औषधियों को अच्छे प्रकार मिलाकर किसी मिट्टी,पत्थर या काँच के बर्त्तन में भरकर रख देवे। फिर इसकी प्रतिदिन धूपमें बैठ कर शरीर पर मालिश करे। फिर थोड़ी देर पश्चात् शरीर पर मुलतानी मिट्टी मलकर स्नान कर डाले। इस प्रकार करने से सूखी व तर कैसी भी खुजली क्यों न हो निःसन्देह दूर होती है। यह प्रयोग हमारा कितनी ही बार का अनुभव किया हुआ है। वैद्य जगन्नाथप्रसाद विशारदी, आगरा।

—०—

धन्वन्तरि—महोत्सव।

अबकी बार कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को कानपुर, प्रयाग, हरद्वार, जम्बू,पूना,बम्बई और मदरास आदि भारत के अनेक स्थानोंमें धन्वन्तरि महोत्सव विशेषरूप से मनाया गया। खेद का विषय है कि मुरादाबाद के वैद्योंकी उदासीनता के कारण उक्त उत्सव स्थानीय आयुर्वेदप्रचारिणी सभाकी ओरसे सम्मिलित रूपसे न होसका। तथापि हमारे वैद्यकार्यालय में सामान्यरूप से धन्वन्तरि-जयन्ति मनाई गई। कई सज्जनों के आयुर्वेद पर महत्वपूर्ण भाषण हुए।

जम्बूमें धन्वन्तरि—महोत्सव।

हर्ष का विषय है कि इस वर्ष जम्बू (काश्मीर) की वैद्यजनता ने भी नि० भा० आयुर्वेद महामण्डल के आदेशानुसार का० कृ० १३ को धन्वन्तरि जयन्ति का उत्सव बड़े उत्साह से मनाया। हमारे माननीय आयुर्वेदपञ्चानन कविरत्न पं० रघुनाथशर्मा वैद्यराजजी के उद्योगसे इस उत्सव का प्रबंध श्री रघुनाथमंदिर में किया गया था। उक्त तिथि को साय ५ बजे नगर के सभी प्रतिष्ठित वैद्य तथा अन्य सज्जन उपस्थित हुए। बड़े समारोह से भगवान् धन्वन्तरि का पूजन कियागया। इसके पश्चात् भजन गायन आदि हुए। फिर आयुर्वेदसम्बधी तीन प्रभावशाली व्याख्यान हुए। फिर सभी समागत सज्जनों के गले में भव्यमालाएं पहनाई गई और सबको धन्वंतरिजी का नैवेद्य- काश्मीरी सेव दिये गये। तदनन्तर धन्वन्तरि—भेट निम्नलिखित प्रकारसे एकत्रित हुई—

५) म०म० पं०जगदीश्वरजी विद्यासागर प्रिंसिपिल रघुनाथ पाठ

शाला जम्बू, २) व्याकरणतीर्थ पं० हरिदत्तजी शास्त्री वाइस प्रिंसिपिल, २) प्रा० पं० क० द० पं० रघुनाथ शर्माजी वैद्यराज आयुर्वेदिक प्रोफसर, २) रमाकांत शास्त्री भारद्वाज, २) राजवैद्य प० राजारामजी शास्त्री, २) ला० दीनानाथ अरोड़ा, १) बालकृष्ण विद्या०, १) परशुराम आचार्य, १) वैद्य गुरुदत्त महाजन, १) हरिराम अरोड़ा, १) हरिराम महाजन, १) चन्दूराम वैद्य, १) चरणदास भंडारी, १) प० आऋद्भानु शास्त्री, ॥) लालचंद वक्कील०, ॥) विश्वनाथ गुजराती, ॥) दीनानाथ अग्रवाल ॥) रलादावर देवजी वैद्य, ॥)अमरनाथ आयुर्वेदविशारद ॥) किशनचंद सराफ, ॥) गुलामराज महाजन, ॥) बेलीराम अग्रवाल, ॥) प०जगद्वान पुस्तकालयाध्यक्ष, ॥) पुन्नुराम अरोड़ा, ॥) भोलानाथ अरोड़ा, ।) कालीदास, ।) प० ठाकुरदास रामायणी, ।) गोवर्द्धन विद्यार्थी, ।) प० संतराम वेदपाठी, ।) निहालचंद अरोड़ा, =) हंसराज अरोड़ा, -) प० हरकृष्णजी वैद्य ॥) पं० लव्वराम शास्त्री

पं०लव्वराम शास्त्री आ०श्रीभारद्वाज म०,जम्बू

श्री धन्वन्तरि-जन्मोत्सव ।

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी सौमवार २१अक्टूबर को पं०हरिश्चन्द्रम शर्मा एम० ए० वैद्य के सभापतित्व में ऋषिकुल हरिद्वार में श्री धन्वन्तरि उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया ।

पहले शास्त्रविधि से श्रीधन्वंतरि भगवान् की पूजा की गई पश्चात् आश्रम के वेदपाठी पं० अमरनाथ शर्मा जी ने उपस्थित सज्जनों को कथा सुनाई । फिर भजनोपदेशक पं० सीताराम जी का मधुर गान हुआ ।

स्थानीय सरदार इन्द्रराज शर्मा आनरेरी मजिस्ट्रेट आदि महानुभाव भी उत्सव में सम्मिलित हुए थे ।

नारायण शर्मा वैद्यराज.

—०—

युक्तप्रांतीय वैद्यसम्मेलन कानपुर ।

पाठकों को यह जानकर महान् हर्ष होगा कि युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का द्वितीय वार्षिक महोत्सव, आयुर्वेद पञ्चानन श्री पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल के सभापतित्व में हरदोई में ता०२१, २२ और २३ दिसम्बर तदनुसार पौष कृष्णा १४, १५ और शुक्ला १ को

१६७८ को होगा। आपसे इस सम्मेलन में सम्मिलित होने की प्रार्थना है। आशा है कि आप निश्चित समय पर [illegible] की अवश्य कृपा करेंगे [illegible] भी देखेंगे।

[illegible] रघुवरदयालु वैद्य, मन्त्री

निखिलभारतवर्षीय एकादश वैद्यसम्मेलन।

सर्वसाधारण आयुर्वेदप्रेमि [illegible] को सादर सप्रेम सहर्ष सूचना दी जाती है कि [illegible] इन्दौर में जो इस वर्ष निखिलभारतवर्षीय [illegible] सम्मेलन होना निश्चय हुआ है इस सम्मेलनके अधिवेशन [illegible] ३१ मार्च तथा पहली व दूसरी अप्रेल सन् १६२० ई० [illegible] गई हैं।

हर्षकी बात यह है कि इस सम्मेलन के साथ साथ प्रदर्शनी भी होगी जिसमें कि सब प्रकार की वनस्पतियां तथा उनके कंद,मूल फल आदि और सर्व प्रकारके रस, भस्म, यन्त्र, शस्त्र प्राचीन तथा अर्वाचीन छपे व हस्तलिखित आयुर्वेदीय ग्रंथ तथा पांडुलिपि, शिलालेख ताम्रपत्रादि प्रदर्शित किये जावेंगे।

सकल सुविधा के हेतु इन प्रदर्शनो का प्रबंध एक सुसम्मिलित व योग्य कमेटी के द्वारा किया जाना प्रबन्धकारिणी समिति मे निश्चय किया जा चुका है। इस कमेटी का मुख्य उद्देश यही है कि बाहरसे आनेवाली पार्सलें अपने समक्ष खोले व प्रदर्शन समिति में से जिन पदाधिकारियों को सुपुर्द करेगी। उनसे वस्तु दिये अनुसार रसीद प्राप्त करलेगी तथा प्रदर्शनकार्य के समाप्त होने पर दिये अनुसार प्राप्त कर अपने समक्ष अपनी ही सीन से सुचारु रूपमें पार्सल पैककर लौटा देगी जिसमें बाहर से भेजने वाले सज्जनों को अपनी उत्तम उत्तम सामग्री भेजने में कुछ शङ्का तथा भय का कारण न रहे और अब सम्मेलनसम्बन्धी समस्त पत्रव्यवहार प्रधान कार्यालय आदित्यवार्या बाजार इंदौर से ही करना उपयुक्त होगा। प्रदर्शनी के नियम तथा नियमसूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायेगी और सभापति के आसन को कौन महानुभाव सुशोभित करेंगे यह सूचना निश्चय हो जाने पर शीघ्र ही दी जावेगी।

विनीत निवेदक—वैद्य प्यालीराम द्विवेदी प्रधानमन्त्री
नि॰भा॰ एकादशवैद्यसम्मेलन कार्यालय
आदित्यवार्या बाजार, इन्दौर।

Regd No. A. 587

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिकपत्र

सम्पादक-शंकरलाल वैद्य

वर्ष ७ } मुरादाबाद, नवम्बर १९१९ { संख्या ११

विषय-सूची।

प्रकाशक-हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक-मूल्य १।)

Printed by Kailasachandra
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD

* वैद्य के नियम *

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १।) रु० है

(३) 'वैद्य' नमूने में केवल एक अङ्क भेजा जाता है। नमूने में कोई सा अङ्क भेजदिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वह पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जावेंगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए जिस से उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड वा टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जांच कर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं, इसका कारण रास्ते की असावधानी ही हो सकती है। जिन महाशयों को जो अंक न मिले वह दूसरे अंक के पहुँचते ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्वप्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य' शङ्करलाल हरिशङ्कर, 'वैद्य आफिस, मुरादाबाद' के पतेसे भेजने चाहियें।

वैद्य के फ़ाइल।

वैद्य के दूसरे वर्ष की—

१२ संख्याओं की जिल्द बँधी फाइल का मूल्य १) डा॰ म॰।

वैद्य के चौथे वर्ष की—

१२ संख्याओं की जिल्द बँधी फाइल का मूल्य १) डा॰ म॰।

वैद्य के छठे वर्ष की—

१२ संख्याओं की जिल्द बँधी फाइल का मूल्य १) डा॰ म॰।

नोट वैद्यके पहले तीसरे और पाँचवें वर्ष के फाइल अब नहीं रहे, इसलिये कोई महाशय लिखने का कष्ट न उठावें।

पता—वैद्य आफिस, मुरादाबाद।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ७ | मुरादाबाद, नवम्बर १९१९ | संख्या ११

प्राचीन चिकित्सा शास्त्र और उनकी आलोचना ।

(लेखक-डा० श्रीआशुतोषराय एल० एम० एस०)

वर्तमान चिकित्साशास्त्र (Modern Medicine) के प्रवर्त्तन होने से पहले संसार में भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न समय भिन्न भिन्न चिकित्सा शास्त्रों का परिवर्त्तन हुआ है। उन में कितने ही लुप्त होगये हैं और कितने ही अतिशय जीर्ण शीर्ण अवस्था को प्राप्त होकर किसी प्रकार अस्तित्व धारण किये हुए हैं। इन पुरातन चिकित्सा शास्त्रों में से आज हम कई प्रधान चिकित्सा शास्त्रों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ विचार करते हैं। १ पुरातन मिश्र-देशीय चिकित्साशास्त्र (Old Egyption Medicine) २ पुरातन ग्रीक-चिकित्साशास्त्र (Old Greek Medicine) । ३ अरब-चिकित्साशास्त्र जिसको हमारे देशमें "हकीमी" चिकित्सा शास्त्र कहते हैं और जिसका दूसरा नाम "यूनानी"-चिकि-

रबशास्त्र है । (Arabian Medicine) । ४ हमारा "आयुर्वेदीय"—चिकित्सा शास्त्र है । (Hindu Medicine) इन सब चिकित्सा शास्त्रों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों में विशेष मतभेद देखा जाता है। नीचे उन भिन्न भिन्न मतोंको दिखाया जाता है:—

१ आयुर्वेद सबसे पहला चिकित्सा शास्त्र है । उससे मिश्र, मिश्र से ग्रीक और ग्रीक से अरब-चिकित्साशास्त्र की उत्पत्ति हुई है। २ आयुर्वेद और प्राचीन मिश्र-चिकित्साशास्त्र ये दोनों ही परस्पर की सहायताके बिना उन्नत और परिवर्द्धित हुए हैं । मिश्रसे ग्रीक और ग्रीकसे अरब-चिकित्साशास्त्र की उत्पत्ति हुई है। ३ प्राचीन मिश्र-चिकित्साशास्त्र सबसे पहला चिकित्साशास्त्र है । उससे ग्रीक और आयुर्वेदशास्त्र की उत्पत्ति हुई है । ग्रीकसे अरब—चिकित्सा शास्त्र की उत्पत्ति हुई है । ४ ग्रीक—चिकित्साशास्त्र, प्राचीन मिश्र और आर्य-चिकित्साशास्त्र; इन दोनों प्रकारके चिकित्साशास्त्रोंसे उत्पन्न हुआ है। ग्रीकसे अरब-चिकित्सा शास्त्र की उत्पत्ति हुई है। ५ पुरातन मिश्रसे ग्रीक, ग्रीकसे अरब और अरब-चिकित्साशास्त्र से आयुर्वेदशास्त्रकी उत्पत्ति हुई है ।

पुरातन मिश्र-चिकित्साशास्त्र के सम्बन्ध में हमारा सामान्य ज्ञान है । पाश्चात्य पुरातत्त्ववेत्तागणोंने मिश्र से चिकित्साशास्त्र के सम्बन्ध में छः हस्तलिपियें (Papyrus) उद्धृत की हैं।

१—इवार्स वा लिपजिक् पैपिरस नामक ग्रन्थ अनुमान ईसा के जन्मसे साढ़े पन्द्रहसौ वर्ष पहले लिखा गया है । २—प्रधान बर्लिन वालिङ्डेन पैपिरस अनुमान ईसा के जन्मसे चौदह सौ वर्ष पूर्व लिखा गया है। ३—दूसरा बर्लिन पैपिरस । ४—हियार्स पेपिरस । ५—बृटिश म्यूजियम में रक्षित पैपिरस और ६—पैरिस में रक्षित पैपिरस लिखा गया है ।

उपर्युक्त छः प्रकार के पैपिरसोंमें "इवार्स पैपिरस" अतिप्राचीन ग्रन्थ है। उससे पुरातन मिश्र देशकी चिकित्सा के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य विषय मालूम होसकते हैं। प्रधान बर्लिन पैपिरस के साथ हमारे "अथर्ववेदकी" अनेक विषयोंमें एकता देखी जाती है।

जो यह कहते हैं, कि प्राचीन मिश्र-चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेदसे उत्पन्न हुआ है उनके इस मतका प्रधान कारण यह है कि ऐतिहासिक युगके पूर्व भारतवासियोंने मिश्रमें जाकर सभ्यताके प्रकाशका विस्तार

किया था। दूसरे कहते हैं कि आयुर्वेद और प्राचीन मिश्र-चिकित्सा शास्त्र परस्पर की सहायता के बिना उन्नत और परिवर्द्धित हुए हैं। इन में हमें शेषोक्त मत ही अधिक विश्वासयोग्य मालूम होता है। कारण, अधिकांश विद्वानों का मत यही है कि मिश्र की सभ्यता हमारी सभ्यता से बहुत पुरानी है। हमारा अथर्ववेद और मिश्रका पैपिरस यदि समकालीन कहा जाय तो इस से उस समय का चिकित्साशास्त्र चिकित्सा की प्राथमिक अवस्था अर्थात् स्वाभाविक बुद्धि से उत्पन्न हुआ ज्ञान पड़ता है। युक्ति अथवा परीक्षा से उत्पन्न नहीं हुआ है। (Primitive stage by Instinct) अवश्य ही मिश्र—चिकित्सा शास्त्र प्राथमिक अवस्थासे अधिक अग्रसर होगया था। किन्तु हमारे गौरव का विषय यह है कि वह हमारे आयुर्वेद के समान इतना उन्नत नहीं हुआ। और मिश्रकी सभ्यता के साथ मिश्रका चिकित्सा-शास्त्र समय के कुगर्भ में लीन होगया है। वाज साहब के मतसे भी मालूम होता है कि प्राचीन मिश्र-चिकित्सा ने प्राचीन ग्रीक और आयुर्वेद के समान उन्नति नहीं की है।

(२ प्राचीन ग्रीक और रोमक चिकित्साशास्त्र—इन शास्त्रों की क्रमोन्नति चार भागोंमें विभक्त की जासकती है।

१–प्रथम अवस्था--Primitive Stage Derived From Instinct up to 1200 B. C

२–द्वितीय अवस्था--Sacred or Mystic Stage—Rise of PythagorianSchool upto500 B.C

३–तृतीय अवस्था--Philosophic Stage—Rise of Hippocratic and Other Schools up to 300 B.C.

४–चतुर्थ अवस्था--Anatomic Stage—Up to Gahu is 200 A D.

ग्रीक—चिकित्साशास्त्र, प्राचीन मिश्र-चिकित्सा शास्त्र से उत्पन्न हुआ है यह सर्वसम्मत मत है। इस समय देखना चाहिए कि आयुर्वेद के साथ ग्रीक चिकित्सा के सम्बन्धमें क्या सम्पर्क है? इस विषय में तीन मत हैं।

१ ग्रीक—चिकित्सा शास्त्र, मिश्र और आयुर्वेद, इन दोनों चिकित्साशास्त्रों से उत्पन्न हुआ है।

२ ग्रीक और आयुर्वेद—चिकित्सा शास्त्र परस्पर की सहायता के बिना उन्नत और परिवर्द्धित हुए हैं- अर्थात दोनों ही एक वृक्ष के फल हैं।

३-ग्रीक से अरब और अरब से आयुर्वेद-चिकित्साका की उत्पत्ति हुई है।

प्राथमिक अवस्था—क्या मनुष्य, क्या जीव-जन्तु, प्राणीमात्र को ही चिकित्साके सम्बन्धमें स्वभावजनित एक प्रकार का ज्ञान था। असभ्य मनुष्यों एवं जातिमात्र को ही सभ्यता के पहले औषधि आदि का एक तरह का ज्ञान था। वह ज्ञान सभ्यता की उन्नति के साथ बढ़ कर चिकित्साशास्त्र की उत्पत्ति हुई है। ग्रीक, आदि सभ्य जाति की सभ्यता की पहली अवस्था में कुछ सामान्य ज्ञान था।

द्वितीय अवस्था—इस अवस्था में चिकित्साशास्त्र का सूत्रपात हुआ और इसी समय पण्डितप्रवर पाइथेगोरास का अभ्युदय हुआ। उन्होंने चिकित्सा शास्त्रकी विशेष उन्नति की। चिकित्साशास्त्रमें उनका प्रधान दान-रोगकी अवधि का समय निरूपण करना है। "The celebrated Doctrine of Numbers The Doctrine of critical days" Encyclopedia Britannica

रोग के भोगकाल के सम्बन्ध में आयुर्वेद में विशेषरूप से निर्णय किया गया है। उसका उदाहरण यहाँ दिया जाता है। जैसे वातज्वर की अवधि सात दिन, पित्तज्वर की १० दिन और कफज्वर की अवधि १२ दिन की है इत्यादि।

आयुर्वेद के समान यूनानी-चिकित्साशास्त्र में भी रोग के भोगका समय सम्यक् प्रकार से निर्णित किया गया है। अवश्य ही पुराने हकीमों ने इसको ग्रीक-चिकित्साशास्त्र से ग्रहण किया है।

आधुनिक (डाक्टरी) चिकित्सा शास्त्र रोग की अवधि का समय निरूपण करने की बात का विश्वास न करने पर भी बिलकुल उसे भूला नहीं है। जैसे-निमोनिया की पेसिस (निराम अवस्था) सात दिन में होती है, यह पाश्चात्य शास्त्र में लिखा है। तीन दिन का ज्वर (Three day Fever) सात दिन का ज्वर (Seven day Fever) आदि आधुनिक पाश्चात्य डाक्टरगण भी स्वीकार करते हैं।

इलियट साहब, उनकी ग्रीक और रोमन ऐतिहासिक नामक पुस्तक में स्पष्टरूप से लिखते हैं कि पाइथोगोरास मिश्र, फिनिशिया, बेबी

किया और सम्भवतः भारतवर्ष में चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करके आये थे।

तृतीय अवस्था–इस समय ग्रीक चिकित्सा शास्त्र से दो भिन्न मतावलम्बी दलों का अभ्युदय हुआ। एक दल का नाम एमपीरिक्स (Empiric) उन का विद्यालय सिनिडस (Cenides) नामक स्थान में था। दूसरे दल का नाम डागमेटिस्टस (Dogmatists) इनका विद्यालय कस् (Cos) नामक स्थान में प्रतिष्ठित था।

१–एमपीरिक्स–ये लोग चिकित्सा के लिए रोग का कारण निर्णय और शारीरिक विद्या (Anatomy) की शिक्षा आवश्यक नहीं समझते। चिकित्सा के लिए पर्य्यवेक्षण(Observation)प्रत्यक्ष लब्धज्ञान (Experience) और परीक्षित औषधियों को सब प्रकार के प्रयोगों में व्यवहार करना ही चिकित्सा का उपाय बताये हैं।

२ डागमेटिस्टस–(Dognatists) इन लोगों ने चिकित्सा के लिए विशेष गवेषणा के साथ रोग का "हेतु" "पूर्वरूप" (Remote and Paxi Mate Cause वायु,जल और दोषों के गुण-अवगुण एवं ऋतु का प्रभाव आदि शरीर के ऊपर किस प्रकार कार्य करते हैं,उसका अनुसन्धान किया है। वे रोग की चिकित्सा एमपीरिक्स की समान साधारण नियमों के अनुसार नहीं करते। प्रत्येक रोगी की रोगोत्पत्ति के कारण का प्रत्यक्ष रूप से अनुसन्धान करके उपयुक्त चिकित्सा करते हैं। इसके सिवा ये लोग एमपीरिक्स की समान पर्य्यवेक्षण और प्रत्यक्ष लब्धज्ञान आदि की सहायता चिकित्सा के लिए अवश्य लेते हैं।

आयुर्वेद भी ठीक इसी मत के अनुसार और इसी प्रकार से चिकित्सा का उपदेश करता है। ग्रीक-चिकित्साशास्त्र की तीसरी अवस्था में सुप्रसिद्ध हिपोक्रेटस का अभ्युदय हुआ। वह इस समय ग्रीक-चिकित्सकों में अग्रगण्य था। (The central Figure This Stage) आधुनिक डाक्टरी चिकित्साशास्त्र उसको चिकित्सा शास्त्रों का जन्मदाता (Father of Medicine) कह कर स्वीकार करता है। हर्ष का विषय है कि आज पाश्चात्य विद्वान् डाक्टर गण हमारे चरक और सुश्रुत का भी हिपाक्रेटस की समान सर्वोच्च आसन देते हैं।

१ रोगोत्पत्ति का कारण–हिपोक्रेटस के मत से रोगोत्पत्ति के कारण 'चार दोष' हैं। जिनको वे 'क्रोसिस (Crosis) कहते हैं–

और अरबी हकीम जिनको "खिल्त" (Khilt) एवं आयुर्वेदीय चिकित्सकगण "दोष" नाम से वर्णन करते हैं। इन्हीं दोषों की भिन्न भिन्न अवस्थाओं से रोग का कारण सबसे पुराने चिकित्सा शास्त्रों में निर्दिष्ट किया गया है।

ग्रीक, रोमक और अरब चिकित्सकगण इन दोषों की संख्या चार मानते हैं। जैसे—सफ़रा (Sofra-Yellow bile) सउदा (Souda-Blach Bile) बलगम (Balgam--Phlym) ख़ून (Khuna-Blered) आयुर्वेद के मत से दोष तीन हैं। यथा—वात, पित्त, कफ।

२ शरीर की "मूल" धातुयें—ग्रीक, अरब और आर्य्य चिकित्सकगण कहते हैं कि कितनी ही मूल धातुओं के (Elements) समुदाय से शरीर उत्पन्न हुआ है। हिपाक्रेटस के मत से यह मूल धातु चार हैं। "पृथिवी, जल, तेज और वायु"। और आर्य्यचिकित्सकों के मत से यह मूल धातु पाँच हैं। यथा "पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश।"

३ शरीर की स्वस्थता और अस्वस्थता-हिपोक्रेटस के मत से चारों दोषों की समता और चारों भूतों का विशेष संयोग होने पर (Proper Combination) शरीर स्वस्थ रहता है। (आर्य्यचिकित्सकोंका भी यही मत है कि तीनों दोषों की समता और पञ्चभूतों का विशेष संयोग होने पर शरीर स्वस्थ रहता है। किन्तु आयुर्वेदाचार्यगण पञ्चभूतोंके विशेष संयोग से जो सप्त धातुमय शरीर का वर्णन कर गये हैं, उन सात धातुओं के साम्य अवस्था में न रहने से शरीर में अस्वस्थता उत्पन्न होती है। शरीर की अस्वस्थता के सम्बन्ध में आयुर्वेदीय वैद्यगण कहते हैं कि कितने ही रोग दोषों की विकृत अवस्था से उत्पन्न होते हैं और कितने ही रोग, दोष तथा धातु दोनों के विकृत होने से उत्पन्न होते हैं।

४ रोग का फलाफल निरूपण—रोगी की साधारण अवस्था जानकर रोग के फलाफल को निरूपण करने के (Prognosis) सम्बन्ध में हिपोक्रेटस अद्वितीय था ("In Prognosis the Hippocratic School have perhaps never been Excelled"—Encyclepaedia Britannica.)

इस विषय में हमारा आयुर्वेद हिपोक्रेटस की अपेक्षा किसी अंश में कम नहीं है। चरक के इन्द्रियस्थान में सुखसाध्य कष्टसाध्य, और असाध्य रोगों के लक्षण जितने वर्णन किये गये हैं और इन्द्रियस्थान में सम्पूर्ण इन्द्रियों की परीक्षा के सम्बन्ध में जो वर्णन किया

गया है—उस से रोग के फलाफल का भलीभाँति निरूपण किया जा सकता है।

५ रोग का परिचय—(Diagnosis)—इस विषय में हिपोक्रेटस का ज्ञान सामान्य था। किन्तु इस विषय में हमारा आयुर्वेद शास्त्र अद्वितीय है। उसका हेतु, सामान्य और विशिष्ट पूर्वरूप, रूप, संख्या विकल्प प्राधान्य बलाबल और काल आदि निर्णय करके रोग की प्रकृति का निरूपण किया है।

नाड़ी (Pulse) के सम्बन्ध में हिपोक्रेटस कुछ भी नहीं जानता। इस विषय में पाश्चात्य ग्रीक और रोमक-चिकित्सकगणों में गैलेन (Galen) अद्वितीय था। हमारे आयुर्वेद में प्रचार-प्राप्त नाड़ी विज्ञान, गैलेन के नाड़ीविज्ञान की अपेक्षा अत्यन्त उत्कृष्ट है।

मूत्र अर्थात् मूत्रपरीक्षा (Urine)—इस का हिपोक्रेटस की एफोरियम (Aphoriam) नामक पुस्तक में विशेष परिचय पाया जाता है। आयुर्वेद के प्रयोगचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में यह विषय विशेषरूप से पाया जाता है। प्रयोगचिन्तामणिग्रन्थ में जिह्वा परीक्षा, मूत्रपरीक्षा नाड़ीपरीक्षा और नेत्रपरीक्षा आदि विषय स्पष्ट रूप से वर्णित हैं, जिन का हम विशेष रूप से देख सकते हैं, और इन से हम आयुर्वेद शास्त्र के मत से रोग का भली भाँति निर्णय (Diagnosis) कर सकते हैं। हिपोक्रेटस के रोगनिर्णय और रोग के फलाफल के विचार-सम्बन्ध में भी विशेषरूप से वर्णन किया गया है।

६ चिकित्सा—(Treatment) आयुर्वेद के समान हिपोक्रेटस ने भी औषधि की अपेक्षा पथ्य की विशेष उपयोगिता का वर्णन किया गया है। "Great importance was given to diet. Medicines were regarded as secondary"—Encyclopaedia Britannica.

आयुर्वेद—इस विषय में जो कहता है, उस को नीचे उद्धत करते हैं:—

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्त्तते।
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि॥

अर्थात्-रोग की औषधि न कर केवल पथ्य करने से ही रोग

निवृत्त होजाता है और विना पथ्य के सैकड़ों औषधियों के करने से भी रोग शान्त नहीं होता। आधुनिक पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र भी इस मत का अनुमोदन करता है।

स्वाभाविक क्रिया द्वारा शरीर रोग से मुक्त होता है—हिपोक्रेटस कहता है कि रोगके कारण दोष पहले अशुद्ध होकर रोग उत्पन्न करते हैं फिर वे ही स्वाभाविक क्रिया द्वारा परिपाक (Digested) होकर दूर होजाते हैं। इसी प्रकार हमारे आयुर्वेद में भी देखा जाता है। नवीन ज्वर की साम्य अवस्था में लङ्घनादि के द्वारा रस का परिपाक होकर निराम अवस्था परिणत होती है। दूषित रस शरीर में से दूर होजाने पर रोगी रोगमुक्त होता है।

उपर्युक्त विषयों से भलीभांति विदित होता है कि हिपोक्रेटस के जिस अधिक सत्यके साथ हमारा आयुर्वेद बहुत कुछ मिलता है। यहाँ यह प्रश्न होता है कि हिपोक्रेटस ने आयुर्वेद को यह सत्य प्रदान किया है अथवा आयुर्वेद से हिपोक्रेटस ने इस सत्य को लिया है। इस सम्बन्ध में नीचे कुछ मत दिये जाते हैं—

डाक्टर पी० सी० राय महाशय कहते हैं कि हिपोक्रेटस के जन्म से पहले ही आयुर्वेदज्ञगण हिमालय पैथ[?]गाज"के ऊपर नीव रखकर चिकित्सा शास्त्र की उन्नति विधान करगये है।

डाक्टर पल्ली, केम्प्रनर्नि, [illegible] के मत से हिपोक्रेटस ने चिकित्सा शास्त्र के विषय में भारत और मिश्रीय चिकित्साशास्त्रों से अनेक विषय ग्रहण किये हैं। "Hippocratus owes his medical Inspirations to Egyptian and Indian Medicine

डाक्टर इलियट साहब कहते हैं कि हिपोक्रेटस के समय अस्त्र चिकित्सा द्वारा अर्बुद (रसौली) काटना साधारण अस्त्रचिकित्सा में नहीं था, किन्तु आर्य्यशल्यचिकित्सक गण बहुत पहलेसे ही इस चिकित्सा में विशेष पारदर्शी थे।

रोगोत्पत्ति के कारण के सम्बन्ध में हिपोक्रेटस "चार दोष" कहगया है और आर्य्यवैद्यगण तीन दोषों का वर्णन कर गये हैं। इस से मालूम होता है कि हिपोक्रेटसने आर्य्यचिकित्साशास्त्र से ही प्रथम तत्व को जाना। फिर उसने अपनी बुद्धि के अनुसार और भी स्पष्टरूप से रोगोत्पत्ति के सम्बन्ध में चार "दोषों" का

वर्णन किया है । यद्यपि दृढपूर्वक यही सिद्धान्त स्थिर होता है कि हिपाक्रेटस का क्रेसिस (Crasis) और आर्य्यचिकित्सकों के दोष दोनों एक ही चीज़ें हैं । अन्त में साम्प्रतिक पाश्चात्यचिकित्सक इन दोनों को ही (Hamour) कहते हैं-तथापि क्रेसिस और "दोषों" में बहुत कुछ अन्तर है ।

विज्ञापनी वैद्य ।

(लेखक—श्रीयुत प० कृष्णानन्द जोशी बी०ए०, एल०टी०)

(१)

करना नित उपकार देश का, और नहीं कुछ काम हमें ।
वटी, चूर्ण अवलेह सभी का, समझो बस गोदाम हमें ॥
नोटिसबाज़ी नित्य नई, और नये नये व्यवहार ।
सभी नया आयोजन कर के, करें लोक—उपकार ॥

(२)

बन जावें हम धन्वन्तरि के, पूर्ण कला अवतार कभी ।
कभी किसी योगी के चेले, अमृत के करतार कभी ॥
आत्मप्रशंसा से डरते हैं, पर यह तथ्य पुकार ।
करते हैं हम बार बार, यह—अपनी भुजा पसार ॥

(३)

असंख्य रोगों की जो औषध, रामबाण की नानी है ।
वरणन करते शेष थकें गुण; जो गुण-गण की खानी है ॥
उसकी है दरकार आपको ? लिखिए हम को पत्र ।
स्वल्प मूल्य में, सुलभ रीति से, पहुँचावें सर्वत्र ॥

(४)

पड़पने के शत्रु, शिथिलता को मानो तलवार हमें ।
ज्वर हरने के तो समझो, मौरूसी ठेकेदार हमें ॥
प्रस्तुत हैं दश-लक्ष-प्रशंसा—पत्र, हमारे पास ।
पाये हैं सचमुच जो हमने, नहिं कुछ किया—प्रयास ॥

(५)

अपने मुख से अपना वरणन, कर हम नहीं अघाते हैं ।
दग्धोदर के हेतु नित्य, यों कपट जाल फैलाते हैं ॥
फँसते हैं जिस में धन वाले, इन्द्रिय-लोलुप, जार ।
पेट हमारा भरता है, हो उन के धन की क्षार ॥

मलेरिया।

(दूसरी संख्या से आगे)

मलेरिया रोकने के उपाय।

(१) मलेरिया के प्रधान जन्तु मनुष्य के रक्त में आक्रमण करते हैं इस से ज्वर उत्पन्न होता है।

(२) यह जन्तु मनुष्य के रक्त में एनो फिलाईज मच्छर के द्वारा ही प्रवेश करते हैं।

(३) मलेरिया के मच्छर स्थिर पानी में उत्पन्न होते हैं और विशेषकर जिन स्थानों में पानी भरा रहता है और जहाँ पत्ते, घास, कूड़ा आदि सड़ते रहते हैं, यहाँ अधिकता से उत्पन्न होते हैं।

यह बातें विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुकी हैं, इसलिए इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। मलेरिया ज्वर को जड़ से नाश करने के लिए निम्नलिखित प्रयत्न करने अत्यावश्यक हैं।

(१) कौनेन मलेरिया जन्तु का खास शत्रु है। यह औषधि ज्वरपीड़ित व्यक्ति को देने से अवश्य लाभ होता है। परन्तु आरोग्य-शास्त्र का यह मुख्य सिद्धान्त है कि रोग होने के पश्चात् चिकित्सा करने की अपेक्षा रोग के कारण को ही मूलसहित उखाड़ डालना अच्छा है।

(२) मच्छरों के दूर होने पर ज्वर फैलना आप से आप बंद हो जावेगा।

(३) ऐसे स्थानों में कि जहाँ से मच्छर दूर नहीं किये जासकते वहाँ मनुष्यों को चाहिए कि ऐसे उपाय करें कि जिससे मच्छर काट ही न सकें।

कौनेन—ज्वर के लिए कौनेन कितनी लाभदायक है इस को समझाने की आवश्यकता नहीं है। शहर के प्रायः सभी लोग और गाँवों के बहुत से लोग इस का उपयोग जानते हैं। किन्तु जब हम भारत के शिक्षितों का हिसाब लगाने बैठते हैं तो जान पड़ता है कि हजारों लाखों आदमी इस बात को भी नहीं जानते कि कौनेन क्या चीज है। सरकार की ओर से कौनेन की पुड़ियें बाँटी जाती हैं; परन्तु वह देश के केवल $\frac{?}{२०}$ भाग के लिए ही हो पाती हैं। अतएव

मलेरिया-कान्फ्रेन्स ने एक प्रस्ताव पास करके सरकार से प्रार्थना की है कि वह अधिक प्रमाण में कौनेन के प्रचार का प्रयत्न करे। दयालु भारतसरकार ने भी उक्त प्रार्थना स्वीकार करली है। प्रत्येक शिक्षित देशभक्त का कर्त्तव्य है कि वह जनता को कौनेन के गुण और उपयोग से परिचित कर दे। ज्वर वाले व्यक्ति को जुलाब देने के बाद कौनेन दिन में तीन बार जो कि वजन में २० ग्रेन के बराबर हो ३,४ दिन तक देने से और बच्चों को उस से कम मात्रा में तीन बार बार देने से सामान्य ज्वर दूर हो जाता है। परन्तु तीव्र ज्वर में महीने डेढ़ महीने तक देने की जरूरत होती है।

जिस समय मलेरिया के जन्तु रक्त में प्रवेश करके ज्वर उत्पन्न करते हैं और वे अधिक संख्या में बढ़ते जाते हैं तब उन्हें जड़ मूल से नष्ट करने में बड़ी कठिनता होती है। किसी किसी अवसर पर मलेरिया-जन्तुओं को समूल नष्ट करने के लिए गरमी व जाड़ों के दिनों में तीन तीन महीने और बरसात में चार महीने तक नियमित रूप से कौनेन खानी पड़ती है। यदि ऐसे स्थान में जाने की जरूरत आ पड़े कि जहां मलेरियाज्वर फैल रहा हो तो एक दिन में पांच ग्रेन कौनेन खाने से ज्वर नहीं आ सकता। यदि मलेरिया ज़ोरों पर हो तो दिन में पांच पांच ग्रेन और रात्रि में १ ग्रेन कौनेन खानी चाहिए।

मच्छरों के न काटने का इलाज—मच्छरों के वंश से बचने के लिए—मच्छरदानी, जाली और खिड़कियों का प्रबंध करना चाहिए। परन्तु इन चीजों को केवल असाधारण लोग ही काम में ला सकते हैं तो भी सामान्य मनुष्यों से जितना बन सके उतना प्रबन्ध अवश्य करना चाहिए। घर में जितनी खिड़कियाँ या झरोखे आदि हों उन सब में मच्छरों के प्रवेश न कर सकने योग्य महीन जाली लगवा देनी चाहिए और आने जाने के दरवाजों के खुले रहने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मच्छर भीतर प्रवेश न कर सकें। कई एक मुसाफिरी बँगलों, परीगेशन अथवा फौजी महकमों के साहबों के रहने के बँगलों में और उन स्थानों में दौरा करने वाले आफिसरों के लिए जहाँ मलेरिया का अधिक प्रकोप रहता है ऐसा प्रबन्ध किया जाता है। सूर्योदय के पश्चात् मच्छर अधिक नहीं काटते। केवल संध्या समय अर्थात् रात्रि के पहले भाग

में मच्छरों को घर के भीतर जाने से रोक दिया जावे तो मच्छरों से सहज ही पीछा छुट सकता है।

इस प्रकार का प्रबंध हो जाने पर यदि घर के आस पास दल-दल हो, अथवा ऐसे गड्ढे या बस्तियाँ हों कि जहाँ पानी भरा रहता हो, या आस पास मच्छरों को नासमझ पड़ोसी दूर न कर सकते हों तो भी कोई हानि नहीं हो सकती।

उक्त उपायों के सिवा यदि सायंकाल में घर में भली भाँति धुआँ कर दिया जावे तो उस से भी मच्छरों का नाश हो सकता है।

मच्छरों का नाश—तीसरे ऐसी व्यवस्था की जावे कि मच्छर उत्पन्न ही न हो सकें। मच्छरों की उत्पत्ति और स्वभाव आदि जान लेने पर हम भारतवासी यदि सरकार से सहयोगिता करके इस कार्य्य में तन, मन, धन से सहायता देने में किसी प्रकार की त्रुटि न करें तो कुछ वर्षों में ही यह अभागा देश मलेरिया रूपी दुष्ट राक्षस के पञ्जे से मुक्त हो जावे।

किसी घर में मच्छरों के हो जाने पर उस घर के मच्छरों के नाश करने का उपाय बहुत प्राचीन समय से हम लोगों में चला आता है। बहुत से लोग घर के चारों ओर के दरवाज़े बंद करके तम्बाखू और लोबान की धूनी देकर घर में रहने वाले मच्छरों का नाश कर डालते हैं। इस के सिवा गंधक अथवा कपूर की धूनी देकर अथवा घर को टरबैण्टाईन की डामर से पोत कर मच्छरों का नाश करना भी अच्छा है।

मच्छरों के उत्पन्न होने पर उनके रोकने का उपाय—दलदल, गीली और ऊँची नीची ज़मीन में तुलसी, अंडी और युकेलीप्टस के झाड़ बहुतायत से लगाये जावें तो मच्छरों का नाश हो सकता है। पहले मन्सूरी में मलेरिया-जन्तु बहुतायत से थे, किंतु जब से वहां युकेलीप्टस के झाड़ों का बीज बोया गया तब से मच्छर कम हो गए और उक्त झाड़ों की परम मनोहर सुगन्ध से उक्त देश जगमगा उठा।

हमारे देशवासी तुलसी को बहुत पवित्र मानते हैं इस से गीली ज़मीन, बाड़ा, खेती-बाड़ी की ज़मीन, अथवा कुए के किनारे जहाँ अधिकता से पानी डाला जाता हो वहाँ लोग तुलसी के झाड़ लगाने

पसन्द करते हैं। क्यों कि इस से मच्छरों का नाश होता है।

बाड़ी, पगीया, तालाब, आदि स्थानों को स्वच्छ रखना तथा ग्राम के आस पास का हिस्सा सूखा रखने से मच्छरों की उत्पत्ति का ह्रास होता है। शहरों में पानी लेजाने वाले ड्रेनेज रहते हैं। बरसात के दिनों में ग्रामनिवासियों को चाहिए कि ऐसा ढाल बनावें कि जिस से उक्त पानी सञ्चित न होकर बहजाया करे। इस के साथ ऐसी व्यवस्था भी की जावे कि जिससे प्रतिदिन उपयोगमें आने वाला पानी सञ्चित न होसके। ग्रामोंमें कुओं के किनारे बहुत पानी डाला जाता है, उसे सञ्चित न होने देने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए वह छोटे छोटे हिस्सों में होकर फैल जावे और सन्ध्या कालमें आस पास की जगह सूखी होजावे। इतनी व्यवस्था कर देने से मच्छरों के पोटे जन्म न ले सकेंगे। ग्राम के चारों ओर १ मीलतक का हिस्सा सूखा और स्वच्छ रहने से इतनी ही दूरके तालाब नदी और नहरके भाग से कोई हानि होने की सम्भावना न होगी, क्योंकि मच्छर आधमील से अधिक नहीं उड़ सकते। इस के बाद हमें चाहिए कि हम अपने ग्रामों और घरों को भली भांति स्वच्छ रक्खें, पीने का पानी स्वच्छ रक्खें, घरों की स्वच्छता सुन्दर करें, हवादार और खुले हुए भाग में आनन्द प्राप्त करें। इन के सिवा ग्राम के बदसूरत स्थानोंके ढाल ऊँचे स्थान, सपाट मैदान और पक्के रास्ते मलेरियाज्वर नाश करने में अधिक सहायक होते हैं।

देश की दरिद्रता—हमारे समूचे देश की दरिद्रता दूर करने का जब तक पूरा पूरा प्रबंध न किया जावेगा तब तक ऊपर कहे हुए प्रयत्नों से पूरा पूरा और स्थायी लाभ होना कठिन है।

हमारे देश का व्यापार और उद्योग की वृद्धि हो, काश्तकारी में तरक्की हो और दरिद्र लोगों का जीवन अधिक सुखी और आनन्दमय हो, और शिक्षा का प्रचार करके स्वस्थ बलवान् आत्माएँ पैदा होसकें इन बातों के ज्ञान का प्रचार देश में शुरू होना चाहिए।

उत्तम पद्धतिकी खोज—जिस प्रकार बम्बईमें चलते हुए ज्वरका कारण खोजने के लिए डाक्टर बटेली ने घोर परिश्रम किया है; उसी प्रकार प्रत्येक शहर और ग्राममें चलते हुए ज्वरका कारण नियमपूर्वक

खोज करना म्युनिसिपिलिटियों, लोकलबोर्ड और सरकार का प्रथम कर्त्तव्य है। क्योंकि सामान्य कारण प्रत्येक स्थान के एक से होने पर भी प्रत्येक ग्राममें मच्छर होनेके कारण जुदे जुदे होते हैं और सूक्ष्मता से खोज कर उसे दूर करने का प्रयत्न दृढ़ता और धीरता से लम्बे समय तक खोज निकाला जाये तो प्रजा के सारे दुःख और भयङ्कर मलेरियाजनित कष्ट दूर हुए बिना न रहेंगे।

देशसेवकों से प्रार्थना—देशसेवा की इच्छा रखने वाले प्रत्येक स्वदेशाभिमानी सज्जन का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए आग्रह पूर्वक प्रार्थना की जाती है और उन से इस काम के होने की आशा करते हुए यह क्षुद्र लेख समाप्त किया जाता है।

स्वप्नदोष।

आजकल प्रायः सभी दैनिक, साप्ताहिक और कितने ही मासिक पत्रों के स्तम्भों में बड़े बड़े लम्बे चौड़े स्वप्नदोष की दवा के विज्ञापन देखे जाते हैं। उक्त विज्ञापन ऐसे कुत्सित और घृणित बातों से पूर्ण होते हैं कि जिनको पिता पुत्र और भाई भाई एक साथ बैठकर नहीं पढ़सकते। कोई भी समाचारपत्र इस समय ऐसा नहीं दीखता जिस को उठाते ही मोटे मोटे अक्षरों में प्रमेह, धातुदौर्बल्य या स्वप्नदोष की अकसीर औषधि का विज्ञापन दृष्टिगोचर न हो। केवल समाचार पत्र ही नहीं, अनेक वैद्य और हकीमों के सूचीपत्रों में भी इस श्रेणी के विज्ञापनों की भरमार देखी जाती है। उन को देख कर यही जान पड़ता है कि सारा भारत आज ऐसे ही रोगों से पीड़ित होकर रसातल को जारहा है। किन्तु वास्तव में जैसा लोग समझ रहे हैं, यथार्थ में यह वैसा रोग नहीं है।

स्वप्नदोष कोई भयङ्कर रोग नहीं है; किन्तु एक सामान्य विकार है। स्वप्नदोष का प्रधान लक्षण निद्रावस्था में वीर्य्य का स्खलित होना है। यद्यपि यह विकार स्वप्नदोष के नाम से कहा जाता है; परन्तु बहुत मनुष्यों के बिना स्वप्न देखे भी सहज ही वीर्य्यपात हो जाता है। इस रोगका अंगरेजी नाम Night Pollution है। किन्तु हमारी राय में यह नाम भी ठीक नहीं है। कारण केवल रात्रि में ही नहीं, दिन में भी निद्रावस्था में वीर्य्य स्खलित हो सकता है और होता हुआ देखा भी गया है। विज्ञापनदाता लोग इस रोग को

अत्यन्त भयङ्कर बताते हैं। उनके कथनानुसार इसकी समान दूसरा भीषण रोग संसार में नहीं है—और उनकी रामबाण और अकसीर औषधियों के सेवन किये बिना मृत्यु निवारण नहीं होसकती। उनकी औषध केवल उस रोग से मुक्त ही नहीं करती, किन्तु यमराज के भय को निवारणकर अमरपद को प्राप्त करादेती है। जो हो, विज्ञापनी वैद्य स्वप्नदोष को जितना भयङ्कर बता कर उस का परिचय देते हैं, किन्तु हम इसको एक रोग भी स्वीकार करने के लिये तैयार नहींहै। हमारी रायमें यह शरीर और मनका एक सामयिक विकार है। स्वप्नदोष का मूल जो वीर्य संस्कृत में जिसका दूसरानाम विन्दु है-यह मनुष्य शरीर के सार से सगठित हुआ है। यह वोर्य्य ही जीवसृष्टि का निदान है। स्त्री के गर्भ में यह वीर्य्य व बोज पुष्ट होकर समय पर सन्तानरूप से भूमिष्ठ होता है। यह पुरुष के सम्पूर्ण शरीर में अति सूक्ष्म अणुओं के आकार में व्याप्त है। अंगरेज़ी विज्ञानशास्त्र में यह वार्य्य व बीज ही (Cell) सेल व कोष नाम से कहा जाता है। जब जीव के मन में नूतन सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा होती है तब मन की जो अवस्था होती है उसको काम कहते हैं। काम का अर्थ कामना है।मन में नवीन कामना उत्पन्न होने पर कोई जीव नवीन जीव की सृष्टि करने को जीवसृष्टि को समर्थ नहीं होता। मन में काम व कामना का उद्रेक होने पर पुरुष के मन में स्त्रीजाति के जीव से मिलने की इच्छा उत्पन्न होती है और मिलने का फल सन्तान अर्थात् नूतन जीव है। काम व स्त्री पुरुष के परस्पर मिलने को इच्छा से ही सन्तान का होना सम्भव हो सकता है। किन्तु आर्य्य और आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान-विशारद पण्डितगण दोनों ने ही स्थिर किया है कि वीर्य्य अत्यंत सूक्ष्म अणुओं के आकार में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। हम जो कुछ भोजन करते हैं, उस का सारांश रक्त, अस्थि, मेद, मांस आदि में परिणत होता है। इन सब पदार्थों का सारांश मज्जा या (Bone-morrow) के आकार में अस्थियों के भीतर सञ्चित होता है। उस मज्जा का सारांश क्रम से वीर्य्य व बीज के अणु रूप में सब शरीर में व्याप्त होता है। मन में काम का उद्रेक होने पर यह सम्पूर्ण शरीर में से आकर बीजाधार में सञ्चित होता है। पश्चात् संगम के फल से मूत्रनाली के मार्ग से निकल कर स्त्री के शरीर में प्रवेश करता है। जब यह वीर्य्य कामोद्रेक होने से पहले शरीर में जिस अवस्था में होता है, कामोद्रेक के पश्चात् बीजाधार में आकर सञ्चित

होने पर फिर वह पूर्वावस्था में फिर कर नहीं आ सकता। तब उसको इच्छा हो या न हो, जागृत अवस्था हो या निद्रित अवस्था हो स्त्रीसंगम किया हो या न किया हो, तब वीर्य बाहर होकर निकलेहीगा। मनमें कामोद्रेक के होने पर स्त्रीसंगम करने से वह स्वाभाविक अवस्था में बाहर होता है और उस के न करने पर भी वह अस्वाभाविक अवस्था में निद्रा के समय अथवा जागृत अवस्था में भी बाहर होकर निकले हीगा। इसकारण स्वप्न-दोष कहने पर भी वह स्वप्न की अपेक्षा नहीं रखता। यहाँतक कि प्रबल कामोद्रेक के होने पर स्त्रीसंगम के अभावमें प्रत्येक समय निद्रा की भी आवश्यकता नहीं होती। केवल मल के त्याग के समय ज़रा किंचने से ही वीर्य बाहर होजाता है। पेटेन्ट औषधियों के विज्ञापन दातागण स्वप्नदोष को जितना भीषणरूप से वर्णन करते हैं मलत्याग के समय किंचने से जो वीर्य बाहर होता है उस अवस्था को प्रमेह व उसका पूर्वलक्षण कहकर उसको और भी अधिक भयङ्कर बताते हैं। किंतु, पाठकों को ज़रा मन में विचार कर देखना चाहिए कि यह रोग है या नहीं और औषधियों के द्वारा यह दूर हो सकता है या नहीं। हम पूछते हैं कौन सी पेटेंट औषधि मन में उत्पन्न हुए काम के उद्रेक को निवारण कर सकती है अथवा वीजाधार में एक बार वीर्य आकर सञ्चित होने पर कौन सी पेटेंट औषधि उसको फिर से अर्थात् भ्रूण के आकार में समस्त शरीर में भेज सकती है। पेटेंट औषधियों की विज्ञापनी भाषा का आडम्बर और विज्ञापन की छटा इन दोनों को ही दो भीषण रोग कहसकते हैं। क्योंकि यह दोनों ही रोग अल्पवयस्क और अपक्व बुद्धिवाले युवकों के मनमें रोगका आतङ्क जमादेते हैं। क्या उन विज्ञापनी औषधियों से इस रोग का प्रतिकार होसकता है। इन औषधियों के विज्ञापन जिस भाषामें लिखे जाते हैं उनसे मनुष्य के मनमें कामोद्रेक को यथेष्ट सहायता मिलती है। ये औषधियें उक्त रोग को निवारण करना तो दूर रहा, किन्तु ये इन्द्रियों को अस्वाभाविक रूप से उत्तेजित करके वीजाधार में वीर्य को गिराने की और भी अधिक सहायता करती हैं।

यदि स्वप्नदोष अथवा जागृत अवस्था में मल-मूत्रादि के त्याग के समय किंचन से वीर्य-स्खलन होना वास्तविक रोग मान भी लिया जाय तो भी उस में हमारी राय में विज्ञापनी पेटेंट

औषधियाँ या अन्य कोई तीक्ष्ण औषधि कदापि सेवन नहीं करनी चाहिये। स्वप्नदोष और धातुपात दोनों रोगों के प्रतिकार का एक मात्र उपाय संयम का अभ्यास करना है। केवल इन्द्रिय संयम ही नहीं, बल्कि मानसिक-संयम की भी विशेष आवश्यकता है। कारण, मन ही यहाँ इन्द्रियों का प्रधान सञ्चालक है। केवल इन्द्रिय-संयम करनेसे ही कोई लाभ नहीं होता। स्त्रीसंगम का उपाय न होने पर जिस से मनमें कामवासना ही उत्पन्न न हो वैसी व्यवस्था करनी चाहिए और सर्वदा मनको इस प्रकार के कार्यों में लगाना चाहिए, जिससे मनमें कामोद्रेक होनेका अवसर ही प्राप्त न हो। जिसमें मनमें कामोत्तेजना उत्पन्न हो ऐसे नाटक उपन्यास, आदि गन्दी पुस्तकों के पढ़ने अथवा इस प्रकारके विषय का मनमें विचार करने से विरक्त रहना चाहिए।

मनको संयत किये बिना केवल इन्द्रिय-संयम करने से कुछ नहीं होसकता। हमारे हिंदू धार्मिक शास्त्र और पुराणों में इसप्रकार के अनेक दृष्टांत हैं, जिसमें चिरसंयमी ऋषि, मुनि भी क्षणिक सुख के लिए मानसिकसंयम और पवित्रताको खो गये हैं।

जो हो, इस समय ध्यान देकर पाठकों को यह निश्चित रूपसे समझना चाहिए कि स्वप्नदोष और तत्सम्बन्धी उपर्युक्त अन्य विकार वास्तविक रोग नहीं हैं, किंतु वे सामयिक मनकी असंयमता के लक्षण मात्र हैं। स्वप्न दोषके होने पर एकदम व्याकुल होकर पेटेंट औषधियाँ सेवन करके अपने स्वास्थ्य एवं इहलोक और परलोक का नष्ट नहीं करना चाहिए। शरीर और मन इन दोनोंके द्वारा ब्रह्मचर्य का अभ्यास करनेसे उक्त रोग कभी भी आक्रमण नहीं करसकते। यदि कभी किसी विशेष अवस्था में कामोत्तेजना अनिवार्य हो जाय और उसके फल से वास्तविक स्वप्नदोष हो तो भी भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। यह शरीर और मनकी स्वाभाविकता से ही उत्पन्न हुआ है। सारांश यह है कि सर्वदा शरीर और मनकी संयमता का अभ्यास ही पवित्रता की रक्षाका एकमात्र उत्तम उपाय है। कोई भी पेटेंट औषधि आपको इस विषयमें सहायता नहीं पहुंचा सकती।

हरीतकी।

संस्कृत नाम-हरीतकी, अभया, पथ्या, अमृता इत्यादि। हि० हर्र, हरड़, म०-हिरड़ा, पं०—हरीतकी, क०-अलिले, ते०-करक्काइ,

ता०-कड़के, द०-हलरा, गु०-हरड़ि, ब०-पञ्जाह, इं० मायरोवलन्स, लै०-टर्मिनलिया चेब्यूला।

हरड़-आयुर्वेदीय भैषज्यभण्डार की सर्वप्रधान औषधि। भगवान् धन्वन्तरी के हाथ में पहले हरड़ ही देखी गई थी। के मत से हरड़ में सब प्रकार के रोगों को शमन करने पाई जाती है। अन्य चिकित्साशास्त्रों में भी हरड़ को से देखा जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि हरड़ ऐसी उत्तम फलप्रद औषधि है कि बड़े बड़े विद्वानों से लेकर साधारण एवं मनुष्य तक इसके गुणोंपर मोहित हैं। यह अत्यन्त प्रसिद्ध औषधि है और भारत के सभी स्थानों में सुलभता से प्राप्त होसकती है।

हरड़ के वृक्ष— कोंकण, मलबार, हिमालय, विन्ध्याच तथा दक्षिण और उत्तर के अनेक देशों में अधिकता से पाये जाते। इस का बहुत बड़ा वृक्ष होता है। पत्ते बड़े, बड़े और रूखे होते हैं हरड़ की लकड़ी इमारत बनाने के काम में ली जाती है। हरड़ों को लेकर उन को वैसे ही दो तीन दिनतक रखकर पश्चात् उ पर तिन के, घास, फूँस आदि डाल कर अग्नि देते हैं। इस प्रका छोटी हरड़ बनाई जाती है। आयुर्वेद में हरड़की सात जाति लिखी हैं। जैसे- विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवन्त और चेतकी। इनके आकार, रंग, रूप और गुण भी भिन्न २ हैं। आयु र्वेद में प्रत्येक जाति की हरड़ के गुणों का वर्णन बहुत ही विचार पूर्वक किया गया है। परन्तु आजकलके पाश्चात्य विद्वान् लोग केवल दो ही प्रकार की हरड़ों को ग्राह्य मानते हैं। शेष जाति की हरड़ों यद्यपि प्रकारभेद मानते हैं, पर गुणों में कुछ भेद नहीं मानते। किन्तु हमारा यह मत नहीं है। आयुर्वेद में हरड़ों के जो भेद, नाम, गुण दोष आदि वर्णन किये गये हैं उन का परिचय हम सूक्ष्म रूप से नीचे देते हैं—

१-विजया—अलाबू अर्थात् तोंबी की समान गोल हरड़ को विजया कहते हैं। सब प्रकार के प्रयोगों में इस हरड़ का उपयोग होता है और सब प्रकार की हरड़ों में यह उत्तम गिनी जाती है विन्ध्याचल पर और उस के प्रान्तों में विजया हरड़ विशेष कर पाई जाती है।

१ अलाबुवृत्ताविजया।

की छाल, आमले की छाल और आम की छाल आदि औषधियों में जो कषेलापन है वह टानिक एसिड के कारण ही है। पर ऊपर लिखे हुए सब पदार्थ थोड़े बहुत स्तम्भक अवश्य हैं, किन्तु हरड में गेलिक और गैलोटानिक एसिड इन पदार्थों के होने पर भी वह स्तम्भक नहीं, रेचक है। यह एक बड़े महत्व का प्रश्न है।

इस का एकमात्र उत्तर यही है कि—प्रभावस्तत्र कारणम्। अर्थात्—एकमात्र अपने प्रभावज गुण के कारण ही हरड में विरेचन गुण है। उस प्रभावज गुण को हमारे महर्षि लाखों वर्ष पहले जान गये थे। किन्तु पृथक्करण शास्त्र के ज्ञाताओं की दृष्टि मे अब भी यह बात नहीं आसकी है। कितने ही आधुनिक शास्त्रज्ञों का मत है कि हरड का परिणाम स्नायु और वातवाहिनी नाड़ियों के ऊपर उत्तेजनामूलक होता है इस लिए उस के द्वारा रेचन होता है। पर हमारी राय मे यह बात ठीक नहीं है। कुचले मे स्टिकनीन नामक जो एक द्रव्य होता है उसी के कारण उक्त परिणाम होता है। किंतु हरड मे यह पदार्थ नहीं है। तो क्या फिर हरड में का टैनिन ही उत्तेजना का कार्य्य करता है?

हरड में कषैले और रेचक इन दोनों गुणों के कारण वह अती-सार, संग्रहणी आदि रोगों की उत्कृष्ट औषधि है इस में सन्देह नहीं। हरड वातनाशक, रसायन बलवर्द्धक और दोषों को शमन करनेवाली है। एवं ज्वर खाँसी, श्वास मूत्ररोग बवासीर आंतों के कृमि, पुराना अतीसार, कोष्ठबद्धता पेट फूलना, अफारा वमन, हिचकी, हृदयरोग, नेत्ररोग, प्लीहा की वृद्धि यकृत्-वृद्धि उदर और त्वचा-सम्बन्धी समस्त रोगों में हरड़ का उपयोग किया जाता है। हरड, बहेडा और आमला, इन तीनों के समष्टि रूप को त्रिफला कहते हैं। त्रिफला अत्यन्त प्रसिद्ध औषधि है। त्रिफला—रुधिर के विकार, नेत्ररोग, बवासीर, प्रमह और सर्वप्रकार के उदर रोगों में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। पुरानी कोष्ठबद्धता में त्रिफले का सेवन बड़ा लाभदायक है।

हरड़—बलवर्द्धक और रसायन है। जब हरड़ रसायन विधि से सेवन कीजाती है तब उस को "हरीतकी रसायन" कहते हैं। इसी प्रकार अनुपान विशेष के साथ प्रत्येक ऋतु में रसायन विधि से जो हरड़ सेवन की जाती है उस को ऋतु हरीतकी कहते हैं। जैसे-वर्षाऋतु में सैंधेनमक के साथ शरदऋतु में खांड या मिश्री के

साथ, हेमन्त ऋतु में सोंठ के साथ, शिशिर ऋतु में पीपरा के साथ, वसन्तऋतु में शहद के साथ और ग्रीष्मऋतु में गुड़ के साथ हरड सेवन करनी चाहिए। हरड का क्वाथ बना कर या हरड का चूर्ण बनाकर उस में किञ्चित् सेंधा नमक डाल कर गरम जल के साथ सेवन करने से प्रात काल दस्त खुलासा होता है और उस से किसी तरह की विशेष अड़चन नहीं होती। हरड के काढे की वस्ती सग्रहणी रोग में दी जाती है। रक्त-सम्बन्धी व्याधियों में हरड के क्वाथ द्वारा उक्त स्थान धोये जाते हैं, उससे रुधिर का गिरना बन्द होता है और सूजन कम होती है। हरड के काढे को ब्लाटिंगपेपर में छान कर, उसके नेत्रों में डालने से नेत्र सम्बन्धी अनेक रोग दूर होते हैं और दृष्टिशक्ति बढती है। हरड का उपयोग आज कल सग्रहणी और अतीसार रोग में यूरोपियन डाक्टर भी करने लगे हैं। आयुर्वेद में हरड के अनेक प्रयोग और कल्प वर्णित हैं। यदि उन सब का उल्लेख किया जाय तो एक बहुत बडी पुस्तक तैयार हो सकती है। तथापि हरड का कुछ विशेष वर्णन फिर कभी लिखा जायगा। "भिषक्"।

—०—

विविध-विषय।

निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन—आगामी ३१मार्च और अप्रैल की १—२ तारीखों में निखिलभारतवर्षीय १३ वाँ वैद्य सम्मेलन होना निश्चित हुआ है। यह देखकर सन्तोष होता है कि सम्मेलनकी कार्रवाई सुचारुरूप से होरही है। सम्मेलनके साथ पूर्व की भाँति प्रदर्शिनी भी होगी। प्रदर्शिनी की चीजों में गडबड न हो इसके लिए अबकी बार विशेषरूपसे प्रयत्न किया जारहा है।

युक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनके सभापति—युक्तप्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन हरदोई में आगामी २१—२२ और २३ दिसम्बर को होगा। उसके सभापति आयुर्वेदपञ्चानन पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल निर्वाचित हुए हैं। शुक्लजी के इस निर्वाचन से हम बहुत प्रसन्न हुए हैं। शुक्लजीने जो आयुर्वेदकी असीम सेवा की है वह किसी से छिपी नहीं है। सम्मेलनके जन्मदाता स्व०पं०शङ्करदासजी शास्त्री पदे थे, पर उसके पालक—पोषक आप ही हैं। आज भारत में जा

आयुर्वेद की सभा, सम्मेलनों के द्वारा जागृति होरही है उसका अधिकांश श्रेय आपही को है। अवश्य ही युक्तप्रांतीय वैद्योंने आपको सभापति चुनकर समुचित कार्य्य किया है।

देशीचिकित्सा को सहायता—आयुर्वेद और तिब की उन्नतिके लिए सहायता प्राप्त करनेके उद्देश्य से जो प्रतिनिधिदल बर्मा गया था, उसे वहाँसे २॥ लाख रुपये की सहायता मिली। कितने ही गोरे सरकारी डाक्टरों की रायमें बर्मा वालोंने इसप्रकार सहायता करके अवश्य ही महामूर्खताका परिचय दिया है? परन्तु, आयुर्वेदप्रेमियों को यह देखकर हर्ष प्राप्त हुआ है कि हमारे बर्मी पड़ोसी भी आयुर्वेद और हकीमी की कद्र जानते और करते हैं।

लेडी चेम्सफोर्ड का सत्कार्य्य—आज कल इस देशमें प्रसूता स्त्री और बच्चों की जितनी अकाल मृत्यु होती हैं, उतनी पृथ्वीके किसी देशमें नहीं होतीं। उक्त मृत्युसंख्या को देखकर अवश्य हृदय विदीर्ण होता है। आनंद का विषय है कि इस ओर श्रीमती लेडी चेम्सफोर्ड महाशया का ध्यान विशेषरूपसे आकर्षित हुआ है। आपने उक्त कष्टको निवारण करनेके लिए एक संस्था स्थापित की है। जिसके द्वारा प्रसूता स्त्रियों को सब प्रकार की सहायता पहुँचाई जायगी। आपने उसदिन सभाके एक अधिवेशनमें सर्वसाधारण से अपील की है। इसके लिए समस्त भारतवासियों को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। उन्होंने अपने भाषण में कहा है कि "सन्तान ही जाति की सर्वप्रधान और सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है। बालक ही आगे जाकर देशके नेता होंगे।"

आयुर्वेद पर आघात—मद्रास की आयुर्वेदिक संस्थाओं को मद्रास सरकारने सहायता देना बंद कर दिया। इस पर भारतवासियों को बहुत दुःख और शोक हुआ है इस के लिए मद्रास, अजमेर, कानपुर आदि स्थानों में प्रतिवाद रूप सभायें की गई हैं। और सरकार हिन्द और मद्रास सरकार से प्रार्थना की है कि वे इस आज्ञा को वापिस लेलें।

स्त्रियों की मृत्युसंख्या—सरकारी स्वास्थ्य-विभाग की रिपोर्ट से मालूम हुआ है कि भारतमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मृत्यु अधिक होती है। स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों ने इस का

कारण भारत की प्राचीन परदे की प्रथा ही बताया है। इधर दूसरे सुधारक लोग इसका कारण एकमात्र बाल्यविवाह का होना बताते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि वर्तमान की विलासिता ही इस का मुख्य कारण है। इस समय हम विलासिता की मूर्त्ति बनकर अपने आप तो अकर्मण्य हुए ही हैं, पर साथही साथ घरकी स्त्रियों को भी शारीरिक श्रम से वञ्चित रखकर उन के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का सर्वनाश कररहे हैं। हमारी राय में पुरुषों का एक मात्र अत्याचार ही इस समय स्त्रीजाति की मृत्युसंख्या की वृद्धि का सर्वप्रधान कारण है।

उससमय के दातव्यचिकित्सालय—इस बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग में अन्य सम्पूर्ण विषयों की समान चिकित्साशास्त्र की उन्नति में भी किसी प्रकार की कृपणता नहीं देखी जाती। किंतु इस समय मानव समाज में अधिक सहृदयता नहीं है। अति प्राचीन काल के इतिहास में इस प्रकार के बहुत से दृष्टांत देखे जाते हैं, जिन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय चिकित्सा विद्या की चाहे इस प्रकार उन्नति न हुई हो, परंतु रोग निवारण करने की व्यवस्था में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं थी। प्राचीनकाल के भारतीय बौद्ध धर्मावलम्बीगण केवल जीवहिंसा से विरक्त थे-यही नहीं, किंतु वे मनुष्यजाति के रोग-शोकजनित दुखों और कष्टों को निवारण करने के लिए भी पूर्णरूप से मनोयोग देते थे। भारत के बौद्ध सम्राटों ने उस समय रोगियों को चिकित्सा के लिये बहुत से दातव्य चिकित्सालय स्थापित किये थे। केवल मनुष्यों के लिये ही नहीं, बल्कि पशु—पक्षियों के लिये भी चिकित्सालय प्रतिष्ठित थे। स्यामदेश के बालकशहर से प्रकाशित होनेवाले एक चिकित्साविषयक सामायिक पत्र में इस समय इस विषय का विशेष तथ्यपूर्ण एक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है। बारहवीं शताब्दी के बौद्ध राजा जयवर्मन के शासनकाल में उसके साम्राज्य में अगणित दातव्य चिकित्सालय निर्मित हुए थे। सन् ११८६ की संस्कृत भाषा में लिखी हुई एक ताम्रलिपि मिली है, उस से मालूम होता है कि उस समय अन्त तक १०२ दातव्य चिकित्सालय प्रतिष्ठित थे। इन सब दातव्य चिकित्सालयों में धान्य उत्पादन करने के लिए ८१६४० स्त्री और पुरुष नियुक्त थे। प्रत्येक चिकित्सालय में ३२मनुष्य वेतन पानेवाले और ६४ मनुष्य

स्वेच्छाचारिता से कार्य करनेवाले नियुक्त थे। प्रत्येक में दो चिकित्सक रहते थे, उनमें से प्रत्येक के आधीन एक दो दासियें थीं। औषध बाँटने के लिए दो भण्डारी, दो और दो सेवक प्रत्येक चिकित्सालय में रहते थे और चौदह कम्पौण्डर रोगियों को औषध सेवन कराते थे, छः स्त्रियें जल गरम करती और औषध बाँटती थीं। दो स्त्रियें चिकित्सा के लिए धान कूट कर उन में से चावल निकालती थीं। इससे देखा जाता है कि उस समय दातव्य चिकित्सालयों की तरफ लोगों का ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट हुआ था।

मद्यपान का दुष्परिणाम--मद्यपान के दुष्परिणाम की बात थोड़ी बहुत प्राय सभी लोग जानते हैं। आजकल अनेक समाचार पत्र और पुस्तकों में मद्यपान की घोर निन्दा देखी जाती है। सैकड़ों सभा व समाजों में नित्यप्रति मद्यपान को निंदाके व्याख्यान सुने जाते हैं, पर तो भी मद्यपान के ह्रासका कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। यह अवश्य आश्चर्यका विषय है। आबकारी विभागकी वार्षिक रिपोर्टके पढ़ने से मालूम होता है कि मद्यपानकी वृद्धि दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। क्या धनी, क्या निर्धन एव क्या सर्वसाधारण प्रायः सभी समाज, सभी सम्प्रदाय और सभी श्रेणी के पुरुषों में मद्यपानका प्रचार बढ़ता जारहा है। इससे मनुष्य समाज में कितना अनिष्ट होता है, इस के लिए कोई भी दृष्टिपात नहीं करता। इस समय डाकृर एच० एम० मारनन ने वैज्ञानिक रीति से कई मनुष्यों की परीक्षा कर स्पष्ट रूप से मद्यपान की हानियें दिखलाई हैं। उन्हों ने दिखलाया है कि अतिअल्पमात्रा से मद्यपान करने से भी स्वभाव से शीघ्र कार्य करने की शक्ति नष्ट होजाती है। डाकृर मारनन ने नेशनल इन्स्युरेन्स कमिश्नर के मेडिकल रिसर्च कमेटी की ओर से यह परीक्षा की थी कई सप्ताह तक परीक्षा होती रही। जो टाइपराइट का अथवा याग सायन के यन्त्र का काम करते हैं ऐसे कई श्रेणी के कर्मचारियों पर परीक्षा कीगई। आहार के समय अन्यान्य खाद्य पदार्थों के साथ एव खाली पेट पर जलरहित या जलमिश्रित मद्य व्यवहार कराई गई थी। डा० मारनन ने स्वयं इस परीक्षा के फल का पर्यवेक्षण किया था। अन्त में उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि

गानविद्या की सहायता से कई प्रकार के रोगी शीघ्र चंगे हो जाते हैं। देखते हैं, अब योरप के भी कई चिकित्सक आयुर्वेद के इस प्राचीन सिद्धान्त की ओर ध्यान देने लगे हैं। एक मान्य डाक्टर का कहना है कि वह समय बहुत दूर नहीं है, जब कि डाक्टर लोग रोगियों की चिकित्सा में गायनविद्या की भी सहायता लेने लगेंगे। डाक्टरोंकी राय में फेफड़े की बीमारियों में गाने से बड़ा लाभ होता है। डाक्टर लोग कहते हैं, कि क्षयके रोगियों को नित्य कुछ देर अवश्य गाना चाहिये। इससे उन्हें ऐसा लाभ होगा, जैसा कि किसी भी दवा से नहीं हो सकता,क्योंकि गाने से कुछ ऐसी रगों की कसरत होती है,जो साधारणतः सुस्त पड़ी रहती हैं। इटाली में एक बार हिसाब लगाकर बताया गया था, कि गवैये अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक दिन जीवित रहते हैं और साधारणतः उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। जो हो, उक्त डाक्टर के कथनानुसार क्षयके रोगियों को नित्य कुछ देर गाकर अवश्य परीक्षा करना चाहिये। आवाज सुरीली है या बेसुरी, इसकी कुछ परवाह न करना चाहिए और न शर्माना चाहिए। यदि हो सके, तो किसी निर्जन एकान्त स्थान में जा रहें, वहां खूब खुलकर गा सकेंगे। इससे विशेष लाभ होगा।

थीवें०।

प्राप्ति-स्वीकार।

रोग-परिचय-लेखक, पंडित हरिनारायण जी शर्म्मा और प्रकाशक पंडित रामनारायण वैद्य। प्राप्तिस्थान-आयुर्वेदग्रन्थ कल्पलता, कार्य्यालय मदैनी, बनारस। मूल्य ॥) आना।

काशीमें आयुर्वेदग्रन्थ कल्पलता इस नामकी एक संस्था स्थापित हुई है। प्राचीन दुष्प्राप्य और उत्तमोत्तम वैद्यक ग्रन्थोंको प्रकाशित करना ही उक्त संस्थाका कार्य्य है। 'रोग-परिचय' नामक पुस्तक उसी कल्पलता का प्रथम पल्लव है। इसमें माधवनिदान को मधुकोष नाम की संस्कृत टीका के अनुसार पञ्चलक्षणनिदान या निदानपञ्चक की सरल हिन्दीभाषा में व्याख्या कीगई है। सम्पूर्ण निदानग्रन्थ में निदानपञ्चक ही ऐसा गहन और प्रधान विषय है कि जिसके बिना जाने निदानतत्व कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। सचमुच शर्म्माजी ने इसका अनुवाद करके अवश्य वैद्यों और आयुर्वेदीय छात्रोंका बड़ा उपकार किया है।

सूचना ।

आयुर्वेदके प्रेमियों तथा वैद्यसमुदाय से निवेदन है कि वैद्यसेवा समितिके प्रतिनिधि लाला ज्ञानचन्द्रजी वैद्यभूषण समितिके उद्देश्योंके प्रचारार्थ एवं समितिके कार्य्योंकी पूर्ति के लिए धन संग्रह प्रचारार्थ पञ्जाब प्रान्त में भ्रमण कर रहे हैं । आशा है देश के प्रेमी तथा वैद्यसमुदाय उन की यथाशक्ति सहायता कर पुण्य के भागी होंगे ।

विनीत—नारायण शर्म्मा वैद्यराज
मन्त्री-वैद्यसेवासमिति ऋषिकुल, हरद्वार ।

युक्तप्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के अधिवेशन ।

ता० २१-२२ और २३ दिसम्बर सन् १९१९ ई० रविवार, सोमवार तथा मंगलवार तदनुसार मिती पौष कृष्ण १४-३० और पौष शुक्ल १ सं० १९७६ वि० को हरदोई में बड़े धूमधाम से होंगे ।

प्रयागके सुप्रसिद्ध आयुर्वेदपचानन पंडितवर जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल भिषङ्मणि सभापति का आसन ग्रहण करेंगे । आयुर्वेद तथा वैद्यों की उन्नति के प्रश्न पर विचार होगा । बड़े २ आयुर्वेदज्ञ व्याख्याता तथा भजनोपदेशक पधारेंगे । मित्रों सहित पधारने की कृपा कीजिये ।

निवेदक—मलूचंद्र शर्म्मा वैद्य
मन्त्री-स्वागतकारिणी समिति, हरदोई

—०—

विशेष द्रष्टव्य

(१) बाहर से आनेवाले सज्जनों के स्थान भोजन आदि का प्रबंध स्वागतकारिणी समिति करेगी ।

(२) सबको शीतकालीन वस्त्रादि अपने साथ लाने चाहिएँ ।

(३) स्टेशन पर स्वयंसेवक यथासमय उपस्थित मिलेंगे । बाहरसे आनेवाले सज्जनोंको पत्र तथा तार द्वारा सूचना पूर्व देदेना, इससे स्वागतसमिति को विशेष सुविधा प्राप्त होगा ।

(४) प्रत्येक प्रतिनिधि को दो रुपये प्रतिनिधि-शुल्क देना होगा किंतु दर्शकों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जावेगा ।

प्रान्तिकसभ्यमहाशयों के कार्यविवरण के लिए विज्ञापन ।

प्रियवर सभ्यमहोदयजी, प्रणाम ।

आयुर्वेद महामण्डल का वर्ष समाप्त होनेपर आया और वैद्य सम्मेलन के समय आयुर्वेदमहामण्डल की जो रिपोर्ट तैय्यार कर कर उपस्थित की जायगी उस में आप की सहायता की आवश्यकता है, क्योंकि आपके प्रांत की रिपोर्ट भी उस में सम्मिलित रहेगी। अतएव निम्नलिखित विषयों का विवरण तथा अन्य बातें जो आप के प्रांत में आयुर्वेद के सम्बन्ध में हुई हों उन की रिपोर्ट भेजिए।

१- आप के प्रान्तमें प्रान्तिक सम्मेलन कब हुआ था ? सभापति जी ने किन २ विषयों पर प्रकाश डाला था ।
  (क) कौन २ प्रस्ताव पास किये गये थे ?
  (ख) किन विषयों पर वैज्ञानिक प्रबन्ध लिखे गये थे और उन में सर्वोत्तम कौन २ हैं ।
  (ग) प्रदर्शिनी में कौन कौन सी वस्तुएं बहुत शिक्षाप्रद और चित्ताकर्षक थीं।
  (घ) आपके प्रान्तमें किन२ ज़िलोंमें सम्मेलन तथा प्रदर्शिनियां हुईं।

२- आप के प्रान्त में इस वर्ष कौन कौन नई नई आयुर्वेदिक संस्थायें स्थापित हुईं। उन की दशा कैसी है और उन्होंने कौन कौन से काम अपने हाथ में लिये हैं। यह भी लिखिए कि आप के प्रान्त की पुरानी संस्थाओं की कैसी स्थिति है। उन्हों ने सालभर में कौन कौन सी कार्यवाही की है। कोई पुरानी संस्था बंद तो नहीं हुई।

३- आप के प्रान्त में कौन कौन सी आयुर्वेदिक सभाएँ हैं। उनमें कौन नई और कौन पुरानी हैं ? वे क्या कार्य कर रही हैं?

४- अपने प्रान्त के सब भाषाओं के आयुर्वेदिक पत्रों, मासिक पत्रों आदि का वर्णन लिखिए और उन की स्थिति का परिचय दीजिए यह भी लिखिए कि अन्य साधारण पत्रों का प्रचार आयुर्वेद के सम्बन्ध में कैसा रहा, उन्हों ने आयुर्वेद संबंधी चर्चा किस ढङ्ग से की ?

आपके प्रान्त में इस वर्ष कौन कौन सी आयुर्वेद सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उनके लेखक प्रकाशक, या सम्पादक कौन हैं, उन पुस्तकों का मूल्य क्या है और उनका आलोच्य विषय कौन और किस ढङ्ग का है ?

आपके प्रांतमें धर्मार्थऔषधालय कौन कौन कहाँ कहाँ हैं? उनके सञ्चालक कौन हैं और किन वैद्यों की उपस्थिति में वे चल रहे हैं। यह भी लिखिये कि उनकी स्थिति कैसी है, उनमें द्रव्य की पूर्ति का साधन कौन है और उन में कितने लोग आते हैं इत्यादि। यदि ये भी लिखा जासके तो उत्तम हो कि वहाँ के वैद्यों को रोगों और चिकित्सा के सम्बंध में क्या अनुभव प्राप्त होता है।

आप के प्रांत में ऐसे कौन२ वैद्य हैं जिन्हों ने सर्वसाधारणके हृदय में विशेष रूप से अधिकार जमाया है अथवा कोई नवीन आविष्कार कर नाम पाया है अथवा किसी खास रोग की चिकित्साके कारण प्रसिद्ध हो रहे हैं। ऐसे भी वैद्यों का नाम दीजिये जिन्हों ने सरकार अथवा राजा महाराजादिकों से सम्मान पाया है।

आपके प्रान्त के सर्वसाधारण लोगों की धारणा आयुर्वेद और आयुर्वैदिक वैद्यों के विषय में कैसी है। यदि इस के विषय में कुछ प्रमाण हो तो लिखिये।

आप के प्रान्त में कोई ऐसे कायदे तो वर्तमान नहीं हैं जिनके कारण आयुर्वेद की प्रतिष्ठा में बाधा पड़ती हो अथवा उस से वैद्यों तथा सर्वसाधारण को कोई अड़चन होती हो।

आप के प्रान्त में आयुर्वेद महामण्डल के उद्देश्यों का प्रचार कहांतक हुआ है व है या नहीं, होसकता है तो कैसे, और कहांतक।

अन्य आवश्यक बातें जो आप लिखने योग्य समझें, लिखें।

भवदीय—

एन्. माधवमेनन, आयुर्वेदाचार्यः, मंत्री,

नि भा. महामण्डल कार्यस्थान, मद्रास

—०—

देशी-चिकित्सा।

(१)

भूमण्डल ने, मुक्तकण्ठ से, जिस के सद्गुण गाये हैं।
उसे मेटने, हाय! घमण्डी काले बादल छाये हैं॥
नगर—नगर में, प्रान्त—प्रान्त में, अस्पताल हैं खड़े हुए।
कहीं कहीं तो राजमहल की समता करते खड़े हुए॥
लन्दन से कर पास हजारों सरजन मौज उड़ाते हैं।
डाक्टरगण लाखों रुपये नित दीन प्रजा से पाते हैं॥
रङ्ग बिरङ्गी शीशी दवा ने लेकर अमित जुटाये हैं।
उसे मेटने, हाय! घमण्डी काले बादल छाये हैं॥

(२)

जितने रुपये भारत भर के अस्पताल दल फीस भूल।
उन की राशि देख विन्ध्याचल अपनी हाय उँचाई भूल॥
जितनी दवा यहां बाहर से अब तक गई मँगाई है।
उससे गंगा जैसी धारा सकती नित्य बहाई है॥
जितनी शीशी चालानों के द्वारा लख्य हुई हैं, आह!
उन्हें करो एकत्रित तो रुक जावे कैबर का भी राह॥
इस नवयौवन मदमाती ने अगणित द्वन्द्व मचाये हैं।
उसे मेटने हाय! घमण्डी काले बादल छाये हैं॥

(३)

योरप में जो दवा बनाते उनका करते नहीं बयान।
बोतल-शीशी निर्मातागण इन से भी बनिये अनजान॥
लेबिल आदि कार्क छापने वाले भी कर दीजे दूर।
जो मजदूर उन्हें निपटाते उन की शोर्ट ... भर पूर॥
वे मजदूर यहाँ यदि आवें तो लगा कर उन का सामान।
भारी भारी धनीलोग भी भूरा पाय व्यौपारिक मान॥
भाँति भाँति के शिर से लेकर पग तक व्यय घर छाये हैं।
उसे मेटने, हाय! घमण्डी काले बादल छाये हैं॥

(४)

इस पर भी कानून बनाए जाते व्यापक करने को।
घर घर अपना नित्य नरनारा पालक सेवक बनने को॥
प्राइवेट भी डाक्टर-गण कर न्यून नहीं दिखलाते हैं।
सर्व गुणों की खान उन्हें और हम हमें बतलाते हैं॥
वायन विहरा मन मिला कर नित्य दवाएं मेट रहे।

बड़े मीठे पानी ही से दाम गाँठ से पैंठ रहे॥
हाय! बिचारी स्वहीन के कान दिवस यों आये हैं।
उसे मेटने, हाय! घमण्डी काले बादल छाये हैं॥

(५)

इस देशीय चिकित्सा का जो नाम—निशान मिटाते हैं।
अपने हाथ पैर में स्वयं कर आप कुल्हाड़ चलाते हैं॥
अगर मूल्य की बात चलाओ तो फिर नाले भर की भस्म।
कर देगी दस—पाँच—बीस ही नहीं हजारों रुपया भस्म॥
तो भी शिक्षित सर्जनों के मुख ऊपर नीचे होवेंगे।
देख सरलता पेसे ही का नुस्खा, चक्कर खावेंगे॥
टूटे फूटे, इधर—उधर के औगुण ढूंढ़ सुनाये हैं।
उसे मेटने, हाय! घमण्डी काले बादल छाये हैं॥

(६)

आयुर्वेद—विधिवश ऐसी औषधि भी कर दे तैयार।
जिसका धनियों के सिवाय नहिं निर्धन सकते कभी निहार॥
अति व्यय साध्य डाक्टरी ही उस अवसर का देखें हाल।
तो सामान—प्रस्तुत के ही यत्न करें उस को बेहाल॥
मूल्यवान् औषधि के गुण जो विज्ञात प्रगट हो जायँ।
उस का सुन कर गोरे सज्जन भी गुण गाते नहीं अघायँ॥
बहुत असाध्य रोग इसके से यों हम मार भगाये हैं।
उसे मेटने हाय! घमण्डी काले बादल छाये हैं॥

(७)

सस्तेपन की याद नापना, भी है डाक्टरों को दूर।
जिस औषधि परिणाम अनिश्चित) के लेते पैसे भरपूर॥
उसी रोग की दवा शर्तिया एक छदाम कराके खर्च।
सदा बचाते रहते हैं हम उन के प्राण कि जो बेखर्च॥
निश्चित, सस्ती शुद्ध दवा की और समय के जो अनुकूल।
होना गवर्नमेंट को चाहिए क्या नहीं उस के प्रतिकूल॥
भारत जैसे दीन दशा पर क्यों य खर्च चढ़ाये हैं।
उसे मेटने, हाय! घमण्डी काले बादल छाये हैं॥

(८)

पक्षपात तज गवर्नमेण्ट जो इस का भी करती सम्मान।
तो न प्राण इस के यों जाते, बचते दीन प्रजा के प्राण॥
इस का तो उद्धार मना है, कहाँ हुआ का ध्यान।

(जंबीर द्राव)

अनेक प्रकार के क्षार, लवण, गंधक, लोहा और को अनुलोमन करनेवाले पाचक पदार्थों के द्वारा नीबू के रस में गलाकर बनाया गया है। पीने में स्वादिष्ट और रुचिकर है। इस को सेवन करने शूल, अम्लशूल, बस्तिशूल, प्लीहा (तिल्ली), यकृत,), गुल्म, (बायगोला), रक्तगुल्म, अजीर्ण, विसू- (हैज़ा) उदररोग, सूजन, मन्दाग्नि और अरुचि होती है। इसकी केवल एक मात्रा सेवन करने से ही प्रकार का शूल क्षणभर में शान्त होजाता है। डकार आती है, कच्चा भोजन शीघ्र पच जाता है और अ-त्यन्त भूख लगती है। मू० फी शीशी १) डा०म०।≈)आ०।

—o—

प्र शं सा प त्र

(१) वैद्यजी ३ शीशी जम्बीरद्राव पहुँचा, वास्तव में जैसा गुण आप लिखते हैं वैसा ही है। इसकी हम सच्चे दिलसे तारीफ लिखते हैं। यह बहुत उम्दा है। १ शीशी और भेजिये। प॰ कृष्णराव यशवन्त बील असिस्टेन्ट माल सूबात भांडेर (ग्वालियर)

(२) आपने जो १ शीशी जम्बीरद्राव भेजा था उससे हम को बहुत फायदा हुआ। कृपा करके दो शीशी और भेजिये। प्यारेलाल महादेवप्रसाद मार्केट न ४४ कलकत्ता

(३) आपके जम्बीरद्राव ने हमारे प्राणों की रक्षा की नहीं तो हमारे बचने का उपाय न था।
ठाकुर कालीसिंह मु॰ पो॰ नवागढ़ (सिंहभूमि)

❋ वैद्य का आठवाँ वर्ष ❋

आगामी संख्या वी॰ पी॰ से भेजी

इस संख्या से वैद्य का ७ वां वर्ष पूरा साथ ही ग्राहकों का मूल्य भी समाप्त होगया क्योंकि वैद्य के सब ग्राहक प्रथम संख्या से बनाये जाते हैं। इसलिए आठवें वर्षकी प्रथम सब ग्राहकों की सेवा में १।-) के वी॰ पी॰ से भेजी जायगी। हमें आशा है कि हमारे समस्त ग्राहक महाशय वैद्यका वी॰ पी॰ स्वीकार कर वैद्यक-विद्या के प्रचार में सहायक बनेंगे। जिनको इस वर्ष वैद्य का ग्राहक बनना स्वीकार न हो वे कृपया एक कार्ड द्वारा सूचना दे दें जिससे हमें वी॰ पी॰ भेजने की व्यर्थ हानि न उठानी पड़े।

मैनेजर 'वैद्य'

वैद्य-आफ़िस, मुरादाबाद।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ७ | मुरादाबाद, दिसम्बर १९१९ | संख्या १२

आयुर्वेद-महिमा ।

(लेखक—कविकुमार महेश्वरप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य)

चिरञ्जीवी होना, यदि तुम चहो वैद्यक पढ़ो ।
चिकित्साओं में भी, विदित-पथ में सादर बढ़ो ॥
अहा ! कैसे कैसे, अनुपम भरे योग लसते ।
बड़ी ही आस्था-के, ललित फल हैं नित्य रसते ॥ १ ॥
सभी सामग्री का, निखिल-पति ने सर्ज्जन किया ।
हमारे सौख्यों के, हित-सकल है साधन दिया ॥
वृथा ही भूले हैं, हम सब अहा ! वैद्यक-कला ।
बिना जाने बूझे, परमुख तकें क्यों कर ? भला ॥ २ ॥
जहाँ के लोगों ने, प्रणयन किए शास्त्र अपने ।
सभी बातों के हैं, प्रकटित किये वैभव घने ॥
पराई आशा में, मुनिवर कभी थे न रहते ।
स्वयं देखा जाना, जिस विधि जहाँ जो कि चहते ॥ ३ ॥

चिकित्सा देशी ही, अब तक रही काम करती।
बड़े रोगों में भी, झट पट रही नाम करती॥
उसी की सत्ता थी, निरुज अपना देश भर था।
हमारे ग्रन्थों का, भुवन भर में ही प्रसर था॥४॥
निराली चालों से, समय पलटा खाकर चला।
नई बातों की है, प्रचलित हुई सुन्दर कला॥
उसी की आभा में, पड़ कर भुलाया भवन को।
लगाया औरों की, प्रगति पथ में दिव्य मन को॥५॥
न भूलो चालों में, भवन अपना रक्षित करो।
प्रथायें शास्त्रों की, अटल मन से सेवन करो॥
जहाँ जन्मी होता, मनुज उस की औषध वहीं।
पराये देशों की-उचित करती औषध नहीं॥६॥
जगत् के कर्ता ने, नियमित सभी निर्मित किया।
सभी बातों का है, विभव सब आवश्यक दिया॥
घने अज्ञानों से, हम सब नहीं जान सकते।
रसीले तत्वों को-भ्रमकर नहीं छान सकते॥७॥
जगो देशप्रेमी, तुरत अब आलस्य तज दो।
बनो आयुर्वेदी, अनुभव भरे, भूरि सज दो॥
पढ़ो शास्त्रों को भी, पढ़ कर बढ़ो साधन करो।
दिखा दो लोगों को, तिमिर उन का उत्कट हरो॥८॥
न छेड़ो औरों को, अनुदिन स्वयं उन्नति करो।
निराले रत्नों से, भवन अपना तत्पर भरो॥
इसी से औरों के, उदय-पथ का ह्रास कर दो।
स्वदेशी शैली का, अटल कुल विश्वास भर दो॥९॥
स्वयं आता प्यारा, तिमिर रवि का जो उदय हो।
प्रकाश-ज्योत्स्ना से, अखिल जग आनन्दमय हो॥
इसी से हे मित्रो! मिलित बल से उन्नति करो।
जगो आँखें खोलो, अब दिन यही दुर्गति हरो॥१०॥

—०—

क्षयरोग की प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा।

(लेखक-श्रीयुत सन्त निहालसिंह, लन्दन)

डाक्टर चौरी मुत्थू (Chowry Muthu) क्षयरोग के एक अच्छे डाक्टर माने जाते हैं। हिन्दुस्तानी (मद्रासी) होकर भी उन्हों ने विलायत में एक नवीन ढङ्ग का आरोग्याश्रम(Sanatorium)खोल रक्खा है। कुछ दिन हुए उसे देखने के लिए मैं उनके साथ ठहरा था। यद्यपि पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान में डाक्टर मुत्थू की अच्छी पहुंच है और उन्होंने अपने जीवन के ३५ वर्ष विदेश में व्यतीत किये हैं, तथापि हृदय से वे सच्चे हिन्दुस्तानी हैं और भारतीय विज्ञान, कला, दर्शन और धर्म का उन्हें बड़ा अभिमान है। उन्होंने भारतीय वैद्यक शास्त्र का भी अध्ययन किया है और इसी लिए वे यह भी बता सकते हैं कि क्षय-रोग के लिए प्राचीन और अर्वाचीन में से कौन सी चिकित्सा अधिक उपयोगी है। इन्हीं सब कारणों से मैंने उनसे पूछा कि डाक्टर साहब, हमारे पूर्वज क्या इस रोग के निदान को जानते थे और यदि जानते थे तो क्या उन्हें इस की चिकित्सा भी मालूम थी? मेरे इस प्रश्न का जो उत्तर डाक्टरमहोदय ने दिया-उसे उन नवयुवक विद्यार्थियों को ध्यान में रखना चाहिए; जो स्कूलों और कालिजों से परीक्षोत्तीर्ण होकर निकलने पर नवीन बातों को तो बड़े प्रेम की दृष्टि से देखते हैं; परन्तु प्राचीन बातों को सुन कर नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। डाक्टर मुत्थू ने कहा-"यूरोपीय चिकित्सा के जन्मदाता हिपोक्रेटीज (Hippocrates) के शताब्दियों पहले क्षय-रोग और उस के भिन्न भिन्न लक्षण भारत-निवासियों का ज्ञात थे। वे उसे क्षय-रोग (wasting disease) कहते थे। क्षय-रोग (wasting disease) शब्द की उत्पत्ति भारत में हुई, और देश में नहीं। चरक और सुश्रुत दोनों ने एक एक अध्याय इस विषय पर लिखा है।

हिन्दुओं का कहना है कि यह रोग चिन्ता, शोक, काम की अधिकता तथा अधिक वीर्यपात से और दूषित-वायु के श्वास लेने से उत्पन्न होता है। उन की समझ में खाँसी का आना, कुछ पीले कफ (yellowish phlegm) का गिरना, ज्वर का चढ़ना, शरीर का क्षीण होना (Emaciation), मुँह से रुधिर का बहना (hemorr-

hage) और आगे चलकर अँतडियों में फफोले पड़ जाना और फिर दस्त लगना इस क्षय-रोग के लक्षण हैं।

सभ्यता के बढ़ने के साथ साथ जब नगरों में जन-संख्या के बढ़ने से बस्ती घनी हो जाती है तभी क्षय का प्रादुर्भाव होता है। प्राचीन समय में इस रोग का होना इस बात का प्रमाण है कि भारतवासी सभ्यता के उच्च शिखर तक पहुँच चुके थे।

उस समय के हिन्दू इस रोग में निम्न-लिखित औषधियों का प्रयोग करते थे—

(१) बकरी और गदही का दूध।

(२) हाथी, हिरन और अन्य जङ्गली जानवरों का कड़ा मांस।

(३) जङ्गली जानवरों के मांस का बना हुआ और शीघ्र पचने वाला शोरवा (broth)।

(४) लहसुन।

(५) मिरच।

(६) बकरियों के साथ रहना।

(७) प्राणायाम (breathing exercises), मन की शान्ति, साधना (contemplation) और प्राकृतिक सौन्दर्य्य का निरीक्षण।

औषधियों की इस सूची से जाना जाता है कि प्राचीन समय के हिन्दुओं की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। प्रकृति के जिन जिन गूढ़तत्वों का अनुसन्धान वर्तमान वैज्ञानिकों ने अभी किया है—उन में से बहुतों को हिन्दुओं ने अपने अनुभव द्वारा पहले ही मालूम कर लिया था। अच्छा, बकरियों के साथ रहने और बकरी और गदही के दूध पीने ही की बात को लीजिए। वैज्ञानिकों का मत है कि बकरी के मूत्र में अमोनिया (नौसादर) होता है; इसी लिए क्षय के रोगी बकरियों के साथ रक्खे जाते थे। बकरी और गदही का दूध पौष्टिक है और जल्द पचता है। मिरच पाचनक्रिया को उत्तेजित करती है। लहसुन से आयर्लैंड के डाक्टर (Dr. Minchen) एक प्रकार का तेल बनाते हैं और दूसरे डाक्टर उसे भोजन के साथ खाने का निर्देश करते हैं। मन की शान्ति, साधना और प्राकृतिक सौन्दर्य्य के निरीक्षण को अब आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सक भी क्षय के लिए उपयोगी मानने लगे हैं।

डाक्टर मुत्थू का सैनीटोरियम विज्ञान के सर्वोच्च नियमों के अनुकूल अपना काम कर रहा है। इतने दिनों के अनुभव के पश्चात्

उन्होंने यह नतीजा निकाला है कि रोगी को रहने के लिए यदि शान्त, आरोग्यवर्द्धक और स्वच्छ स्थान मिले; उसे खाने को पौष्टिक पदार्थ दिये जायँ; उस का चित्त हमेशा प्रसन्न रक्खा जाय और उस की देख रेख के लिए विचारशील, दयालु और हँसमुख डाक्टर मिलें, तो प्रकृति इस बीमारी को, जो पाश्चात्य और पूर्वीय देशनिवासियों को इतनी अधिक संख्या में उद्रस्थ कर रही है, जल्द अच्छा कर सकती है। उन्हों ने अपने सैनीटोरियम का नाम पर्वतीयकुञ्ज (Hill-grobe) रक्खा है। इस नाम का कारण यह जान पड़ता है कि सैनीटोरियम हज़ार फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है, नगर के चहल पहल और शोर-गुल से कहीं दूर है और चतुर्दिक् कुछ अधिक ऊँची पहाड़ियों से घिरा है जो उसे पूर्व की ठण्डी हवाओं से सुरक्षित रखती हैं। सैनीटोरियम की मुख्य मुख्य इमारतें जिन में परामर्शगृह (consulting room), भोजनालय, क्रीडा-स्थान और काठ के छोटे छोटे घर बने हैं, बीच में जङ्गल पड़ जाने के कारण नगरों से बिलकुल अलग हो जाती हैं। ये जङ्गल इसी जायदाद के अधिकार में हैं और शिशिर और ग्रीष्म, दोनों ऋतुओं में हरे-भरे रहते हैं। इनको बीच से काटकर रास्ते बनाये गये हैं और ऊपर वृक्ष की शाखायें एक दूसरे से मिला दी गई हैं। इन रास्तों में रोगी स्वच्छ हवा के लिए हर समय घूम सकता है, मौसम चाहे कैसा ही भयावह क्यों न हो।

पर्वतीय कुञ्ज में पहुंचते ही रोगी को डाक्टर मुख्य के परामर्श-गृह में जाना पड़ता है जिसमें एक खुर्दबीन, एक बिजली का यन्त्र, एक्स रे मशीन और एक नापने और तोलने की कल रहती है। वहां रोगी तोला जाता है, उसकी नाप होती है, उसकी छाती की परीक्षा होती है, उस का तापमान अङ्कित किया जाता है, उस का पूरा इतिहास लिखा जाता है और यदि आवश्यकता हो तो एक्स-रे से उसके फेफड़ों की तसवीर खींच ली जाती है। डाक्टर दवा तजवीज़ करता है, आराम और व्यायाम का समय निर्धारित करता है, और रोगी को उपदेश करता है कि नगर के बीच रहने से जो खराबी तुम्हारे फेफड़ों में आ गई है उसे प्रकृति यहां आप ही आप दूर कर देगी। साधारणतः रोगी को डाक्टर साहब के पास मास में दो बार जाने की ज़रूरत है, किन्तु रोग कठिन होने पर उसे कई बार जाना पड़ता है। यदि नसों में खराबी आ गई हो तो बिजली की चिकित्सा सप्ताह में दो बार की जाती है। बिजली की चिकित्सा के समय का

ठीक अनुमान नहीं किया जासकता। जितने दिनों तक उसकी आवश्यकता समझी जाती है उतने दिनों तक वह जारी रक्खी जाती है।

जिन रोगियों की दशा सन्तोष-जनक होती है वे आनन्दपूर्वक सवेरे, दोपहर को और सन्ध्या के समय भोजनालय में बैठ कर भोजन कर सकते हैं। भोजनालय के सामने वाली दीवार पर एक बड़ी खिड़की है जो मौसम के अनुसार, डाक्टर की आज्ञा से, न्यूनाधिक खुली रक्खी जाती है। इस में परदे नहीं रहते और न कोई रोगी इसे छूने पाता है।

जिस रोगी को जितने भोजन की आवश्यकता डाक्टर साहब समझते हैं उस रोगी को उतना ही वे अपने हाथ से परोसते हैं। कोई दूसरा नहीं परोसने पाता। उन की सम्मति में खोई हुई शक्ति को पुनः उपलब्ध करने के लिए रोगी को पौष्टिक पदार्थ खाने के लिए देना चाहिए, लेकिन आवश्यकता से अधिक ठूँस ठूँस कर नहीं। जर्मनी में रोगी को ठूँस ठूँस कर खिलाते हैं। डाक्टर मुथ्यू इसे नापसन्द करते हैं। ये ब्लेक-फोस्ट (Black Fœst) गये थे और नारड्राक के डाक्टर वाल्थर(Dr. Walther of Noidrach) से मिल कर उन्होंने इनकी निकाली हुई चिकित्सा का अध्ययन भी किया था। इस चिकित्सा में रोगी को ठूँस ठूँस कर पौष्टिक भोजन कराते हैं और उसे घूमने का परामर्श देते हैं। डाक्टर मुथ्यू रोगी का घूमना तो पसन्द करते हैं, किन्तु उसे ठूँस ठूँस कर भोजन कराना पसन्द नहीं करते।

प्रत्येक रोगी अकेला एक कमरे में रहता है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई १२ और १० फ़ीट होती है। कमरे का मुँह दक्षिण की ओर रहता है। उस के सामने एक बरामदा होता है जिस की छत काँच की बनी होती है और पीछे एक दालान (corridor) होता है। सामने वाले बरामदे में बड़ी बड़ी खिड़कियाँ लगी होती हैं और उन खिड़कियों पर परदे पड़े रहते हैं। इनके कारण मेह भीतर नहीं जाने पाता। खिड़कियाँ दिन रात खुली रहती हैं। डाक्टर की आज्ञा से जब कभी चारपाइयाँ बरामदे में कर दी जाती हैं। डाक्टर मुथ्यू का पूर्ण विश्वास है कि ताज़ी शुद्ध हवा ही क्षय रोग को दूर कर सकती है।

चारपाइयाँ लोहे की बनी हुई हैं। उन में बढ़िया कमानियाँ लगी हैं और रबर के पहिये हैं जिन से वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक

सुगमतापूर्वक हटाई जा सकती हैं। कोठे मे एक खानेदार अलमारी, खाना खाने की एक मेज, वस्त्रालय (wardrobe), कुर्सियाँ, बिजली की रोशनी और बिजली की घंटी होती है। कमरे में पानी खौलता रहता है जिस से खिड़कियाँ खुली रहने पर ठण्डे से ठण्डे दिनों में भी कमरा गरम रहे। इस के सिवा कपडा पहनने और स्नान करने के स्थान (lavatory) का भी अच्छा प्रबन्ध है। निस्तार की कोठरी मे सूखी मिट्टी रहती है और नलों में गरम तथा ठण्डा पानी आता है।

प्रात ७ बज कर ५० मिनट पर डाक्टर मुख्य दाई (matron) को साथ लेकर हरएक कोठे का निरीक्षण करते हैं। यहाँ प्रत्येक रोगी की जाँच होती है और फिर उसे यह बतलाया जाता है कि आज दिन भर तुम्हें क्या क्या करना होगा-बिस्तर पर पडे रहना होगा अथवा उठकर बैठना कौनसी कसरत करनी पड़ेगी, कौन सा भोजन करना होगा और जरूरत पडने पर कौन सी दवा पीनी होगी।

पहला घण्टा आठ बजे बजता है। उस समय उठने वाले रोगी उठकर हाथ-मुँह धोते हैं और वस्त्र पहनकर थोडी दूर घूमने के लिए बाहर निकल जाते हैं। नौ बजे उन्हें जलपान कराया जाता है, जिस में शोरवा (porridge) चीनीमिश्रित दूध, रोटी मक्खन, सुअर का मांस, मछली, अण्डे, मुरब्बा, चाय अथवा कहवा मिलता है।

जलपान के पश्चात् डाक्टर साहब परामर्श-गृह में रोगियों की जांच करते हैं। हर एक रोगी को यहां मास में दो बार अथवा जरूरत पड़ने पर कई बार आना पडता है। यदि लाभ न हुआ, उलटे कोई खराबी दिखलाई पडी तो इस खराबी के दूर करने का भरसक प्रयत्न किया जाता है।

दस बजे साँस लेने और गाने की कसरतें (breathing and singing exercises) प्रारम्भ होती हैं। यदि मौसम अच्छा रहा तो खुली हवा में और यदि पानी बरसने लगा अथवा बरफ पड़ने लगी तो आराम घर (recreation room) में कसरत की जाती है। रोगी सीधे खड़े होते हैं, उन की छाती सामने निकली रहती है, गर्दन ऊँची रक्खी जातीहै और हाथ दोनों ओर कड़े कर के लटकाये जाते हैं। पुराने (senior) रोगी डम्बबेल्स (dumb-bells) का अभ्यास करते हैं।

कसरत नं० १—जाँघों तक लटकते हुए हाथ धीरे धीरे ऊपर उठाये जाते हैं। यहां तक कि वे कन्धे के इधर-उधर एक सीध में हो जाते हैं। हाथ उठाते समय रोगी का मुँह बन्द रहता है और वह ताकत भर नाक से खूब सांस लेता है। सांस खींच कर वह फिर पञ्जों (toes) के बल खड़ा हो जाता है और धीरे धीरे हवा बाहर निकालता है। इस समय हाथ भी पहले की अपेक्षा कुछ अधिक तेजी के साथ, पर धीरे धीरे नीचे आते रहते हैं यहांतक कि पूर्ववत् वे फिर जाँघों तक पहुँच जाते हैं। यह कसरत छः बार की जाती है।

कसरत नं० २—रोगी सांस खींचता हुआ दोनों हाथ बगल से ऊपर लाता है और सांस निकालता हुआ ऊपर से फिर नीचे ले जाता है। हाथ नीचे लाते समय वह छाती को कोहनी से खूब दबाता है जिस से भीतर का बचा-बचाया बलग़म हवा द्वारा बाहर निकल जाता है। यह कसरत भी छः बार की जाती है।

कसरत नं० ३—रोगी झटकेसे दोनों हाथ छाती के सामने लाकर फैलाता है और फिर उन्हें जोड़ लेता है। तत्पश्चात् उन्हें फैलाता हुआ कंधे की सीध में लाता है। हाथ फैलाते समय वह दाहिना पैर तीन बार और बाँया दो बार, दो फुट तक आगे ले जाता और पीछे ले जाता है।

इस के अनन्तर गाने की कसरत शुरू होती है। रोगी पहले एक साँस में स्वर चढ़ाता है और फिर एक ही साँस में उसे उतार देता है। फिर हर एक स्वर को चढ़ाते हुए वह ६ तार पर गाता है और फिर आठ तार तक जाता है। अन्त में वह एक छोटी मधुर तान अलापता हुआ इस व्यायाम को समाप्त करता है। श्वास लेने और गाने की कसरत में २० मिनट लगते हैं।

साढ़े दस बजे से रोगियों को अपनी शक्ति के अनुसार क्रम-पूर्वक कसरत (graduated exercises) करनी पड़ती है। कुछ जङ्गल में जाकर वृक्ष काटते हैं, कुछ आरे और रन्दे से काम करते हैं, कुछ मैदान की घास इकट्ठी करते हैं और कुछ बग़ीचों में खोदने का काम करते हैं। ग्यारह बजे तक इस काम से छुट्टी पाकर सब अपने अपने कमरे में पहुँच जाते हैं। यहां वे जो चाहें सो कर सकते हैं—चाहे लेटें, चाहे बैठे रहें।

आराम करने के बाद उन्हें सवा ग्यारह बजे सड़कों या जङ्गलों में घूमने जाना पड़ता है। कुछ आध घण्टे तक घूमते हैं और कुछ इससे भी अधिक, लेकिन सबको १२½ बजे तक लौट आना पड़ता है। जो स्त्री पुरुष डाक्टर मुल्यू की खास निगरानी में रहते हैं वे नाक और मुँह को एक कपड़े से ढांककर घूमने निकलते हैं। इस कपड़े में दवा से भीगा हुआ एक फाहा (lint) होता है जो फेफड़ों को साफ करता रहता है। इसे स्वयं डाक्टर मुल्यू ने आविष्कृत किया है।

१२½ बजे से आराम और शान्ति का समय प्रारम्भ होता है। रोगियों को इस समय तक अपने अपने कमरों में अवश्य लौट आना चाहिए। वे बेत की आराम कुर्सी पर चुपचाप लेटे रहते हैं, किसी से बातें नहीं कर सकते। १॥ बजने से कुछ मिनट पहले वे फिर उठते हैं और हाथ मुँह धोकर खाने की तैयारी करते हैं।

भोजन में शोरबा या मछली, गरम गोश्त, दो तरकारियाँ, फल या गुलगुले, पनीर और बिस्कुट, रोटी और मक्खन, और शिशिर ऋतु में गरम तथा ग्रीष्म ऋतु में ठंढा (एक-दो गिलास) दूध मिलता है। सप्ताह में दो दिन कहवा भी मिलता है और उस समय फल की जगह गुलगुले (pudding) दिये जाते हैं।

भोजन के पश्चात् सब रोगी अपने अपने कमरों में ढाई बजे तक फिर आराम करते हैं। ढाई से साढ़े तीन तक अपनी अपनी शक्ति के अनुसार मौसम को देखकर वे क्रोकेट ('croquet) बिलियर्ड (billiard) गार्डन गोल्फ(garden golf) आदि खेल खेलते हैं। खेल-कूद कर वे फिर अपने अपने कमरों में चले जाते हैं। वहां वे सब दरवाजों और खिड़कियों को बन्द कर लेते हैं और उस लैम्प को जलाते हैं जिस को डाक्टर ने स्वयं तैयार किया है। उसमें से फारमलडीहाइड (Formaldehyde) नाम की गैस निकलकर कमरे भर में भर जाती है। इस गैस में रोगियों को सांस लेना पड़ता है। पन्द्रह से तीस मिनट के अनन्तर लैम्प बुझा दिया जाता है और तब रोगी सांस लेने और गाने की कसरत करने के लिए फिर बाहर मैदान में निकल आते हैं।

चार बजे उन्हें चाय दी जाती है जिस का प्रबन्ध एक पुरानी रोगिणी स्त्री के स्वाधीन रहता है। चार से छः बजे तक रोगी जो चाहें सो कर सकते हैं। इस समय वे बिलियर्ड (billiard) ताश या

शतरञ्ज खेलते हैं, अथवा उपन्यास पढ़ते या टहलते हैं। भीतर बैठे रहने से बाहर घूमना या खेलना अच्छा समझा जाता है। यदि मौसम खराब हो तो दूसरी बात है। सिद्धान्त यह है कि जहाँ तक हो रोगी हर समय खुली हवा में रहे। छः से सात तक वे फिर आराम कुर्सियों पर चुपचाप आराम करते हैं।

सात बजे वे व्यालू करते हैं। उस समय उन्हें (जाड़े में) गरम मांस या (गरमी में) ठंडा मांस, मछली, तरकारी, गुलगुले, दूध, रोटी और मक्खन खाने को मिलता है।

व्यालू के अनन्तर नौ बजे तक रोगी मनमाना काम करते हैं। कुछ खेलते हैं, कुछ बैठकर पढ़ते हैं और कुछ टहलने के लिए बाहर निकल जाते हैं। ठीक नौ बजे सबके लिए अपने बिछौने पर लेट रहना आवश्यक है। आध घण्टे के बाद दाई घूम घूमकर सब लेम्प ठण्डे कर देती है। यदि उस समय किसी रोगी को विशेष कष्ट हो तो वह डाक्टर को बुला देती है।

पर्वतीय कुञ्ज एक प्रकार का होटेल (hotel) है जहाँ रोगी खूब गुल छर्रे उड़ाया करते हैं। उन्हें और दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा आराम और स्वच्छ वायु को अधिक आवश्यकता है, इसी लिए जहाँ तक सम्भव होसकता है डाक्टर मुथू अपने सैनीटोरियम के रोगियों को बहुत प्रसन्न चित्त और सुख से रखते हैं। यही कारण है कि रोगी एक साथ कुटुम्ब के समान रक्खे जाते हैं और उन्हें रोचक नाटक भी दिखाये जाते हैं।

औषधियों पर डाक्टर मुथू का विश्वास बहुत कम है और जब तक कोई खास ज़रूरत न हो तब तक वे उन का प्रयोग नहीं करते। वे रोगी को ऐसे नियम से रखते हैं कि प्रकृति आपसे आप उसको अच्छा करदे। औषधियाँ देने के बदले वे रोगियों से कहा करते हैं कि तुम आरोग्यवर्द्धक और आनन्ददायक स्थान में रहो, मनको शान्त रक्खो, बिगड़ी हुई नसों को ठीक करने के लिए बिजली काम में लाओ और कृमिनाशक भाफ Antisepticvapour सूँघा करो। यह गैस फेफड़ों को साफ कर शरीर को सुदृढ़ बनाता है।

जिन कारणों से क्षय-रोग उत्पन्न होता है उन पर विचार करने से मालूम होता है कि इस प्रकार की चिकित्सा इस रोग के लिए अत्यन्त उपयोगी है और इसी का प्रयोग होना चाहिए। डाक्टर मुथू स्वयम् ही तो इस रोग का निदान बतलाते हैं। कई घण्टे

लगातार आग के सामने काम करने से मनुष्य का दिमाग गरम हो जाया करता है। नगरों में जन-संख्या अधिक होने से वहाँ के निवासियों को स्वच्छ काफी हवा साँस लेने को नहीं मिलती। बोतलों में भरा हुआ बासी दूध, और पीपों में भरी हुई बासी रोटी, तरकारी और मांस खाने को मिलता है। उसमें से वह सत्व निकल जाता है जो शरीर को प्रायःदृढ़ करने में सहायता देता है। गरीबों का आर्थिक कष्ट के कारण यह भोजन भी सजीव नहीं होता। इन्हीं कारणों से शरीर के अवयव मिलकर अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर सकते जैसा वे नीरोगी शरीर में किया करते हैं। सभ्यता के बढ़ने से स्वास्थ्य खराब होता है और सचमुच यही खराबी क्षय रोग का मुख्य कारण है।

क्षय के कीड़े क्या नुकसान पहुंचाते हैं, इस पर अभी बड़े बड़े डाक्टरों का मतभेद है। कीटाणु विज्ञान-विशारद (bacteriologists) अब भी दावे के साथ कहते हैं कि कीड़े, रोग और रोग का आधार (soil) दोनों उत्पन्न करते हैं। डाक्टर मथ्यू का कथन है कि क्षय के प्रायः ऐसे ऐसे रोगी देखने में आये हैं जिनमें बड़े बड़े कीटाणु विज्ञान-विशारद कीड़े नहीं निकाल सके। उनकी राय में इस रोग की जड़ शारीरिक विकार है, और शारीरिक विकार का कारण मानसिक दुर्बलता है। मानसिक विकार से शरीर के कोठे अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर सकते। यही सम्मति और बहुत से चिकित्सकों की होने लगी है। कहने का सारांश यह है कि जब तक मानसिक विकार और अवयवों की खराबी न हो, तबतक कीड़े कोई हानि नहीं पहुंचा सकते। डाक्टर साहब का इतने दिनों का अनुभव बतलाता है कि यह बीमारी गन्दे रहन सहन से पैदा होती है कीड़ों से नहीं।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार से हिन्दुस्थान के लोग भी गांवों से खिचकर शहरों में बसने लगे हैं। शहरों में भीड़भड़क्का अधिक होने, देर तक लगातार काम करने और मदिरा के सेवन से हिन्दुस्थान में भी प्राय क्षय रोग की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। डाक्टर मुथ्यु हिसाब लगा कर बतलाते हैं कि प्रतिवर्ष ९,००,००० (नौ लाख) से १०,००,००० (दस लाख) तक प्राणी इस भयङ्कर रोग की भेंट होते हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और दूसरे हिन्दुस्तानी शहरों की मृत्युसंख्या जनसंख्या के लिहाज से विलायत के मानचेस्टर, ग्लासगो और अन्य व्यापारिक नगरों की अपेक्षा कहीं बढ़ी है।

हिन्दुस्थान में स्त्रियां क्षय-रोग से मर्दों से भी अधिक मरती हैं। ऐसा दृश्य उन श्रेणियों के मनुष्यों में दिखाई देता है जिनके यहां पर्दे का प्रचार है। बालक उत्पन्न करनेवाली नवयुवतियां विशेष कर इस रोग से आक्रान्त रहती हैं। इसीलिए अभाग्यवश देश को बुरी हानि होरही है।

सबसे अधिक शोक इस बात का है कि इतने बड़े हिन्द देश में इस प्राण घातक रोग से पीड़ित रोगियों की चिकित्सा करने के लिए केवल चार या पांच आरोग्याश्रम हैं। डाक्टर मुथ्यू इस संबंध से हिन्दुस्थान में कई बातों का होना अत्यावश्यक बतलाते हैं। प्रथम तो एक हेड आफिस खोला जाय और फिर उसकी शाखायें प्रांतों और नगरों में रक्खी जावें ताकि लोगों को क्षय-रोग के उत्पन्न होने और बढ़ने के कारण और अच्छे होने के सुगम साधन बराबर मालूम होते रहें। दूसरे, कई एक अस्पताल खोले जावें जिनमें बहुत से ऐसे कमरे हों जिनमें रोगी के सम्बन्धी रह सकें, और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मुसलमान, और ईसाई आदि जातियों के लोग अपनी वर्ण-व्यवस्थानुसार भोजन अलग अलग पका सकें। तीसरे, शहरों के बाहर और गांवों से लगे हुए आरोग्याश्रम खोले जावें जिनमें क्षय रोगाक्रांत मनुष्य सपरिवार रहकर दोनों काम कर सकें—अपनी दवा करें और काम करके परिवार की सहायता भी कर सकें।

डाक्टर मुथ्यू की बातें वस्तुतः विशेष ध्यान देने योग्य हैं। यूरोप और अमेरिका के लोग क्षय को सफ़ेद प्लेग (white plague) के नाम से पुकारते हैं और उसको निर्मूल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हम हिन्दुस्थानियों का भी कर्तव्य है कि इस प्राण घातक रोगकी हानियों का समझें और अपने देश से इसे निर्मूल करने का यथासाध्य प्रयत्न करें।

(सरस्वती)

—०—

ताम्बूल—पान ।

सं० नाम-नागवल्ली, पर्ण, ताम्बूली इ०। हिं०—ताम्बूल, पान, नागरबेल। ब०-पान। म०-विड्याचें पान, नागवेल। गु० नागरवेल नागेली, पान। तै०-तामलपाकु। ता०-वेट्रिलै। क०-पानवेल,नागर-

पत्ती। म०--बेत्तिल,ताम्बूलम्। बर्मा न-कुनयू। फा०-बर्गतम्बोल। अ०-मान। लै०-पीपर बेटिल और इ०-बेटिल लीव (BetelLease)।

पान भारत में इतना प्रसिद्ध है कि इसका विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं। इस देश में पान का चलन बहुत दिनों से देखा जाता है। यह अधिक गुणकारी होने के कारण विलास की एक सुन्दर सामग्री मान लिया गया है इस लिए इस को प्रतिदिन सेवनोपयोगी वस्तुओं में गणना की जाती है। हमारे अनेक प्रकार के माङ्गलिक कार्य्यों में पानकी आवश्यकता होती है। ताम्बूल के बिना कोई भी शुभकार्य्य सपन्न नहीं हो सकता। भारत के सिवा अन्यान्य कितने ही देशों में भी पान का व्यवहार अधिक होता है। जापान आदि एशियाई देशों में पानका प्रचार कम नहीं देखा जाता। किन्तु योरप और अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में पान का वैसा आदर नहीं है। इसीलिए आजकल बहुत से यूरोपियन लोग पानको हेय समझते हैं। हमारी राय में पानके गुणों के विषय में उनकी अनभिज्ञता ही इसका मुख्य कारण मालूम होता है। यद्यपि पान में कुछ दोष भी हैं, परन्तु जैसा वे लोग समझते हैं वैसा बुरा वह नहीं है।

पान की देशभेद से अनेक जातियें हैं। जैसे भीवाटी, सासली, मालवी, अन्ध्रदेशी, मदरासी, बङ्गला, महुआ, बिलौआ, राजपुरी, चन्द्रापुरी, सिंहापुरी, नागपुरी, कपूरी, सफेदा, काला इत्यादि। इन सब पानों में हमारे यहां साधारणतः महुआ, बिलौआ और राजपुरी आदि देशी पान ही सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। मदरासी-पान सबमें निकृष्ट है और यह साधारण पानों की अपेक्षा अधिक मोटा होता है। बहुत लोग इसको अनभिज्ञता से खालेते हैं जिससे कि उन्हें बहुत हानि उठानी पड़ती है। मदरासी पानको खाने से बहुत जल्द मुँह आजाता है। बंगला पान अधिक गरम होता है। पर यह मदरासी पान की तरह हानिकारक नहीं है। कपूरीपान अत्यन्त कड़ुवा होता है।

पान के गुण—साधारणतः पान कड़ुवा, चरपरा, सुगन्धियुक्त, क्षारगुणयुक्त, कषायरसान्वित, गरम, अग्निप्रदीपक, वात-कफनाशक, कामोद्दीपक, वेदनाहारक, धातुनिस्सारक, लालोत्पादक, मुखशोधक, रुचिकर, कृमिनाशक, बलकारक, और श्रमनाशक है। तथा आध्मान (अफारा), अंगदाही, अर्श, शूल और मुखकी दुर्गन्धादि रोगोंमें अतीव हितकारी है। पानकी जड़ अत्यन्त हानिकारक वस्तु है। इसका

प्रधान गुण जरायु निःसारक, क्षतकारक दाहजनक, और मस्तिष्क को उत्तेजित करना है। इसके खाने से कानों में सुन २ शब्द होता है और कान में अनेक प्रकार के रोगों के उत्पन्न होने की संभावना होती है। पान का अग्रभाग अर्थात् पान की नोक निषिद्ध वस्तु है। इसको खाने से भी शरीर में अनेक विकार पैदा हो सकते हैं।

पान की नस बुद्धि को भ्रष्ट करती है इसकारण पान की मोटी नसों को तोड़कर ही पान खाना चाहिए। सूखा पान भी महाहानिकर है। अत्यन्त पान खाना भी अधिक दोषकारक है। अधिक पान खाने से अकाल वार्द्धक्य,दन्तपीड़ा आदि नाना प्रकार के रोग पैदा होजाते हैं, क्षुधाशक्ति नष्ट होजाती है और पाकस्थली में पाचकरस के अधिक गिरने से उसका कार्य्य बिगड़ कर अजीर्ण, आमाशय आदि तरह २ के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव अधिक परिमाण में पान खाने का व्यसन कभी नहीं डालना चाहिए। साधारणतः भोजन के पश्चात् मुखशुद्धि के लिए एक, दो पान खा-लेना ही यथेष्ट है।

इसके अतिरिक्त अत्यन्त रूक्षशरीर वाले, दुर्बल, अत्यन्त कृश, ज्वररोगी, मुखशोष रोगी, रक्तपित्ती, नेत्ररोग से पीड़ित, मद, मूर्च्छा, और विष रोगवाले एवं क्षत, शोष और रुधिर के विकार वाले व्यक्तियों को पानका सेवन हानिकारक है।

पृथक्करण शास्त्र की दृष्टि से पानों को कुचलकर उन का रस निकालने पर उस में से दो प्रकार का उड़ने वाला तेल निकलता है। उनमें एक बहुत पतला होता है और दूसरा उसकी अपेक्षा कुछ गाढ़ा होता है। दोनों में ही सुगन्ध होती है। किन्तु पतले तेल में सुगन्ध अधिक होती है। पान के तेलमें तीन पोटासक्षार (Caustic Potash) मिलाने से एक विशिष्ट फेनाल तैयार होता है। उसको "चंवि आल" कहते हैं। यह अत्यन्त जन्तुनाशक है। यह पदार्थ "कार्वोलिकएसिड" की अपेक्षा पचगुना और 'युजेनल' को अपेक्षा दुगुना तीव्र होता है। परीक्षाद्वारा मालूम हुआ है कि पान का तेल कफ व सर्दी के विकारों में अत्यन्त उपयोगी है। गलेका सूजना, छातीका जकड़ जाना आदि गलरोगों में यह तेल विशेष हितकारी है। तथा श्वासनाली की दाह, खाँसी, स्वरभेद इत्यादि रोगों में इसका पूरा उत्तम उपयोग होता है। इस में पचननिवारणी शक्ति तीव्र है। गलरोहिणी (Diphtheria) रोग में इसका कवल और धूम्रप्रदान किया जाता है। इसकी

१ बूँद नौ तोले अत्यन्त गरम जलमें डालकर उसके द्वारा कुल्ले करने चाहिएँ और उसीप्रकार उसका धूम ग्रहण करना चाहिए। इसप्रकार करने से गले की भीतरी सूजन दूर होकर उक्तरोग आराम होता है। किन्तु यह तेल सर्वत्र सहज में प्राप्त नहीं होसकता। इसलिए १ बिन्दु तेल के बदले ४ पानों का रस निकालकर व्यवहार किया जासकता है।

पान हमारे देशकी एक गार्हस्थ्य औषधि है। यह अनेक प्रकार के औषधोपचार में काम आता है। सर्दी के विकारों में पानका बड़ा अच्छा उपयोग होता है। छोटे बालकों की सर्दी के कारण जब छाती जकड़ जाती है तब पानको गरम करके छाती पर बाँधने से शीघ्रही अच्छा फल देखने में आता है। पान का रस निकालकर उसमें शहद मिलाकर देने से कफ और खांसी दूर होती है। पान उष्ण और उत्तेजक होने के कारण सब प्रकार के कफ-वातजनित रोगों में बड़ा अच्छा कार्य्य करता है। पान को गरम करके मस्तक पर बाँधने से मस्तक की पीड़ा दूर होती है। गरम पान को गलेकी सूजन व ग्रन्थि के ऊपर बाँधने से उक्त विकार शीघ्र दूर होते हैं। प्रसूता स्त्री के स्तनों में दूध के रुकजाने के कारण जब स्तनों में अत्यन्त शीघ्र पीड़ा होती है उस समय पान को गरम कर बाँधने से उक्त पीड़ा नष्ट होती है। नवीन फोड़े के ऊपर गरम पान को बाँधने से वह बैठ जाता है और व्रणके ऊपर पानको पीसकर लगाने से वह साफ होकर भरने लगता है। यकृत् विद्रधि के ऊपर पान को गरमकर बाँधने से बहुत उपकार होता है। पानका रस ज्वरनाशक है। इसलिए उसके रसमें शहद मिलाकर ज्वर का वेग बढ़ने से पहले देने से ज्वर रुक जाता है। स्त्रियों के योषापस्मार (हिस्टेरिया) में पानका रस और दूध एकत्र मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है। छोटे बालकों की वमन, अतीसार, मलबद्धता, पेट का अफरना, इत्यादि विकारों में दो चार बूँद पानका रस देने से विशेष उपकार होता है। पान अत्यन्त शक्तिवर्द्धक और थकननाशक है। इसलिए पानको खाने से शरीर में तत्काल फुर्ती और बलकी वृद्धि मालूम होती है। नित्यप्रति पानको सेवन करने से सर्दी होनेका भय नहीं रहता। उसीप्रकार अत्यन्त शीतवाले देशों में और जहाँ की पृथ्वी हमेशा जल से भीजी व शीतयुक्त रहती है एवं जहां मलेरिया आदि रोगों की फसल अधिकतासे होती है वहाँ पानों

को नियमितरूप से सेवन करना चाहिए। इससे वहाँ की जल, वायु और उक्त रोगों का वैसा असर नहीं होता।

कान की पीडा में पानों का रस और तेल एकत्र गरम करके या पानों का तेल में पकाकर उस तेल को कान में डालने से कानका दर्द तत्काल कम होजाता है। गवेये, व नाटकवाले और जिन लोगों का गाने से स्वर बैठ जाता है उनको पान की जड़ और मुलेठी का समान भाग चूर्ण मिलाकर खाने से स्वर स्वच्छ हो जाता है। पानों के रसके द्वारा बनाया हुआ शर्बत अत्यन्त शक्तिवर्द्धक, पाचक, अग्नि प्रदीपक और उत्साहजनक है।

—०—

तैलमर्दन ।

शरीर में तैलमर्द्दन की प्रथा भारत में बहुत दिनों से चली आती है। धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों में तेलमर्दन के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। हमारे प्राचीन महर्षिगण तेलमर्दन के विशेष पक्षपाती थे, इसीलिए वे तेलमर्दन के विषय में अनेक उपदेश कर गये हैं। जिस प्रकार यन्त्र और शस्त्रों को कार्य्योपयोगी एवं तेज बनाने के लिए उनपर तेल लगाने की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार इंजन के कल पुर्जों पर तेल नहीं लगाने से वे ठीक ठीक नहीं चलते और बहुत समय तक काम करने के योग्य नहीं रहते और जिसप्रकार गाड़ी के पहियों में तेल न लगाने से वे ठीकर काम नहीं देते उसीप्रकार हमारे शरीररूपीयन्त्र को चलाने के लिए भी तेलमर्दन की आवश्यकता है। शारीरिक यन्त्र तेल से स्निग्ध न किये जाने पर सबल और कार्यक्षम नहीं रहसकते। अतएव इस देहरूपीयन्त्र को चलाने के लिए सब मनुष्यों को सदैव तेल मर्द्दन करना चाहिए।

तैल-अपनी प्रसारणशक्ति की अधिकता से शीघ्र ही शरीर की सम्पूर्ण शिराओं में प्राप्त होकर देह के भीतर प्रवेश करता है। और स्निग्धतागुण से शरीर के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गों को दृढ़, कार्य्य करने योग्य और कष्टसहिष्णु बनाता है। तैलमर्दन से त्वचा में प्रसन्नता, सम्पूर्ण इन्द्रियों की पुष्टि और वातादि दोषों का अनुलोमन होता है। स्नायुमण्डल दोषों से मुक्त और परिष्कृत होने के कारण रक्तसञ्चालन क्रिया सुचारुरूप से सम्पन्न होती है। आयुर्वेद में-पहले दोनों पैरों में फिर अन्यान्य अङ्ग प्रत्यङ्गों में तैलमर्दन की व्यवस्था देखी जाती है।

शरीर के पृथक् पृथक् अङ्गों में तेलमर्दन करने से जो उपकार होता है उसके विषय में सामान्यरूप से कुछ नीचे लिखा जाता है। मस्तक में तेल मर्दन करने से शिरःशूल, खालित्य (गञ्ज) और असमय बालों का पकना आदि रोग उत्पन्न नहीं होते और बाल सघन, सचिक्कन, दीर्घ एवं कृष्ण वर्ण हो जाते हैं। बालों की जड़ें दृढ़तर होती हैं। मस्तिष्कशक्ति की वृद्धि होती है ऊर्ध्वगत इन्द्रियों में स्निग्धता होने से वे अपने २ कार्य्य करने को विशेषरूप से समर्थ होती हैं। उत्तम निद्रा आती है और उससे शरीरयन्त्र की समस्त क्रियायें सुचारु रूपसे सम्पन्न होती हैं।

कानों में तेल डालने से-वायुजनित कर्णनाद प्रभृति रोग उत्पन्न नहीं होसकते। एवं मन्यास्तम्भ (नाड़ का जकड़ जाना), हनुग्रह (ठोड़ी का जकड़ना) आदि वातरोगों के उत्पन्न होने की आशंका दूर होती है। कर्णस्रोत शुद्ध और बलवान् होने से बधिरता अथवा कानों में कफादि जनित मल सञ्चित नहीं होता।

दोनों पांवों में तेल मलने से पादसुप्ति (पैरों में सुन्नी),पाद-शोथ आदि रोग नष्ट होते हैं। एवं सौन्दर्य्य और कार्य्यक्षमता उत्पन्न होती है। विशेषकर पादगत स्नायुओं के संकुचित न होने के कारण, पादस्फुटन (पैरों का फटना), गृध्रसी (रींगन) आदि कष्टदायक वातव्याधि उत्पन्न नहीं होतीं। पाँव के अँगूठे की कण्डरा के साथ नेत्र का सम्बन्ध होने से कण्डराओं के स्निग्ध गुण के द्वारा दृष्टि शक्ति अत्यन्त तीव्र होजाती है।

नाभि में तेलमर्दन करने से कोष्ठगत वायु का अनुलोमन होता है और उससे आध्मानादि रोग उत्पन्न नहीं हो सकते। एवं खाया हुआ भोजन सहज में पचजाता है। इस प्रकार भिन्न २ अङ्गों में तेल मर्दन करने से अधिकतर से उपकार होता देखा जाता है। तेल के व्यवहार के सम्बन्ध में एक प्राचीन उपदेश है—"घृतादष्टगुणं तैलं मर्दनान्चितुभोजनात्।" अर्थात् घृत की अपेक्षा तेल में अठगुने गुण हैं, किन्तु ये गुण तेल के मर्दन करने में हैं—खाने में नहीं। इससे ज्ञात पड़ता है कि पहले तेल मर्दन करने के लिए ही व्यवहृत होता था। भोजन में तेलका कुछ भी व्यवहार नहीं पाया जाता। साधारणतः सम्पूर्ण तेलों में तिलका तेल ही श्रेष्ठ है। परन्तु तिल, सरसों और नारियल इन तीनों का ही तेल अधिकता से व्यवहार किया जाता है। इनके दोनों प्रकार के तेलों के गुणागुण प्रकाशित किये जाते हैं इससे तैलसेवी मनुष्य अपनी २ प्रकृति के अनुसार तेलकी उपयोगिता को

भली भाँति समझ सकेंगे। प्रायः सभी प्रकार के तेल अपने उपादेय द्रव्यों के अनुसार ही गुणानुवर्त्ती होते हैं। ऊपर कह चुके हैं कि तिल का तेल अन्यान्य तेलों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। यह तीक्ष्ण, शीघ्र प्रसारण करने वाला, मालिश करने से त्वचा के दोषों को नष्ट करने वाला, शीघ्र सूक्ष्म स्रोतों में प्रवेश करनेवाला, नेत्ररोगी को अहितकर, स्निग्ध और कफ को कुपित करने वाला है। स्थूलतानाशक, कृशताहारक, मलस्तम्भक और कृमिविनाशक है। इसमें एक विशेष गुण यह है कि जब किसी पदार्थके साथ इस तेलका पाकके द्वारा संस्कार होता है तब यह तेल उसके गुणों को ग्रहण कर लेता है। इसलिए आयुर्वेदोक्त अधिकांश तेल इसी तेल के द्वारा तैयार किये जाते हैं।

नारियल का तेल—अत्यन्त स्निग्ध, रस-रक्तादि धातुओं का पोषक, मलिनताविनाशक, कफवर्द्धक, बालों की सुन्दरता बढ़ाने वाला, कफप्रकृति और कफ की प्रधानता वाले रोगी के लिये अनुपयोगी है।

सरसों का तेल—कटु, उष्णवीर्य्य, तीक्ष्ण, लघुपाकी, कफ, शुक्र, वात, कुष्ठ, अर्श, व्रण और कृमिरोगनाशक है। मर्दन करने के लिये सरसों का तेल भी अत्युत्तम है।

—•—

रक्तप्रदर और उसकी सामान्य चिकित्सा।

अन्यान्य रोगों की तरह प्रदररोग भी मिथ्याहार और विहार के द्वारा उत्पन्न होता है। विरुद्ध भोजन जैसे-खटाई और दूध, दुग्धभोजन अत्यन्त गरम व तीक्ष्ण पदार्थों के द्वारा बनाया हुआ अथवा सड़ा बुसा खाद्य, अजीर्ण, भोजन पर भोजन, मादक पदार्थों का सेवन, गर्भस्राव व गर्भपात, अत्यन्त मैथुन, चिन्ता, शोक, उपवास, अत्यन्त परिश्रम, भारवहन, आघात का लगना, दिन में शयन, बन्द और दूषित स्थानों में वास करना आदि प्रदररोग के अनेक कारण हैं। साधारणतः प्रदररोग वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक इन भेदों से चार प्रकार का है। प्रायः सब प्रकार के प्रदरों में शरीर में पीड़ा और योनिके द्वारा स्राव हुआ करता है।

जिसप्रकार प्रमेहादि कितने ही रोग पुरुषों के शरीर में उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार प्रदरादि कितने ही रोग केवल स्त्रियों के शरीर में उत्पन्न होते हैं। प्रदर स्त्रियों का एक कठिन और मारात्मक रोग है।

प्रथमावस्था में अवश्य ही यह रोग दुश्चिकित्स्य व मारात्मक नहीं होता। किन्तु अधिकतर स्त्रियें प्रथम अवस्था में लज्जावश रोग को प्रकट नहीं होने देतीं। इसकारण रोग शनैः शनैः स्थायी होकर क्रमशः दृढ़मूल और मारात्मक होजाता है।

प्रदररोग में अत्यन्त रक्तस्राव होने पर रोगिणी के अत्यन्त दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छा, मोह (बेहोशी), तन्द्रा, प्रलाप, प्यास, सम्पूर्ण शरीर में दाह, रक्तहीनता, शरीर में पीलापन और वातव्याधि के समस्त लक्षण प्रकाशित होते हैं।

योनिरोग, रजोऽल्पता और कष्टरजः आदि रोग जिसप्रकार आर्त्तव के दूषित होने से उत्पन्न होते हैं—प्रदररोग भी उसीप्रकार आर्त्तव के दोष से उत्पन्न होता है। इसकारण जबतक प्रदर रोगके लक्षण और उपद्रव सब नष्ट न हों और शुद्धार्त्तव के लक्षण प्रकट न हों तबतक चिकित्सा करनी चाहिए। कारण, रोग एक बार शरीर में जड़ पकड़ लेने पर असाध्य होजाता है। प्रदररोग की सभी औषधें रजःशोधक होती हैं इसकारण रज की शुद्धि के लिए अन्य किसी स्वतन्त्र औषधि की आवश्यकता नहीं है। तथापि अत्यन्त आवश्यकता होने पर निम्नलिखित आर्त्तव दुष्टिकी औषधें प्रयोग करनी चाहिएं।

लाल गेंदेके फूलों को जलके साथ पीसकर सेवन करने से रक्तप्रदररोग नष्ट होता है अथवा अशोक के फूल या अशोक की छालको जलके साथ पीसकर पान करने से रक्तप्रदर शीघ्र नष्ट होता है। अत्यन्त स्राव होनेपर आमले, हरड़, और रसौत, तीनों को एकत्र पीसकर चावलों के जल या माँड के साथ सेवन करना चाहिए। इससे शीघ्र ही रुधिर का स्राव बन्द होता है। अथवा रसौत के चूर्ण को लाल चौलाई की जड़के रस के साथ या चावलों के जलके साथ किम्वा मुलैठी और रसौत के चूर्णको या गूलर के रस में शहद मिलाकर सेवन करने से रक्तप्रदर दूर होता है। अडूसे की छाल के रसको मधुके साथ और कुशाकी जड़ को चावलों के जलके साथ या पेठा कूटे की छालके रसको चावलों के पानी के साथ दिनमें दोबार सेवन करने से रक्तप्रदर दूर होता है। ये सभी योग रक्तप्रदर को तत्काल नष्ट करनेवाले हैं। अत्यन्त पीड़ा और रक्तस्रावको बंद करने के लिए बटदुग्ध को अफीमो माँड के साथ या काँजी के साथ पीसकर देना चाहिए। इसके सिवा रक्तप्रदर में रक्त को बंद करने के लिए

रक्तातीसार, रक्तार्श और अधोगत रक्तपित्तरोगोक्त समस्त औषधियें प्रयोग करनी चाहियें। कुटजाष्टक व पुटजावलेह को रक्तप्रदर में प्रयोग करनेसे बहुत शीघ्र रक्तस्राव बंद होजाता है। इस रोगमें पुष्यानुगचूर्ण और चन्दनादि चूर्ण भी उत्कृष्ट औषधें हैं। ये दोनों चूर्ण रक्तप्रदर श्वेतप्रदर, योनि के क्षत और क्लेद व वेदनायुक्त स्राव को निवारण करने में अत्यन्त शक्तिसम्पन्न हैं।

रक्तप्रदर में क्लेदयुक्त स्राव, योनिमें दाह और स्राव होने के समय अत्यन्त पीड़ा होने पर अथवा ऋतुकाल में अधिक वेदना के साथ अधिक रक्तस्राव होने पर दार्व्यादि क्वाथ, अशोक क्वाथ, प्रदरान्तक चूर्ण, प्रदरादि लोह और ज्वर न होने पर अशोकघृत प्रयोग कराना चाहिए। अधिक रक्तस्राव न होनेपर प्रदरान्तक लोह, पुष्कर लेह या मित्रकल्याण घृत आदि औषधियाँ सेवन करानी चाहियें। इसके सिवा फलघृत, फलकल्याणघृत या कुमारकल्याणघृतादि भी इस अवस्था में हितकारी हैं।

प्रदर की वर्द्धित अवस्था में वातव्याधि के लक्षण व वातरोग अर्थात् मूर्च्छा, आक्षेप प्रभृति उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था में वातरोगोक्त मूर्च्छा और आक्षेप की समान चिकित्सा करनी चाहिए। मूर्च्छा को दूर करने के लिए नस्य और सेवन करने के लिए वृहद्वातचिन्तामणि आदि औषधियें देनी चाहिएँ। श्लैष्मिक प्रदर रोग में साधारणतः अत्यधिक रक्तस्राव होता है-ऐसा होने पर क्रम से रक्तहीनता, पाण्डु और शोथ के लक्षण प्रकट होते हैं। उस समय साधारण औषधि से काम नहीं चल सकता। तब लवण और जल का त्याग कराकर पर्पटी या स्वर्णपर्पटी रस अवस्था भेद से प्रयोग करना चाहिए। शोथ के बिना केवल पाण्डु या कामला के लक्षण प्रकट होने पर पाण्डु और कामला रोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिए। दाहके प्रकट होने पर दाहनाशक नाना प्रकार के योग और मूर्च्छा के प्रकट होने पर मूर्च्छा रोगोक्त तैल व्यवहार करने चाहिएँ।

—o— "वैद्यराज"

माता का कर्त्तव्य।

ईश्वरने स्त्रियों को प्रसव करने की शक्ति प्रदान की है तो साथ ही उनको सन्तान को आरोग्य, सुखी और सदाचारी बनाने की भी शक्ति प्रदान की है। भावी और गर्भस्थ सन्तानके स्वास्थ्य के

लिए माता को अपने स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए । गर्भिणी स्त्रियों को अपने शारीरिक स्वास्थ्य, कार्य्याभ्यास और गर्भपीड़ा आदि की ओर विशेष दृष्टि रखनी उचित है और सदैव प्रसन्नचित्त रहना एवं अधिक काम काज नहीं करना चाहिए। बालक के उत्पन्न होने पर माता का दूध ही उसका प्राकृतिक आहार है। माता का दूध हर समय ताज़ा शुद्ध, गरम और जीवाणुरहित होता है। प्रकृति के नियमानुसार माता के दूध को ही बालक शीघ्र हज़म कर सकता है। दिन में घड़ी देख कर तीन तीन घण्टे के बाद बालक को दूध पिलाना चाहिए। पर रात्रि में नहीं पिलाना चाहिए । बालक को नियमित रूप से दूध पिलाने से उसकी पाकस्थली ठीक रहती है और दूध को उत्तम प्रकार से हजम करने में समर्थ होती है। यदि माता का दूध पर्य्याप्त परिमाण में अथवा बिलकुल नहीं होता हो तो गौ के दूध में जल मिला कर उस को माता के ठीक दूध पिलाने के समय देना चाहिए। यदि हर महीने में बालक के अङ्गों की जिस प्रकार वृद्धि होनी चाहिए वैसी नहीं हो तो किसी योग्य डाक्टर या वैद्य की सम्मति लेकर उसको गौ का दूध जल मिला कर दिया जा सकता है। किन्तु उस समय धाय का दूध पिलाना बहुत अच्छा है । पर कोई पेटेन्ट फूड (खाने की चीज़) या विलायती डिब्बों का दूध कभी नहीं देना चाहिए। क्योंकि ये सभी चीज़ें बालक के पेट को ख़राब करके उसकी जठराग्नि को मन्द करदेती हैं। बालकों को सदाचारी बनाने और स्वास्थ्य के नियम पालन करने की शुरू से ही शिक्षा देनी चाहिए। जैसे—शयन, भोजन, व्यायाम और स्नान;ये सब कार्य्य जिससे प्रतिदिन ठीक समय में हों वैसा नियम बनाना चाहिए। बालक को प्रतिदिन प्रातः और सायङ्काल की स्वच्छ और शीतल वायु सेवन कराना अत्यावश्यक है। शरीर पर गरम कपड़ा होने से शीतल वायु के द्वारा किसी प्रकार की हानि नहीं होती। तथापि वर्षा की अत्यन्त तीक्ष्ण और अत्यन्त ठंडी वायु से अवश्य बचाए रखना चाहिए। बालक के सोने और रहने का स्थान खुला हुआ और प्रकाशयुक्त होना चाहिए। किन्तु तेज़ हवा के सामने से बालक की सदैव रक्षा करनी चाहिए। रात्रि में बालक को उस के निजके एक छोटे से बिछौने पर सुलावे जिससे उसका मुँह माता के मुख से अलग रहे और माता का श्वास-प्रश्वास उस के मुख में न जाने पावे। एवं माता के मुख और नासिका के द्वारा

रोग के बीजाणु बालक के श्वास के साथ उसके भीतर न जासकें। इस पर खूब ध्यान रखना चाहिए कि पूर्णवयस्क मनुष्य की अपेक्षा बालक को स्वच्छ वायु की अधिक आवश्यकता है। बालक के पहरने के कपड़े हलके, गरम और अधिक नरम होने चाहिएँ। जन्म से ६ महीने तक बालक को सदैव शयन कराना चाहिए। ६ मास के बाद एक वर्ष तक दो घंटे सवेरे और दो घंटे शाम को शयन कराना ठीक है। पाँच वर्ष की अवस्था तक बालक को दिन में १ घंटे या २ घंटे तक चुपचाप शयन कराना आवश्यक है। जिस समय बालक सोता हो उस समय उस को किसी प्रकार दिक या असन्तुष्ट नहीं करना चाहिए। केवल भोजन का समय होने पर ही उसे जगाना ठीक है। फिर बीच बीच में उसको करवट बदल कर सुलाना चाहिए। बराबर बहुत देर तक एक करवट से सुलाना ठीक नहीं है। बालक के लिए सभी विषयों में स्वच्छता की अत्यन्त आवश्यकता है। जैसे—बालक के अङ्ग, उसके पहरने के कपड़े, रहने का स्थान, दूध और दूध पिलाने का बर्त्तन अथवा अन्य खाद्यादि द्रव्यों में किसी प्रकार भी धूल, मिट्टी या मक्खी आदि न पड़नी चाहिए इन बातों पर अधिकतर ध्यान देना उचित है। बालक का दूध या उसके खाने की अन्य सभी चीजें ठण्डी जगह में अच्छे प्रकार ढक कर रखनी चाहिएँ।

बालक को हिलाना डुलाना अत्यावश्यक है। हिलाने डुलाने से उसकी मांसपेशियों का सञ्चालन उत्तम प्रकार से होता है। माता को चाहिए कि वह बालक के दोनों हाथों और दोनों पैरों को धीरे धीरे पकड़ कर उठावे और बैठावे। एवं दिन में दो बार बालक के सब कपड़े उतार देवे जिस से कि वह नग्न होकर हाथ पाँवों को अच्छे प्रकार चला सके और हँस कर, चीत्कार कर, ताली बजा २ कर शरीर को स्पष्टरूप से सञ्चालन कर सके। जिस प्रकार वह हाथ में दी हुई वस्तुओं को अनेक प्रकार से रखना सीखे तथा देखने, सुनने और स्पर्श करने में उत्कण्ठित हो ऐसे खेल खिलौने आदि उसे देने चाहिएँ। बालक को धीरे धीरे उठना, बैठना और उस से उसके निजके छोटे छोटे काम कराने का अभ्यास कराना चाहिए। जैसे—खिलौना, दूध की कटोरी, उसका कपड़ा आदि मँगाना इत्यादि। इस प्रकार करने से उसकी स्मरणशक्ति खूब बढ़ती है। बालक जिस चीज़ को पाता है उसको स्थिरदृष्टि से देखता है।

अब वह किसी चीज़ को मुट्ठी में दृढ़रूप से पकड़ता है तब उसको नाराज़ करना किसी प्रकार ठीक नहीं है। वह चुपचाप होकर जिस समय देखे कि बच्चे क्या होरहा है तब उसके मन को दूसरी तरफ फेरना उचित नहीं है। बालक माता के स्तनों से जितनी ज़ोर से खींच २ कर दूध पीता है उतनी ही उस के मुख की मांसपेशियाँ सञ्चालित होती हैं और मुख दृढ़ होता है। बालक रोकर जब अपने दुःख को प्रकट करता है तब माता प्रायः यही समझती है कि बालक भूखा होने के कारण रोता है। जब ठीक समय पर उसको दूध दिया जाता है तब यह समझना चाहिए कि भूख बालक के रोने का कारण नहीं है। परन्तु बालक के रोने पर हर समय मातायें प्रायः उसके मुखमें दूध दे दिया करती हैं इस से बालकों के स्वास्थ्य की अत्यन्त हानि होती है। भूख के सिवा बालक के रोने के और भी बहुतेरे कारण हो सकते हैं। जैसे अत्यन्त गरमी पहुँचजाना या उसके किसी अङ्ग में चोट लगजाना, अंग का दब जाना, उसके कान या आँख में दर्द होना, डरजाना, इच्छित वस्तु का न मिलना इत्यादि। रोना ही बालक का बल और अपने दुःख प्रकट करने का एकमात्र उपाय है। माता का कर्तव्य है कि वह हर समय उसका काम उसी से कराने का अभ्यास करावे। बालक को अधिक लाड़ चाव करना भी ठीक नहीं है। बल्कि अच्छे अच्छे उपदेश और अच्छे अच्छे दृष्टान्त देकर उस को सन्मार्ग में चलाना चाहिए और सहज में होनेवाले छोटे छोटे काम सुचारुरूप से आनन्दपूर्वक कराने चाहिये जिससे वह सदैव प्रसन्नचित्त रहे और स्वार्थत्यागी बने। वह कृत-घ्नु और स्वार्थपरायण न हो इसलिए उसका हर एक चीज़ भाई, बहनों में बराबर २ बाँटकर देनी चाहिए। खेल और सब काम भाई बहनों के साथ मिलकर प्रेम पूर्वक करने सिखलावे। बालक के खाने पीने और खेलने के समय माताका इन बातों की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। भोजन के पश्चात् बालक को जल गरम करके फिर कुछ ठंडा करके देना चाहिए। स्तन का दूध पिलाने के बाद भी थोड़ा जल दिया जा सकता है। बालक के कुछ बड़े होने पर उसकी इच्छा के अनुसार जल पिलाना चाहिए। अधिक जल पान करने से लाभ के सिवा हानि नहीं होती। बालकों का दाँत निकलने समय कुछ सख्त चीज़ें, देनी अच्छी हैं जिससे दाँत और मांस ही निकल आते हैं। सख्त चीज़ों

को अच्छी तरह चबाकर खाने से दाँतों में हलचल होती है और दाँतों के रसका सञ्चालन विशेषरूप से होता है। बालक के दाँतों को भोजन के पश्चात् दिनमें दो बार अवश्य साफ़ कर देना चाहिए। जब बालक माताके दूध को पीना छोड़ दे तब उसको दाल, भात, रोटी, शाक आदि खाने की चीज़ें धीरे धीरे देनी शुरू करनी चाहिये। बालक की आँखों की ओर भी विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। बालक को अन्धेरे में लेजाकर डराना महाअन्याय और उस पर भयङ्कर अत्याचार करना है। उसको अन्धकार दिखाकर समझावे कि अन्धेरे में कभी किसीप्रकार का भय नहीं करना चाहिए।

बालक को यथोचित स्वास्थ्यवान्, सुखी और सदाचारी बनाने के लिए माता उसको नानाप्रकार के कर्त्तव्याकर्त्तव्य बतलावे और नीचे लिखी बातों को कभी न करे। जैसे—

कृत्रिम दूध (डिब्बे का दूध) कभी न दे।

रबड़ की लम्बी नली वाली बोतल से कभी दूध न पिलावे।

मैले कुचेले कपड़े न पहरावे।

धूल या गर्द मिला हुआ दूध अथवा अन्य कोई खाने की चीज़ न देवे।

भय न दिखावे इत्यादि।*

—०—

परीक्षित प्रयोग।

गर्भरक्षक पाक—प्रायः देखा जाता है कि बहुत सी स्त्रियों के बालक उत्पन्न होते ही या कुछ दिनों जीकर छः महीने के भीतर ही मरजाते हैं। इसके अनेक कारण होते हैं। ऐसी अवस्थावाली स्त्रियोंके लिए नीचे लिखा हुआ पाक अत्यन्त हितकारी है। स्त्री को गर्भवती होने से तीन मास पर्यन्त यह अवलेह सेवन कराना चाहिए। यह प्रयोग हमारा कई बार का अनुभव किया हुआ है। यह नुसखा "करावादियानकबीर" नामक पुस्तक में से कुछ परिवर्त्तन कर लिखागया है। जैसे—

बिना बिंधे मोती ६ माशे, कहरवा ६ माशे, मूंगे की जड़

* स्वास्थ्य रक्षा के आधार पर।

की भस्म ९ माशे, वंशलोचन ९ माशे श्वेत चन्दन ६ माशे, लाल चन्दन ९ माशे, दरोनज अकरवी ९ माशे, माजूफल ९ माशे, अंजवार की जड़ ९ माशे, गिलेअरमनी ६ माशे, तरबूज के बीजों की गिरी २२॥ माशे, खुर्फे के बीज छिलके रहित २२॥ माशे, नरकचूर ६ माशे, जावित्री ६ माशे, छोटी इलायची के दाने ६ माशे, दालचीनी ६ माशे, अगर ६ माशे, आवरेशम खाम का चूर्ण २७ माशे, अम्बर १। माशा, चाँदी के वर्क २०, अंगूर का शर्बत १८ तोले, शहद १२ तोले और मिश्री ३० तोले। प्रथम मोतियों को गुलाबजल में खरल कर के सुखा लेना चाहिए। फिर कहरुवे से लेकर अगर तक की औषधों को एकत्र कूट पीस कर कपड़छन करलेवे। पश्चात् आवरेशम को काट कर कीड़ निकाल डाले और लोहे के तवे पर भूनकर चूर्ण करलेवे। फिर मूँगे की जड़ को धोकर मिट्टी के दो सकोरों में बन्द करके अग्नि में जलावे। पश्चात् मिश्री और अंगूर के शर्बत की चाशनी बनाकर उस में उक्त औषधियों का चूर्ण और शीतल होने पर शहद डालकर उत्तम प्रकार से मिलादेवें। फिर इस पाक को एक उत्तम घी के चिकने बासन में भरकर रखदेवें। प्रतिदिन प्रातः और सायङ्काल इस को ४॥—४॥ माशे मात्रा में गुलाब के ३ तोले जल के साथ सेवन करे। यह औषधि उक्त अवस्थावाली स्त्रियों को अमोघ गुणकारी है।

यदि अंगूर का शर्बत न मिले तो कच्चे अंगूरों को मलकर उनका अर्क निकाललेवे। फिर जितना अर्क निकले उससे दूनी मिश्री डालकर शर्बत तैयार करलेना चाहिए।

हकीम दयानन्द लाल बरनी, मुरादाबाद।

शिरके रोगों में हितकारक नस्य—अमरबेल की भस्म, हरड़ का चूर्ण, वायविडंग का चूर्ण, प्रत्येक को एक एक तोला लेकर मन्दार के दूधमें ३ बार भावना देकर सुखा लेवे। फिर वस्त्र में छान कर रखदे। यह नस्य मस्तक के लिए बहुत अच्छा है। इस के सूंघने से छींकें बहुत आती हैं। मस्तक को पीड़ा तत्काल शान्त होती है और जिस का मस्तक खराब गया हो, जिस की स्मरणशक्ति कम होगई हो उस को इस नस्य से बहुत लाभ होता है। इस नस्य से हमारे मित्र हीरा-चन्द्र जी तथा अन्यान्य सिरदर्द के बीसों रोगियों को लाभ हुआ है।

मुनक्की औंलोंपर पोटली—हल्दी, बड़ी हरड़, लाललोध, फिटकरी, रसौत, कपूर, सफेद कत्था, ये प्रत्येक आध २ माशे और

अफीम ४ रत्ती लेवे। फिर सबों के बारीक चूर्ण को सफेद कपड़े में बाँधकर पोटली बनालेवे। उस पोटली को मिट्टी के सकोरे में २ या ४ तोले स्त्री के अथवा गौ के दूध में भिगोकर नेत्रों पर बार बार लगावे और कुछ बूँदें नेत्रों में भी टपकावे तो नेत्रों की दाह, बहना, लाली, पीड़ा आदि सब विकार नष्ट होकर नेत्र चन्द्रमा के समान निर्मल होजाते हैं। इस पोटली से सैकड़ों आदमियों को लाभ हुआ है।

—०—

नेत्र रोगोंपर शुक्लाञ्जन—बड़ी हरड़, शुद्ध मैनसिल, सेंधानमक, शंख भस्म, शुद्ध तूतिया, सोनामाखी की भस्म, सोनागेरू, समुद्रफेन और काली मिरच, इन सब को समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर कपड़छन करलेवे। इस चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर रात्रिमें शयन करते समय नेत्रों में आँजने से रतौंधा, नेत्र का बहना, कीचड़ आना, पढ़ने समय नेत्रों का थकना आदि सब रोग दूर होते हैं। एवं एक वर्ष का फूला तथा पलकों का फूलना भी नष्ट होता है।

प्रसूतरोगपर—प्रसूता स्त्री को दशमूल का क्वाथ ४ तोले पिलाकर ऊपर से आधी रत्ती चन्द्रोदय पान में रखकर खिलाना चाहिए। इस प्रकार दिनमें दोबार सेवन कराने से कमर की पीड़ा, उदर वृद्धि, प्रदर (योनिसे लाल व श्वेत जल का बहना), हाथ पाँव का दर्द, दुर्बलता, शरीरकी रूक्षता, स्तन-पीड़ा आदि दोष शीघ्र दूर होजाते हैं। इस योग के साथ त्रिफले के क्वाथ की योनि में पिचकारी लगाकर भीतर और बाहर योनिको धोने से योनि दृढ़ होती है परन्तु यह योग और पिचकारी २१ दिन से अधिक सेवन न करे।

स्तनरोग विनाशक तेल—यदि बच्चा पैदा होने के पश्चात् स्त्री के कुच लटक जायँ या उन में दर्द हो तो अनार के १० तोले पञ्चाङ्ग में चमेली के २० तोले तेल को यथाविधि पकाकर स्तनों पर मर्दन करे तो स्तन दृढ़ और पुष्ट होते हैं।

सूरजमल जैन, टि०—फूलबाजार, (जालना)

ज्वर में तृषा की चिकित्सा—आमला, कमलगट्टा, धानकी खीलें और बड़के अङ्कुर सब को समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्ण की शहद के योग से गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एक एक गोली मुख में रखकर बार बार चूसने से प्यास, मुख का सूखना, और दाह होना शान्त होता है।

पं० रामचन्द्र दीक्षित वैद्य, धन्वन्तरि-औषधालय, सरदार शहर.

अवैध प्रसंग का फल और उसका प्रतिकार।

भारतीयों की शारीरिक और मानसिक निर्बलता के जितने कारण हैं उनमें से अवैध अर्थात् अनियम इन्द्रियसेवन करना प्रथम श्रेणी के प्रधान कारणों में से एक है। वैज्ञानिक दृष्टि से अप्राप्त आयु में विवाह और इन्द्रियसेवन का आरम्भ, समय-असमय और मित-अमित विचारहीन प्रति प्रसंग, उपभोग एवं आगे चलकर व्यभिचार आदि पाप का स्वाभाविक प्रादुर्भाव, यह समस्त कारण ही भारतवर्ष का सर्वनाश कर रहे हैं। इन बातों का प्रतिकार सर्वांश में हमारे हाथ है। बाल्यविवाह की रोक, बाल्यकाल में विषयवासना से पृथक् रखना, और व्यभिचार के प्रति घृणा उत्पन्न कराकर सुप्रथा का राज्य उपस्थित करना असाध्य व्यापार नहीं है। यदि इच्छा की जाय तो यह साधनाएँ सरलतापूर्वक साधी जासकती हैं। यदि समस्त भारतवर्ष के स्त्री, पुरुष और बालक बालिकाएं दृढ़ प्रतिज्ञ होकर यह साधना करें तो आज से बीस वर्ष बाद यह पद दलित देश अनेकों जातियों को पदस्खलित करने में सक्षम हो सकता है।

अवैध प्रसंग के फल हैं—मृगी, यक्ष्मा, उन्माद, चित्तविकृति प्रभृति। ऐसे भीषण रोग यदि सहज में नहीं हो सकते तो परम्परा के चक्र में पड़कर आगे चलकर असाध्य रूप धारण करते हुए हो जाते हैं। अर्थात् सन्तति पर यह अपनी भीषणता विशेष रूपसे डाला करते हैं। यदि इन गुरुतर और अपेक्षाकृत कुछ प्रतिफलों को भविष्य के लिहाज़ से छोड़ भी दिया जाय तो तुरन्त फलदायी उपदंश प्रमेह, शुक्रमेह, ध्वजभङ्ग और वन्ध्यता आदि कुछ साधारण रोग नहीं कहे जासकते।

लोगों का कहना है कि उपदंश की बीमारी अमेरिका से आई है। कोई कहते हैं कि अमेरिका का पता चलने के बाद यह रोग दृष्टि पड़ा है। किन्तु, वास्तव में यह बीमारी किस देश में और किस प्रकारसे प्रथम उदय हुई थी इसके जाननेका कोई उपाय नहीं है। बहुत से मनुष्य यह भी कहने लगे हैं कि यह रोग पुराने महाद्वीपों में बहुत समय से विद्यमान था। मालूम होता है कि भिन्न जाति के लोग, विभिन्न प्रकृति वालों के साथ इन्द्रिय सेवन करने से यह रोग जन्मो

द्वितीय युक्तप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन हरदोई।

सम्मेलन के सभापति पं० जगन्नाथ प्रसाद जी आयुर्वेद पंचानन का ता० १६ को कानपुर तथा २० दिसम्बर को लखनऊ में स्वागत हुआ और२१दिसम्बरको हरदोई स्टेशनपर११बजे पहुंचनपर वहां की स्वागतकारिणी ने तथा वहां की जनता ने बड़े प्रेम से स्वागत किया और प्रोसेशन स्टेशन से हरदोई शहर में घूमता हुआ राजा साहब कटियारी की कोठीपर १२॥ बजे पहुंचा।स्वागतकारिणी के सभापति श्रीयुत बंकिमचन्द्र जी सन्याल सिविल सर्जन हरदोई महोदय आदि प्रोसेशन के साथ थे दो बजे सम्मेलन का कार्य्य आरम्भ हुआ।

मंगलाचरण सुरेन्द्रनाथ जी वैद्य ने स्तोत्रादिक से किया। स्वागत कविता पं०यज्ञदत्त जी राजवैद्य कटियारी तथा पं० ज्ञानेन्द्र दत्तजी आदि ने पढ़ी पश्चात् स्वागतसमितिके सभापति श्रीयुत बंकिमचन्द्र जी सन्याल सिविलसर्जन हरदोई की वक्तृता हुई।वक्तृता आर्येदानुराग तथा आयुर्वेदहितकामना से भरी हुई थी। फिर युक्तप्रा० द्वि० वैद्य सम्मेलन के सभापति के प्रस्ताव को पं० अजुध्यानाथ जी वकील तथा लखनऊनिवासी पं०विन्ध्येश्वर नाथजी वैद्य ने उपस्थित किया। राजवैद्य कटियारी तथा लखनऊनिवासी पं० श्यामलाल जी वैद्यराज ने अनुमोदन तथा कानपुरनिवासी चि०चू० पं०रामेश्वर जी मिश्र ने समर्थन किया। बाद सारगर्भित अपूर्व तथा अद्वैत भाषण सभापतिजी का हुआ। २१ दिसम्बर का कार्य्य समाप्त हुआ।

२२ दिसम्बर १६१६ द्वितीय दिवस मंगलाचरण प० देवीसिंह जी पं०ज्ञानेन्द्रदत्त जी आदि ने किया। स्वागत कविता प०ज्ञानेन्द्रदत्त जी मिश्रित की अपूर्व थी। बाद निबंध पढ़े गये। मूत्र परीक्षा पर लखनऊ निवासी पं०रामनारायण जी मिश्र ने कहा। क्षयरोग पर-प० हरदत्त जी पांडे अध्यापक ललितहरी आयुर्वेद कालेज पीलीभीत-तथा प० रामचन्द्र जी वैद्य मथुरा आदि ने पढ़ा। रिपोर्ट-पं०रघुवर-दयाल जी भट्ट मंत्री स्थायी समिति कानपुर ने पढ़ी। पं०सूर्यप्रसाद जी के प्रस्ताव तथा प० विन्ध्येश्वरनाथ जी के अनुमोदन और सर्व सम्मति से पास हुई। सभापति जी ने असामयिक वैद्योंकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया। जिस पर जनता ने खड़े होकर हार्दिक शोक प्रकट किया।

आठ प्रस्ताव उपस्थित कियेगए जो विशेष अनुमोदन और समर्थन द्वारो पास हुए। इनमें एक प्रस्ताव यह था कि आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय शहरों तथा ग्रामोंके वास्ते खोले जावें। अनुमोदन समर्थन के पश्चात् धमरवा जिला हरदोई के तालुकेदार राय केदारनाथ जी ने वचन दिया कि मैं एक आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय हरदोई में खुलवाऊँगा। जिस में सब को औषधि मिलेगी। उसमें धमरवा के राजवैद्य प०मूलचन्द जी ने अवैतनिक रूपसे कार्य करने का वचन दिया है। आज का कार्य समाप्त हुआ।

तीसरा दिन २३दिसम्बर १९१९। मंगलाचरण, स्वागत कविता तथा स्वागत का गान हुआ पश्चात् चेतना स्थान के मतभेद पर वैद्यवर प० उमापति जी आदि ने पढ़ा। श्लेष्मज्वर (इन्फ्लूएन्जा) पर लखनऊनिवासी प० विन्ध्येश्वरनाथ वैद्य ने संस्कृत में निबंध पढ़ा जिसमें संक्रामक व्याधियों के शास्त्रीय कारण और शास्त्रीय उपाय बताये गये थे। बाद को प्र० १ देशी राज्यों में आयुर्वेद का प्रचार हो तथा जहां हो चुका है उन को धन्यवाद दिया गया। प्र० २ नि० भा० वर्षीय वैद्यसम्मेलन की ओर से जो आयुर्वेदिक यूनिवर्सिटी कालेज इलाहाबाद में निश्चित हुआ है उसे शीघ्र खोलना चाहिए।

२३।९।१९ को इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसिल के सदस्य माननीय नथमलजी के प्रस्ताव के उत्तरमें जो सरविलियम विलसन्ट ने कहा कि 'देशीयचिकित्सा वैज्ञानिक नहीं है' इसका घोर प्रतिवाद किया गया—

स्थायीसमिति के अपील करनेपर सौ से अधिक धन संग्रह हुआ। कुछ वैद्य महानुभावों को उपाधियां दी गईं और हरदोई के सम्मेलन में जिन्होंने तन मन धनसे सहायता दी थी उन को सम्मानपत्र दिए गए। बाद इस साल के कार्यकर्ता निम्नलिखित निर्वाचित हुए।

सभापति प० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल प्रयाग, उपसभापति प० रामेश्वर जी मिश्र कानपूर, प० किशोरीदत्त जी कानपूर, प० घनानन्द जी मुरादाबाद प० उमादत्त जी कानपूर, प० रामचन्द्रजी मथुरा, प० गणपति जी शास्त्री काशी, प० विन्ध्येश्वरनाथ जी लखनऊ, प० मूलचंद जी हरदोई पिहानी, मन्त्री—प० रघुबरदयालजी कानपूर सबको धन्यवाद दे कर सभा विसर्जन हुई।

—०—

प्रेरित-पत्र।

(दूसरों के मत के लिए सम्पादक उत्तरदाता नहीं है)

प्रयाग के वैद्यपञ्चानन पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल के सभापतित्व में ता० २१, २२ २३ को बड़ी धूमधाम से यु० प्रा० द्वि० वैद्यसम्मेलन हरदोई में सानन्द समाप्त हो गया। बाहरी वैद्यों की उपस्थिति अनुमान सवा सौ के थी। इस उत्साह को देखते हुए आशा होती है, कि अब वैद्यों में जागृति होती जाती है। और इस सम्मिलनी से भविष्य में पूर्ण आशा है कि वैद्यगण अपने भूले हुए मार्ग पर आने के लिये दिनों दिन प्रयत्न कर, इस जागृति के जमाने में अपनी शक्ति को बढ़ा कर आयुर्वेद का पुनरुद्धार करने में कटिबद्ध होंगे।

बहुत से लोग प्रश्न करते हैं कि इन सम्मेलनों से क्या लाभ है? जितना द्रव्य इन सम्मेलनों में व्यय होता है यदि उतना द्रव्य किसी कार्य की नींव डालने में व्यय किया जाय तो आशा है कि किसी कार्य का सूत्रपात अवश्य हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में यही कह देना उचित है कि अभी वैद्यों तथा जनता में आयुर्वेद के लिये इतना उत्साह नहीं है जो एक स्थान में बैठे ही किसी संस्था की सहायता कर सकें? अभी देश में आयुर्वेद का नाम विस्मरण हो रहा है, इस लिये इस की जागृति करने के लिये बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इस उद्देश्य से सम्मेलन देश के प्रांत२ में किये जाते हैं जिस से सर्वसाधारण को यह पता चल जाय कि आयुर्वेद क्या है और सम्मेलन क्या वस्तु है? इस प्रश्न का उत्तर यथार्थ होनेपर अन्त में फिर भी शंका होती है कि किसी उद्योग के करने से उस का फल अवश्य निकलता है परन्तु आज कई वर्षों से देखा जाता है कि सम्मेलन होते हैं और बड़े२ प्रस्तावों की धूम मच जाती है और बड़े २ व्याख्याता गला फाड़२ कर चले जाते हैं फिर ३-४ दिन के बाद कुछ नहीं। इसी से लोग कहते हैं कि सम्मेलनों से क्या लाभ है? जो लोग परिश्रम और अपने द्रव्य तथा कार्य की हानि कर वहां पहुंचते हैं उन्हें क्या फल हुआ। न देश को ही

काम पहुँचा ? और न कोई वास्तविक कार्य्य ही सिद्ध हुआ ।
देखते हैं प्रतिवर्ष आज १२ वर्ष से वैद्यलोग यह डंका पीट रहे हैं
एक आयुर्वेद विद्यालय की आवश्यकता है आवश्यकता है !
कोबार बड़े२ लेख इस विषय में समाचारों में लिखे गये। बड़े२
रत के विख्यात वैद्यों ने इसके लिये कमर कसी । परन्तु फिर
आज देखते हैं कि यह कोलाहल कागज़ के घोड़ों की कहलावत
ही अनुसार रहा ? अब अखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन
इन्दौर में होने वाला है इस लिये यह कह देना अवश्य प्रतीत
ता है कि यह सम्मेलन एक राजधानी में होरहा है । इसके संचालक
सब प्रकार से प्रतिष्ठित हैं । इस लिये हमें आशा होती है कि बारह
र्ष की कामना की पूर्ति इस सम्मेलन में अवश्य होगी । अगर ऐसी
राजधानी से भी सफलता न हुई तो और कहाँ होसकती है।यह जान-
र हर्ष होता है कि विद्यालय का कार्य अब पंडित जगन्नाथप्रसादजी
शुक्ल के ही हस्तगत हुआ है और यह भी ज्ञात हुआ है कि शुक्ल जी
ब कटिबद्ध होकर इसकार्य में अवतरित हुए हैं । शुक्ल जी के
स शुद्ध संकल्प के लिये धन्यवाद पूर्वक निवेदन है कि यह प्रयत्न
ब ढीला न पड़नेपावे । जिस उत्साह से आपका उद्योग है उसी
रह जारी रहे परमात्मा आपकी सहायता करेंगे ।

एक बात और कह देना भी आवश्यक है कि जो महानुभाव
अपने स्थान में सम्मेलन के लिये निमन्त्रण देते हैं उनको पूर्व इस बात
र विचार कर लेना चाहिए कि हम इस भारको उठा सकेंगे या नहीं?
जो बाहरी बन्धुगण आवेंगे उनका उचित स्वागत कर सकेंगे कि नहीं?
न सब बातों का विचार करके ही सम्मेलन का भार लेना चाहिए
केवल विख्याति के लिए ही नहीं ?

युक्त प्रान्तीय सम्मेलन हरदोई के बर्ताव को देखकर मुझे दुःख
हुआ है । विशेष कुछ न कहकर एक बात कह देना उचित प्रतीत होता
है जिससे भविष्य में मेरे भाइयों को सावधानी रहे । मेरे एक मित्र मेरे
साथ थे जो एक बड़े आदमी थे,वे मेरे आग्रह से गये थे । जब हरदोई
पहुंचे तो उन्होंने कहा कि हमें एकान्त स्थान मिल जाय तो बहुत अच्छा
होगा।स्वागतकारिणी सभा के मन्त्रीजी से भेंट हुई तो उनका परिचय
दिया और स्थानके लिए प्रार्थनाकी तो उन्होंने ऐसे शुष्क शब्दोंमें और
कितने ही आदमियों के बीच में उत्तर दिया कि हमारे पास ऐसा कोई

इन्तज़ाम नहीं जो एकान्त हो और २, ३ आदमी ही रहें उनके कहने के तरीके, के बजुसम वाक्यों की बौछार से बड़ा दुःख हुआ और मैं मौन होकर रह गया। दैवात् एक वैद्य महाशय जी से भेंट होगई उनके स्थान में विश्राम किया। इसलिए यह जतला देना पड़ा जो महानुभाव प्रबन्ध न कर सकें उनको प्रबन्ध का भार लेना नहीं? मैं मन्त्री जी से इस वक्तव्य के लिए क्षमा चाहता हूँ।

विनीत—नारायणदत्त शर्मा वैद्यराज, हरद्वार.

—०—